औद्योगिक संगठन एवं प्रबन्ध
(Industrial Organisation & Management)

[आगरा विश्वविद्यालय द्वारा बी० काम० (भाग २) के
लिए स्वीकृत]

— द्वितीय संशोधित एवं परिवर्द्धित संस्करण —

लेखक —

प्रो० चन्द्रदेव प्रसाद श्रीवास्तव
एम० ए०, बी० कॉम०
अध्यक्ष वाणिज्य विभाग

शिवरतन वाजपेयी
एम० कॉम०
प्रवक्ता वाणिज्य विभाग

पद्माकर अस्थाना
एम० कॉम
प्रवक्ता वाणिज्य विभाग

डी० ए० वी० कालेज, कानपुर

प्रकाशक

किशोर पब्लिशिंग हाउस
परेड, कानपुर

१९६१]

[मूल्य आठ रुपये

❀ प्राक्कथन ❀

(प्रथम संस्करण)

आज जब कि संसार के सारे राष्ट्र औद्योगीकरण की दौड में जुटे हुए हैं और विज्ञान के नित्य नए आविष्कारो ने पुरानी उत्पादन प्रणालियो को चुनौती दे रखी है—प्रयोगशाला मे जुटा हुआ वैज्ञानिक, अध्ययन कक्ष मे विचारो मे निमग्न अर्थशास्त्र मनीषी, विश्वविद्यालयो मे वाणिज्य विषय के अनुसधान विभागो मे व्यस्त रिसर्च स्कॉलर, इन्जीनियर तथा राजकीय विशेषज्ञ आदि सभी औद्योगिक सगठन एव प्रबन्ध के क्षेत्र मे परम्परागत रूढियो मे सुधार कर वैज्ञानिक विचारधारा को जन्म देने म व्यस्त है। धीरे-धीरे व्यक्ति का महत्व घट रहा है और उसका स्थान नियम और व्यवस्था तथा नियोजन लेते जा रहे हैं। आज का प्रगतिशील उद्योगपति भी सगठन और प्रबन्ध की वैज्ञानिक प्रणाली की महत्ता को स्वीकार करता है और वह स्वय एक से दो, दो से चार और चार से चालीस प्रतिष्ठानो का किसी न किसी व्यवस्था के अन्दर सचालन करने के लिए उत्सुक रहता है और उसे इस दिशा मे पर्याप्त सफलता भी मिली है।

हमारे देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रीय सरकार के तत्वाधान मे नई समाजवादी व्यवस्था को जन्म दिया गया है। उद्योग के क्षेत्र मे सदियो की गुलामी से उत्पन्न दोष धीरे-धीरे दूर हो रहे है। एक ओर उद्योगो के राष्ट्रीय-करण एव राजकीय नियन्त्रण का महत्वपूर्ण प्रयोग चल रहा है तथा दूसरी ओर उद्योगो मे बढते हुए राजकीय हस्तक्षेप एव नियन्त्रण तथा मजदूरो मे बढी हुई चेतना के कारण औद्योगिक सगठन एव प्रबन्ध स्वत वैज्ञानिक आधार अपनाता जा रहा है। ये सब एक स्वतन्त्र प्रगतिशील राष्ट्र के लिए स्वस्थ लक्षण हैं।

आज का विश्वविद्यालय का विद्यार्थी जिसे कल उद्योग अथवा व्यवसाय के क्षेत्र मे बागडोर सभालनी है इन हलचलो के प्रति उदासीन कैसे रह सकता है? एतदर्थ देश के सभी विश्वविद्यालयो ने औद्योगिक सगठन एव प्रबन्ध विषय को अपने बी० कॉम० एव एम० कॉम० की परीक्षाओ के पाठ्यक्रम मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दे रखा है। आगरा विश्वविद्यालय ने भी इस विषय को एम० कॉम० की परीक्षा म एक पृथक प्रश्न पत्र को रूप म महत्ता दी है तथा बी० काम० पार्ट २ क पाठ्यक्रम मे पर्याप्त सुधार के साथ समावेश किया है। प्रस्तुत

पुस्तक विशेषतया इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए तथा अधिकतर विद्यार्थियों द्वारा हिन्दी माध्यम अपनाए जाने के कारण उन्हीं की रुचि की भाषा में लिखी गई है। हमारा ध्येय रहा है कि विद्यार्थियों में विषय को रुचिपूर्वक मनन करने तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने की क्षमता बढ़े, इसलिए हमने तथ्यों का सकलन मात्र करने के स्थान पर उनके विवेचनात्मक अध्ययन पर अधिक बल दिया है। यह प्रवृत्ति विद्यार्थियों को न केवल परीक्षक की दृष्टि में ऊँचा उठावेगी वरन् परीक्षोपरान्त भावी जीवन में एक सफल व्यवसायी अथवा उद्योगी बनाने में सहायक होगी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा में होने वाले अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों, चलने वाले प्रयोगों तथा उपयोगी आधतन आंकड़ों का सकलन भी विशिष्ट जानकारी के लिए किया गया है।

यद्यपि भारत सरकार द्वारा प्रचलित वाणिज्य एव वित्त विषयक शब्दावली से पूर्ण सहायता ली गई है, पर भाषा को क्लिष्ट नहीं होने दिया गया है। स्थान-स्थान पर अग्रेजी के पर्यायवाची शब्द जिनसे अध्यापक एव विद्यार्थी अभी अभ्यस्त हैं, कोष्ठक में दे दिए गए हैं।

आशा है प्रस्तुत पुस्तक न केवल बी० काम० के विद्यार्थियों के लिए वरन् सामान्य विज्ञ पाठकों के लिए जिन्हें औद्योगिक सगठन एव प्रबन्ध का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने में रुचि है, अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी।

अन्त में अपने कालेज के वाणिज्य विभाग के सभी सहयोगी प्रवक्तागण विशेषतया प्रो० एन० एस० निगम तथा प्रो० जे० एस० रस्तोगी हमारे धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने निरन्तर प्रेरणा एव अपना अमूल्य परामर्श प्रदान किया है। हम अपने विद्यार्थी श्री केशवप्रसाद तथा श्री रामप्रवेश ओझा की सराहना किए बिना नहीं रह सकते, जिन्होंने बड़ी लगन के साथ पाण्डुलिपि साफ-साफ लिखने में योग दिया है। पुस्तक के मुद्रण एव प्रूफ सशोधन में जिस सूझ बूझ एव लगन का परिचय श्री वेदप्रकाश भार्गव ने तथा प्रकाशन में जिस रुचि एव तत्परता का परिचय डा० तेजबहादुरसिंह चन्देल ने दिया है उसके लिए हम उनके अत्यन्त आभारी हैं। अन्त में अपने सभी सहयोगी अध्यापक बन्धुओं से हमारा अनुरोध है कि प्रस्तुत पुस्तक में सुधार के लिए सुझावों से हमें अवगत कराने की कृपा करें ताकि भविष्य के सस्करण में हम अपने इस प्रयास की भूलों का सुधार सकें।

— लेखकगण

-: विषय सूची :-

अध्याय	विषय	पृष्ठ

अध्याय १

औद्योगिक प्रबन्ध का विकास

(Evolution of Industrial Management)

समस्त आर्थिक क्रियाओं मे सगठन अथवा प्रबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उचित सगठनकर्ता अथवा प्रबन्धक के अभाव में आर्थिक साधन स्वय कुछ नहीं कर सकते। प्राचीन काल मे आर्थिक प्रणाली अत्यन्त सरल थी। उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था। औजार साधारण थे। औद्योगिक प्रणाली अपरिवर्तनशील तथा स्थिर थी। इसलिये सगठन अथवा प्रबन्ध का काम भी सरल था। कारीगर स्वय ही अपना प्रबन्धक भी होता था। परन्तु धीरे धीरे उत्पादन की विधियाँ अत्यन्त जटिल होती गई। लम्बे पैमाने पर उत्पादन होने लगा। श्रम का विभाजन हुआ। हजारो कर्मचारियो से एक साथ काम लेना, उनके काम का समन्वय करना एक समस्या बन गई। इसीलिए औद्योगिक प्रबन्ध के लिये विशेषज्ञो की आवश्यकता पडने लगी। औद्योगिक प्रबन्ध एक निश्चित विज्ञान बन गया। उसकी शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक हो गया। व्यक्तिगत योग्यताओं के साथ-साथ प्रबन्ध सम्बन्धी नियमो का ज्ञान भी उतना ही महत्वपूर्ण बन गया।

औद्योगिक प्रबन्ध की परिभाषा

प्रो० किम्बल ने औद्योगिक प्रबन्ध की परिभाषा देते हुए लिखा है— 'विस्तृत रूप से प्रबन्ध उस कला को कहते हैं, जिसके द्वारा, किसी उद्योग में मनुष्यों और माल को नियंत्रित करने के लिए जो आर्थिक सिद्धान्त लागू होते हैं उन्हें प्रयोग में लाया जाता है।* इस प्रकार औद्योगिक प्रबन्ध मे इस बात

---

*Management may be broadly defined as the art of applying the economic principles that underlie the control of men and materials in the enterprise under consideration.

Kimball and Kimball : *Principles of Industrial Organisation.*

पर विचार किया जाता है कि श्रमिको से किस प्रकार काम लिया जाय कि कम से कम लागत से अधिक से अधिक काम हो सके तथा प्राप्त साधनो (माल) का अच्छा मे अच्छा उपयोग हो सके। प्रो० किम्बल ने प्रबन्ध तथा सगठन को अलग-अलग माना है तथा दोनो के क्षेत्र को निम्नलिखित प्रकार से निर्धारित किया है। उनके अनुसार "प्रबन्ध मे उद्योग को शुरू करने, पूंजी का प्रबन्ध करने, मुख्य-मुख्य औद्योगिक नीतियो के निर्धारित करने सब प्रकार के उपकरण (equipment) प्रदान करने, सगठन की सामान्य रूप रेखा बनाने तथा मुख्य-मुख्य अधिकारियो की नियुक्ति करने के कार्य सम्मिलित है। सगठन प्रबन्ध का सहायक है, इसमे विभिन्न विभागो तथा उनके कर्मचारियो की नियुक्ति करने और उनके कामो का विभाजन करने की क्रियाएँ सम्मिलित है। इस प्रकार सगठन, प्रबन्ध को लागू करने की क्रिया है।' *

मध्ययुग मे औद्योगिक प्रबन्ध

मध्ययुग मे औद्योगिक विकास का प्रारम्भ काल था। यो तो औद्योगिक परम्परा उतनी ही पुरानी है जितनी की सभ्यता। परन्तु प्राचीन काल मे उसकी अलग कोई स्थिति नही थी। अधिकाश लोग देहातो मे बसते थे। नगरो की सख्या नही के बराबर थी। औद्योगिक विकास तथा नगरो के विकास का काम करीब करीब साथ-साथ हुआ। गाँवो की आर्थिक परम्परा अत्यन्त सरल थी। प्रत्येक गॉव प्राय आत्म निर्भर होता था। जिन वस्तुओ की आवश्यकता पडती थी उनकी पूर्ति गाव मे ही हो जाती थी। व्यापार अत्यन्त सीमित था। उत्पादन की विधियाँ तथा औजार बडे सरल थे। प्रो० अनविन (Prof. Unwin) के मतानुसार "मध्यकालीन कारीगर मजदूर, निरीक्षक (foreman), पूजीपति, व्यापारी तथा दूकानदार सभी कुछ था। † उसका घर ही उसका कारखाना था और परिवार के सभी लोग उसमे सहायता करते थे। बिक्री की समस्या बिलकुल न थी क्योंकि जो कुछ तैयार होता था तुरन्त बिक जाता था। माल की किस्म प्राय एक ही रहती थी और उसमे परिवर्तन नही होता था। इसका कारण यह था कि उत्पादन विधियो का ज्ञान परम्परागत ज्ञान के आधार पर होता था। पुत्र अपने पिता से व्यवसायिक ज्ञान प्राप्त करता था और उसे अपने पुत्र को सौंप जाता था।

---

* Kimball and Kimball . *Principles of Industrial Organisation*

† Unwin : *Industrial Organisation in Sixteenth and Seventeenth Century*

व्यवस्था थी। गिल्डो के निजी अधिकारी होते थे जो इस बात की जाच करते थे कि उसके निर्देशो का पालन ठीक ठीक हो रहा है अथवा नही।

समाज कल्याण तथा जनोपयोगी कार्यो के क्षेत्र मे भी गिल्डो का महत्व कम नही था। वे बाहर जाने वाले सदस्यो की जान माल की रक्षा का प्रबन्ध करती थी तथा उनकी अनुपस्थिति मे उनके परिवार की देख भाल का भार अपने ऊपर लेती थी। गिल्डो के सदस्यो की साख विदेशो मे बहुत अधिक होती थी क्योकि गिल्ड उनके कर्ज के भुगतान का जिम्मा भी लेते थे। सदस्यता प्राय वशागत होती थी और पिता की मृत्यु के पश्चात उसका बडा लडका गिल्ड का सदस्य बन जाता था। मध्यकाल मे व्यवसायिक उन्नति मे व्यापारिक गिल्डो का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इन्होने न केवल पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करके व्यापार की उन्नति मे सहायता की बल्कि व्यापार का ऊँचा आदर्श प्रस्तुत किया। प्रो० शील्डस (B F Shields) के मतानुसार—यह उच्चकोटि की व्यापारिक नैतिकता लागू करने का प्रयास था जो व्यापारियो के पारस्परिक व्यवहार के लिए अत्यन्त आवश्यक था। मध्य युग मे जब कि राजकीय व्यापारिक नियमो का अभाव था गिल्डो ने व्यापारिक परम्पराओ के कायम करने तथा उनके सचालित करने मे बडा ही महत्वपूर्ण योग दिया।

कारीगरो की गिल्ड (Craft Guilds)—१३वी शताब्दी मे व्यापारिक गिल्डो का पतन होने लगा तथा उनके स्थान पर कारीगरो की गिल्डें बनना शुरू हुआ। औद्योगिक प्रबन्ध मे यह एक महत्वपूर्ण कदम था। नई सस्था के सदस्य सिर्फ कारीगर हो सकते थे। व्यापारियो को उसमे कोई स्थान नही था। एक गिल्ड मे एक ही पेशे के कारीगर शामिल हो सकते थे। इस प्रकार यहा से विशिष्टीकरण का आरम्भ हुआ। कोई भी व्यक्ति बिना गिल्ड का सदस्य बने उस धधे को नही कर सकता था।

इस समय किसी भी उद्योग मे काम करने वाले कर्मचारियो को तीन भागो मे बाटा जा सकता है।

(१) **सीखने वाले (Apprentices)**—ये किसी कारीगर का शिष्यत्व ग्रहण करके उसके यहा काम सीखते थे। शिष्यत्व का समय प्राय सात वर्ष का होता था। उसके बाद वे उस धन्धे को करने का अधिकार प्राप्त करते थे। यूरोप मे शिष्यत्व का समय विभिन्न

देशों तथा पेशा के अनुसार अलग अलग था। यह समय प्राय पांच साल से सात साल तक होता था। कारीगर प्राय अपने लडकों को कम समय में ही काम का प्रमाण पत्र दे देते थे। नियोक्ता, सीखने वाले के लिए भाजन तथा वस्त्र की व्यवस्था करता था, उसके बदले सीखन वालो को काम करना पडता था।

(२) मजदूर (Journey men) –सीखने वाले अपना शिष्यत्व काल पूरा करके मजदूर बन जाते थे। प्राय धन की कमी के कारण व अपनी स्वतन्त्र दूकान नहीं खाल सकते थे। इसलिए मजदूरी पर किसी कारीगर के यहाँ उन्हे काम करना पडता था।

(३) कारीगर (Craftsmen) –ये स्वतन्त्र कारीगर होते थे जिनकी अपनी दूकान होती थी। इन्हे शिष्य रखने का अधिकार था। अन्तिम श्रेणी के कारीगर ही गिल्ड के सदस्य हो सकते थे।

गिल्डों के अधिकार तथा काम बहुत विस्तृत थे। वे माल की किस्म, मूल्य बिक्री का स्थान मजदूरों के काम के घंटे तथा काम की अन्य शर्तें सभी कुछ निर्धारित करते थे। रात मे काम करना मना था। ऐसा मजदूरों की सुविधा के लिये नहीं बल्कि निरीक्षण सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण किया जाता था।* वे एक ही पेशे के लोगों मे सहयोग तथा मैत्री की भावना उत्पन्न करते थे। ये काम और किस्म का ऊँचा स्तर कायम रखते थे, तथा बाहरी लोगों से अपने पेशे के लोगों की रक्षा करते थे। इस प्रकार अपने धन्धे मे गिल्डो का एकाधिकार प्राप्त था। उनकी आज्ञा कानून के बराबर समझी जाती थी। कारीगरों की गिल्डें, व्यापारिक गिल्डो के ही समान कल्याण सम्बन्धी कार्य भी करती थीं। वे बीमारी, बेरोजगारी तथा पंगु हो जाने की दशा मे सहायता करती थीं। असामयिक मृत्यु हो जाने पर विधवा तथा सतानों के लिए भी व्यवस्था की जाती थी। इस प्रकार गिल्ड वर्तमान सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी अनेक सुविधायें प्रदान करती थीं।†

गिल्डो का पतन –१५वीं शताब्दी तक गिल्डो का पतन बडी तेजी से आरम्भ हो गया। उनका स्थान धीरे धीरे राज्य ने ले लिया। कारीगर गिल्ड

---

* B F. Shields : *Evolution of Industrial Organization.*

† B. F. Shields . *Evolution of Industrial Organization.*

की पाबन्दियों से मुक्त हो गये। इसके कई कारण थे। एक तो व्यापार तथा व्यवसाय की वृद्धि के कारण गिल्डों की उपयोगिता अब कम रह गई थी। बढ़ते हुये बाजार के लिये अधिक नई-नई किस्मों के माल की आवश्यकता थी। उत्पादन विधियों में भी परिवर्तन आवश्यक था। गिल्ड प्रायः परम्परावादी थे। इसके अलावा गिल्डों के अन्दर ही पार्टी बन्दी शुरू हो गई। हैमण्ड के शब्दों में यह कलह गरीब तथा अमीर कारीगरों, मालिक तथा मातहत कारीगरों, व्यापारिक तथा औद्योगिक पक्षों, एवं एक तथा दूसरे धंधे के बीच में थी।* कुछ अमीर कारीगर जो उत्पादन और व्यापार साथ-साथ करते थे, गिल्डों के प्रबन्ध में अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखने लगे। सीखने वालों तथा मजदूरों (Journey men) के विरुद्ध नियम कड़े कर दिये गये। फलतः उन्होंने गिल्डों से सहयोग बन्द कर दिया। गिल्डों के अनेक राजनैतिक अधिकार जैसे नगरों का प्रबन्ध इत्यादि धीरे-धीरे सरकार ने अपने हाथ में ले लिये। इस प्रकार कुछ समय बाद गिल्डों का पूर्णतया पतन हो गया।

भारतीय गिल्डे-जाति पचायतें

यूरोप में औद्योगिक क्षेत्र में जो स्थान गिल्डों का था भारत में वही जाति पचायतों का था। जाति पचायतों का सगठन आर्थिक के बजाय सामाजिक विशेष था। एक पेशे के लोगों की एक जाति बन गई थी जैसे बढ़ई, लोहार इत्यादि। इस प्रकार के पेशे जन्म के आधार पर निर्धारित होने लगे। एक पेशे से दूसरे पेशे में जाना अत्यन्त कठिन ही नहीं वरन् असम्भव था। जाति पचायतें गिल्डों की भांति काम की दशायें, मजदूरी इत्यादि निर्धारित करती थीं। परन्तु गिल्डों की भाँति न तो उनकी कोई फीस थी और न वे कारीगर तथा मजदूर का भेद भाव ही रखती थीं। सामाजिक क्षेत्र में उन्हें बहुत बड़े अधिकार मिले हुये थे परन्तु गिल्डों की भाँति उन्हें कोई राजनैतिक अधिकार न थे। जाति पचायतों का सगठन अधिक प्रजातान्त्रिक था। इसीलिए यद्यपि गिल्डें समाप्त हो गईं, जाति पचायतें आज भी कायम हैं तथा घरेलू उत्पादन में और विशेषकर देहाती क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

---

* Hammond and Hammond : *Rise of Modern Industry.*

गृह उद्योग प्रणाली

(Domestic System)

दैनिक मजदूर (Journey men) जिन्हे गिल्डो मे स्थान नही मिला वे देहातो मे चले गए। वहाँ उन्होने खेती के साथ-साथ उद्योग धंधे का भी काम शुरु किया। ऐसे लोग खेती के काम से छुट्टी पाने पर उद्योग धंधे भी करने लगे। उत्पादन का काम प्राय घर घर ही होता था। परिवार के सदस्यों के अलावा मजदूर बहुत कम रक्खे जाते थे। उत्पादन का सामान प्राय निजी उपभोग मे आता था यद्यपि बचा हुआ माल बेचा भी जाता था। इस प्रकार इस प्रणाली के द्वारा कृषि तथा उद्योग मिला दिए गए परन्तु शहरो मे पुरानी परम्परा चलती रही। 'शील्ड्स' के मतानुसार, "गृह उद्योग प्रणाली नगर अर्थ व्यवस्था के हस्त उद्योग स्तर तथा औद्योगिक क्रान्ति के बीच की स्थिति थी।

धीरे-धीरे उत्पादन प्रणाली मे एक और परिवर्तन हुआ। इसे वर्तमान फैक्ट्री प्रणाली का प्रारम्भिक रूप कहा जा सकता है। इस समय तक उत्पादन के काम मे श्रम विभाजन काफी सीमा तक लागू हो चुका था। उदाहरण के लिए कपड़े को बिक्री के लिए तैयार होने के पहले १४ लोगो के हाथ से गुजरना पडता था। कुछ लोगो ने जिनके पास काफी धन था एक नया काम शुरू किया वे कच्चा माल खरीदकर इन कारीगरो को दे आते थे और तैयार हो जाने पर उनकी बिक्री का प्रबन्ध करते थे। इस प्रकार इन्हे माल एक कारीगर से दूसरे के यहाँ अगली क्रिया के लिए ले जाना पडता था। परन्तु उत्पादन की विधियो पर उनका कोई नियत्रण न था। कारीगर अब भी अपने घरो मे स्वतन्त्र रूप मे काम करते थे। उनका न कोई फोरमैन था न कोई काम की जाच करने वाला। काम की विधि बिल्कुल गृह उद्योग प्रणाली के आधार पर थी। धीरे-धीरे उद्योग पर पूंजी का आधिपत्य बढ रहा था तथा श्रम मे सगठन की महिमा अधिक हो रही थी।

'शील्ड्स' का कथन है कि "इस युग मे पूँजी के उपयोग तथा नियत्रण मे नया परिवर्तन हुआ। इसमे कही तो बाजारो के सगठन का क्षेत्र नगर प्रणाली की अपेक्षा अधिक व्यापक कर दिया गया परन्तु उत्पादन की प्राचीन विधियो मे कोई परिवर्तन नही किया गया था कही यह उत्पादन के साधनो तथा बिक्री योग्य वस्तुओ पर पूंजीपतियो के बढे हुए अधिकारो के रूप मे प्रकट हुआ।" अतएव इस प्रणाली की दो प्रमुख विशेषतायें थी —

(१) बाजार का क्षेत्र पहले की अपेक्षा अधिक व्यापक हो गया। पहले जहाँ माल की खपत का क्षेत्र सीमित था वहा अब व्यापारी माल खरीद कर उसे दूर दूर भजने लगे।

(२) उत्पादन पर पूँजीपतियो का नियन्त्रण बढ गया। इसका कारण यह था कि कारीगरो के पास कोई पूंजी माल खरीदने अथवा औजार लेने के लिए न थी। इसके लिए उन्हे पूँजीपतियो का सहारा लेना पड़ता था।

औद्योगिक क्रान्ति तथा फैक्ट्री प्रणाली

(Industrial Revolution and Factory System)

१८वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध म यूरोप और विशेषकर इगलैंड मे एक महान आर्थिक परिवर्तन हुआ जो औद्योगिक क्रान्ति के नाम मे प्रसिद्ध है। इस क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन विधियो मे आमूल परिवर्तन हुआ। पुराने गृह उद्योगो के स्थान पर विशाल कारखाने लगने लगे जिनमे हजारो मजदूर एक साथ काम करते थे। नए नए औद्योगिक नगरो का बसना आरम्भ हो गया। मानवीय श्रम की जगह मशीनो ने लेना आरम्भ कर दिया। औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ कुछ ऐसे आविष्कारो से हुआ जिन्होंने उत्पादन विधियो म एक क्रान्ति उत्पन्न कर दी। ये आविष्कार तीन प्रकार के थे —

(१) श्रम बचाने वाले आविष्कार जैसे स्टीम की शक्ति से चलने वाले यत्र।

(२) समय बचाने वाले आविष्कार जसे नई सूत कातने की मशीन जिनमे एक साथ कई सूत कत सकते थे।

(३) दूरी कम करने वाले आविष्कार जैसे यातायात सदेश वाहन के साधन।

मुख्य मुख्य आविष्कार इस प्रकार थे। सन १७६९ मे जेम्स वाट (James Watt) ने वाष्प शक्ति का पता लगाया और वाष्प इजन का आविष्कार किया। सन १७७० म हारग्रीव्स (James Hargrieves) नामक जुलाहे ने स्पिनिंग जेनी (Spinning Jenny) नामक विशेष प्रकार का चरखा बनाया जिसमे एक साथ कई धागे काते जा सकते थे।

सन् १७७१ में आर्क राईट (Richard Arkwright) ने पानी से चलने वाले करघे का आविष्कार किया। सन् १७७९ में क्राम्पटन (Samuel crompton) ने म्यूल (Mule) का आविष्कार किया तथा सन् १७८५ में कार्टराइट (Dr. Edmund Cartwright) ने एक नवीन करघे का आविष्कार किया। धीरे-धीरे नए-नए आविष्कार और हुए तथा पुराने आविष्कारों में उन्नति होती गई।

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन विधियों में मामूली परिवर्तन हो गया। पहले जहाँ छोटे छोटे कारीगर साधारण औजारों से माल तैयार किया करते थे, अब उसके स्थान पर बड़े बड़े कारखाने स्थापित हो गये। इन कारखानों में हजारों मजदूर एक साथ काम करते थे। मानवीय शक्ति का स्थान धीरे धीरे वाष्प की शक्ति ले रही थी और मशीनों का उपयोग बढ़ता जा रहा था। यद्यपि औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ सर्व प्रथम इंगलैंड में हुआ परन्तु शीघ्र ही यूरोपीय देशों में भी इसका प्रचार होने लगा।

औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप व्यापार के क्षेत्र का विस्तार हुआ। लम्बे पैमाने पर उत्पादन होने से एक व्यक्ति के लिए बहुत से लोगों की आवश्यकताओं को पूरा करना सम्भव हो गया। इसका सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र में बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा। नए-नए नगर खानों के निकट बसने लगे। पुराने नगरों की प्रतिष्ठा नष्ट हो गई। हजारों की संख्या में कारीगर बेरोजगार हो गये। वे भाग भाग कर जीविका की खोज में नगरों में आने लगे। घरों की समस्या जटिल हो गई। मिल मालिकों ने मजदूरों की कमजोरी का लाभ उठाकर उनका खूब शोषण किया। उनसे अठारह-अठारह घंटे काम लिया जाता था, और वेतन इतना अल्प था कि घर के सभी लोगों को काम पर जाना पड़ता था। छोटी अवस्था के सुकुमार बालक तक काम में लगाये गये। आये दिन दुर्घटनायें होती थी, परन्तु मजदूरों की दशा को पूछने वाला कोई न था। यह स्थिति अधिक समय तक कैसे टिक सकती थी। शीघ्र ही सरकार को मजदूरों की सुरक्षा के लिए आवश्यक नियम बनाने पड़े। काम की दशाओं में भी क्रमशः सुधार हुआ। परन्तु इस व्यवस्था में करीब एक शताब्दी लग गई तथा इस बीच में मजदूरों को घोर कष्ट का सामना करना पड़ा।

फैक्ट्री प्रणाली (Factory System)

औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप जिस नई औद्योगिक व्यवस्था का जन्म हुआ उसे फैक्ट्री प्रणाली कहते है। प्रो० किम्बाल के मतानुसार "फैक्ट्री प्रणाली द्वारा उत्पादन से तात्पर्य उस उत्पादन विधि से है जिसमे सामूहिक श्रम तथा मशीनो का उपयोग किया जाय।"* इस प्रकार फैक्ट्री प्रणाली के दो मुख्य लक्षण है। एक तो सामूहिक श्रम और दूसरा मशीनों का उपयोग।

सामूहिक श्रम –हस्त उद्योगो (Handı Crafts) मे कारीगर स्वय अपना सब काम करता था। उसके परिवार के लोग ही उसकी सहायता करते थे। कभी कभी भाडे का श्रम भी लगाया जाता था। परन्तु वर्तमान कारखानो मे सैकडो तथा हजारो की सख्या मे मजदूर काम करते हैं। उनसे सगठित रूप में काम लेना फैक्ट्री प्रणाली की पहली विशेषता है।

मशीनों का उपयोग –फैक्ट्री प्रणाली की दूसरी विशेषता मशीनो का उपयोग है। कुटीर उद्योगो के औजार साधारण और सरल होते थे। परन्तु आधुनिक काल मे मानवीय श्रम के स्थान पर मशीनो का प्रयोग किया जाता है। औद्योगिक क्राति के समय से लेकर अब तक लगातार मानवीय श्रम के स्थान पर मशीनों का प्रयोग बढता जा रहा है। यहाँ तक कि अब पूर्णतया स्वय चालित कारखाने बनने लगे है। सारे कारखाने मे मनुष्य नाम का कोई प्राणी देखने तक को नही मिलेगा। सब काम मशीनो द्वारा अपने आप हो रहा है।

फैक्ट्री प्रणाली के अन्य लक्षण इस प्रकार है।

श्रम विभाजन –फैक्ट्री प्रणाली की तीसरी विशेषता श्रम विभाजन है। यद्यपि इसके पहले भी न्यूनाधिक रूप से श्रम विभाजन का उपयोग किया जाता था। परन्तु मशीनों का प्रयोग होने से श्रम विभाजन और अधिक परिमाण में होने लगा। यहाँ तक कि काम को छोटी से छोटी उपविधियो मे विभाजित किया गया और एक व्यक्ति के जिम्मे समस्त काम का बहुत छोटा अश रह गया।

---

* Kimball and Kimball : *Principles of Industrial Organisation.*

लम्बे पैमाने पर उत्पादन—कुटीर उद्योगों में मात्र थोड़ी मात्रा में तैयार किया जाता था इसका कारण एक तो यह था कि कारीगर स्वतन्त्र रूप से माल तैयार करता था और दूसरा यह था कि पुराने औजारों से अधिक मात्रा में माल तैयार भी नहीं किया जा सकता था। मशीन मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में उत्पादन करती थी इसीलिए नई व्यवस्था के अनुसार लम्बे पैमाने पर उत्पादन होने लगा।

उद्योगों में गतिमयता—प्रा० किम्बाल के अनुसार हस्त उद्योगों से औजारों, उत्पादन तथा सामाजिक संगठन में स्थिरता का बोध होता है फैक्ट्री प्रणाली में उत्पादक विधियों में बहुत जल्दी जल्दी परिवर्तन होते हैं तथा उसके फलस्वरूप सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन होते हैं।* गृह उद्योगों में उत्पादन का ज्ञान परम्परागत था, औजार तथा किस्मों में कोई परिवर्तन नहीं होता था। परन्तु फैक्ट्री प्रणाली में उत्पादन विधियों में लगातार सुधार होता जाता है। नई नई मशीनें इजाद की जाती हैं। उत्पादन की नई नई वैज्ञानिक विधियाँ निकाली जाती हैं जिनसे कम से कम लागत में अधिक से अधिक उत्पादन हो सके।

फैक्ट्री प्रणाली के प्रभाव

फैक्ट्री प्रणाली के कारण औद्योगिक संगठन में काफी परिवर्तन हुए।

उद्योगों के आकार में वृद्धि—आधुनिक उद्योगों की एक बहुत बड़ी विशेषता उनके आकार में वृद्धि है। प्रा० किम्बाल के अनुसार यह वृद्धि दो दिशाओं में हुई। (१) व्यक्तिगत औद्योगिक संस्थाओं के आकार में वृद्धि और (२) संयोजक द्वारा होने वाली वृद्धि जिनमें एक ही प्रकार या विभिन्न प्रकार के कारखाने एक ही प्रबन्ध के मातहत आ जाते हैं। प्राचीन काल में कई सौ व्यक्ति जहाँ एक साथ काम करते थे उसे बहुत बड़ी उत्पादक इकाई माना जाता था। परन्तु वर्तमान बड़ी बड़ी औद्योगिक संस्थाओं में हजारों की तादाद में मजदूर काम करते हैं। कहा जाता है कि (Rouge) नदी के किनारे स्थित फोर्ड कम्पनी के कारखाने में ८० हजार से भी अधिक व्यक्ति काम करते हैं। इसका कारण क्या है? मशीनों के उपयोग तथा प्रबन्ध

---

* Kimball and Kimball *Principles of Industrial Organisation*

की नस्ल मे उन्नति होने के कारण औद्योगिक क्षेत्र मे उत्पत्ति बढने का नियम लागू होता है अर्थात् जितना ही लम्बे पैमाने पर उत्पादन किया जावेगा लागत उतनी ही कम आवेगी। इसलिए कारखाने के आकार मे वृद्धि की प्रवृत्ति बराबर बढती जा रही है। औद्योगिक इकाइयो मे वृद्धि एक दूसरा कारण उद्योगो मे होने वाला सयोजन है। सयोजन के द्वारा कई औद्योगिक सस्थाएँ एक मे मिल जाती है। पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा ने इस दिशा मे बडी सहायता की है। कहीं कहीं पर अधिक शक्तिशाली औद्योगिक इकाइयाँ अपने से कमजोर इकाइयो को हडप कर गई। अन्य स्थानो पर पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा से तग आकर कई उद्योगो ने बराबरी की सधि कर ली। पूँजीवादी प्रणाली ने भी इसमे बडी सहायता की। लाभ की बची हुई रकम को पूँजीपति अन्य उद्योगो मे लगाता है इस प्रकार धीरे धीरे उसके अधीन उद्योगो की सख्या बढती जाती है। सयोजन के सम्बन्ध मे विस्तारपूर्वक अगले अध्याय मे देखिये।

औद्योगिक स्वामित्व पर प्रभाव

उद्योगो के आकार मे वृद्धि होने के साथ-साथ औद्योगिक स्वामित्व मे भी परिवर्तन हुआ। पहले कारीगर स्वय अपने कारखाने का मालिक होता था। वही उसकी पूँजी तथा औजारो का प्रबन्ध करता था तथा हानि लाभ का जिम्मेदार होता था। परन्तु उद्योगो के आकार म वृद्धि होन के कारण पूँजी की आवश्यकता बढी। एक एक कारखाने मे करोडो रुपये की पूँजी लगने लगी। इसका प्रबन्ध किसी एक व्यक्ति द्वारा होना असम्भव था। अतएव सयुक्त पूँजी की कम्पनियो का प्रादुर्भाव हुआ। १६वी शताब्दी के अन्त मे ऐसी कम्पनियाँ विदेशी व्यापार के लिए बनाई गई तथा अपने क्षेत्र मे उन्हे एकाधिकार दिया गया परन्तु धीरे धीरे औद्योगिक सस्थाओं का स्वामित्व भी सयुक्त पूँजी की कम्पनियो के हाथ म चला गया।

सयुक्त पूँजी की कम्पनियो के कारण औद्योगिक प्रबन्ध मे क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। पहले उद्योग का मालिक स्वय ही प्रबन्ध करता था। परन्तु अब औद्योगिक सस्था का स्वामी कोई एक व्यक्ति न होकर हजारो अशधारी होते थे जो दूर-दूर तक फैले होने के अलावा बराबर बदलते रहते थे। अतएव प्रबन्ध अब प्रतिनिधि प्रणाली द्वारा होने लगा। वास्तविक प्रबन्ध अब मैनेजर अथवा मैनेजिग डाइरेक्टर के हाथ म था जो सचालक मडल (Board of Directors) के प्रति उत्तरदायी था। सचालक मडल स्वय भी

अंशधारियों के प्रति जिम्मेदार था। इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रबन्ध के स्थान पर प्रतिनिधि प्रबन्ध लागू कर दिया गया।

औद्योगिक स्वामित्व में और भी विकास हुआ पूंजीपतियों के शोषण के कारण परेशान होकर मजदूरों ने सहकारिता के आधार पर अपना सगठन करना आरम्भ कर दिया और वर्तमान समय में काफी सख्या में सहकारी औद्योगिक समितियां काम कर रही है। सहकारी औद्योगिक समितियों में कारीगर स्वय ही मालिक होते है। सहकारी स्वामित्व के अलावा सार्वजनिक स्वामित्व (Public Ownership) भी आरम्भ हुआ। अनेक देशों में सरकार अधिकाधिक सख्या में उद्योग चला रही है। पुराने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जा रहा है एव नए उद्योग खोले जा रहे है। सोवियत रूस में तो सारे उद्योगों का स्वामित्व सरकार अथवा जनता के हाथ में है।

औद्योगिक प्रबन्ध का प्रभाव

फैक्ट्री प्रणाली का औद्योगिक प्रबन्ध पर बहुत बडा प्रभाव पडा। मध्ययुग में वास्तव में प्रबन्ध का कोई विशेष महत्व भी न था। प्राय कारीगर स्वय ही अपना मालिक भी होता था। यद्यपि भाडे के श्रम का भी प्रयोग किया जाता था, परन्तु फिर भी सगठन का कार्य कठिन न था। एक व्यक्ति समस्त वस्तु तैयार करता था। अतएव वही अपने उत्पादन की मात्रा तथा किस्म के लिए स्वतत्र रूप से जिम्मेदार होता था। कारखाना प्रणाली में स्थिति बदल गई। इसमें एक तो बहुत बडी सख्या में कारीगर काम करते थे, दूसरे, श्रम विभाजन के कारण उनका काम परस्पर सम्बद्ध था और किसी एक व्यक्ति की कार्यक्षमता की अलग से परख भी सम्भव न थी। अतएव कारीगरों से काम लेना एक समस्या बन गई थी।

फैक्ट्री प्रणाली में उत्पादन लम्बे पैमाने पर तथा मांग के पूर्व होता था। अतएव एक नई समस्या माल की बिक्री तथा नियोजित उत्पादन की पडी। उत्पादन के लिए अब आवश्यक था कि वह उपभोक्ताओं की रुचि, उनकी क्रय शक्ति, माल की लागत इत्यादि का पूर्ण ज्ञान रखे। प्रतिस्पर्द्धा का क्षेत्र अब बढ रहा था। अतएव लागत को कम करने तथा बिक्री की विधियों में सुधार करने की भी आवश्यकता पडी। प्राचीन औद्योगिक प्रणाली की अपेक्षा अब

जोखिम कही अधिक हो गई थी । एक कारखाने मे लाखो रुपया व्यय होता है । तनिक भी भूल हो जाने से बहुत लम्बी हानि हो जाने की सम्भावना थी ।

पूँजीवाद का जन्म—कारखाना प्रणाली ने जिस नई अर्थ व्यवस्था को जन्म दिया उसे पूँजीवाद कहा जाता है । कारखाना प्रणाली मे श्रम की अपेक्षा पूंजी का महत्व बहुत अधिक बढ गया । पहले वस्तु के उत्पादन मे धन की लागत बहुत कम थी, कारीगर का निजी कौशल ही प्रधान था । परन्तु अब उसका स्थान गौण होगया । अधिक आवश्यकता धन की थी । एक जुलाहे के लिए जहाँ पहले कुछ सौ रुपयो म करघा इत्यादि आ जाता था, वहाँ अब सूती मिल मे प्रति व्यक्ति पूँजी का भार कही अधिक था । इसके अतिरिक्त सीखने के समय मे आशातीत कमी हो गई । नए से नया व्यक्ति भी थोडे समय मे योग्य कारीगर बन सकता था । इसके साथ साथ मशीने श्रम की बचत करती है तथा एक व्यक्ति कई व्यक्तियो का काम कर सकता है । इन सब बातो से श्रम पर पूँजी का शिकजा दृढ होने लगा । उद्योगो का सचालन जहाँ पर पहले कारीगरो के हाथ मे था, वहाँ अब बडे बडे पजीपतियो के पास पहुँच गया ।

सामाजिक क्षेत्र मे पूँजीवाद ने समस्त समाज को श्रमिक तथा पूजीपति इन दो वर्गो मे बाँट दिया । पहले श्रमिक स्वय ही अपना स्वामी होता था । गरीब कारीगर भी थोडे समय तक परिश्रम करके अपना निजी काम आरम्भ कर सकते थे । अब यह असम्भव हो गया । इसके कारण वर्ग सघर्ष आरम्भ हो गया । वर्तमान औद्योगिक परम्परा की सबसे बडी समस्या श्रम—पूजी का सघर्ष ही है । यह सब एक मात्र कारखाना प्रणाली की देन है ।

उत्पादन के साधनो का विकेन्द्रीकरण—मध्यकाल मे उत्पादन के विभिन्न साधनो का केन्द्रीकरण था । कारीगर स्वय ही अपनी पूँजी लगाता था, वही अपना सगठनकर्ता तथा मजदूर था । वही सारी जोखिम भी उठाता था । परन्तु अब स्थिति बदल गई थी । अब पूजी लगाने वाले को केवल अपने व्याज से मतलब था । मजदूरो को उनकी मजदूरी मिलती थी । सगठन का कार्य भी इतना जटिल होगया था कि इसके लिए विशिष्ट सगठन कर्ताओ की आवश्यकता पडने लगी । उत्पादन के विभिन्न साधनो के इस प्रकार अलग अलग हो जाने से वितरण की समस्या उत्पन्न होगई तथा औद्योगिक सचालन का कार्य और भी जटिल होग या ।

विशिष्टीकरण (Specialisation)

वर्तमान औद्योगिक सगठन की एक अन्य विशेषता विशिष्टीकरण है। प्रो० किम्बाल के अनुसार "विशिष्टीकरण प्रयास के सीमित क्षेत्र मे प्रयत्न के केन्द्रीकरण को कहते है।"* इसका तात्पर्य यह है कि विशिष्टीकरण के द्वारा व्यक्ति सभी दिशाओ मे प्रयत्न न करके सीमित क्षेत्र मे विशेष योग्यता प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार उसकी समस्त शक्तियाँ एक विशेष दिशा की ओर केन्द्रित होती है। और उसकी कार्य क्षमता अपनी चरम सीमा को पहुँच जाती है। अपने साधारण अर्थ मे विशिष्टीकरण अत्यन्त प्राचीन है। धन्धो के अनुसार काम का विभाजन विशिष्टीकरण की ओर उठाया हुआ कदम था। इनके अनुसार धोबी, लोहार, बढई इत्यादि के धन्धे विशेष व्यक्तियो ने अपना लिए और उन्होने सभी धन्धे करने के बजाय एक ही धन्धे मे अपनी सारी शक्ति लगा दी।

वर्तमान समय मे विशिष्टीकरण की प्रगति बडी द्रुत गति से हुई। यह केवल उद्योगो मे ही नही बल्कि जीवन के हर क्षेत्र मे व्याप्त हो गया है।

औद्योगिक इकाइयों का विशिष्टीकरण—पहले एक ही कारखाना अनेक प्रकार की वस्तुएँ तैयार करता था। उदाहरण के लिए इन्जीनियरिंग का कारखाना अनेक प्रकार की मशीनरी तैयार करता था। परन्तु धीरे–धीरे उत्पादित माल की विविधता कम होने लगी। यहाँ तक कि अब एक कारखाना पूरी मशीन न बनाकर केवल एक प्रकार के या कुछ पुर्जे तैयार करता है जैसे बालबेयरिंग बनाना या मोटर के प्लग तैयार करना। पहले कारखाने अपनी जरूरत का सारा सामान जैसे नट, बोल्ट इत्यादि खुद ही तैयार करते थे। धीरे–धीरे उन्होने देखा कि उन्हे स्वय बनाने के बजाय मोल खरीद लेने मे अधिक सहूलियत पडती है। यह प्रवृत्ति यहाँ तक बढी कि अब एक मशीनरी बनाने वाला कारखाना भी उसके सारे पुर्जे अपने यहाँ नही बनाता। वह अपनी निजी डिजाइन देकर उन्हे विशिष्ट कारखानो से तैयार करा लेता है जैसे मोटर के कारखाने, बैटरी, पिस्टन, रिंग तथा अन्य पुर्जे विशेष कारखानो से तैयार करा लेते है।

---

* "Specialization has been defined as the concentration of effort upon a limited field of endeavour."

Kimball and Kimball · *Principles of Industrial Organisation.*

विशिष्टीकरण की इस प्रवृत्ति का क्या कारण है ? एक तो लम्बे पैमाने पर उत्पादन करने से लागत कम हो जाती है और इस प्रकार एक कारखाने को कुछ पुर्जे स्वय बनाने के बजाय खरीदने मे ही सस्ते पडते है। प्रो० किम्बाल के शब्दो मे विशिष्ट मशीनरी लागत को कम करती है सस्ती लागत बाजार का विस्तार करती है, विस्तृत बाजार से और अधिक विशिष्ट (Specialised) मशीनरी लगाई जा सकती है तथा इस चक्र का अन्त राष्ट्र की सर्वांगीण समृद्धि मे ही होता है।* दूसरा कारण यह है कि आधुनिक उत्पादन बडा गतिशील है। उसमे निरन्तर सुधार होते रहते है। एक विशेष शाखा मे उत्पादन करने से अनुसधान के काम मे आसानी रहती है। विशिष्टीकरण की इस प्रवृत्ति के कारण औद्योगिक इकाइयो की आत्म-निर्भरता नष्ट होगई है और उनका एक दूसरे पर आश्रय बढता जा रहा है।

विशिष्टीकरण के दो ही अपवाद हमे देखने को मिलते है। एक तो जब कोई औद्योगिक सस्था इतनी बडी हो जाती है कि हर चीज की आवश्यकता लम्बे पैमाने पर पडने लगे तब आवश्यक वस्तुओ को खरीदने के बजाय तैयार करने मे ही फायदा रहता है। उदाहरण के लिए फोर्ड मोटर कम्पनी के पास सिर्फ मोटर और उनके पुर्जे बनाने के कारखाने ही नही बल्कि रेलवे लाइनें, खानें, जगल और लकडी के कारखाने सभी कुछ है। परन्तु यह तभी सम्भव है जब फोर्ड कम्पनी की भाति इन चीजो की आवश्यकता बहुत बडे पैमाने पर होती है। एक दूसरा उदाहरण अपवाद का यह होता है कि एक कारखाना एक वस्तु के साथ उसी प्रकार की अन्य ऐसी सहायक वस्तुओ का उत्पादन करने लगे जो उसी मशीन द्वारा सुविधा के साथ बन सकती है। अथवा जो उसके उप-पदार्थ (bye product) से सम्बन्धित है। जैसे मोटर कार के कारखानो द्वारा रेफ्रीजरेटर का निर्माण। या जूते के कारखाने द्वारा चमडे के सूटकेस, हैन्डबेग इत्यादि का निर्माण।

पेशो का विशिष्टीकरण—इस प्रकार का विशिष्टीकरण अत्यन्त प्राचीन है। पेशेवार श्रम विभाजन इस प्रकार के विशिष्टीकरण का ही रूप है। वर्तमान काल मे यह विशिष्टीकरण और भी बढ गया है। अब सिर्फ डाक्टर या इजीनियर ही नहीं मिलते। बल्कि नाक, कान, गले के विशेषज्ञ, दवाओ अथवा शल्य चिकित्सा के विशेषज्ञ, दाँतो अथवा टी० बी० के विशेषज्ञ

---

* Kimball and Kimball : *Principles of Industrial Organization.*

मिलेंगे। इसी प्रकार इन्जीनियर भी इलेक्ट्रिकल, मैकेनिकल अथवा सिविल के हो सकते है। मशीनो के उपयोग के कारण श्रम विभाजन इतना अधिक होगया है कि एक जूते के कारखाने मे काम करने वाला कारीगर चाहे जीवन भर ऐडी मे कील ही गाड़ता रहे, या सिर्फ तल्ला ही फिट करता रहे। यद्यपि मशीनो के कारण एक पेशे से दूसरे पेशे मे जाना सरल हो गया है फिर भी जितना काम एक व्यक्ति को करना पड़ता है वह कुल निर्माण कार्य का एक बहुत छोटा अश होता है।

अन्य क्षेत्रों मे विशिष्टीकरण—उद्योगो के अन्य क्षेत्रो मे भी अब विशिष्टीकरण पाया जाता है। उदाहरण के लिए बैंको का विशिष्टीकरण। पहले तो बैंको ने सिर्फ साख की कला मे विशिष्टता प्राप्त की अब उसमे और भी विशिष्टीकरण हो गया है जैसे भूमि बधक बैंक, औद्योगिक बैंक इत्यादि। कम्पनियो की स्थापना (Promotion) भी अब विशिष्ट सस्थाओ द्वारा की जाने लगी है। भारतीय मैनेजिग एजेन्ट इसी कोटि मे आते है इसी प्रकार कम्पनियो का प्रबन्ध करने, विज्ञापन करने, बिक्री करने यहाँ तक कि माल लदवाने और छुड़ाने की भी विशिष्ट सस्थाएँ जगह-जगह देखने को मिलती है।

विशिष्टीकरण के गुण

विशिष्टीकरण से निम्नलिखित लाभ है।

(१) सभी क्षेत्रो के बजाय एक सीमित क्षेत्र मे प्रयत्न करने से विशेष योग्यता प्राप्त होती है तथा काम करने वाले की कार्य क्षमता का विकास होता है।

(२) कुछ सीमित वस्तुओ का उत्पादन करने से लम्बे पैमाने पर उत्पादन का लाभ प्राप्त होता है। इससे लागत कम होती है तथा खरीदने और बेचने वाले दोनो को ही फायदा होता है।

(३) विशिष्टीकरण मे अनुसधान की सुविधा रहती है। एक सीमित क्षेत्र मे उत्पादन करने पर अनुसधान किया जा सकता है। इस प्रकार वस्तु की किस्म मे बराबर सुधार होता रहता है।

(४) विशिष्टीकरण द्वारा उद्योग एक दूसरे पर आश्रित हो जाते है। इस प्रकार आपस मे एकता तथा मेल की भावना बढ़ती है।

(५) विशिष्टीकरण श्रम विभाजन पर आश्रित है। इस प्रकार इससे श्रम विभाजन के सभी लाभ प्राप्त हो जाते है, जैसे कार्य कुशलता मे वृद्धि, सीखने के समय मे कमी, अर्ध कुशल लोगो को काम मिलना इत्यादि।

विशिष्टीकरण के दोष

(१) प्रयास का क्षेत्र सीमित हो जाता है। इसलिए उस लाइन मे सकट आ जाने पर बहुत कठिनाई पड जाती है। एक साथ कई क्षेत्रो मे उत्पादन करने पर यह कठिनाई नही रहती। प्रो० किम्बाल का कथन है कि 'यदि नए आविष्कारो के कारण परिवर्तन होजाय तो, उत्पादन विधियो मे अत्यधिक विशिष्टीकरण से कारखाने या अन्य किसी उद्योग को कठिन आर्थिक सकट तथा कभी कभी पूर्ण विनाश का सामना करना पड सकता है।"

(२) कारखानो की आत्म-निर्भरता नष्ट हो जाती है। उन्हे दूसरे कारखानो पर आश्रित रहना पडता है जिनकी उत्पादन विधि, लागत इत्यादि पर कोई नियन्त्रण नही होता। इस प्रकार यदि उसे बहुत बडी सख्या मे वस्तुएँ दूसरे कारखाना से खरीदनी पडे तो अपनी वस्तुओ की लागत पर उसका कोई नियन्त्रण नही रहता।

(३) विशिष्टीकरण के कारण मध्यस्थो की सख्या बढ जाती है तथा समन्वय (Co-ordination) की समस्या उत्पन्न हो जाती है।

(४) कुछ कारखाने ऐसा माल तैयार करते है जिसका उत्पादन वर्ष के कुछ ही महीने होता है बाकी समय मशीनरी बेकार पडी रहती है जैसे शक्कर, बर्फ इत्यादि के कारखाने।

(५) प्राचीन धन्धे नष्ट हो जाते है। कारीगरो का कौशल नष्ट हो जाता है। प्रो० किम्बाल का कहना है—' *शायद सबसे बडी हानि यह हुई* कि प्राचीन धन्धे नष्ट होगए तथा पुरान सर्व ज्ञानी कारीगर समाप्त हो गए।" एक ही प्रकार का काम करते-करते ज्ञान और कौशल भी सीमित हो जाता है।

विशिष्टीकरण की सीमाएँ (Limitations of Specilisation)—विशिष्टीकरण अत्यन्त उपयोगी होते हुए भी सब जगह लागू

नहीं किया जा सकता। इसके लिए निम्नलिखित शर्तों का आवश्यक है।

(१) वस्तु का बाजार काफी विस्तृत हो तथा माग काफी हो जिससे लम्बे पैमाने पर उत्पादन हो सके।

(२) किस्मों की न्यूनता तथा प्रत्येक किस्म की उचित माग का होना भी आवश्यक है। यदि बहुत अधिक किस्मों का माल बनता हो तथा हर किस्म की मांग बहुत थोड़ी हो तो विशिष्टीकरण सम्भव नहीं है।

(३) यदि किस्म तथा उत्पादन विधियों में लगातार परिवर्तन होता रहे तो भी विशिष्टीकरण सम्भव नहीं है।

करने की भलीभाँति सोच विचार कर निकाली हुई विधि, अथवा औजारो, स्टोर, या उत्पादन पर नियन्त्रण करने के लिए उचित प्रशिक्षण के पश्चात् दिए हुए निर्देशो मे है। सरल रूप मे उसे रक्खा जा सकता है कि "किसी काम को करने की प्रमाप विधि वह सर्वोत्तम विधि है जो प्रमाप निकालने के समय सम्भव हो सकती है।" इस परिभाषा के अनुसार प्रमापीकरण के निम्न-लिखित लक्षण है।

(१) यह प्रस्तुत परिस्थिति मे सर्वोत्तम विधि होती है। इसका तात्पर्य यह नही होता कि यह हर समय के लिए सर्वोत्तम विधि होती है तथा उसमे सुधार नही किया जा सकता। वह सर्वोत्तम विधि केवल विशेष समय तथा विशेष परिस्थितियो के लिए होती है। बदलती हुई परिस्थितियो तथा ज्ञान की वृद्धि के साथ साथ प्रमाप म भी परिवर्तन होना आवश्यक है।

(२) प्रमापो का निर्धारण उचित परीक्षण तथा अनुनधान के पश्चात ही होना चाहिए। बिना उचित विचार किए जो प्रमाप स्थिर किए जाते है वे न तो उपयोगी होते है और न स्थायी ही।

(३) प्रमापीकरण उत्पादन विधियो का भी हो सकता है तथा उत्पादन सामग्री का भी। इस प्रकार प्रमापीकरण दो प्रकार का होता है एक तो विधियो का प्रमापीकरण और दूसरी वस्तुओ का प्रमापीकरण।

वर्तमान फैक्ट्री प्रणाली की विशेपता यह है कि उसम माल बडी तादाद मे तथा माँग के पूर्व ही इस आशा से तैयार किया जाता है कि वह बिक जरूर जावेगा। साथ ही साथ फैक्ट्री उत्पादन के लिए यह भी आवश्यक है कि एक ही साइज, डिजाइन तथा किस्म का माल काफी सख्या में बने। यदि किसी कारखाने को एक हजार जोडे जूते ऐसे तैयार करने पडें, जिसमे हर जोडा अलग-अलग साइज तथा डिजाइन का हो तो उसका उत्पादन फैक्ट्री प्रणाली द्वारा असम्भव होगा। इसलिए औसत साइज के आधार पर स्टैन्डर्ड नियत कर दिए जाते है।

---

* Morris L Cooke : *Academic and Industrial Efficiency.*

प्रमापीकरण उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में भी धीरे-धीरे लागू किया गया। उदाहरण के लिए उत्पादन की स्टैन्डर्ड विधियाँ, स्टैन्डर्ड औजार, खाते रखने की स्टैन्डर्ड प्रणाली तथा विभिन्न विवरण-पत्रों के प्रमाणित खाते। इस प्रकार अब छपी छपायी स्टैन्डर्ड लेजर या रोकड़ हर भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योगों के लिए प्राप्त हो सकती है। हर क्षेत्र में प्रमापित विधियों तथा प्रमापित किस्मों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। वैज्ञानिक प्रबन्ध में प्रमापित औजारों तथा प्रमापित विधियों पर बड़ा जोर दिया गया है।

प्रमापीकरण से लाभ

प्रमापीकरण से निम्नलिखित लाभ हैं —

(१) इससे लम्बे पैमाने पर उत्पत्ति हो सकती है तथा केवल थोड़ी सी प्रमापित किस्म तैयार करने में लागत भी कम पड़ती है।

(२) प्रमापित वस्तुएँ बनाने में एक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग हो सकता है। उदाहरण के लिए एक ही मेक की कार में एक के पुर्जे दूसरे में लग सकते हैं।

(३) प्रमापित वस्तुओं में ग्राहक को छाँटने की परेशानी नहीं उठानी पड़ती। उसमें किस्में अपेक्षाकृत बहुत कम होती है इसलिये यह कठिनाई नहीं पड़ती।

(४) प्रमापित किस्म प्रायः ऊँची होती है इसलिए इसके द्वारा किस्म में सुधार होता है। प्रो० किम्बाल लिखते हैं—"प्रमापित वस्तु विशेष वस्तु से हमेशा अधिक संतोषप्रद होती है इसलिए जब तक बहुत बड़ा कारण न हो ग्राहक प्रमापित वस्तु से नहीं हटता।"

(५) प्रमापित वस्तुओं के उत्पादन में काम आने वाला स्टोर तथा अन्य सामान कई किस्मों का इकट्ठा नहीं करना पड़ता। इसलिए कार्यशील पूंजी की मात्रा बहुत कम रह जाती है। साथ ही साथ प्रमापित वस्तुओं की तैयारी और उसकी सुपुर्दगी भी जल्दी से दी जा सकती है।

(६) प्रमापीकरण से तरह-तरह की डिजाइन बनाने में व्यर्थ ही समय

तथा धन बरबाद नहीं होता। उसे उत्पादन विधियों में सुधार करने में लगाया जाता है।

प्रमापीकरण के दोष

प्रमापीकरण के कुछ दोष भी हैं जो निम्नलिखित है :—

(१) प्रमापों (Standards) में सबसे बड़ी बुराई यह होती है कि उनमें परिवर्तन बड़ी कठिनाई से होता है। एक बार स्टैन्डर्ड बन जाने पर फिर अनुसंधान की प्रवृत्तियाँ समाप्त हो जाती है। लोग परम्पराओं के अनुसार उसी स्टैन्डर्ड को मानते रहते है। और उसकी उपयोगिता समाप्त हो जाने पर भी वह चलता रहता है।

(२) जितना ही लम्बे पैमाने पर उत्पादन होता है स्टैन्डर्ड मजबूत होते जाते है तथा उसका बदलना अधिकाधिक कठिन होता जाता है। प्रो० किम्बाल के मतानुसार—"जिस सीमा तक अमेरिका में लम्बे पैमाने का उत्पादन लागू किया गया है उसमें उसकी औद्योगिक श्रेष्ठता के छिन जाने की सम्भावना है।"

प्रबन्ध की वैज्ञानिक विधियाँ

१९वीं शताब्दी के अन्तिम काल मे औद्योगिक प्रबन्ध में एक नई धारा का विकास हुआ। इसके प्रवर्तक अमेरिका के प्रसिद्ध इन्जीनियर टेलर महोदय (F. W. Taylor) थे। इसके अतिरिक्त गॉट (Gantt) गिलब्रैथ (Gilbreth) इमर्सन (Emerson) कुक (Morris Cooke) फेयल (Fayol) इत्यादि प्रसिद्ध इन्जीनियरो तथा विद्वानो ने इसमें योगदान दिया। इस नई प्रणाली के अनुसार औद्योगिक प्रबन्ध पुरानी परिपाटी के स्थान पर नई वैज्ञानिक विधियों से होने लगा। अन्य विज्ञानों के समान ही औद्योगिक प्रबन्ध को भी विज्ञान माना गया तथा उसकी विधियों को उचित प्रयोगों द्वारा निर्धारित किया जाने लगा।

वैज्ञानिक प्रबन्ध सम्बन्धी आन्दोलन के निम्नलिखित कारण थे :—

(१) इन्जीनियरिंग, कृषि तथा अन्य क्रियाओं में वैज्ञानिक विधियों के उपयोग के कारण लोगों की तर्क शक्ति बढ़ गई थी। अब वे हर बात को वैज्ञानिक पहलू से सोचते थे।

(२) जैसा पहिले बतलाया जा चुका है उद्योगों का आकार बहुत बढ चुका था। स्वामी और सेवक के बीच में जो प्रत्यक्ष सम्बन्ध छोटे छोटे कारखानों में होता है वह धीरे-धीरे समाप्त होता जा रहा था। श्रमिकों की सख्या में लगातार वृद्धि होने से उनके सगठन की समस्या जटिल होती जाती थी और लोग लगातार इस कोशिश में थे कि प्रबन्ध में किस प्रकार सुधार किया जाय।

(३) प्रतिस्पर्धा लगातार बढ रही थी। यातायात, सदेशवाहन के विकास तथा मशीनों के प्रमापित माल के कारण बाजार का क्षेत्र बराबर बढता जा रहा था। बाजार के क्षेत्र के विकास के साथ-साथ प्रतिस्पर्धा की सीमा भी बढती जा रही थी। इसलिए अपनी स्थिति को कायम रखने के लिए उद्योगों को अपनी लागत कम से कम करना आवश्यक था।

(४) अन्तिम कारण यह था कि इसी समय बहुत से सुयोग्य इन्जीनियर विभिन्न कारखानों में नियुक्त हुए। उन्होंने इस बात का अनुभव किया कि मजदूरों को वास्तव में जितना काम करना चाहिए उससे कहीं कम वे करते हैं। उन्होंने देखा कि इसके दो कारण हैं एक तो वे स्वय काम करना नहीं चाहते, दूसरे उन्हें काम की ठीक-ठीक विधि मालूम नहीं है इससे वे बहुत थोडा काम कर पाते है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रवर्तकों ने इस सम्बन्ध में अनेक प्रकार के प्रयोग किए। अपने प्रयोगों द्वारा उन्होंने उत्पादन तिगुना तक बढा दिया। मजदूरों की मजदूरी में भी वृद्धि हुई तथा श्रम और पूजी के झगडे कम हुए। टेलरवाद का प्रचार बहुत तेजी से हुआ। जर्मनी, फ्रांस, इगलैंड मे अनेक कारखानों ने वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया। रूस में कम्यूनिस्ट शासन कायम हो जाने के पश्चात लेनिन ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को मान्यता दी। वैज्ञानिक प्रबन्ध का क्षेत्र लगातार बढता गया। टेलर ने अपने प्रयोग छोटे कारखानों में किए थे। धीरे-धीरे उसका प्रयोग प्रबन्ध के अन्य क्षेत्रों में होने लगा। कुछ विद्वानों ने इसका प्रयोग उद्योगों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों म भी किया यहाँ तक कि राजकीय प्रशासन में भी वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों को लागू किया गया।

टेलरवाद का प्रचार

टेलर तथा उसके सहायकों ने अपने प्रयोग अमेरिका में किये थे। इस लिए सबसे पहले उसका प्रचार अमेरिका में हुआ। परन्तु शीघ्र ही यूरोप में टेलरवाद का प्रचार बढ़ने लगा। प्रथम महायुद्ध तथा उसके पश्चात इस दिशा में काफी उन्नति हुई। इस समय प्रत्येक देश को अपना उत्पादन चरम सीमा तक पहुँचाने की फिक्र पडी थी इसलिए टेलर के सिद्धान्तों ने शीघ्र ही उन्हें आकर्षित कर लिया। यूरोप में टेलरवाद के प्रचार को हम तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं।

(१) प्रारम्भिक समय :—इस युग में कई यूरोपीय देशों में वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रारम्भिक प्रयोग हुए। उचित ज्ञान की कमी के कारण प्राय सभी प्रयोग असफल रहे। इसका कारण यह था कि मिल मालिकों ने मजदूरी की आधुनिक विधियों तथा कम से कम समय में अधिक से अधिक काम लेने पर ही विशेष जोर दिया। इसलिए कारीगरों द्वारा उसका विरोध किया गया, जिससे सफलता न प्राप्त हो सकी।

यूरोप में इस समय टेलरवाद के अतिरिक्त एक नया आन्दोलन प्रचलित हो गया था इसमें मानसिक तथा शारीरिक अध्ययन के द्वारा इस बात की चेष्टा की गई कि मजदूर इतना अधिक काम न करे कि उसका स्वास्थ्य खराब हो जाय। अधिक मजदूरी के लालच में प्राय सभी मजदूर आवश्यकता से अधिक परिश्रम करते थे और अपना स्वास्थ्य बिगाड लेते थे। इस सिद्धान्त का इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी तथा इटली में काफी प्रचार हुआ। पहले तो कुछ लोगों ने टेलरवाद को इसका विरोधी समझा इसलिए इसके प्रचार में बाधा पडी। परन्तु धीरे-धीरे यह भ्रम दूर हो गया और टेलरवाद का प्रचार बडी तेजी से हुआ।

द्वितीय युग :—इस युग में प्रत्येक देश ने वैज्ञानिक प्रबन्ध को अपने अपने देश की आवश्यकतानुसार रखने का प्रयत्न किया लोगों ने यह अनुभव किया कि अमेरिका के सिद्धान्तों को हर जगह पूर्णरूप से लागू नहीं किया जा सकता। वैज्ञानिक प्रबन्ध के क्षेत्र में भी विकास हुआ। पहले तो उसका प्रचार धातु के कारखानों में हुआ जिनमें टेलर ने स्वयं प्रयोग किए थे। परन्तु धीरे धीरे उसका उपयोग उत्पादन के अन्य क्षेत्रों में, तथा व्यापार, वितरण, इमारतें

बनाने, खान खोदने तथा अन्य उद्योगों में भी होने लगा। इसके अलावा इस युग में मजदूरी देने तथा टेलर के समय अध्ययन के अलावा मजदूरों के शिक्षण पर भी ध्यान दिया जाने लगा।

तृतीय युग :—डेवनेंट (Devinat) के मतानुसार इस तृतीय युग में वैज्ञानिक प्रबन्ध के इक्के-दुक्के बिखरे प्रयोगों का समन्वय करने की चेष्टा की गई। साथ ही साथ वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तों का अधिक से अधिक प्रचार किया गया तथा तांत्रिक शिक्षा प्राप्त लोगों और साधारण जनमत को इस ओर लाने का प्रयत्न किया गया। इस युग में सिद्धान्तों को निश्चित रूप दिया गया तथा व्यवहारिक रूप में उसका समन्वय किया गया तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध के उद्देश्यों और क्षेत्र की अधिक शुद्ध तथा सुनिश्चित परिभाषाएँ दी गई।

जार्ज फिलीपेट्टी (George Filipetti) के अनुसार इस युग के मुख्य लक्षण इस प्रकार थे। इस काल में इस बात की विवेचना की गई कि वैज्ञानिक प्रबन्ध किन-किन दशाओं में लागू किया जा सकता है। व्यापारिक क्रियाओं तथा जन सेवाओं में भी इसका विस्तार किया गया। अधिक विस्तृत क्षेत्र पर संगठन सम्बन्धी अनुसंधान किए गए तथा इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया गया कि विशेष कारखानों के ही नहीं बल्कि समस्त उद्योग, सहकारी उद्योगों तथा राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक संगठन के आधार पर विचार किया जाय।

औद्योगिक प्रबन्ध की नई दिशाएँ

टेलरवाद के प्रचार के पश्चात् धीरे-धीरे लोगों ने यह अनुभव करना शुरू किया कि वैज्ञानिक प्रबन्ध ही समस्त औद्योगिक बुराइयों की एक मात्र दवा नहीं है। विद्वानों ने इस सम्बन्ध में अधिक गम्भीरता से विचार किया फलतः औद्योगिक प्रबन्ध के क्षेत्र में नई विचार धाराओं का निर्माण हुआ लोगों ने अनुभव किया कि टेलर का यह मत सर्वथा सत्य है कि मालिक और मजदूर दोनों का स्वार्थ एक ही है। टेकनिकल सुधार होना चाहिए परन्तु उससे मिलने वाले लाभों को मालिक, मजदूर तथा उपभोक्ता तीनों पक्षों को प्राप्त होना चाहिए।

टेलर का मत था कि काम करने की स्टैंडर्ड विधि मजदूर स्वय नहीं निकाल सकता है। इसलिए पद-पद पर उसने श्रमिकों को आदेश देने की

प्रणाली निकाली। परन्तु अब ऐसा अनुभव किया जा रहा है कि श्रमिक भी बहुत महत्वपूर्ण सुझाव दे सकते है। इसलिए श्रमिको से सम्बन्धित सभी मसलो पर उनकी राय लेना आवश्यक है। जार्ज फिली पैट्टी (George Filipetti) के शब्दो मे "आवश्यकता इस बात की है कि विशेष कारखानो, समस्त उद्योग तथा समस्त राष्ट्र के सभी स्तरो पर सामूहिक प्रतिनिधित्व हो।" अर्थात् उद्योगो को चलाने मे अब मालिक, श्रमिक तथा उपभोक्ता सभी की राय लेना चाहिए। इसके अलावा प्रबन्ध के विकेन्द्रीकरण पर भी जोर दिया जा रहा है। इसके लिए मातहत अफसरो को धीरे-धीरे शिक्षा देकर बहुत सी जिम्मेदारियाँ उन्हे सौंप दी जायँ। अमेरिका तथा अन्य औद्योगिक देशो मे इस दिशा मे कदम उठाया जा रहा है।

वर्तमान समय मे औद्योगिक क्षेत्र मे दो प्रश्न मुख्य रूप से उठाये जा रहे हैं। पहला–समाज औद्योगिक प्रणाली से क्या आशाएँ कर सकता है और दूसरा उसकी आशाओ को कैसे पूरा किया जा सकता है। तात्पर्य यह है कि उद्योग अब व्यक्तिगत लाभ के लिए न होकर समाज कल्याण के साधन के रूप मे काम करेंगे। उद्योग अब समाज के प्रति उत्तरदायी होगा। यह धारणा अब जोर पकडती जा रही है कि उद्योगो का समाजीकरण होना चाहिए तथा उन पर एक विशेष वर्ग का नियत्रण न होकर समस्त समाज का नियन्त्रण हो। इससे कोई इन्कार नही कर सकता कि तात्रिक क्रियाओं की उन्नति के साथ-साथ उत्पादक शक्ति बढती जा रही है परन्तु उद्योगो का नियत्रण उचित रीति से न होने के कारण उसका पूरा लाभ समाज को नही प्राप्त हो रहा है। इसीलिए सामाजिक योजना तथा सामाजिक नियत्रण अत्यन्त आवश्यक हैं।

जार्ज फिली पैट्टी (George Filipetti) ने औद्योगिक प्रबन्ध की वर्तमान धाराओं का वर्णन सक्षेप मे इस प्रकार किया है।

(१) मानसिक क्रांति जो वैज्ञानिक प्रबन्ध का प्रमुख लक्षण है, औद्योगिक प्रबन्ध मे अधिकाधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करती जा रही है तथा पुरानी परम्परागत प्रणालियो के स्थान पर नई वैज्ञानिक विधियों का उपयोग हो रहा है, तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध को उद्योगो के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों मे भी लागू किया जा रहा है।

---

* George Filipetti : *Industrial Management in Transition*

(२) प्रबन्ध के क्षेत्रों में भी विशिष्टीकरण आरम्भ हो गया है तथा समन्वय और नियन्त्रण की (Co-ordination and Control) जो कि प्रबन्ध के मुख्य कार्य है, अब विशेष शिक्षा दी जाने लगी है।

(३) औद्योगिक इकाइयों के प्रबन्ध की समस्या अब व्यक्तिगत समस्या न होकर सामाजिक समस्या है अतएव प्रबन्ध का काम अब पुश्तैनी न होकर योग्यता के अनुसार दिया जाना चाहिए।

(४) श्रमिकों का नेतृत्व प्रबन्धक के लिए आवश्यक है तथा इसके लिए उसे सामाजिक समस्याओं का ज्ञान होना जरूरी है। इसलिए प्रबन्धकों को इस क्षेत्र की विशेष शिक्षा दी जानी चाहिए।

(५) उद्योगों का समाजीकरण होना आवश्यक है। परन्तु इसके लिए सरकार, व्यक्ति विशेष अथवा जिस संस्था के हाथ में उद्योगों का प्रबन्ध सौंपा जाय उसमें कुछ विशेष गुण भी होना चाहिए। यदि प्रजातन्त्र के आधार पर केवल वोट पाने की ही योग्यता हो तो उद्योगों का कल्याण नहीं हो सकता।

(६) उद्योगों के प्रबन्ध को प्रजातान्त्रिक आधार पर चलाने के लिए लोगों में सेवा की भावना का होना आवश्यक है।

(७) प्रत्येक देश अपनी-अपनी परिस्थितियों तथा विचारधाराओं के अनुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू करने की चेष्टा कर रहा है। सबका उद्देश्य एक ही है—जीवन स्तर में उन्नति तथा औद्योगिक शक्ति का विकास। परन्तु एक प्रश्न अब भी सबके सामने है कि औद्योगिक उन्नति का यह आदर्श कैसे प्राप्त किया जा सकता है, निरकुश शासन द्वारा अथवा प्रजातांत्रिक विधियों से।*

औद्योगिक नियोजन —प्राचीन औद्योगिक प्रणाली स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित थी। उस समय लोगों की धारणा थी, कि स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा द्वारा प्रत्येक उद्योग की कार्य क्षमता बढ़ेगी, भाव कम से कम रहेंगे तथा

---

* George Filipetti : *Industrial Management in Transition.*

उद्योगपतियों को बराबर सतर्क रहना पडेगा। बहुत कुछ सीमा तक यह बात सही भी थी। परन्तु शीघ्र ही स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा के दोष प्रकट होने लगे। इससे उद्योगों का असतुलित विकास हो जाता है, और माँग तथा पूर्ति का सतुलन भग हो जाने से व्यापार चक्रो की उत्पत्ति होती है। स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था अत्यन्त खर्चीली तथा अपव्यय पूर्ण साबित हुई।

इसी बीच मे रूस मे एक नया प्रयोग किया गया जिसे 'नियोजन' का नाम दिया। रूस ने पाँच पाँच साल की आर्थिक विकास की योजनाएँ बनाकर थोड़े ही समय मे देश का काया पलट कर दिया। तब से 'औद्योगिक नियोजन' प्रत्येक देश मे प्रगति कर रहा है। इस परम्परा के अनुसार उद्योगो की योजना व्यक्तिगत रूप से विभिन्न उद्योगपतियो द्वारा न होकर सामूहिक रूप से सरकार अथवा योजना कमीशन द्वारा की जाती है। अतएव पुराने उद्योगपति का बहुत कुछ भार अब योजना समिति ने ले लिया है। व्यापारिक जोखिम कम करने, व्यापार चक्रो को समाप्त करने तथा औद्योगिक स्थिरता लाने की दिशा मे प्रयास किया जा रहा है।

ओद्योगिक नियोजन का क्षेत्र विभिन्न देशो मे वहाँ की राजनैतिक अवस्था के अनुसार अलग अलग है। सोवियत रूस तथा अन्य साम्यवादी देशो मे तो उद्योगो का पूर्ण सामाजीकरण है जिसमे उद्योगो का सचालन कारीगरो की समितियो द्वारा होता है, व्यक्तिगत सम्पत्ति वर्जित है तथा समस्त कार्य योजनाबद्ध होता है। इसके विपरीत पूँजीवादी देश अमेरिका, इगलैड, पश्चिमी जर्मनी, जापान इत्यादि मे सरकारी नियन्त्रण कम से कम है। उसमे सरकार उत्पादन की मात्रा, किस्म, स्थान इत्यादि के सम्बन्ध मे उचित निर्देश देती है, परन्तु प्राय वह औद्योगिक विकास की धारा प्रेरणापूर्ण विधियो द्वारा निर्देशित करती है। प्रत्यक्ष नियन्त्रण कम से कम रखे जाते हैं। सरकार करो, आयात निर्यात नियन्त्रणो, बैंक दर इत्यादि के द्वारा ही नियन्त्रण कायम रखती है।

इस प्रकार हम देखते है कि औद्योगिक प्रबन्ध के विकास की धारा एक नये मार्ग की ओर मुड रही है। पूँजीवाद की नीव हिल रही है। अपने पुराने रूप मे अब उसकी कल्पना भी नही की जा सकती। औद्योगिक प्रबन्ध का वैज्ञानीकरण हो रहा है। वकीलो, डाक्टरो तथा अन्य विशिष्ट पेशो की ही तरह औद्योगिक प्रबन्धको की विशिष्ट शिक्षा आवश्यक होगी। आगे आने वाले युग मे प्रबन्धक पूँजीपति का खरीदा हुआ दास न होकर समाज

और श्रमिको का प्रतिनिधि होगा। औद्योगिक अनिश्चितताएँ अब समाप्त हो रही है। व्यक्तिगत लाभ का स्थान समाज कल्याण की भावना लेती जा रही है।

औद्योगिक संगठन की विधियाँ / Organisation

कारखाना प्रणाली के कारण श्रम सगठन मे पर्याप्त जटिलता उत्पन्न हो गई। चूंकि एक व्यक्ति का काम दूसरे के काम को प्रभावित करता है तथा एक एक कारखाने में हजारो की सख्या मे कारीगर एक साथ काम करते है अतएव उनसे ठीक ठीक काम लेना एक बहुत बडी समस्या बन गई। जहाँ इतनी बडी सख्या मे कर्मचारी काम करते हो मालिक तथा नौकर के बीच प्रत्यक्ष सम्बन्ध सम्भव नही हो पाता। इसलिए स्वभावत कर्मचारी व्यक्तिगत रुचि से काम नही करते तथा कभी जान बूझकर और कभी अज्ञानतावश काम मे ढिलाई करते रहते है। इन कठिनाइयो को दूर करने के लिए प्रबन्ध मे भी पर्याप्त सुधार किये गये है।

साधारण रूप मे श्रम सगठन की निम्नलिखित तीन विधियाँ प्रचलित है —

(१) लम्बवत् अथवा सैनिक सगठन (Line or Military type Organisation)

(२) क्रियात्मक सगठन (Functional Organisation)

(३) लम्बवत् तथा कर्मचारी सगठन (Line and Staff Organisation)

लम्बवत् अथवा सैनिक सगठन —इस प्रकार के सगठन की दो विशेषताये होती है। एक तो सर्वोच्च अधिकारी अथवा मैनेजर का कर्मचारियो से सीधा सम्पर्क नही होता। वह अपनी आज्ञा सुपरिन्टेन्डेन्ट को देता है और सुपरिन्टेन्डेन्ट अपने मातहत फोरमैन को आदेश देता है तथा फोरमैन अपने मातहत कर्मचारियो तक उस आदेश को पहुचाते है। दूसरे एक फोरमैन अपने मातहत कर्मचारियो की हर बात के लिये उत्तरदायी होता है। मज्दूरो को हर बात मे उसी की आज्ञानुसार चलना पडता है यह बात निम्नलिखित चार्ट द्वारा स्पष्ट हो जायेगी।
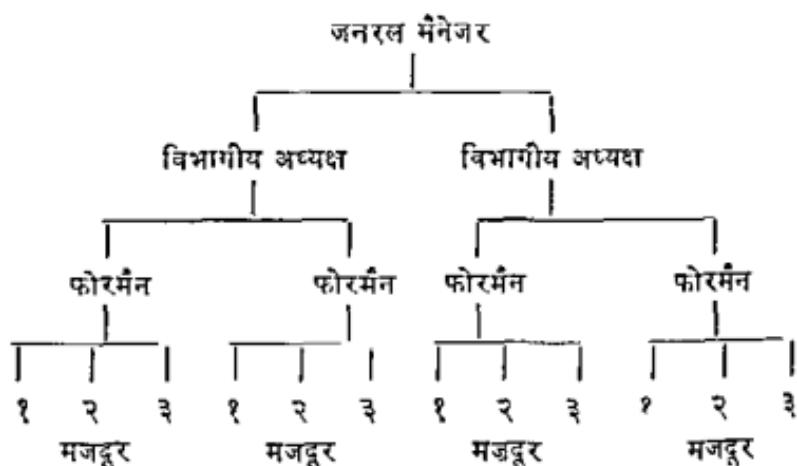
इस प्रकार यह स्पष्ट है कि फोरमैन ही अपने मातहत मजदूरो की हर बात के लिए जिम्मेदार है। उनसे काम लेना, उनमे अनुशासन कायम रखना, कच्चा माल तथा औजारो की व्यवस्था करना, उनके उत्पादन की मात्रा और किस्म को नोट करना इत्यादि अनेक प्रकर के दायित्व फोरमैन के जिम्मे रहते है। कर्मचारियो को अपने फोरमैन के अलावा और किसी से कोई सम्बन्ध नही होता। एक विभाग तथा दूसरे विभाग के अध्यक्षो मे भी सम्पर्क परस्पर न होकर मैनेजर द्वारा ही होता है।

गुण —लम्बवत् सगठन के निम्नलिखित गुण है —

(१) इसमे अधिकारो का स्पष्ट विभाजन हो जाता है। मजदूरो को मालूम रहता है कि उन्हे एक विशेष व्यक्ति के मातहत काम करना है अतएव वे भरसक उसको सतुष्ट रखने का प्रयास करते है। साथ ही साथ फोरमैन भी अपनी जिम्मेदारी किसी दूसरे पर नही डाल सकता क्योकि मातहत मजदूरो के हर काम के लिये ही वह स्वय उत्तरदायी होगा।

(२) यह विधि सबसे प्राचीन तथा अत्यन्त सरल है। इसके अनुसार काम करने का लोगो को अभ्यास है। अतएव मनोवैज्ञानिक रूप मे कारीगरो को कोई कठिनाई नही होती। अन्य प्रकार की प्रणालियो म सबसे पहले नई विधि मे फोरमैनो तथा मजदूरो दोनो को ही शिक्षा देनी पडती है।

(३) इस विधि के द्वारा अनुशासन कार्य में सहायता मिलती है। एक व्यक्ति को अपने मातहत कर्मचारियों पर पूरा अधिकार दे दिया जाता है। इससे उसे अनुशासन कायम रखने में आसानी होती है क्योंकि कर्मचारियों के पास फोरमैन की बात मानने के अतिरिक्त और कोई चारा नहीं रहता।

(४) इसमें दोषों का पता तुरन्त लग जाता है तथा सम्बन्धित व्यक्ति को दण्डित किया जा सकता है। जहाँ अनेक व्यक्ति निरीक्षण सम्बन्धी कार्य करते हों उत्पादन सम्बन्धी दोष को किसी एक व्यक्ति पर डालना अत्यन्त कठिन हो जाता है।

दोष

(१) इस प्रणाली में फोरमैनों की योग्यता तथा दक्षता पर आवश्यकता से अधिक विश्वास किया जाता है। परन्तु वास्तव में किसी एक व्यक्ति में समस्त गुणों का होना प्राय असम्भव ही होता है।

(२) इसमें निरीक्षकों के पास इतना अधिक काम हो जाता है कि उन्हें *व्यक्तिगत ध्यान देने तथा अनुसंधान करने का अवसर ही नहीं* मिल पाता।

(३) यदि किसी कारणवश फोरमैन अनुपस्थित हो जाय तो समस्त काम चौपट हो जाता है।

(४) पूर्ण अधिकार के कारण फोरमैन प्राय. पक्षपात पूर्ण नीति बरतने लगते है। वे कुछ लोगों को अनावश्यक रूप से परेशान करते तथा कुछ कृपा पात्र लोगों को अनुचित सुविधायें देते रहते हैं।

(५) इसमें विशिष्टीकरण का अभाव रहता है। एक ही व्यक्ति से अनेक प्रकार के काम लिए जाते है जिनको करने की योग्यता प्राय: उसमें नहीं होती।

क्रियात्मक संगठन (Functional Organisation) :—सैनिक संगठन के उपर्युक्त दोषों के कारण टेलर ने एक नई विधि निकाली जिसे क्रियात्मक संगठन कहते है। क्रियात्मक संगठन का आधार विशिष्टीकरण

है। टेलर का मत था कि एक ही व्यक्ति प्रबन्ध तथा निरीक्षण सम्बन्धी समस्त क्रियाओ का जानकार नही होता। अतएव उसने इस बात की व्यवस्था की कि एक सुपरवाइजर केवल विशेष अग के लिए, जिसका वह विशेषज्ञ हो, जिम्मेवार हो। उदाहरणार्थ एक व्यक्ति जो माल की किस्म का विशेषज्ञ है, इस बात की जाँच करता रहेगा कि माल ठीक किस्म का बन रहा है अथवा नही। उसे अन्य बातो—जैसे लगाये हुए समय, मशीन की घिसावट इत्यादि से कोई सरोकार नही। इस प्रकार एक ही मजदूर पर विभिन्न क्रियाओ के लिए अनेक सुपरवाइजर होते है। तथा प्रत्येक सुपरवाइजर केवल अपने क्षेत्र से सम्बन्धित कार्यवाही का निरीक्षण करता है। यदि मजदूरो की सख्या बहुत अधिक हो तो एक विशेषज्ञ फोरमैन के आधीन कई उपफोरमैन रक्खे जा सकते है। सगठन की विधि निम्नलिखित चार्ट से स्पष्ट हो जावेगी।
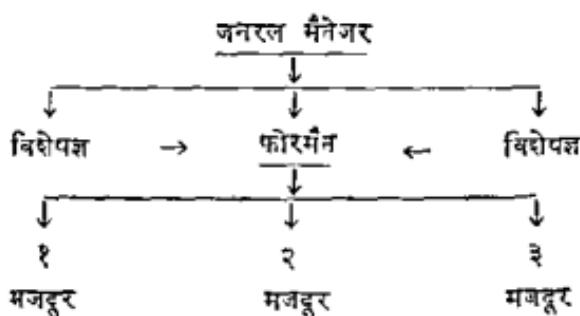
गुण

(१) यह विशिष्टीकरण पर आधारित है। अतएव सुपरवाइजर अपने काम का पूरा जानकार होता है।

(२) सुपरवाइजर का काम सीमित होता है अतएव निरीक्षण कार्य मे सहायता मिलती है।

(३) अनुसधान कार्य मे सहायता मिलती है क्योकि एक व्यक्ति एक ही अग का निरीक्षण करता है। उचित विधियो का उपयोग किया जा सकता है जिससे उत्पादन बढेगा तथा किस्म मे सुधार होगा।

(४) अधिकारो का कार्यानुसार विभाजन होने के कारण पक्षपात तथा अनुचित रूप से शोषण का काम नही हो सकता।

दोष

(१) इससे अनुशासन के कार्य मे बडी बाधा पडती है। कर्मचारी अनेक लोगो के मातहत होने के कारण किसी का काम नही करते।

(२) विशेषज्ञो मे परस्पर अधिकारो के लिए प्रतिद्वन्द्विता चलती रहती है। इसका कमचारियो पर बडा खराब असर पडता है।

(३) काम कम होने या खराब काम होने की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति पर डालना अत्यत कठिन होता है।

(४) प्रबन्ध का कार्य एक सगठित कार्य होता है। जब विभिन्न विशेषज्ञो के कामो मे असतुलन तथा विरोध उत्पन्न हो जाता है। तो इससे काम की बडी हानि होती है। उदाहरणाथ यदि किस्म पर अनुचित जोर दिया जाय तो उत्पादन की मात्रा निश्चित ही कम हो जावेगी।

लम्बवत् तथा कर्मचारी संगठन (Line and Staff Organisation) —*वह विधि वास्तव मे लम्बवत् सगठन तथा क्रियात्मक सगठन* के मेल से बनी है अतएव उचित रूप से लागू करने पर इसमे दोनो विधियो के गुण आ जाते है। इस विधि के अनुसार विशेषज्ञो का प्रत्यक्ष सम्बन्ध मजदूरो से न होकर फोरमैनो से होता है। उनका कार्य सलाहकारी होता है, प्रबन्धात्मक नही। फोरमैन अपने मातहत कर्मचारियो पर पूरा अधिकार रखता है तथा उनके हर काम के लिय जिम्मेवार होता है। वह उनके काम के हर अग का निरीक्षण करता तथा उनकी उचित व्यवस्था करता है। परन्तु विभिन्न अगो पर परामर्श देने के लिए विशेषज्ञ होते हैं। फोरमैन आवश्यकता पडने पर न केवल उनसे राय ले सकता है बल्कि वे स्वय भी अपनी अपनी शाखा मे सुधार सम्बन्धी निर्देश उसे देते रहते है। परन्तु समस्त निर्देश फोरमैन द्वारा ही कार्यान्वित किये जाते है। नीचे का चार्ट दखिये।
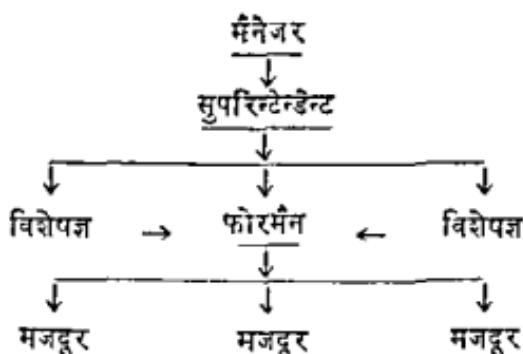
भारतवर्ष मे औद्योगिक प्रबन्ध

उपक्रम चाहे छोटा हो अथवा बडा, चाहे वह अत्यधिक तात्रिक हो अथवा स्वचालित, भारतवर्ष मे इस समय और अधिक प्रबन्धको की आवश्यकता है। प्रबन्ध का विकास प्रमुख सामाजिक उत्तरदायित्व है और राष्ट्रीय लक्ष्यो को पूर्ण करने के लिए एक परम आवश्यक अग है।

भारतवर्ष मे अखिल भारतीय तात्रिक शिक्षा परिषद (All India Council for Technical Education) जिसके सचिव श्री एल० एस० चन्द्रकान्त है के अन्तर्गत अनेक प्रबन्ध समितियाँ कार्य कर रही है। इन समितियो के सदस्य देश के प्रमुख उद्योगपति जैसे श्री जे० आर० डी० टाटा, जी० डी० बिडला, तथा लाला श्रीराम आदि है।

भारतवर्ष मे इन्जीनियर्स के लिए इन्डियन इन्सटीट्यूट आफ टेकनोलाजी, खडगपुर मे प्रबन्ध स्नातक (Graduate) कोर्स की शिक्षा दी जाती है। इस सस्था की स्थापना डा० सर जे०सी० घोष के नेतृत्व मे की गई है। इसके तुरत पश्चात कलकत्ता यूनीवर्सिटी मे प्रो० डी० के० सान्याल की अध्यक्षता मे व्यवसाय प्रबन्ध स्नातक कोर्सो के लिए स्कूल आफ सोशल वर्क एण्ड बिजनेस मैनेजमेट की स्थापना की गई है। इसके अतिरिक्त 'अल्पकालीन उत्पादन प्रबन्ध कोर्स' के लिए खडगपुर तथा बगलौर मे सस्थाएँ स्थापित की गई हैं।

प्रो० एम० एस० ठक्कर की अध्यक्षता मे बगलौर मे इन्स्टीट्यूट आफ मैनेजमेट स्थापित किया गया है जो कि प्रबन्ध की शिक्षा के प्रसार के लिए सराहनीय प्रयास कर रहा है। इसी प्रकार बम्बई, दिल्ली, हैदराबाद तथा कलकत्ता मे भी (Management Groups) स्थापित किए गए है जो कि सफलतापूर्वक कार्य कर रहे है।

भारतीय सरकार भी विदेशी प्रबन्धकीय शिक्षालयों जैसे Hanley on Themes तथा Harvard Graduate School of Business Administration के समान भारतवर्ष मे शिक्षालयो को स्थापित कर रही है। एडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कालेज तथा इन्डियन मैनेजमेंट एसोसिएशन, जिसकी शाखाएँ देश के विभिन्न भागों मे होगी, के स्थापन की योजनाएँ बनाई जा चुकी है। इन्सटीट्यूट आफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन की स्थापना की जा चुकी है। श्रमिको की शिक्षा के लिए सन्ट्रल लेबर इन्सटीट्यूट की स्थापना की जा चुकी है।

भारत मे प्रबन्धकीय शिक्षा की सम्भावनाएँ

भारतवर्ष मे औद्योगिक प्रबन्धकीय शिक्षा की आवश्यकता की महत्ता को उद्योगपति, सरकार तथा शिक्षाशास्त्री सभी स्वीकार करते हैं। भारत की *तृतीय पचवर्षीय योजना* मे औद्योगिक उत्पादन के विशाल लक्ष्यो को निर्धारित करके देश के औद्योगीकरण का नारा लगाया है। सीमित साधनों से अधिकतम उत्पादन–मात्रा और गुण मे प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि देश म प्रबन्धकीय शिक्षा का अधिक से अधिक विकास हो और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्न कार्य करने होगे —

(१) प्रबन्ध मे स्नातक (Graduate) शिक्षा।

(२) प्रबन्धकीय काय मे लगे हुए व्यक्तियो के लिए गहनशिक्षा–कार्यक्रम।

(३) प्रबन्धकीय सूचनाओं तथा अनुभवो के आदान–प्रदान को इन्डियन मैनेजमेंट एसोसिएशन तथा उसकी शाखाओं द्वारा प्रोत्साहित करना। तथा

(४) फोरमैनशिप की शिक्षा कार्यक्रम *(Courses)* का विकास करना।

प्रश्न

1. Give a brief history of the evolution of Industrial manngement and point out the modern trends in the Industrial development.

2. Give an account of the industrial system in mediaeval period and the part played by Guilds in the industrial development.

3 Describe the Industrial Revolution ? What was its effect upon the industrial management ?

4 What do you understand by factory system of production ? Point out its special characteristics How does it differ from handicrafts ?

5. Mention the causes that lead to present tendency towards specialisation. What has been its effect upon the industrial system ?

6. Describe clearly the growth of scientific approach towards management. What was its effect ?

7. Discuss clearly the modern tendencies in the industrial management. How far do you advocate the socialization of Industries.

अध्याय २

वैज्ञानिक प्रबन्ध
(Scientific Management)

जैसा पिछले अध्याय मे बतलाया जा चुका है प्रारम्भिक औद्योगिक प्रणाली अत्यन्त सरल थी। उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था। उद्योगपति स्वय ही अपना कारीगर, पूँजीपति, सगठनकर्ता, क्लर्क, विक्रेता सभी कुछ होता था। परन्तु ज्यो-ज्यो औद्योगिक इकाइयो का आकार विस्तृत होता गया उसके प्रबन्ध मे भी जटिलता आती गई। उद्योगपति का कौशल अब स्वय काम करने के बजाय दूसरो से काम लेने म अधिक लगने लगा काम के विभाजन के साथ-साथ भिन्न-भिन्न लोगो के काम का समन्वय (Co-ordinate) करने की भी आवश्यक्ता पडने लगी। यहा तक कि सगठन करने, मातहतो से काम लेने तथा निरीक्षण करने (Organize, deputize, supervise) को उत्तम प्रबन्ध का गुर माना जाने लगा।

औद्योगिक प्रबन्ध की कला एव विज्ञान
(Science and Art of Management)

प्रो० किम्बाल का कथन है—"प्रबन्ध विज्ञान और कला दोनो ही हो सक्ते है, ठीक उसी प्रकार जैसे गृह निर्माण, हवाई यातायात, कृषि तथा अन्य मानवीय प्रयास विज्ञान तथा कला दोनो के ही रूप हो सकते है।* किसी ज्ञान का वैज्ञानिक आधार क्या हो सक्ता है ? प्रो० किम्बाल के अनुसार कला का आधार व्यक्ति और उसका अनुभव होता है। इसके अनुसार उत्तम प्रबन्ध बहुत कुछ प्रबन्धक के निजी व्यक्तित्व तथा उसके अनुभव के आधार पर होता है। उत्तम प्रबन्ध के निश्चित नियम नही बनाये जा सकते। वैज्ञानिक विधि से

---

* See Kimball and Kimball : *Principles of Industrial Organisation P. 150.*

तात्पर्य यह है कि उस विषय से सम्बन्धित आँकडे एकत्र किए जाएँ फिर उनका अध्ययन तथा विवेचन करके कुछ ऐसे सार्वभौमिक नियमो का निर्माण किया जाय जो भविष्य की परिस्थितियो मे लागू किए जा सके। इस सिद्धान्त के अनुसार औद्योगिक प्रबन्ध व्यक्तिगत कुशलता पर आश्रित न होकर कुछ सार्वभौमिक नियमो पर आधारित होता है और कोई भी व्यक्ति उन नियमों का पालन करके कुशल तथा सफल प्रबन्धक हो सकता है।

क्या औद्योगिक प्रबन्ध विज्ञान हो सकता है ?

यह प्रश्न बडा विवादास्पद है प्राचीन काल मे लोगों का यही विश्वास था कि प्रबन्ध कोई विज्ञान नही, वह केवल एक कला है। इसीलिए बडे-बडे उद्योगपति अपने लडको को शिक्षा दिलाने के बजाय उद्योग-धन्धों मे डालना अधिक ठीक समझते थे जिससे वे अनुभव के द्वारा अपने काम मे दक्षता प्राप्त कर सके। उनकी समझ मे उत्तम प्रबन्ध का शिक्षा से कोई सीधा सम्बन्ध नही था। परन्तु अब इस परम्परा की असत्यता सिद्ध हो चुकी है। यद्यपि औद्योगिक प्रबन्ध मे व्यक्तिगत गुणों का बडा महत्वपूर्ण स्थान रहता है फिर भी उत्तम प्रबन्ध के लिए वही सब कुछ नही। इस सम्बन्ध म प्रो० किम्बाल का निम्नलिखित कथन ध्यान देने योग्य है :—

"यह बात विशेष ध्यान देने की है कि वैज्ञानिक आँकडे तथा प्रणाली कभी भी व्यक्तित्व का स्थान नही ले सकते जैसा कि औद्योगिक प्रबन्ध पर मिलने वाले साहित्य से प्रकट होता है। व्यक्तिगत गुण मानवीय क्रियाओ मे अत्यन्त महत्वपूर्ण शक्ति रहे ह और रहेगे। परन्तु जहाँ वर्गीकृत ज्ञान एक आवश्यक अग हो वहाँ व्यक्तिगत गुण ही सब कुछ नही होता। नैपोलियन का व्यक्तित्व कभी भी आधुनिक मशीनगनों तथा सैनिको की स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी उपादानो की कमी को पूरा नही कर सकता।"*

कहने का तात्पर्य यह है कि सफल प्रबन्धकर्ता के लिए व्यक्तिगत गुण तो आवश्यक है ही, साथ ही साथ औद्योगिक प्रबन्ध के कुछ वैज्ञानिक नियमों का ज्ञान भी आवश्यक है। उनके बिना अच्छे से अच्छे व्यक्तित्व वाला प्रबन्धकर्ता भी पूर्ण रूप से सफल नही हो सकता। वर्तमान समय मे प्रबन्ध के इस

---

* Kimball and Kimball : *Principles of Industrial Organisation.*

वैज्ञानिक आधार को पूर्ण रूप से अपनाया जा रहा है। यह निम्नलिखित दो लक्षणो द्वारा प्रकट होता है।

(१) अन्य विज्ञानो की भाँति औद्योगिक प्रबन्ध मे भी प्रयोग (Experiment) किए जा रहे हैं तथा उनके आधार पर नए सिद्धान्तो का निर्माण हो रहा है। पुराने नियमो की सत्यता की जाच हो रही है। तथा सिद्धान्तो म अधिकाधिक शुद्धता लान का प्रयत्न किया जा रहा है।

(२) शिक्षा मे औद्योगिक प्रबन्ध को उचित स्थान दिया गया है तथा बडे-बडे औद्योगिक देशो मे औद्योगिक प्रबन्ध को भी शिक्षा के क्षेत्र मे सम्मिलित किया गया है। तथा इस प्रकार की शिक्षा देने के लिए विशेष शिक्षा सस्थाओ का निर्माण हो चुका है।

वैज्ञानिक दृष्टिकोण का महत्व

औद्योगिक प्रबन्ध मे वैज्ञानिक दृष्टिकोण वर्तमान काल मे बहुत महत्व पूर्ण स्थान रखता है इसके निम्नलिखित कारण हैं।

(१) वर्तमान औद्योगिक प्रणाली मे प्रबन्ध का काम अधिकाधिक जटिल तथा तात्रिक (Technical) होता जा रहा है। इसके लिए विशेष ज्ञान अत्यन्त आवश्यक हो गया है। जब तक आधारभूत सिद्धान्तो का ज्ञान न हो उत्तम प्रबन्ध सम्भव नही है।

(२) वर्तमान युग की बढती हुई व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा मे यह आवश्यक है कि लागत कम से कम हो। यह तभी सम्भव है जब उत्पादन की वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाय। वैज्ञानिक प्रबन्ध के आचार्यों टेलर, गाट इत्यादि ने प्रयोगो द्वारा इस बात को सिद्ध कर दिया है कि पुराने तरीको से कोई कारीगर अपनी कार्यक्षमता का एक तिहाई से भी कम उत्पादन कर सकता है और सचमुच उन्होंने उत्तम तथा वैज्ञानिक विधियों का उपयोग करके प्रति कारीगर उत्पादन तिगुने से पाँच गुने तक बढा दिया है।

(३) आधुनिक काल मे श्रम और पूँजी के सघर्ष का एक मात्र कारण यह धारणा है कि दोनो पक्षो का स्वार्थ अलग-अलग है। मालिक

यह समझता है कि मजदूर को जितना कम वेतन दिया जाय उतना ही अच्छा और मजदूर यह समझता है कि जितना कम काम करके अधिकाधिक वेतन प्राप्त कर लिया जाय वही ठीक। इसीलिए आए दिन श्रम और पूंजी म सघर्ष होते रहते है। परन्तु वैज्ञानिक प्रबन्ध इस धारणा को ठीक नही मानता। टेलर महोदय (F. W. Tailor) उत्तम प्रबन्ध की परिभाषा देते हुए लिखते है— साधारण अर्थ मे सर्वोत्तम प्रबन्ध की परिभाषा यह दी जा सकती है कि सर्वोत्तम प्रबन्ध एक ऐसा प्रबन्ध है जिसमे श्रमिक अपनी सर्वोत्तम योग्यता से काम करे तथा उसके बदले मालिक से विशेष पुरस्कार प्राप्त करें। एक अन्य स्थान पर आपने लिखा है— "इसके विपरीत वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधार यह विश्वास है कि दोनो (मालिक तथा श्रमिक) का स्वार्थ एक है और मालिक की समृद्धि लम्बी अवधि के लिए तब तक नही रह सकती जब तक उसके साथ श्रमिक की भी समृद्धि न शामिल हो तथा यह सम्भव है कि कारीगर को उसकी इच्छित वस्तु—ऊँची मजदूरी तथा मालिक को उसकी इच्छित वस्तु—सस्ता श्रम प्राप्त हो सके।"*

(३) राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी इसका बडा महत्व है। राष्ट्रीय समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि देश का उत्पादन बढे तथा लागत कम हो। उत्पादन मे कमी दो कारणो से हो सकती है। पहला श्रमिक स्वय उत्पादन कम करें। कम काम करने या धीमे काम करने की इस प्रवृत्ति के दो कारण टेलर महोदय ने बतलाए है।† एक तो मनुष्य की लापरवाही तथा धीमे काम करने की आदत जो न्यूनाधिक रूप मे प्रत्येक कारीगर मे पायी जाती है इसे टेलर ने स्वाभाविक ढिलाई (Natural Soldiering) का नाम दिया है दूसरा श्रमिको तथा नियोक्ताओं के पारस्परिक सम्बन्ध के कारण कम काम करना जिसे व्यवस्थित ढिलाई (Systematic Soldiering) कहा जा सकता है।

See * Taylor : *Scientific Management P 10*

† Taylor *Shop Management*

उत्पादन की कमी का एक दूसरा कारण तथा अधिक महत्वपूर्ण प्रबन्धक का अकुशल होना है। यह भी दो कारणों से हो सकता है।

(१) प्रबन्धकर्ता तथा उसके फोरमैनों को इस बात का ज्ञान न हो कि कितने समय म कोई काम किया जाना चाहिए।

(२) काम करने की ऐसी वैज्ञानिक विधि का पता न हो जिसमे कम से कम परिश्रम द्वारा अधिक से अधिक काम किया जा सके। इस बात को कुछ अधिक विस्तार से समझ लेना आवश्यक है। काम करने की वैज्ञानिक विधियों का पता न होने से श्रमिकों की शक्ति तथा धन का बहुत बडा अपव्यय होता है। टेलर तथा उनके सहयोगियों ने इस बात को प्रयोगों द्वारा सिद्ध कर दिया है कि पुराने तौर तरीकों से काम करने के कारण श्रम की शक्ति का बहुत बडा अपव्यय हो रहा है। उन्होंने अपने प्रयोगों द्वारा इस बात को सिद्ध कर दिया है कि उचित प्रबन्ध तथा उचित क्रियाओं द्वारा कम परिश्रम करके एक मजदूर कहीं अधिक उत्पादन कर सकता है। अतएव राष्ट्रीय कल्याण के दृष्टिकोण से भी वैज्ञानिक प्रबन्ध अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)

यद्यपि औद्योगिक प्रबध मे सुधार का काम बहुत पहले आरम्भ हो गया था फिर भी उसे स्थायी तथा स्थिर रूप प्रदान करने का काम एफ० डब्लू० टेलर (F. W. Taylor) नामक एक इजीनियर ने किया। टेलर ने मुडवेल स्टील क० म एक साधारण श्रमिक के रूप से काम आरम्भ किया। धीरे–धीरे उन्नति करते हुए वे उसके प्रधान इन्जीनियर हो गए। टेलर ने देखा कि साधारण मजदूर को जितना काम करना चाहिए वह उससे कहीं कम काम करता है। उनके विचार से इसका मुख्य कारण प्रबन्ध सम्बन्धी दोष था। इसलिए उन्होंने कई प्रकार के प्रयोग किए और औद्योगिक प्रबन्ध को वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। उन्होंने सन् १८९५ मे A Piece Rate System नामक पुस्तक प्रकाशित की। इसम उन्होंने चालू मजदूरी प्रदान करने की विधियों के स्थान पर एक नई प्रणाली निकाली। सन् १९०३ मे Shop Management नामक पुस्तक तथा १९११ मे Principles of Scientific Management

नामक पुस्तक प्रकाशित हुई। इन पुस्तको मे टेलर महोदय ने अपने नए सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया।

टेलर के मुख्य सिद्धान्त

टेलर के वैज्ञानिक प्रबन्ध के मुख्य-मुख्य अग इस प्रकार थे :—

१. काम सम्बन्धी अनुमान (Task Idea)—वैज्ञानिक प्रबन्ध का आधारभूत सिद्धान्त इस बात का ज्ञान है कि एक प्रथम श्रेणी के श्रमिक को उचित परिस्थितियों मे कितना काम करना चाहिए। इस बात का ठीक-ठीक अनुमान किए बिना यह नही मालूम किया जा सकता कि कारीगर प्रमापित उत्पादन से कम अथवा अधिक उत्पादन कर रहे है। एक आदमी कितना काम कर सकता है इसकी योजना बहुत सावधानी के साथ प्रयोगो द्वारा निश्चित की जाती है। उदाहरणार्थ बीथिलहेम स्टील कम्पनी मे एक श्रमिक औसतन करीब १२॥ टन कच्चा लोहा लादता था। टेलर ने उचित अध्ययन के पश्चात् इस बात का निश्चय किया कि एक प्रथम श्रेणी के श्रमिक को प्रतिदिन ४७॥ से ४८ टन तक माल लादना चाहिए। और उसने सफलतापूर्वक इसे करके भी दिखला दिया। परन्तु इससे यह मतलब नही है कि कर्मचारियो से इतना काम लिया जाय कि उनका स्वास्थ्य ही खराब हो जाय। इस सम्बन्ध मे टेलर का यह कथन ध्यान देने योग्य है—'प्रथम श्रेणी के कर्मचारी से क्या आशा की जा सकती है, इस सम्बन्ध मे यह बात साफ-साफ समझ लेनी चाहिए कि लेखक का तात्पर्य इतने काम से नही है जिसे करने मे कर्मचारी को अपनी शक्ति पर बहुत अधिक जोर देना पड़े, इससे तात्पर्य सिर्फ उतने काम से है जिसे एक अच्छा आदमी बिना अपने स्वास्थ्य को खराब किए लम्बे समय तक चालू रख सके।"

२ प्रयोग (Experiments)—काम का ठीक-ठीक अनुमान करने के लिए टेलर ने तीन प्रकार के वैज्ञानिक प्रयोग किए जिन्हे समय अध्ययन **(Time Study)** गति अध्ययन **(Motion Study)** तथा थकान अध्ययन **(Fatigue Study)** कहते है।

समय अध्ययन (Time Study)—प्रबन्ध सम्बन्धी अनुसधान का पहला कार्य समय अध्ययन है। हाथवे **(H. K. Hathaway)** के शब्दो मे

"समय अध्ययन का वैज्ञानिक प्रबन्ध मे वही महत्व है जो मात्रा सम्बन्धी विवेचना (Qualitative Analysis) का रसायनशास्त्र मे।" प्रत्येक काम के करने मे कुछ समय लगता है। किसी विशेष क्रिया के करने मे कितना समय लगना चाहिए इसके अध्ययन को टेलर ने *समय अध्ययन* नाम दिया। टेलर ने इसके लिए स्टाप वाच (Stop Watch) का प्रयोग लिया। उसने समस्त क्रिया को कई भागो मे बाँट लिया तथा प्रत्येक विभाग मे लगने वाला समय नोट किया। आपरेटर अपनी घडी तथा चार्ट लेकर एक ऐसे स्थान पर बैठता है जहाँ से वह मजदूरो को देख सके परन्तु मजदूर उसे न देख सके। इसके बाद वह हर क्रिया मे लगने वाले समय को चार्ट पर नोट करता जाता है। बीच–बीच मे आराम के लिए निकाले हुए समय का भी ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के लिए कच्चा लोहा गाडी मे लादने का समय अध्ययन करना हो तो उसे निम्नलिखित भागों मे बाँटा जा सकता है। (i) लोहे को जमीन से उठाने मे लगने वाला समय (ii) लोहे को लेकर गाडी तक जाने मे लगने वाला समय (iii) लोहे को गाडी मे फेकने मे लगने वाला समय (iv) खाली हाथ वापस आने मे लगने वाला समय।*

कुछ विद्वानों ने टेलर के *समय अध्ययन विधि की बडी आलोचना* की है। मायर्स (C. S. Myers) के शब्दों मे टेलर द्वारा प्रयुक्त समय अध्ययन विधि वैज्ञानिक, समाजशास्त्रीय तथा मनोवैज्ञानिक सभी दृष्टियों से अपूर्ण है। यह अवैज्ञानिक इसलिए है क्योंकि ऐसी शुद्ध सूचना नहीं प्राप्त है जिसके आधार पर दी जाने वाली भत्ते की रकम का निर्णय किया जा सके। यह समाज विरोधी इसलिए है क्योकि यह औसत कर्मचारी का ध्यान नहीं रखती, यह मनोवैज्ञानिक तथ्यो के विरुद्ध इसलिए है क्योंकि काम की माप ऐसी परिस्थितियों मे की जाती है जो असाधारण मानसिक दशाओं मे की जाती है।"

शील्ड्स का कथन है—'जहाँ काम की *प्रकृति तथा मात्रा मे बराबर परिवर्तन* होता रहता है जैसे मरम्मत सम्बन्धी काम मे, अथवा अधिकांश कारीगर लगातार एक ही काम मे न लगे रहते हो वहा समय अध्ययन मे इतनी

H. K. Hathaway : *Industrial Engineering.*

* Taylor : *Shop Management.*

C. S. Myers : *Industrial Psychology in Great Britain.*

कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है तथा इतना अनावश्यक व्यय होता है कि इसको लागू करना शायद ही लाभप्रद हो सके।'

समय अध्ययन में कुछ विशेष समस्यायें उत्पन्न होती हैं एक तो यह कि किस प्रकार के कारीगर के समय का अध्ययन किया जाय। यदि सर्वोत्तम कारीगर को लिया जाय तो बहुत थोड़े लोग उस स्तर को प्राप्त कर सकेंगे। टेलर ने अपने प्रयोगों में सर्वोत्तम कर्मचारियों को ही लिया। यह उसकी बहुत बड़ी भूल थी।

जो व्यक्ति समय सम्बन्धी रिकार्ड की जाँच के लिए रक्खे जाते हैं उन्हें जाँच की वैज्ञानिक विधियों में दक्ष होने के अतिरिक्त कर्मचारियों के प्रति सहृदय भी होना चाहिए। परन्तु ऐसा बहुत कम होता है। होक्सी (R. F. Hoaxi) का यह कथन विशेष रूप से उल्लेखनीय है—'जहाँ तक इस लेखक ने देखा है, अच्छे से अच्छे आदमियों में भी थकान का ज्ञान, कर्मचारियों की मानसिक स्थिति तथा स्वभाव को समझने की शक्ति, कर्मचारियों के दृष्टिकोण तथा समस्याओं की समझ कम ही होती है, तथा कर्मचारियों के कल्याण के विस्तृत आर्थिक तथा सामाजिक पहलू का न तो ज्ञान ही होता है न कोई रुचि।'

गति अध्ययन (Motion Study)—हर काम को करने में श्रमिक को अपने हाथ-पैरों को हिलाना डुलाना पड़ता है। शरीर का यह हिलाना डुलाना जितना ही अधिक होगा, समय उतना ही अधिक लगेगा तथा थकावट भी उतनी ही जल्दी आवेगी। गिलब्रैथ के कथनानुसार, हर बार जब एक राज ईंट उठाने के लिए झुकता है तो उसे अपना बोझ (मान लिया १ हन्ड्रेडवेट) उठाना पड़ता है। इस प्रकार यदि उसे सात सौ बार ईंटें उठाने के लिए झुकना पड़े तो उसे ईंटों के अतिरिक्त ३५ टन बोझ उठाना पड़ेगा। इसलिए वैज्ञानिक अध्ययन द्वारा काम की ऐसी विधि अपनानी चाहिए जिससे शरीर में हरकत कम से कम हो।

गति अध्ययन की परिभाषा गिलब्रैथ ने इस प्रकार दी है—'काम का अत्यंत मौलिक तत्वों में विभाजन, इन तत्वों का अलग अलग एक दूसरे के सम्बन्धित

R. F. Hoaxi : *Scientific Management and Labour.*

रूप मे अध्ययन तथा इन अध्ययन किए हुए तत्वो के आधार पर कम से कम बरबादी वाली विधियों का निर्माण—यही सब गति अध्ययन का कार्य क्षेत्र है।* सक्षेप मे इसका तात्पर्य यह है कि सर्व प्रथम तो हम इस बात की खोज करते है कि काम को प्रभावित करने वाले तत्व कौन से है तथा वे एक दूसरे को किस सीमा तक प्रभावित करते हैं। इस बात का ज्ञान हो जाने पर ही हम ऐसी विधियों का निर्माण करते ह जिनमे बरबादी कम से कम हो।

इसका उदाहरण हमे गिल्ब्रेथ महोदय (Mr. Gilbreth) की ईंटे जोडने की विधि (Brick Laying System) मे मिलता है। गिल्ब्रेथ ने देखा कि औसतन एक राज को ईंट दीवाल मे रखने के लिए १८ बार हरकत करनी पडती है। उसने ईंट लगाने के तरीको मे सुधार करके इन हरकतो (Movements) को घटाकर ५ और कुछ मे तो केवल २ कर दिया। इसके लिए उसने तीन काम किए।

(१) उसने कुछ हरकतों को जिन्हे राज आवश्यक समझ कर करते थे, परन्तु जो वास्तव मे अनावश्यक थी बिल्कुल बन्द कर दिया।

(२) उसने दीवाल जोडने के ऐसे साधारण यन्त्रो को ईजाद किया जिसमे कारीगर को अपने शरीर को कम से कम हिलाना डुलाना पडे। उदाहरण के लिए मचान, जिसे आवश्यकतानुसार ऊँचा नीचा किया जा सकता था, ईंटे रखने की सदूकची जिसमे मजदूर छाट छाट कर इस प्रकार ईंटा रख दे कि राज को उसे घुमा फिराकर देखने की आवश्यकता न पडे।

(३) उसने राजो को वैज्ञानिक विधियो से काम करने की शिक्षा दी। उदाहरणार्थ उन्हे किस प्रकार खडे होना चाहिए, किस प्रकार ईंटे तथा गारा उठाना चाहिए इत्यादि। उसने उन्हे इस प्रकार की ट्रेनिंग दी जिससे वे एक हाथ से ईंटा और दूसरे हाथ मे गारा बराबर लेकर एक साथ उसे रख सकते थे। गति अध्ययन के आधार पर जो नई प्रणालियाँ निकाली जाती हैं उनसे काम मे आशातीत वृद्धि होती है। गिल्ब्रेथ ने तो यहाँ तक लिखा है कि

* F. Gilbreth : *Applied Motion Study.*

कोई ऐसा काम नही है जिसमे गति अध्ययन के सिद्धान्तो को लागू करके काम दूना न किया जा सके।'*

थकान अध्ययन (Fatigue Study)—हर काम को करने मे हमारी पेशियो पर जोर पडता है तथा हमें थकान मालूम पडती है। थकान का भी काम के उत्पादन से बहुत गहरा सम्बन्ध है। अध्ययन द्वारा ज्ञात हुआ है कि प्रत्येक कर्मचारी का काम पहले तो कुछ समय तक उत्तरोत्तर आसान तथा रुचिपूर्ण होता जाता है तथा उत्पादन भी बढता है। फिर यह वृद्धि समाप्त हो जाती है तब कुछ समय बाद थकान और घटता हुआ उत्पादन आरम्भ हो जाता है। यही पर उसे आराम देने की आवश्यकता होती है। टेलर ने इसलिए, हर क्रिया को सूक्ष्म रूप से अध्ययन करके मालूम किया कि उसमे कैसे थकान लगती है तथा क्रियाओ मे क्या सुधार किया जाय कि श्रमिक कम से कम थकान मे अधिक से अधिक काम कर सके। उदाहरण के लिए टेलर महोदय ने पता लगाया कि ९२ पाउन्ड वजन का कच्चा लोहा (Pig Iron) यदि उठाना पडे तो एक प्रथम श्रेणी का श्रमिक दिन भर के समय का ४३ प्रतिशत समय ही बोझ के नीचे रह सकता है, बाकी ५७ प्रतिशत समय उसे बोझ से खाली रहना चाहिए। यह बोझ जितना ही हल्का होता जावेगा उतना ही अधिक देर तक श्रमिक बोझा उठाए रह सकेगा। उसने यह भी बतलाया कि ९२ पौंड का लोहा लाद कर श्रमिक चाहे खडा रहे, चाहे चले दोनो ही परिस्थितियों मे उसे समान रूप से थकावट लगती है। क्योकि उसके हाथ और पैरो की पेशियो पर बडा जोर पडता रहता है। थकान को दो प्रकार से कम किया जा सकता है एक तो बीच बीच मे आराम का समय देकर और दूसरे बोझ की उचित मात्रा का नियत्रण करके इसका ठीक–ठीक निणय प्रयोगो द्वारा हर एक काम के लिए किया जा सकता है।

योजना (Planning)—वैज्ञानिक प्रबन्ध की तीसरी विशेषता हर काम के लिए एक विशेष योजना का होना है। प्रो० शील्ड्स के शब्दो म योजना विभाग वैज्ञानिक प्रबन्ध का केन्द्र है जिसका मुख्य कार्य उन समस्त कर्मचारियो की आवश्यकताओ को पूरा करना है जो उत्पादन की विभिन्न

---

* F. Gilbreth : *Primer of Scientific Management*

विधियों में लगे हैं।* इसके लिए कारखाने में एक योजना विभाग तथा एक योजना के कमरे (Planning Room) का होना आवश्यक है। अगले दिन क्या काम होगा इसकी योजना पहिले ही बना ली जाती है। इसके लिए हर कारीगर की एक अलमारी (Pigeon hole) होती है। प्रातः काल जब वह काम पर आता है तो उसे अपने खाने में दो कागज रखे हुए मिलते हैं। एक में तो यह लिखा रहता है कि उसे क्या काम करना है। इसके लिए उसे किन औजारों की आवश्यक्ता होती है और वे कहाँ से प्राप्त होंगे। दूसरे कागज में पिछले दिन के काम का इतिहास रहता है अर्थात् उसने कितना काम किया और कितना वेतन उपार्जन किया। कौन व्यक्ति कहाँ काम करेगा यह नक्शों, चार्टों इत्यादि के द्वारा शतरंज के मोहरों के समान स्पष्ट दिखलाया जाता है।

टेलर ने योजना विभाग के निम्नलिखित कार्य बतलाए है।

(१) कम्पनी द्वारा लिए हुए प्रत्येक काम की पूर्ण विवेचना करना।

(२) कम्पनी में होने वाले हर काम तथा उसकी विभिन्न क्रियाओं में लगने वाले समय का अध्ययन करना। यह समय का अध्ययन हाथ से होने वाले काम तथा मशीनों द्वारा होने वाले काम दोनों के लिए ही होगा।

(३) कम्पनी के पास कितना सामान, कच्चा माल, स्टोर, तैयार माल, पड़ा है तथा भिन्न-भिन्न मशीनों के लिए कितने दिन का काम है, इसका विवरण रखना।

(४) बिक्री विभाग में मिलने वाले हर नए आर्डर का अध्ययन तथा उसकी सुपुर्दगी की तारीख के आधार पर उसकी तैयारी की योजना बनाना।

(५) हर वस्तु के निर्माण में लगने वाले व्यय की विवेचना। मासिक व्यय का विवरण तैयार करना तथा पिछले महीने की लागत से उसका तुलनात्मक अध्ययन करना।

---

* Shields : *Evolution of Industrial Organization*

(६) किस मजदूर की क्या मजदूरी हुई उसका निर्णय करना। वेतन विभाग का संचालन।

(७) सूचना विभाग का संचालन—इस विभाग में हर प्रकार की सूचना तथा रिकार्ड रखा जाता है।

(८) प्रमापित औजारों की व्यवस्था। किस काम के लिए किस प्रकार का औजार अधिक उपयुक्त हो सकता है इसकी व्यवस्था करना तथा उनके खरीदने का प्रबन्ध करना।

(९) प्रमापित विधियों का निर्धारण—किसी काम को करने की प्रमापित विधि क्या होनी चाहिए, इसका निर्णय करना तथा प्रमापित विधि के अनुसार प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना।

(१०) कारखाने की समस्त क्रियाओं पर नियन्त्रण रखना। इसके लिए योजना विभाग उपयुक्त टाइम टेबिल रखता है। इसके लिए एक साधन का उपयोग किया जाता है। जिसे tickler system कहते हैं। इसके लिए ३६५ खानों की व्यवस्था की जाती है। हर खाने पर एक तारीख पड़ी रहती है। जिस तारीख को जो काम होना है उसी तारीख के खाने में उसकी स्लिप रख दी जाती है ताकि उसकी याददाश्त बनी रहे।

(११) संदेशवाहन विभाग का संचालन—इस विभाग के द्वारा भिन्न-भिन्न विभागों के नायकों के पास सूचना भेजी जाती है।

(१२) रोजगार के दफ्तर का प्रबन्ध करना—इसके द्वारा उचित श्रमिकों का चुनाव तथा उनकी नियुक्ति की जाती है। कर्मचारियों की पदोन्नति का निर्णय भी यही विभाग करता है। इसके लिए हर कर्मचारी का सेवा-विवरण (Service Record) रखा जाता है।

(१३) उन्नति तथा सुधार सम्बन्धी योजनाएँ तैयार करना। योजना विभाग मशीनरी में होने वाली टूट-फूट तथा उसकी मरम्मत का प्रबन्ध भी करता है।

टेलर ने क्रियात्मक संगठन के लिए निम्नलिखित आठ नायकों की व्यवस्था की है। जिनमें से प्रथम चार कारखाने में तथा अन्तिम चार योजना के कमरे में बैठते हैं।

कारखाने मे निम्नलिखित चार नायक काम करते हैं।

(१) टोली नायक (Gang Boss)—वह श्रमिको से योजना के अनुसार काम लेता है। वह इस बात की व्यवस्था करता है कि किस कारीगर को क्या काम करना है तथा उसको किन-किन औजारो की आवश्यकता पडेगी। वह हर कारीगर के पास कम से कम एक इकाई काम अधिक रखता है जिससे एक काम समाप्त होते ही वह दूसरा काम आरम्भ कर दे। टोली नायक को अपने मातहत मजदूरो को यह भी सिखलाना पडता है कि काम की ठीक-ठीक विधि क्या है ? वह इस बात का भी ध्यान रखता है कि काम ठीक विधि से हो रहा है।

(२) गति नायक (Speed Boss)—उसका काम यह निरीक्षण करना होता है कि कारीगर अपने काम को प्रमापित समय के अन्दर कर रहे हैं अथवा नही। समय अधिक लगने पर वह उसका कारण मालूम करता है और यदि काम गलत ढग से हो रहा है तो उचित विधि से काम की शिक्षा देता है।

(३) निरीक्षक (Inspector)—वह काम की उचित किस्म की जाँच करता है। सफल प्रबन्ध के लिए यही आवश्यक नही है कि काम अधिक मात्रा मे हो उसकी किस्म भी अच्छी होनी चाहिए।

(४) जीर्णोद्धार नायक (Repair Boss)—वह इस बात का निरीक्षण करता है कि कारीगर अपनी मशीन को ठीक हालत मे रखते है अथवा नही। वह मशीनो की सफाई तथा तेल इत्यादि की व्यवस्था करता है और पुर्जों की टूट फूट होने पर उनकी मरम्मत की व्यवस्था करता है।

निम्नलिखित चार नायक योजना विभाग मे काम करते है—

(१) कार्यक्रम लिपिक (Routine Clerk)— वह दैनिक कार्यक्रम की योजना तैयार करता है। क्या काम होना है ? उसकी विधि क्या होगी ? इस सम्बन्ध मे वह पूरे विवरण के साथ आदेश कारखाने मे काम करने वाले चारो नायकों तथा अलग-अलग मजदूरो के पास भेजता है।

(२) आदेशपत्र लिपिक (Instruction Card Clerk)—यह हर काम के लिए विस्तृत आदेश पत्र तैयार करता है। इसी योजना के

आधार पर यह निश्चित किया जाता है कि उसका निश्चित कार्यक्रम क्या होगा। कार्यक्रम लिपिक विभिन्न लोगो के पास उसकी सूचना भेजता है। इस प्रकार आदेश-पत्र लिपिक जहाँ योजना का काम करता है वहाँ कार्यक्रम लिपिक उसे कार्यान्वित करने का।

(३) **समय और लागत लिपिक** (Time and Cost Clerk)—वह विभिन्न नायको के पास इस बात की सूचना भेजता है किसी काम के लिए स्टैन्डर्ड समय क्या होगा तथा वे अलग-अलग मजदूरो के लिए समय का रिकार्ड किस प्रकार रक्खेगे। वहाँ से विस्तृत सूचना आ जाने पर प्रत्येक मजदूर की मजदूरी निर्धारित होती है। तथा प्रति इकाई लागत का हिसाब लगाया जाता है।

(४) **अनुशासक** (Shop Disciplinarian)—यह कारखाने मे अनुशासन के लिए उत्तरदायी होता है। यह हर मजदूर के काम का विवरण रखता है तथा अच्छे काम के लिए उचित पुरस्कार और खराब काम के लिए दण्ड की व्यवस्था करता है। प्राय मजदूर और नायको के बीच झगडा होने पर वह मध्यस्थ का भी काम करता है।

यदि किसी बहुत बडे कारखाने मे इस प्रकार का सगठन लागू किया जाता है तो प्रत्येक श्रेणी के नायक के ऊपर एक प्रधान नायक की व्यवस्था की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए कई टोली नायको के ऊपर एक प्रधान टोली नायक। इस प्रकार के नायक अपने मातहत नायको को हर काम की शिक्षा देते है। इनका एक काम यह भी होता है कि वे अपने मातहत विभिन्न नायको के कामो का निरीक्षण करे तथा उनके काम का समन्वय करें।

(४) कर्मचारियो का चुनाव तथा उनकी शिक्षा

टेलर ने कर्मचारियो के चुनाव तथा उनकी शिक्षा पर बड़ा जोर दिया। उसका कहना था कि हर एक आदमी हर काम नहीं कर सकता। उसने लिखा है—"इन नौ गुणो से एक सर्वांग सम्पूर्ण व्यक्ति की रचना होती है। बुद्धिमत्ता, शिक्षा, विशेष अथवा तात्रिक ज्ञान, शारीरिक दक्षता, चतुराई, शक्ति, ईमानदारी, निर्णयशक्ति अथवा साधारण बुद्धि तथा उत्तम स्वास्थ्य। उपर्युक्त गुणो मे किन्ही तीन गुण वाले व्यक्ति को किसी भी समय साधारण

मजदूरों पर प्राप्त हो सकते हैं। इसके चार गुणों वाला व्यक्ति अधिक मूल्य में ही मिलेगा। पाँच गुणों वाले व्यक्ति का मिलना अत्यंत कठिन है। छः, सात या आठ गुणों वाले व्यक्ति का मिलना तो असम्भव है।" अच्छे कारीगर को टेलर ने 'प्रथम श्रेणी का कारीगर' कहा है। टेलर ने प्रथम श्रेणी के कारीगर के बारे में दो विशेषताएँ बतलाई हैं।

(१) कर्मचारी उस काम करने के लिए उपयुक्त हों। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि वे बहुत ही असाधारण कोटि के आदमी हों। साधारण लोगों में भी जो जिस काम के लिए अधिक उपयुक्त हों उन्हें काम देना चाहिए। टेलर ने स्वयं लिखा है—"कर्मचारियों के चुनाव से यह मतलब नहीं है कि बहुत ही विशेष योग्यतापूर्ण लोग लिए जायँ इसका मतलब सिर्फ यह है कि बहुत साधारण व्यक्तियों में से ऐसे लोग चुन लिए जायँ जो उस काम के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हों"।* बिथेल हैम के स्टील के कारखाने में कच्चा लोहा भरने के लिए टेलर ने ७५ आदमियों के काम का कई रोज तक निरीक्षण किया। अन्त में केवल ४ आदमी ऐसे निकले जो १२॥ टन के बजाय ४७ टन लोहा रोज भर सके।

(२) दूसरी विशेषता कर्मचारियों में अधिक वेतन के लिए अधिक काम करने का उत्साह है। टेलर का कहना है—"प्रथम श्रेणी के कर्मचारी अधिकतम गति पर काम करने को न केवल तैयार हो जाते हैं बल्कि उन्हें इसमें प्रसन्नता का अनुभव होता है बशर्ते उन्हें ३० प्रतिशत से १०० प्रतिशत तक अधिक वेतन दिया जाय।†

इस प्रकार कर्मचारियों का चुनाव करते समय उनकी योग्यता तथा काम करने की इच्छा दोनों पर ही ध्यान देना आवश्यक होता है। जो लोग काम करने के अनुपयुक्त पाये जाँय उन्हें ऐसा काम देना चाहिए जिसके वे उपयुक्त हों। यदि उन्हें कारखाने में किसी प्रकार का काम न दिया जा सके उन्हें निकाल देना चाहिए तथा उनके स्थान पर योग्य व्यक्ति रखने चाहिए। कुछ लोगों ने इस बात की बड़ी निन्दा की है परन्तु टेलर के मतानुसार कार्य-

---

* Taylor : *Scientific Management.*

† Taylor : *Shop Management.*

क्षमता बढाने और योग्य व्यक्तियो की उन्नति का रास्ता खोलने के लिए यह आवश्यक हो जाता है ।

कर्मचारियो का चुनाव ही सब कुछ नहीं है उन्हे उचित रीति से काम करने की शिक्षा भी देना चाहिए । उन्हे अत्यन्त विस्तारपूर्वक आदेश दिये जाते है । कैसे क्या काम करना चाहिए । कब कार्य और कब आराम करना चाहिए । कभी-कभी तो लोग इतने अधिक आदेश सुन कर खीझ जाते है परन्तु इसके बिना उचित मात्रा म उत्पादन भी सम्भव नही है ।

स्वय टेलर के शब्दो मे यदि कोई कर्मचारी सौंपे हुए काम को न कर सके तो कोई सुयोग्य शिक्षक उसे बतलाता है कि उसे कैसे करना चाहिये । वह उसका मार्ग दर्शन करता सहायता करता तथा उसे प्रोत्साहित करता है । साथ ही साथ वह इस बात का भी अध्ययन करता जाता है कि उस मे कितनी योग्यता है । इस प्रकार किसी मजदूर को काम न कर सकने के कारण तुरन्त नौकरी से अलग नही कर दिया जाता अथवा उसका वेतन नही घटा दिया जाता बल्कि उसे काफी समय तक सहायता दी जाती है कि सौंपा हुआ काम कर सके ।

(५) उपयुक्त औजारो की व्यवस्था

कर्मचारियो की शिक्षा के अलावा कारखाने का उत्तम वातावरण तथा उपयक्त औजारो का होना भी आवश्यक है । इसके लिये कुछ नये औजारो का आविष्कार भी करना पडता है जैसे दीवाल जोडने के लिये गिलब्रेथ का मचान । टलर ने इसे निम्नलिखित उदाहरण से समझाया है । कच्चा लोहा गाडी म भरन के लिए बलचे (Shovel) का उपयोग किया जाता है । बेलचे कई साइज के हात ह, जो ५ पौंड मे ४० पौंड तक के हो सकते है । हर साइज का बलचा रखने पर अलग अलग मात्रा म काम होता था । प्रयोगो द्वारा सिद्ध हुआ कि २१ पौंड का बेलचा सबसे अधिक उपयुक्त था । टेलर के मतानुसार हर चीज को ढोने के लिए अलग–अलग नाप के बेलचे होने चाहिए । हर काम क लिय उपयुक्त औजारो की व्यवस्था योजना विभाग द्वारा पहिले ही कर दी जाती है ।

(६) प्रमापीकरण (Standardisation)

वैज्ञानिक प्रबन्ध की एक अन्य विशेषता प्रमापीकरण है । पहले की विधियो

मे कर्मचारियो को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वे अपनी सुविधा के अनुसार काम की विधियो का चुनाव करें। वैज्ञानिक प्रबन्ध मे कोई बात कर्मचारियो के ऊपर नही छोडी जाती है। न केवल उनके लिए प्रमापित किस्म के औजार ही दिए जाते है बल्कि काम करने की प्रमापित विधियो का निर्माण भी किया जाता है। ये विधियाँ ऐसी होती है जिनके द्वारा कम से कम परिश्रम से अधिक से अधिक मात्रा मे काम किया जा सके। इन विधियो का निर्णय उचित प्रयोगो के बाद किया जाता है। ऐसा देखा गया है कि अधिक काम करने के लिए अधिक शक्ति ही आवश्यक नही है उचित विधियों का होना भी आवश्यक है। गलत ढग से काम करने से उत्पादन कम होता है और शक्ति का अपव्यय अधिक होता है। टेलर का मत है कि कर्मचारी में स्वय इतनी बुद्धि नही होती है कि वह काम करने की वैज्ञानिक विधियो को निकाल सके। इसलिए इसका निर्णय विशेषज्ञो द्वारा उचित प्रयोगो के पश्चात् किया जाना चाहिए तथा समस्त कर्मचारियो को उन्ही स्टैन्डर्ड विधियो के अनुसार काम करना चाहिए।

(७) प्रेरणा की समस्या (Problem of Incentives)

किसी भी प्रकार के प्रबन्ध की सफलता के लिए कर्मचारियों के सहयोग की शर्त अत्यन्त आवश्यक होती है। कर्मचारियो के मन मे अधिक से अधिक काम करने की इच्छा कैसे उत्पन्न हो इसके लिए टेलर ने दो विधियों का प्रयोग किया है।

(१) वेतन विधि (२) व्यक्तिगत सम्बन्ध।

अधिक काम करने के लिए कर्मचारियों को प्रोत्साहित करने के लिए पहली शर्त यह है कि उन्हे अधिक काम का अधिक वेतन दिया जाय। यह वेतन उनके काम की मात्रा तथा किस्म के अनुसार होना चाहिए। अच्छे काम का पुरस्कार तुरन्त ही मिलना चाहिए तथा कर्मचारी को साफ-साफ मालूम हो कि अच्छा काम करने की वजह से उसके वेतन में औरो की अपेक्षा अधिक वृद्धि हुई। साल के अन्त मे बोनस देने की प्रणाली इसीलिए अधिक सफल न हो सकी। टेलर का कथन है "धीरे-धीरे आराम के साथ काम करने मे जो सुख मिलता है उसका आकर्षण अधिक परिश्रम करके ६ महीने बाद सब के साथ-साथ पुरस्कार पाने की सम्भावना से कही अधिक तीव्र होता है।" इसलिए टेलर ने वेतन की एक नई प्रणाली निकाली जिसे (Differential Rate

System) कहते है। भृत्ति भुगतान की इस विधि का विस्तृत वर्णन अगल अध्यायो मे किया गया है।

कर्मचारियो को प्रोत्साहित करने की एक दूसरी विधि व्यक्तिगत सम्बन्ध की है। टेलर के कथनानुसार हर कर्मचारी एक ही प्रकार का नहीं होता इसलिए सब के साथ समान व्यवहार भी नही किया जा सकता। जहाँ अच्छे काम के लिए उचित पुरस्कार तथा खराब काम के लिए दड की व्यवस्था नही होती वहाँ काम का स्तर अवश्य ही गिर जाता है। टेलर ने लिखा है— "प्रयास करने के लिए व्यक्तिगत महत्वाकाक्षा हमेशा जन कल्याण की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली प्रोत्साहन रहा है और भविष्य मे भी रहेगा।" इसलिए कम्पनी हर कर्मचारी से व्यक्तिगत सम्बन्ध रखती है। हर व्यक्ति का सेवा-विवरण (Service Chart) रखा जाता है, जिनमे उसके अच्छे और खराब काम नोट किए जाते है तथा उसी के आधार पर उसका वेतन और अन्य पुरस्कार निर्धारित किए जाते है।

ठीक-ठीक काम न करने पर कर्मचारियो को निम्नलिखित दड दिए जा सकते है।

(१) उसका वेतन घटा दिया जाय।

(२) उसे कुछ समय के लिए काम से अलग कर दिया जाय।

(३) उस पर जुर्माना कर दिया जाय।

(४) उसकी सेवा विवरण पत्रिका म इस आशय का रिमार्क लिख दिया जाय और जब उनकी सख्या एक निश्चित सख्या से अधिक हो जाय तो ऊपर दी हुई तीन विधियो मे किसी एक या अधिक का उपयोग किया जाय। टलर की राय मे जुर्माना करने की विधि यदि न्याय पूर्ण तथा उचित विधि से प्रयोग की जाय तो अन्य विधियो से अधिक उपयोगी है। जुर्माना करने म दो बातो का ध्यान रखना आवश्यक है—पहले नो जुर्माना करते समय निष्पक्षता, उत्तम निणय तथा न्याय का ध्यान रखना चाहिए दूसरे जुर्माने की रकम बाद मे किसी न किसी रूप म कर्मचारी को वापस कर दी जाय।

(८) मानसिक क्रान्ति

वैज्ञानिक प्रबन्ध की अन्तिम शर्त कारीगरो तथा प्रबन्धको के मानसिक

दृष्टिकोण का परिवर्तन है। "वैज्ञानिक प्रबन्ध के आचार्यों के अनुसार इसका एक उद्देश्य यह भी होता है कि मजदूरों के मन में प्रबन्धको के प्रति मानसिक परिवर्तन किया जाय, नियोक्ता तथा मजदूर के बीच में एकता उत्पन्न की जाय। जिससे औद्योगिक झगडो मे अपनी शक्ति, समय, तथा धन व्यय करने के बजाय दोनो पक्ष उत्पादन बढाने में हार्दिक सहयोग करे जिससे वितरण के लिए अधिक धन मिल सके।"*

यह आवश्यक है कि प्रबन्ध तथा कर्मचारी दोनो ही पुरानी परम्परागत विधियो के स्थान पर नवीन वैज्ञानिक विधियो की उपयोगिता को समझें। दोनो का यह विश्वास हो कि एक दूसरे का हित विरोधी नही है। श्रमिक प्रबन्धको मे विश्वास करे तथा प्रबन्धक श्रमिको की हित भावना रक्खे। कोई भी प्रणाली कितनी ही अच्छी क्यों न हो उचित दृष्टिकोण तथा उचित नेतृत्व के बिना सफल नही हो सकती। प्रबन्धको को श्रमिको के प्रति अत्यत मानवीय दृष्टिकोण रखना चाहिए। वैज्ञानिक प्रबन्ध का उपयोग अपने स्वार्थ साधन के लिए नहीं करना चाहिए। टेलर का कथन है—"कोई भी प्रणाली वास्तविक मानव की आवश्यकता को पूरा नही कर सकती। अच्छी प्रणाली तथा अच्छे व्यक्ति दोनो की ही आवश्यकता समान रूप से रहती है तथा सर्वोत्तम प्रणाली के लागू करने पर भी सफलता प्रबन्धको की योग्यता, दृढ़ता तथा सम्मान के अनुपात मे ही प्राप्त होगी।"

वैज्ञानिक प्रबन्ध के अन्य आचार्य

टेलर महोदय वैज्ञानिक प्रबन्ध के प्रवर्तक माने जाते है। परन्तु इस दिशा मे अन्य भी बहुत से विद्वानो ने योगदान दिया है तथा उसमे आवश्यकतानुसार सशोधन किए हैं। उनके विचारो को जाने बिना वैज्ञानिक प्रबन्ध का अध्ययन पूर्ण नही माना जा सकता। इन आचार्यों मे मुख्य–मुख्य तथा उनके विचार इस प्रकार है।

हेनरी गॉट (Henry L. Gantt)—यह टेलर का समकालीन था। अधिकाश बातो मे उसके विचार टेलर से मिलते–जुलते थे। परन्तु निम्नलिखित बातो मे उसका टेलर से मतभेद था।

---

* Shields : *The Evolution of Industrial Organization.*

(१) पहला मतभेद विशेषज्ञों के अधिकारों तथा उत्तरदायित्वों के सम्बन्ध में था। टेलर के मतानुसार विशेषज्ञों को अपने-अपने क्षेत्र में पूर्ण अधिकार प्राप्त होने चाहिए और प्रबन्धकर्ताओं को उनकी राय अनिवार्य रूप से माननी ही चाहिए। गाट का मत था कि विशेषज्ञों को केवल परामर्श देने का अधिकार हो। अंतिम अधिकार प्रबन्धकर्ताओं के हाथ में ही होना चाहिए।*

(२) टेलर द्वारा निर्धारित 'स्टैन्डर्ड उत्पादन' एक निश्चित मात्रा थी उसमें कम में उसे सतोष न था, गाट का कहना था कि यह कोई आवश्यक नहीं। उत्पादन धीरे-धीरे भी बढाया जा सकता है। वह कहता था—"यदि किसी काम को तुम पहले की अपेक्षा १० प्रतिशत अच्छा कर सकते हो तो करो, जब तुम उसे दुबारा फिर करोगे तो धीरे-धीरे और भी सुधार होगा।"

(३) भृत्ति भुगतान विधि में भी टेलर तथा गॉट का मतभेद था। उसने टेलर की भृत्ति भुगतान विधि की आलोचना की तथा अपनी निजी प्रणाली निकाली जिसे *गाट प्रणाली* कहते हैं। इस विषय पर विस्तृत रूप से भृत्ति भुगतान के अध्याय में देखिए।

फ्रैन्क गिल्ब्रेथ (Frank Gilbreth)—वह भी टेलर का समकालीन था। वह ईटों का ठेकेदार था। उसने राजगीरी का काम किया था इसलिए ईंटा जोडने पर उसने अपने प्रयोग किए। उसकी पुस्तक Brick Laying System १९०९ में प्रकाशित हुई थी। उसने *गति के नियन्त्रण* (Restriction of motions) पर विशेष जोर दिया। उसका कहना था कि यदि पहले दिन ही श्रमिक से पूर्ण वैज्ञानिक विधि के अनुसार काम करने को कहा जाय तो वह हडबडाहट में बहुत अधिक हरकतें करेगा और जल्दी थक जावेगा। वह थोडी सी शिक्षा देकर स्वय कर्मचारियों से कहता था कि वे जल्दी-जल्दी काम करने का प्रयत्न करें तथा कम से कम हरकत करें। इस प्रकार धीरे-धीरे वे स्वय ही काम सीख लेंगे। उसके विचार में उत्पादन की सर्वश्रेष्ठ विधि कोई स्थिर तथा निर्धारित विधि नहीं है वह एक गतिशील प्रणाली है तथा उसमें बराबर परिवर्तन हो सकता है।

---

* L P Alford · *Henry L Gantt*

समय तथा गति का अध्ययन करने के लिए गिलब्रेथ ने टेलर से कहीं अधिक पूर्ण वैज्ञानिक प्रणाली का उपयोग किया। उसने कारीगर के सामने एक बडी घडी लगा दी जिसमें मिनट की सुई बहुत ही धीरे-धीरे और साफ घूमती थी। इसके बाद मूवी केमरे (Movie Camera) से हर गति का फोटो लिया जाता था। फोटो मे हर एक गति तथा उसमे लगने वाला समय अपने आप रिकार्ड हो जाता था। इसे माइक्रो मोशन विधि (Micro Motion System) कहते है इसके अलावा उसने एक सुधार और भी किया। उसने कर्मचारी की उँगलियो मे छोटे-छोटे बल्ब लगा दिए जो बारी-बारी से जलते बुझते थे Sterio Scopic केमरे से फोटो लेने पर प्लेट पर फोटो तीन डायमेन्शन मे आ जाती थी। बत्तियाँ चूंकि निश्चित समय मे जलती बुझती थी इसलिए समय का पता भी आसानी से लग जाता था।

एमर्सन (H. Emerson)—यह भी टेलर का समकालीन था। उसने कार्य क्षमता के बारह महत्वपूर्ण सिद्धान्त निकाले जो बहुत कुछ टेलर की पद्धति से मिलते-जुलते थे। परन्तु टलर के क्रियात्मक सगठन (Functional Organisation) की जगह उसने लम्बवत् तथा कर्मचारी सगठन (Line and Staff Organisation) पर जोर दिया।

उपर्युक्त विद्वानो के अलावा मारिस कुक (Morris L. Cooke) हेनरी फेयल (Henry Fayol) इत्यादि ने भी प्रबन्ध के वैज्ञानिक सिद्धान्तो का प्रचार करने मे काफी योग दिया।

वैज्ञानिक प्रबन्ध से लाभ

श्रमिकों को लाभ

(१) उनके वेतन मे ३० प्रतिशत से लेकर १०० प्रतिशत तक वृद्धि हो जाती है। जिस कारखाने मे वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया गया उसके श्रमिकों के वेतन में हमेशा ही वृद्धि हुई है।

(२) काम का समय कम हो जाता है क्योंकि वैज्ञानिक विधियों से काम करने मे श्रमिक कम से कम समय मे अधिक से अधिक काम कर सकता है। Symonds Rolling Machine Co. अमेरिका मे वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू करने का निम्नलिखित फल निकला।

(अ) जिस काम को पहले १२० लडकियाँ करती थी उसके लिए अब केवल ३५ लडकियो की आवश्यकता रह गई।

(ब) पहले जहाँ हर लडकी को औसतन ३॥ से ४॥ डालर प्रति सप्ताह तक मिलते थे वहाँ अब उनका वेतन ६॥ डालर से ९ डालर तक हो गया।

(स) पहले जहाँ उन्हे १९॥ घन्टे प्रति दिन काम करना पडता था वहाँ अब काम के घन्टे घट कर ८॥ प्रतिदिन रह गए। तथा शनिवार को आधे दिन की छुट्टी भी मिलने लगी।

(द) पहले की अपेक्षा काम की शुद्धता और किस्म मे एक तिहाई वृद्धि हुई।

(३) हर श्रमिक को इस बात का गर्व होता है कि प्रबन्धकर्ता उसका विशेष ध्यान रखते है। उन्हे इस बात का विश्वास रहता है कि यदि उन्हे कोई कठिनाई होगी तो हमेशा उन्हे प्रबन्धकर्ताओ की ओर से सहायता प्राप्त हो सकेगी।

(४) कर्मचारियो के जीवन स्तर मे उन्नति होती है। शराब खोरी, जुआ इत्यादि बुरी आदतें दूर होती है। अपने प्रति स्वाभिमान की भावना जागृत होती है। बीथलहेम स्टील कम्पनी मे जिसमे कि टेलर ने स्वय वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया था, मजदूरो की जाँच करने पर पता लगा कि १४० मजदूरो मे सिर्फ २ को शराब पीने की आदत थी।

कम्पनी को लाभ

जो कम्पनी वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू करती है उसको निम्नलिखित लाभ प्राप्त होते हैं।

(१) वस्तु की किस्म मे सुधार होता है। उचित निरीक्षण के कारण जो भी वस्तु तैयार होती है वह अच्छे किस्म की होती है।

(२) वस्तु की लागत कम हो जाती है। यद्यपि योजना विभाग का खर्चा बढ जाता है, मजदूरी भी अधिक देनी पडती है फिर भी प्रति

व्यक्ति उत्पादन इतना अधिक बढ़ जाता है कि प्रति इकाई लागत कहीं कम पड़ती है।

बीथलहेम स्टील कम्पनी के जिसमें टेलर ने स्वयं वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया था, निम्नलिखित आंकड़े इस बात के स्पष्ट प्रमाण हैं।

	पुरानी प्रणाली में	नवीन प्रणाली में
मजदूरों की संख्या	४००–६००	१४०
प्रति मजदूर लोहा लादने की तादाद	१६ टन	५९ टन
प्रति व्यक्ति प्रति दिन की आय	१.१५ डालर	१.८८ डालर
प्रति टन (२२४० पौंड) लोहा उठाने की लागत	०.०७२ डालर	०.०३३ डालर

(३) श्रम पूंजी के झगड़ों का अन्त :—वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू होने से श्रम और पूंजी के झगडों का अन्त हो जाता है।* बीथलहेम कम्पनी में नई योजना लागू होने के पश्चात एक भी हड़ताल की नौबत नहीं आई। टेलर ने स्वयं लिखा है—"दोनों (प्रबन्धकर्ता और श्रमिकों) के झगडे तथा अनबन के समस्त कारण समाप्त हो जावेंगे। कितना काम दिन भर में होना चाहिये, यह अब कोई मोल-तोल का प्रश्न न होकर वैज्ञानिक रीतियों द्वारा निर्धारित किया जावेगा। काम में ढिलाई (Soldiering) बिल्कुल बन्द हो जावेगी क्योंकि उसका कोई कारण ही नहीं रह जावेगा। वेतन में इतनी वृद्धि होगी कि वेतन वृद्धि को लेकर झगड़े की कोई सम्भावना न रहेगी। सबसे बड़ी बात यह होगी कि दोनों पक्षों के बीच में निकटतम सहयोग तथा लगातार व्यक्तिगत सम्पर्क रहने से असन्तोष तथा झगड़े बहुत कम हो जावेंगे। क्योंकि यह सम्भव नहीं है कि कोई दो लोग जिनके हित समान हैं और जो एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए साथ-साथ काम करते हैं दिन भर लड़ते रहें।"

---

* Taylor : *Scientific Management.*

देश को आर्थिक लाभ

श्रमिको तथा कारखानो के व्यक्तिगत लाभ के अलावा देश को भी आर्थिक लाभ होगा। उस देश का व्यापार और व्यवसाय बढेगा। श्रम पूजी के झगडे समाप्त हो जाने मे देश का उत्पादन बढेगा। जिससे आर्थिक समृद्धि उत्पन्न होगी, समाज मे शान्ति और सुव्यवस्था उत्पन्न होगी। उपभोक्ताओ को सस्ता माल मिलेगा, जिससे उनका रहन-सहन का स्तर ऊँचा होगा। कुछ कारखानो की सफलता से प्रभावित होकर धीरे धीरे अन्य कारखाने वाले भी इसे लागू करेंगे। फिर वह उत्पादन तथा राष्ट्रीय सगठन के अन्य क्षेत्रो मे भी लागू होगा। इस प्रकार समाज और राष्ट्र का सगठन मनमाने ढग पर न होकर वैज्ञानिक ढग पर होगा। टामसन लिखता है—"वैज्ञानिक प्रबन्ध ने घाट पर चलने वाले कारखानो को लाभ दिलाया, जो लाभ पर चल रहे थे उनका लाभ बढाया तथा इस बात के पर्याप्त प्रमाण हैं कि उसका समाज पर बहुत गहरा प्रभाव पडा।"*

वैज्ञानिक प्रबन्ध के दोप

ऊपर के लाभो के होते हुए भी प्रबन्धकर्ताओ तथा श्रमिको, दोनो ही पक्षो द्वारा टलरवाद की तीव्र आलोचना हुई। आलोचना के मुख्य मुख्य आधार निम्नलिखित हैं।

श्रमिको द्वारा आलोचना

श्रमिको ने निम्नलिखित कारणो से वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना की है।

(१) श्रमिको को बहुत अधिक काम करना पडेगा जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जावेगा।

(२) प्रति व्यक्ति उत्पादन बढने से मजदूरो की माँग कम हो जावेगी जिससे बेरोजगारी बढेगी। जिन कारखानो मे नई योजना लागू की गई उनमे मजदूरो की सख्या कही कम हो गई।

(३) श्रमिको के परिश्रम के कारण उत्पादन मे जो वृद्धि होगी उसका

---

* Thompson : *Theory and Practice of Scientific Management.*

पूरा भाग श्रमिको को मिलना चाहिए परन्तु वास्तव मे उसका बहुत थोड़ा अश उन्हे मिलेगा।

(४) पुराने कारखानो मे इस योजना के लागू होने से बहुत से कर्मचारियों को अयोग्य कहकर निकाल दिया जावेगा जो बडी ही दुखद बात होगी।

(५) इससे प्रबन्धकर्ताओ को मनमानी करने का अवसर मिल जावेगा, पक्षपात होने लगेगा, वे मनमाना वेतन लगावेंगे, पदोन्नति के मामले मे मनमानी करेंगे। जुर्माना करने तथा अयोग्य कहकर निकाल देने की शक्ति प्रबन्धको के हाथ मे दे देना श्रमिको के प्रति बडा ही अन्याय होगा।

(६) बात-बात मे विभिन्न नायको का हस्तक्षेप भी कभी-कभी बडी अप्रसन्नता का कारण बन जाता है। हर एक श्रमिक स्वाभाविक रूप से ही स्वतन्त्रतापूर्वक काम करना चाहता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध मे इसके लिए कोई स्थान नही है। उसमें हर काम, हर क्रिया नियन्त्रित रहती है। ऐसे काम करो, ऐसे खडे हो, अब आराम करो, अब काम करो इत्यादि आदेश सुनने-सुनते श्रमिक ऊब जाता है। टेलर ने स्वय ही स्वीकार किया है कि इस प्रकार के प्रबन्ध मे श्रमिक आरम्भ मे उसी प्रकार भडकते है जिस प्रकार लाल कपडा देखकर बैल।

प्रबन्धकर्ताओ का विरोध

प्रबन्धकर्ताओ ने निम्नलिखित आधार पर वैज्ञानिक प्रबन्ध की आलोचना की है।

(१) इसमे आरम्भिक खर्चा बहुत अधिक पडता है। योजना इत्यादि तैयार करने मे काफी व्यय करना पडता है। सबसे बडी बात तो यह है कि काफी खर्च करने के बाद भी वैज्ञानिक प्रबन्ध का लाभ तुरन्त नहीं प्राप्त होता। लागत मे कमी काफी समय तक योजना लागू रखने के बाद ही सम्भव होती है।

(२) प्रबन्धकों की स्वतन्त्रता बहुत कुछ छिन जाती है। वे विशेषज्ञो के हाथ मे कठपुतली हो जाते है और वे जिधर घुमाते है उधर

घूमना पड़ता है इसलिए बहुत से प्रबन्धकर्ता इसे लागू करने में हिचकते हैं।

(३) कारखाना एक प्रयोगशाला बन जाता है। कुछ समय के लिए सारी व्यवस्था चौपट हो जाती है। लगातार परिवर्तन होते रहते हैं। इससे स्थिरता समाप्त हो जाती है।

(४) टामसन महोदय (Bertrard Thompson) ने २१२ ऐसी संस्थाओं की जिनमें वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया गया था चार साल तक जाँच की। उनकी राय में अधिकांश प्रबन्धकर्ताओं ने वैज्ञानिक प्रबन्ध का विरोध किया। उनके मतानुसार वैज्ञानिक प्रबन्ध में इतने विभिन्न तथा जटिल आदेश दिये जाते हैं कि अशुद्धता, सामान की बरबादी, अनावश्यक क्रियाओं तथा मशीन में देरी होने का खतरा और बढ़ जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रबन्ध में उतनी ही और कभी-कभी तो उससे भी अधिक लागत लगती है जितनी लम्बे पैमाने पर उत्पत्ति करने में लगती है।*

अन्य आलोचनाएँ

श्रमिकों तथा प्रबन्धकर्ताओं के निजी विरोध के अलावा कुछ विद्वानों ने अन्य आधार पर भी आलोचना की है।

(१) इस प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि यह श्रमिकों की निजी योग्यता तथा गुणों पर कोई विश्वास नहीं करती। प्रो० हैमन्ड का कहना है—"कि कौन सा काम किस तरह अधिक सुविधापूर्वक हो सकता है, इसकी जानकारी काम करने वाले को किसी अन्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक हो सकती है। परन्तु वैज्ञानिक प्रबन्ध इसी मान्यता का लेकर चलता है कि श्रमिक काम करने की ठीक विधि स्वयं नहीं निकाल सकते।"†

---

* Thompson : *Theory and Practice of Scientific Management.*

† Hammond & Hammond *Rise of Modern Industry.*

आलोचना की सत्यता

उपर की अनेक आलोचनाओ मे कुछ मे तो सत्यता अवश्य है अन्य आलोचनाएँ भ्रमपूर्ण है। टेलर ने स्वय ही इसका जवाब दिया है।

(१) श्रमिको पर काम का बोझ बढ जाने की धारणा बडी भ्रमपूर्ण है। अधिक काम होने का तात्पर्य यह नही है कि उसी मात्रा मे अधिक परिश्रम भी करना पड़ेगा। टेलर के मतानुसार यदि काम करने की विधियो तथा औजारो मे सुधार कर लिया जाय तो उतने ही परिश्रम मे अधिक काम हो सकेगा। एक श्रमिक से कितने काम की आशा करनी चाहिए इस सम्बन्ध मे टेलर का यह कथन ध्यान देने योग्य है। "प्रथम श्रेणी के कर्मचारी से क्या आशा की जा सकती है इस सम्बन्ध मे यह बात साफ–साफ समझ लेनी चाहिए कि लेखक का तात्पर्य इतने अधिक काम मे नही है जिसे करने मे कर्मचारी को अपनी शक्ति पर बहुत अधिक जोर देना पडे। इससे तात्पर्य सिर्फ उतने काम से है जिसे एक अच्छा आदमी बिना अपने स्वास्थ्य को खराब किए लम्बे समय तक चालू रख सके।"

(२) प्रति व्यक्ति उत्पादन बढ जाने से बहुत से श्रमिक बेरोजगार हो जाते है यह धारणा श्रमिको से काफी सीमा तक बद्धमूल है। टेलर के मतानुसार काम मे ढिलाई Soldiering) का यह एक प्रमुख कारण है। इस सम्बन्ध मे उसका तर्क इस प्रकार है—'जिन्हे इस बात का डर है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन मे वृद्धि हो जाने से दूसरे कर्मचारी बेरोजगार हो जायेंगे उन्हे इस बात को समझ लेना चाहिए कि सभ्य तथा असभ्य, धनी तथा निधन देशो का एक सबसे बडा अन्तर यही होता है कि पहले प्रकार के देशो मे औसत कर्मचारी दूसरे श्रेणी के देशो की अपेक्षा पाँच या छ गुना अधिक उत्पादन करता है।"

(३) बढे हुए उत्पादन मे श्रमिक का अश क्या होना चाहिए इस सम्बन्ध मे टेलर का निम्नलिखित मत है। उत्पादन मे वृद्धि केवल श्रमिको के अधिक परिश्रम के कारण ही नही होती वह बहुत कुछ उत्तम प्रबन्ध के कारण होती है, अतएव सारा का सारा लाभ श्रमिकों को देना न्यायपूर्ण न होगा।

(४) प्रबन्धको के मनमानी करने का तर्क यथार्थ है, परन्तु टेलर ने आरम्भ मे ही कह दिया है कि अच्छी से अच्छी प्रणाली भी खराब प्रबन्धकर्ताओ के हाथ मे पडकर बेकार हो जाती है। सफलता के लिए उत्तम प्रणाली तथा उत्तम व्यक्ति दोना समान रूप से आवश्यक है।

उपयुक्त श्रमिको का चुनाव करते समय बहुत से लोगो को निकाला जा सकता है। परन्तु इस सम्बन्ध मे भी टेलर ने स्पष्ट लिखा है कि उसका प्रथम श्रेणी का कर्मचारी कोई साधारण व्यक्ति न होकर साधारण कारीगरो मे ही ऐसा व्यक्ति होगा जो उस काम के उपयुक्त हो। इस प्रकार श्रमिको के चुनाव मे सिर्फ इस बात का ध्यान रखना होता है कि जो व्यक्ति जिस योग्य है उसको उसी प्रकार का काम दिया जाय।

टामसन ने काफी खोज के बाद लिखा है—कुछ क्षेत्रो मे जो व्यक्तिगत श्रमिको मे पडने वाले बुरे प्रभाव के बारे मे आशका प्रकट की जा रही थी, वह वास्तविक होने के बजाय काल्पनिक ही अधिक निकली। व्यवहारिक रूप मे कर्मचारियो को आवश्यकता से अधिक परिश्रम करने के लिए कभी नही कहा गया। इस बात का डर भी मिथ्या साबित हुआ कि टेलर के प्रथम श्रेणी के मजदूर का गलत-सलत मतलब निकाल कर बहुत बडी सख्या मे श्रमिको को निकाल दिया जावेगा। काम की विधियो के प्रमापीकरण से कर्मचारियो की अन्वेषण शक्ति तथा परख पर कोई बुरा प्रभाव नही पडा और विशेषज्ञो ने बतलाया कि बहुत से सुधारो की खोज कर्मचारियो द्वारा ही की गई।*

इस प्रकार हम देखते है कि औद्योगिक प्रबन्ध की प्रणाली के रूप मे वैज्ञानिक प्रबन्ध अत्यन्त सफल प्रणाली है परन्तु उसे सफलतापूर्वक लागू करने के लिए उत्तम प्रबन्धको का होना भी आवश्यक है। होक्सी (Hoxie) का यह कथन सर्वथा सत्य है—"टेलर का सिद्धान्त काफी सीमा तक काम लेने मे अज्ञान के स्थान पर ज्ञान का प्रचार करता है तथा मालिक और नौकर दोनो को अनुचित माँग करने से रोक सकता है परन्तु स्वार्थी लोगो द्वारा इसका दुरुपयोग भी किया जा सकता है।"†

---

* Thompson *Theory and Practice of Scientific Management*

† Hoaxi : *Scientific Management and Labour*

प्रश्न

1. What is meant by Scientific Management ? Explain its principal features (*B Com. Agra, 1955*)

2 What do you understand by Scientific Management ? Is it different from Rationalisation Explain clearly ?

(B Com Agra, 1947)

3 "Scientific Management involves in its essence a complete mental revolution on the part of management and an equally complete revolution on the part of those on the management side ' Examine this statement critically.

(B. Com Allahabad, 1948)

4 What do you understand by Scientific Management ? Explain clearly the salient features underlying it

(B Com Allahabad, 1946)

5 "The climax of good management has not been reached until there is, throughout the whole form the spirit of sport '. Comment on this (B Com Allahabad, 1939)

6 "The principal object of management should be to secure the maximum prosperity for the employers coupled with maximum prosperity for each employee" Discuss the Statement. (B Com Allahabad, 1938)

7 What were the causes that lead to Scientific approach to management problems ? What has been its effect ?

अध्याय ३

विवेकीकरण*

(Rationalisation)

औद्योगिक प्रबन्ध मे विवेकीकरण का जन्म पहली बार जर्मनी मे हुआ। प्रथम महायुद्ध के बाद जर्मनी के सारे उद्योग धन्धे चौपट हो गए थे। श्रमिको की बेहद कमी होगई थी। पूंजी तथा अन्य साधनो की बडी न्यूनता थी और इस पर मित्र राष्ट्रो ने बहुत लम्बे युद्ध के कर्जे लाद दिए थे, जिनका भुगतान देश के लिए असम्भव हो रहा था। बढती हुई कीमतें लोगो की पहुँच के बाहर हो रही थी। ऐसी दशा मे जर्मन उद्योगपतियो ने औद्योगिक सगठन के क्षेत्र मे क्रान्तिकारी परिवर्तन किए। उन्होने इस परिवर्तन का नाम Rationalisie-ring दिया जिसका अर्थ जर्मन भाषा मे "नूतन औद्योगिक क्रान्ति" होता है। इस परिवर्तन के अनुसार देश के उत्पादक साधनो का अच्छे से अच्छा उपयोग किया गया तथा श्रम, पूंजी की हर सम्भव बरबादी को रोका गया। इसका फल यह हुआ कि जर्मन उद्योग उन्नति करने लगे। इस प्रयोग की सफलता से आकर्षित होकर अन्य देशो ने भी इसका अनुकरण किया।

सन् १९२९ मे उस महान आर्थिक सकट का आरम्भ हुआ जिसने दस वर्ष तक समस्त ससार को गरीबी, बेरोजगारी तथा मन्दी की चक्की मे पीस डाला। मदी की मार के कारण उद्योग धन्धो ने विवेकीकरण की शरण ली। उद्योगो का पुर्नसठन किया गया। हर तरह की बरबादी को रोका गया। आई हुई विपत्ति का सामना करने के लिए श्रमिक तथा पूँजीपति एक हो गए। इस प्रकार औद्योगिक प्रबन्ध के क्षेत्र मे विवेकीकरण का स्थान बहुत ही महत्वपूर्ण बन गया है, तथा उसका निजी सिद्धान्त और प्रणाली बन गई है।

---

* कुछ लेखको ने इसके लिए 'अभिनवीकरण', 'वैज्ञानीकरण' इत्यादि शब्दो का प्रयोग भी किया है।

परिभाषा

विवेकीकरण 'विवेक' शब्द से बना है जिसका अर्थ है किसी काम को बुद्धि द्वारा सोच समझ कर करना। परन्तु वर्तमान समय में औद्योगिक सगठन के क्षेत्र मे उसका उपयोग एक विशेष अर्थ मे किया जाने लगा है। उसकी विभिन्न परिभाषाएँ इस प्रकार दी गई है —

१—जर्मनी की राष्ट्रीय बचत तथा कार्यक्षमता परिषद (National Board for Economy and Efficiency)—विवेकीकरण तान्त्रिक साधनों तथा व्यवस्थित योजनाओं के उपयोग को कहते है जो समस्त उद्योग को उन्नत बनाने, उत्पादन बढाने, लागत कम करने तथा किस्म मे सुधार करने मे सहायक हो।*

२—विश्व आर्थिक सम्मेलन, जिनेवा १९२७—विवेकीकरण मे श्रम के वैज्ञानिक सगठन, कच्चे माल तथा उत्पादित वस्तुओं के प्रमापीकरण-क्रियाओं के सरलीकरण तथा यातायात और बिक्री के साधनों मे उन्नति को सम्मिलित किया जा सकता है।†

इस प्रकार पहली परिभाषा मे विवेकीकरण के उद्देश्यो का वर्णन है जब कि दूसरी मे उन्हे प्राप्त करने के साधनो का।

३—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन १९३७—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की बैठक मे विवेकीकरण के विषय मे पर्याप्त विचार विनिमय हुआ तथा उसकी विशेषज्ञ समिति ने विवेकीकरण की चार प्रमाणित परिभाषाएँ दी जो निम्नलिखित है।‡

(अ) साधारण अर्थ में—विवेकीकरण किसी ऐसे सुधार को कहते हैं जिसके द्वारा पुरानी परम्परागत प्रणालियों के स्थान पर नियमित तथा विवेकपूर्ण विधियों का उपयोग किया जाना है।

---

* 1 "Rationalisation is the employment of all means of technique and ordered plans which serve to elevate the whole industry and to increase production lower its costs and improve its quality". —*National Board for Economy and Efficiency*

† 2. Rationalisation includes the scientific organisation of labour, standardisation of both material and products, simplification of processes and improvement in the system of transport and marketing —*World Economic Conference, Geneva.*

‡ 3. *(a) Rationalisation in general is any reform tending to* replace habitual, antiquated practices by means or methods based on systemic reasoning.

(ब) अत्यत सकुचित अर्थ मे—विवेकीकरण से तात्पर्य किसी सस्था शासन अथवा किसी सरकारी अथवा गैर सरकारी सेवा मे किए जाने वाले ऐसे सुधारो से है जिसके द्वारा पुरानी परम्परागत प्रणालियो के स्थान पर नियमित और विवेकपूर्ण विधियो का उपयोग किया जाता है।

(स) विस्तृत अर्थ मे—विवेकीकरण ऐसे सुधार को कहते है जिससे व्यापार सस्थाओ के किसी समूह को इकाई मान लिया जाता है तथा व्यवस्थित, विवेकपूर्ण एव सगठित प्रयास द्वारा अनियत्रित प्रतिस्पर्द्धा से होने वाली बरबादी तथा हानियो को रोका जाता है।

(द) अति विस्तृत रूप मे—विवेकीकरण से तात्पर्य ऐसे सुधार से है जिसमे विशाल आर्थिक तथा सामाजिक समूहो की सामूहिक क्रियाओ मे नियमित तथा विवेकपूर्ण विधियो का प्रयोग किया जाता है।

इस प्रकार सकुचित अर्थ मे विवेकीकरण को एक विशेष कारखाने पर, विस्तृत अर्थ मे एक विशेष उद्योग पर तथा अत्यन्त विस्तृत अर्थ मे समस्त समाज पर लागू किया गया है।

(b) Rationalisation in the narrowest sense is any reform of an undertaking administration or other service, public or private tending to replace habitual antiquated practices by means or methods based on systematic reasoning

(c) Rationalisation in the wider sense is any reform *which takes a group of business undertakings as a* unit and tends to reduce waste and loss due to unbridled competition by concerted action based on systematic reasoning

(d) Rationalisation in the widest sense is a reform tending to use means and methods based on systematic reasoning to the collective activities of the large economic and social groups

—*International Labour Organisation.*

विवेकीकरण के उद्देश्य

ऊपर की परिभाषाओं के अनुसार विवेकीकरण की निम्नलिखित विशेषताएँ तथा उद्देश्य भी होते है।

(१) **हर प्रकार के अपव्यय को रोकना**—उद्योगों के सचालन मे यदि वैज्ञानिक तथा विवेकपूर्ण विधियो के स्थान पर पुरानी परम्परागत विधियों का उपयोग किया जाय तो उनसे बहुत सा अपव्यय होता है। यह बरबादी श्रम, पूँजी, सभी की हो सकती है। उद्योगों में होने वाली बरबादी को हम निम्नलिखित भागो मे बाट सकते है।

(क) **दोषपूर्ण सगठन से होने वाली बरबादी**—यदि सगठन दोषपूर्ण है तो प्रबन्धको तथा श्रमिको को बहुत सा परिश्रम व्यर्थ ही करना पडता है। पूँजी भी आवश्यकता से अधिक लगती है। इस प्रकार उत्पादन की हुई वस्तुओं की प्रति इकाई लागत बढ जाती है।

(ख) **प्रतिस्पर्द्धा से होने वाला अपव्यय**—पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा बहुत अधिक बढ जाने पर भी श्रम, पूजी तथा प्रयास की बहुत बरबादी होती है। प्रचार तथा विज्ञापनबाजी मे व्यर्थ ही बहुत सा रुपया खर्च करना पड़ता है, बहुत सी तरह का माल बनाना पडता है जो लाभप्रद नही होता, बहुत से कारखाने घाटे पर चलते-चलते बन्द हो जाते है जिससे उस पर लगी हुई पूँजी बेकार हो जाती है।

(ग) **दोषपूर्ण उत्पादन विधियों के कारण होने वाला अपव्यय**—कभी-कभी उत्पादन की विधिया बडी ही दोषपूर्ण होती है। पुरानी तथा अप्रचलित मशीनो पर काम करने से काम भी कम होगा और परिश्रम भी अधिक पडेगा।

(घ) **उत्पादन के विभिन्न साधनों में समन्वय की कमी से होने वाली बरबादी**—उत्पादन के काम मे जो भिन्न-भिन्न साधन सहायता करते है उनका एक निश्चित मात्रा म होना आवश्यक होता है। उससे न्यूनाधिक मात्रा मे होने पर अन्य साधनो

का अपव्यय होता है। उदाहरण के लिए पूँजी यदि आवश्यकता से अधिक है तो उसका बहुत सा भाग बेकार ही पडा रहेगा। उसी प्रकार काफी मजदूर लगा लिये जायें परन्तु उनके लिए काफी पूंजी–औजार तथा कच्चा माल न हो तो भी श्रम का बहुत बडा अपव्यय होगा।

(२) **प्राप्त साधनो का अच्छे से अच्छा उपयोग**—यह कार्य भी अपव्यय को रोकने के ही समान है। प्रत्येक देश तथा प्रत्येक उद्योग के कुछ अपने सीमित साधन होते हैं। उनका प्राय घटाया बढाया नही जा सकता, विवेकीकरण द्वारा इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि उन्ही साधनो का उपयोग किस प्रकार किया जाय कि उत्पादन अधिक से अधिक हो।

(३) **देश के उद्योग–धन्धो मे स्थिरता लाना**—जिस समय किसी देश के उद्योग–धन्धे बहुत अवनत दशा म होते हैं, लगातार घाटा लगने से आर्थिक दशा अस्थिर हो जाती है तो विवेकीकरण द्वारा उद्योगो को लाभप्रद स्थिति पर लाया जाता है। विवेकीकरण का आरम्भ ही उद्योगो की गिरती हुई हालत को सँभालने के लिए किया गया। अब भी जब व्यापार और व्यवसाय मे मदी आती है तो विवेकीकरण की अधिक धूमधाम रहती है।

(४) **जनसाधारण का जीवन स्तर ऊँचा रखना**—विवेकीकरण का एक उद्देश्य लागत को कम करके मूल्यो का स्तर गिराना होता है। सस्ती चीजें बिकने पर लोगो का जीवन अधिक सुखी तथा समृद्ध होगा, उनका जीवन स्तर ऊँचा होगा।

विवेकीकरण के अग

जैसा पहले बतलाया जा चुका है, विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य होना है हर प्रकार के अपव्यय को रोक कर उपस्थित साधनो का अच्छे से अच्छा उपयोग करना। इस प्रकार विवेकीकरण म वे समस्त क्रियाएँ सम्मिलित हैं जो उत्पादन बढाने, लागत कम करने तथा हर प्रकार के अपव्यय को रोकने मे सहायक होती हैं। विवेकीकरण के अगो को ३ मुख्य भागो म बाँटा जा सकता है —

(१) पुनर्संगठन (Re-organisation)
(२) अभिनवीकरण (Modernisation)
(३) वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)

(१) पुर्नसंगठन (Reorganisation)

उद्योग की कार्यक्षमता को बढाने के लिए उसका वैज्ञानिक आधार पर पुनर्संगठन आवश्यक हो जाता है। इस पुनर्संगठन के द्वारा हर प्रकार से होने वाला अपव्यय रोका जा सकता है। पुर्नसगठन निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है।

(अ) संयुक्तीकरण (Combination)—संयुक्तीकरण द्वारा अनेक छोटी–छोटी इकाइयो को एक मे मिला दिया जाता है जिससे लम्बे पैमाने पर उत्पादन के लाभ प्राप्त हो सके। साधारणतया अनेक छोटी–बडी औद्योगिक संस्थाएँ काम करती है। हर एक की उत्पादन विधि, उपकरण तथा लागत अलग–अलग होती है। मदी तथा माँग की कमी होने पर प्रतिस्पर्द्धा बढ जाती है। अनार्थिक इकाइयाँ घाटे पर चलने लगती है। सयुक्तीकरण द्वारा अनेक छोटी–छोटी इकाइयो को बडे समूहो मे फिर से सगठित किया जाता है। धीरे-धीरे समस्त उद्योग का एक सगठन बन जाता है। सयुक्तीकरण कई प्रकार से हो सकता है। परन्तु इस विषय पर विस्तारपूर्वक अगले अध्याय मे लिखा गया है। यहा पर हम सिर्फ उससे मिलने वाले लाभों पर ही विचार करेंगे।

सयुक्तीकरण द्वारा अनावश्यक उत्पादन को रोका जा सकता है। इस प्रकार पूर्ति को माँग के अनुसार सतुलित किया जा सकता है। प्रतिस्पर्द्धा कम हो जाती है तथा विज्ञापनबाजी और प्रचार पर किया जाने वाला खर्चा रोका जा सकता है। बडी–बडी इकाइयों के कारण लम्बे पैमाने पर उत्पादन के लाभ प्राप्त हो सकते है। अनुसधान तथा अन्वेषण का प्रबन्ध भी किया जा सकता है। उद्योग का सगठन मनमाना न होकर एक निश्चित तथा निर्धारित नीति के आधार पर होता है, क्योंकि थोडी सी बडी–बडी इकाइयों को एक निश्चित नीति के अनुसार चलाना कही अधिक सरल होता है। प्राय. ही औद्योगिक संकट आने पर सयुक्तीकरण द्वारा उनमे स्थिरता लाई गई है। विश्व के सभी देशो मे मन्दी के समय हर प्रकार के औद्योगिक सयुक्तीकरण पर्याप्त सख्या मे होने लगते हैं।

(आ) विशिष्टीकरण (Specialisation)—इसका सम्बन्ध बहुत कुछ सयुक्तीकरण से है। इसके द्वारा औद्योगिक इकाइयों मे इस प्रकार का समझौता हो जाता है कि हर औद्योगिक इकाई हर किस्म का माल न तैयार

करे। इसके बजाय एक इकाई, एक ही किस्म अथवा केवल कुछ किस्मों का माल तैयार करे। इसका निर्णय कारखाने को प्राप्त विशेष सुविधाओं के आधार पर किया जाता है। कभी-कभी इसका विभाजन भौगोलिक आधार पर भी किया जाता है।

विशिष्टीकरण से औद्योगिक सस्था का समस्त ध्यान एक विशेष किस्म की ओर ही केन्द्रित हो जाता है, इससे वह उस वस्तु के उत्पादन मे दक्षता प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार वस्तु की किस्म मे सुधार होता है, उसकी लागत कम होती है तथा बहुत सी अनावश्यक बरबादी समाप्त हो जाती हैं। एक सस्था के समस्त साधन एक विशेष वस्तु के उत्पादन मे ही लग जाते हैं।

(इ) प्रमापीकरण (Standardisation)–प्रमापीकरण विभिन्नता द्वारा होने वाली हानि को रोकता है। उदाहरण के लिए यदि किसी कपडे की मिल को हर तरह की छींट का एक-एक थान बनाना पडे तो निश्चय ही उसकी लागत अधिक होगी। इसके बजाय यदि वह एक ही प्रकार का माल बराबर बनाता रहे तो लागत कम पडेगी। प्रमापीकरण कई प्रकार का होता है जैसे किस्म का प्रमापीकरण, औजारो का प्रमापीकरण, उत्पादन विधि का प्रमापीकरण इत्यादि। किस्म के प्रमापीकरण के द्वारा अनेक किस्मों के स्थान पर कुछ थोडी सी स्टैन्डर्ड किस्मे रक्खी जाती हैं। उदाहरण के लिए टाइप राइटर का स्टैन्डर्ड की-बोर्ड, रेलवे का स्टैन्डर्ड गेज इत्यादि। युद्ध काल मे भारतवर्ष मे उपयोगिता-वस्त्र (Utility Cloth) के द्वारा कपडे की किस्म का प्रमापीकरण किया गया था।

किस्म के प्रमापीकरण के अलावा उत्पादन विधियो, औजारो, कारखानो तथा मशीनो का भी प्रमापीकरण किया जा सकता है। प्रमापीकरण के द्वारा प्रत्येक काम मे स्थिरता आ जाती है। एक के बाद एक प्रयोग (Experiment) नही करना पडता। तरह-तरह के माल के उत्पादन मे कोई किस्म अच्छी निकलती है तो कोई बिल्कुल खराब जिससे उसकी बिक्री नही होती। इसके अलावा बार-बार परिवर्तन होते रहने से बहुत सा खर्चा होता है। विशेषकर इजीनियरिंग तथा मशीनरी के उद्योग मे तो इसकी बडी आवश्यकता है। स्टैन्डर्ड माल बनने तथा स्टैन्डर्ड विधियों का उपयोग करने के विभिन्न सस्थाओ की लागत मे बहुत अन्तर नही रहता और ग्राहक भी तरह-तरह के माल मे चुनाव करने की परेशानी मे बच जाता है।

(२) अभिनवीकरण (Modernisation)—

इस कार्य के द्वारा पुरानी तथा अयोग्य मशीनो के स्थान पर नई मशीनों का उपयोग किया जाता है। यह क्रिया इस सिद्धान्त पर आधारित है कि मानवीय श्रम के बजाय मशीनें अधिक कुशल होती है। मशीनो द्वारा किया हुआ उत्पादन अधिक श्रेष्ठ, सस्ता तथा टिकाऊ होता है। मशीनो मे बराबर अनुसधान होते रहते है। नई मशीने पुरानी मशीनो की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होती है। नई मशीनो मे बराबर इस बात का प्रयत्न किया जा रहा है कि उनके लिए कम से कम श्रम की आवश्यकता पडे, वे श्रमिक से अधिक स्वय—चालित हो। ऐसी मशीनें निश्चय ही उत्पादन मे काफी सुधार करती है।

अभिनवीकरण की उपादेयता पर विद्वानो मे काफी मतभेद है। पहले तो इसके लिए तुरन्त ही बहुत अधिक मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता होती है जिसे हर एक देश आसानी से प्राप्त नहीं कर सकता पुरानी मशीनें बेकार हो जाती हैं। नई मशीने स्वय चालित होने के कारण बहुत से मजदूर बेरोजगार हो जाते है। उदाहरणार्थ साधारण करघो मे एक मजदूर अधिक से अधिक दो या तीन करघो पर एक साथ काम कर सकता है परन्तु स्वय—चालित करघो (Automatic Looms) मे एक मजदूर ४० करघो या अधिक को एक साथ देख सकता है। इसलिए जब तक उत्पादन मे पर्याप्त वृद्धि न हो तथा अन्य उद्योगो मे निकाले हुए मजदूरो को खपाने का प्रबन्ध न हो बेरोजगारी बढने का डर रहता है। जर्मनी या रूस जैसे देश मे जहाँ श्रम की कमी है अभिनवीकरण अधिक उपयोगी हो सकता है परन्तु भारतवर्ष जैसे देश मे यह बेरोजगारी की भयकर समस्या उत्पन्न कर सकता है। परन्तु विदेशी उत्पादको की तुलना मे मूल्य घटाने के लिए आधुनिकतम मशीनों का उपयोग आवश्यक हो जाता है।

(३) वैज्ञानिक प्रबन्ध (Scientific Management)

विवेकीकरण का तीसरा महत्वपूर्ण अग है वैज्ञानिक प्रबन्ध। इसके द्वारा दोषपूर्ण सगठन से होने वाली बरबादी को रोका जाता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा उन्हीं उपकरणो का उपयोग करके प्रति व्यक्ति उत्पादन ३ से ४ गुना तक बढाया जा सकता है। वैज्ञानिक प्रबन्ध के विषय मे विस्तारपूर्वक पिछले अध्याय मे बतलाया जा चुका है। यहाँ पर यह बात समझ लेने की है कि यद्यपि

वैज्ञानिक प्रबन्ध का आरम्भ विवेकीकरण से पहले हुआ था फिर भी विवेकीकरण की आवश्यकता इसलिए पडी क्योकि वैज्ञानिक प्रबन्ध के द्वारा बहुत सी औद्योगिक समस्याओ का समाधान नही हुआ था।

विवेकीकरण के दोष-गुण

विवेकीकरण द्वारा होने वाले लाभो को चार भागो मे बाँटा जा सकता है। (१) उत्पादको को लाभ (२) श्रमिको को लाभ (३) उपभोक्ताओ को लाभ (४) देश को लाभ।

उत्पादकों को लाभ

(१) विवेकीकरण द्वारा उत्पादको का लाभ बढ जाता है। जो उद्योग घाटे पर चलते हो उनमे भी लाभ मिलने लगता है। इसका कारण यह है कि उनकी लागत कम हो जाती है। और यदि वे दाम न घटावें तो प्रति इकाई लाभ बढ जावेगा। यदि दाम कम कर दें तो माँग बढ जावेगी और इस प्रकार दोनो ही दशाओ मे उनको अधिक लाभ होगा।

(२) उद्योग मे स्थिरता आती है। विवेकीकरण मे प्रमापित विधियो तथा प्रमापित किस्मो का निर्माण किया जाता है। सयुक्तीकरण के द्वारा पूर्ति को माँग के हिसाब से सतुलित किया जा सकता है। इस प्रकार भावो मे बडी भारी उथल-पुथल नही होती। स्थिरता के कारण दीर्घकालीन योजनाएँ बनाई जा सकती है।

(३) प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग की भावना उत्पन्न होती है। कठिन प्रतिस्पर्द्धा के कारण होने वाली हानि से बचत होती है। व्यर्थ के विज्ञापन इत्यादि मे बहुत सा खर्चा बच जाता है।

श्रमिकों को लाभ

[१] **वेतन मे वृद्धि**—उत्तम प्रबन्ध के द्वारा मजदूरो की कार्यक्षमता बढ जाती है। कारखाने को अधिक लाभ होने लगता है, लागत भी कम हो जाती है इसलिए वह आसानी से वेतन बढा सकता है। प्राय सभी उद्योगो मे जहाँ विवेकीकरण लागू किया गया मजदूरी मे अवश्य वृद्धि हुई है।

[२] कार्यक्षमता में वृद्धि—उत्तम औजार, उत्तम प्रबन्ध तथा उचित शिक्षण के कारण मजदूरो की कार्य-क्षमता मे वृद्धि होती है। यह मजदूर की बहुत बड़ी पूंजी है क्योकि एक बार कार्य-क्षमता मे वृद्धि हो जाने पर वह कही भी जाय उसे पहले की अपेक्षा अधिक वेतन प्राप्त होगा।

[३] रोजगार की स्थिरता—जब उद्योग को प्राप्त होने वाले लाभ मे स्थिरता होगी तो श्रमिक के रोजगार मे भी स्थिरता आवेगी। विवेकीकरण लागू होने पर तो कुछ लोगो के बेकार हो जाने की सम्भावना रहती है परन्तु उसके लागू हो जाने के पश्चात जो लोग रह जाते हैं उन्हे वेतन भी अधिक मिलता है और वे आसानी से निकाले भी नही जाते।

उपभोक्ताओं को लाभ

[१] सस्ती दर का माल—विवेकीकरण से लागत मे जो कमी हो जाती है उसके कारण उत्पादक प्राय वस्तुओं की कीमत घटा देते है। इस प्रकार उपभोक्ताओ को सस्ती दर पर अच्छी किस्म का माल प्राप्त हो जाता है और वे अपनी आय का अधिक अच्छा उपयोग कर सकते है।

[२] चुनाव की झंझट से मुक्ति—माल के प्रमापित किस्म का होने के कारण चुनाव से छुट्टी मिल जाती है। इसके अलावा थोडी सी किस्मो की कीमते याद रखना आसान होता है। बहुत अधिक तरह की किस्मों के होने पर एक तो इस बात का निर्णय करना अत्यन्त कठिन होता है कि कौन किस्म अच्छी है कौन खराब। दूसरे उसके दामो को भी याद रखना कठिन होता है और ठगे जाने की सम्भावना रहती है।

[३] रहन-सहन के स्तर में उन्नति—सस्ती दर पर उत्तम किस्म की वस्तुएँ मिलने के कारण लोगों का जीवन-स्तर ऊँचा होता है क्योकि वे पहले की अपेक्षा अधिक वस्तुओ का उपयोग कर सकते है।

देश को लाभ

(१) देश की औद्योगिक उन्नति तथा आर्थिक विकास होता है। राष्ट्रीय आय बढ़ती है। आर्थिक सकट से छुटकारा मिलता है।

(२) देश के आर्थिक साधनों का सर्वोत्तम उपयोग होता है तथा हर प्रकार की बरबादी से रक्षा होती है।

(३) विदेशी प्रतिस्पर्द्धा से रक्षा होती है। देश मे औद्योगिक स्थिरता आती है तथा दीर्घकालीन योजनाओं का निर्माण किया जा सकता है।

विवेकीकरण के दोष

श्रमिको द्वारा विरोध

श्रमिको तथा श्रम सघो ने हमेशा ही विवेकीकरण का घोर विरोध किया है। कुछ ही समय पहले कानपुर मे विवेकीकरण के प्रश्न पर सबसे लम्बी हडताल हुई। श्रमिको का विरोध निम्नलिखित आधार पर किया जाता है।

[१] **बेरोजगारी मे वृद्धि**—विवेकीकरण का तात्कालिक प्रभाव यह होता है कि बहुत से मजदूर काम से निकाल दिए जाते हैं। इससे श्रमिको मे बेरोजगारी, भुखमरी, गरीबी बढती है।

[२] **काम का बोझ बढना**—विवेकीकरण के फलस्वरूप निश्चय ही मजदूरो पर काम का बोझ बढ जाता है, विशेषकर यदि मशीने पुरानी हो तथा कारखाने का वातावरण स्वास्थ्यप्रद न हो तो काम का बोझ बढने से मजदूरो का स्वास्थ्य बिगडने का डर रहता है।

[३] **पूजी का श्रम पर आधिपत्य**—विवेकीकरण मे नई-नई स्वय चालित मशीनो के लगा देने से श्रमिको का महत्व और भी गिर जाता है। उनकी शक्ति कम हो जाती है। इस प्रकार श्रम पर पूँजी का आधिपत्य बढता है।

[४] **श्रमिको का शोषण**—प्राय विवेकीकरण के नाम पर ऐसी योजनाएँ लागू की जाती हैं जिससे श्रमिको से आवश्यकता से अधिक काम लिया जाता है। विवेकीकरण के कारण जो काम मे वृद्धि होती है उसकी तुलना मे मजदूरी मे वृद्धि नही होती। उदाहरण के लिए यदि एक मजदूर दो के बजाय चार करघे देखने लगे तो उसका काम तो दूना हो गया परन्तु उसका

वेतन कभी दूना नही किया जायगा। इस प्रकार अधिकाश लाभ श्रमिको को मिलने के बजाय पूँजीपतियों को जेब मे जाता है।

(५) श्रमिको के विरोध का एक और भी कारण है। उनका कहना है कि पूंजीपति सगठन सम्बन्धी दोष को श्रमिको के मत्थे मढना चाहते हैं और उन पर काम बढाकर अधिक आमदनी करना चाहते हैं। यदि प्रबन्ध मे यथोचित सुधार किया जाय तो बिना काम का बोझ बढाए ही घाटा पूरा किया जा सकता है।

श्रमिकों के विरोध की सत्यता

श्रमिको के इस विरोध मे कहाँ तक सत्यता है इस बात पर विचार करना आवश्यक है। जहाँ तक सैद्धान्तिक सत्यता का प्रश्न है विवेकीकरण पूँजीपति तथा श्रमिक दोनो के लिए समान रूप से उपयोगी है। कोई भी मजदूर इस बात को स्वीकार नही करेगा कि उसका कल्याण कम से कम उत्पादन करने तथा कारखाने के घाटे पर चलने मे है। विवेकीकरण के दोष तभी उत्पन्न होते है जब पूँजीपति उसकी आड मे अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा करते है। उदाहरण के लिए यह कोई आवश्यक नही है कि अधिक उत्पादन के लिए अधिक परिश्रम भी करना पडे। औजारो, मशीनरी तथा काम की विधियो मे सुधार होने पर पहले की अपेक्षा कम परिश्रम करके भी अधिक उत्पादन किया जा सकता है। अतएव काम के बोझ से मतलब अधिक उत्पादन से नही, अधिक परिश्रम से होता है। इसलिए यह समस्या वही उत्पन्न होती है जहा प्रबन्ध मे अन्य सुधार किए बिना केवल काम की मात्रा बढा दी जाती है।

श्रमिको मे बेरोजगारी का डर कुछ सीमा तक सत्य है। परन्तु दीर्घकाल मे यह बात भी उतनी सीमा तक भय का कारण नही बनती। कीमत कम हो जाने से माग बढ जाती है और बाकी लोगो को भी काम दिया जा सकता है। इसके अलावा अन्य उद्योग भी खोले जा सकते है जिनमे निकाले हुए मजदूरो को लगाया जा सके। एक दृष्टिकोण से विचार करना और भी आवश्यक है। यदि विवेकीकरण न लागू करने से अन्य देशो की तुलना मे मूल्य बढा रहे तो माँग मे कमी होकर धीरे-धीरे कारखाने बन्द होने लगेंगे और फिर बेरोजगारी अनिवार्य हो जावेगी।

इस प्रकार सैद्धान्तिक रूप से श्रमिको का विरोध ठीक नही जान पडता। परन्तु विवेकीकरण लागू करने के पहले कुछ सावधानियाँ अवश्य ध्यान मे रखनी चाहिए। वे निम्नलिखित है।

(१) जो भी योजना लागू की जाय वह श्रमिको तथा मालिको की सम्मति से होनी चाहिए। ऐसी दशा मे श्रमिको का पूर्ण सहयोग प्राप्त हो सकेगा।

(२) विवेकीकरण धीरे-धीरे लागू किया जाय जिससे एकदम बहुत से मजदूर वेरोजगार न हो जायें। वल्कि कोशिश इस बात की करनी चाहिए कि निकाले हुए मजदूरो को कोई दूसरा काम प्रदान किया जाय।

(३) विवेकीकरण के लाभों मे श्रमिक, पूँजीपति तथा उपभोक्ता सबको समान अवसर दिया जाय। मजदूरो की मजदूरी मे वृद्धि हो तथा वस्तुओ की कीमत भी कम की जाय।

(४) विवेकीकरण के समस्त अङ्ग एक साथ लागू किए जायें। जैसे मशीनो का नवीनीकरण, वैज्ञानिक प्रबन्ध इत्यादि। कोशिश इस बात की करना चाहिए कि मजदूरो पर काम का बोझ बढाये बिना ही उत्पादन मे वृद्धि की जाय। साथ ही साथ प्रवन्ध की बुराइयो को भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

(५) मजदूरों को भी प्रबन्ध मे हिस्सा देना चाहिए। कोई भी योजना लागू करने के पहिले श्रमिकों मे उसका भली भाँति प्रचार करना चाहिए ताकि उसके महत्व को श्रमिक अच्छी तरह समझ सके।

(६) प्रवन्धको मे सहानुभूति तथा सहयोग की भावना आवश्यक है। यदि प्रबन्धकर्ता श्रमिकों के हित की भावना से प्रेरित होकर कोई काम करेंगे तो उनका सहयोग अवश्य प्राप्त होगा।

अन्य दोष

विवेकीकरण के अन्य सम्भावित दोष इस प्रकार है —

[१] **मौलिकता तथा व्यक्तित्व का नाश**—अत्यधिक प्रमापीकरण के कारण मौलिकता तथा व्यक्तित्व का नाश हो जाता है। मजदूरो को

जैसा चलाया जाता है वैसा चलना पडता है इसलिए वे मशीन की भाँति हो जाते हैं। कारीगरों की स्वतत्र इच्छा के उचित विकास का अवसर न मिलने से उनका व्यक्तित्व क्षीण हो जाता है।

[२] एकाधिकार सम्बन्धी दोष—सयुक्तीकरण के द्वारा औद्योगिक इकाइयाँ एकाधिकार कायम कर सकती है। इसका दुरुपयोग वे मूल्य बढाकर तथा उत्पादन कम करके कर सकते हैं।

[३] छोटी इकाइयों पर कुप्रभाव—विवेकीकरण द्वारा अधिक पूँजी वाली कम्पनियाँ नई मशीने लगाकर तथा अन्य योजनाएँ लागू करके लागत बहुत घटा लेती है। छोटी इकाइयाँ पूँजी की कमी के कारण विवेकीकरण की योजनाओ को लागू नही कर सकती और प्रतिस्पर्द्धा मे समाप्त हो जाती है। ऐसी दशा मे वे या तो कई इकाइयों का सगठन एक बडी इकाई के रूप मे कर लेती हैं अन्यथा बडी इकाइयो मे उनका विलयन हो जाता है।

[४] कलात्मक वस्तुओं का उत्पादन बन्द होना—प्रमापीकरण के कारण केवल उपयोगिता सम्बन्धी वस्तुएँ ही बनती है जिनकी लागत कम तथा उपयोगिता अधिक होती है। कलात्मक वस्तुओ का उत्पादन बन्द हो जाता है। इसका समाज मे कला के विकास पर बहुत बुरा असर पडता है।

[५] पुरानी मशीनो की बरबादी—नवीनीकरण के कारण तुरत बहुत बडी मात्रा मे पूँजी की आवश्यकता पड जाती है। पुरानी मशीने बेकार हो जाती है। कुछ लोगों का मत है कि यदि वही पूँजी नए उद्योगों के विकास मे लगाई जाती तो अधिक लाभ होता।

विवेकीकरण तथा वैज्ञानिक प्रवन्ध में अन्तर

वैज्ञानिक प्रबन्ध तथा विवेकीकरण दोनों ही औद्योगिक प्रबन्ध मे पुरानी परम्परागत विधियो के स्थान पर नयी वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग की कोशिश करते हैं। दोनो ही का उद्देश्य श्रमिको की कार्य-क्षमता बढाना, बरबादी को रोकना तथा लागत को कम करना है। दोनो ही प्रणालियाँ समुचित वैज्ञानिक प्रयोगो पर आधारित है तथा औद्योगिक सकट को दूर करके उद्योगों मे स्थिरता

प्रदान करने मे सहायक होती है। परन्तु इस समानता के उपरान्त भी दोनो मे कुछ मौलिक भेद है जो निम्नलिखित है।

(१) विवेकीकरण का क्षेत्र वैज्ञानिक प्रबन्ध से कही अधिक विस्तृत है। विवेकीकरण उद्योग के सभी अगो पर ध्यान देता है जबकि वैज्ञानिक प्रबन्ध केवल प्रबन्ध पर। वैज्ञानिक प्रबन्ध स्वय विवेकीकरण का एक अग है।

(२) वैज्ञानिक प्रबन्ध केवल श्रम सगठन, तथा उत्पादन विधियो मे सुधार करता है जबकि विवेकीकरण में सयुक्तीकरण, तथा प्रमापीकरण इत्यादि के द्वारा माल के वितरण सम्बन्धी खर्चो पर भी नियन्त्रण किया जाता है।

(३) विवेकीकरण बहुधा आर्थिक सकट के समय लागू किया जाता है जबकि वैज्ञानिक प्रबन्ध लाभ देने वाले कारखानो मे भी लागू किया जाता है। ऐसा देखा गया है जब मन्दी के कारण, अथवा माँग कम हो जाने के कारण देश के उद्योग आर्थिक सैकट मे पड जाते हैं तो उसकी रक्षा के लिए विवेकीकरण का सहारा लिया जाता है, तथा विवेकीकरण के द्वारा तत्कालिक उपचार किया जाता है। जैसे कार्टेल इत्यादि बनाकर प्रतिस्पर्द्धा से होने वाली हानि को रोकना। इसी कारण विवेकीकरण का प्रभाव अधिक स्थायी नही रहता जबकि वैज्ञानिक प्रबन्ध अधिक स्थायी होता है।

(४) वैज्ञानिक प्रबन्ध प्राय व्यक्तिगत कारखानो मे लागू किया जाता है। यह समस्त उद्योग की कठिनाइयो पर ध्यान नही देता जब कि विवेकीकरण प्राय समस्त उद्योग को एक इकाई मानकर सुधार की कोशिश करता है। इसलिए विवेकीकरण लागू करने के पहले उद्योग की समस्त अथवा अधिकाश इकाइयो का सगठन होना आवश्यक है। वैज्ञानिक प्रबन्ध कोई भी औद्योगिक इकाई अकेले किसी भी समय लागू कर सकती है।

(५) वैज्ञानिक प्रबन्ध एक निश्चित प्रणाली है, उसकी निश्चित विधियाँ है जो उसके विद्वानो द्वारा उचित प्रयोगो के बाद निर्धारित की गई है। विवेकीकरण कोई निश्चित प्रणाली नही है उसम सुविधा

नुसार बरबादी को रोकने, प्रतिस्पर्द्धा कम करने तथा लागत में कमी करने के लिए कोई भी कदम उठाया जा सकता है।

भारतीय उद्योगों में विवेकीकरण

भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की प्रगति बहुत धीमी गति से हुई है। सन् १९२९ के आर्थिक सकट के पहले यहाँ पर विवेकीकरण की ओर कुछ भी ध्यान नही दिया गया। मन्दी के कारण जब उद्योगो को घाटे पर घाटा लगना शुरू हो गया तो उन्होने सयोजन इत्यादि के द्वारा सीमित रूप मे विवेकीकरण लागू किया। सीमेन्ट उद्योग तथा शक्कर उद्योग इस दिशा मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारत में विवेकीकरण की प्रगति न होने के निम्नलिखित कारण थे।

(१) अभिनवीकरण के लिए भारतीय उद्योगो के पास पर्याप्त पूँजी न थी। इसलिए मशीनो के पुराने तथा बेकार होने पर भी उन्हे बदला नही जा सका। इसके अलावा भारत मे नई मशीनरी के उपयोग के लिए उचित कारीगरो तथा इजीनियरो की भी कमी थी।

(२) भारतीय उद्योगपतियो मे परस्पर मेल की भावना का पूर्ण अभाव था। व्यक्तिगत स्वार्थों के कारण लोग किसी समझौते पर राजी ही न होते थे। जो कुछ समझौते हुए भी उनका जीवन अल्पकालीन रहा क्योकि समस्त उद्योग के हितो की अपेक्षा व्यक्तिगत हितो का ही प्राधान्य रहा।

(३) विदेशी सरकार होने के कारण सरकारी तौर पर भारतीय उद्योगो की उन्नति पर कोई विशेष कदम नही उठाया गया। भारत सरकार को भारतीय उद्योगो की अपेक्षा ब्रिटिश उद्योगो का अधिक ध्यान रहता था।

(४) भारतीय पूँजीपतियो तथा श्रम सगठनो के पारस्परिक असहयोग के कारण भी विवेकीकरण की प्रगति को बहुत बाधा पहुँची। भारतीय मिल मालिको का दृष्टिकोण श्रमिको के प्रति बहुधा बहुत ही सकीर्ण है, साथ ही साथ श्रमिको के सगठन भी दोषपूर्ण हैं और न्यायोचित योजनाओ का भी विरोध करते है। इसी कारण भारतवर्ष मे कोई भी विवेकीकरण की योजना अधिक सफल न हो सकी।

(५) भारतीय उद्योगपति विशेष रूप से परम्परावादी हैं। वे पुरानी परम्परागत विधियो को बदलने मे बहुत हिचकिचाते हैं। इसका मुख्य कारण उनमे साधारण तथा विशेष (टेक्निकल) शिक्षा की कमी है। भारतीय उद्योगपति सच्चे अर्थ मे व्यापारी अधिक और उद्योगपति कम हैं। औद्योगिक अनुसधानो के प्रति यहाँ के उद्योगपतियो मे बडी उदासीनता रहती है।

(६) भारतीय श्रमिको का निरक्षर तथा निर्धन होना भी विवेकीकरण के मार्ग मे बहुत बडी बाधा रहती है। निरक्षरता के कारण वैज्ञानिक विधियो द्वारा उनसे काम लेना अत्यत कठिन होता है। इसके अलावा भारतीय श्रमिको म स्थिरता का पूर्ण अभाव है। थोडे दिन काम करने के बाद वे प्राय देहातो मे चले जाते हैं। इन कारणो से उनके वैज्ञानिक सगठन तथा ट्रेनिंग मे बडी बाधा उत्पन्न होती है।

युद्धपूर्व काल मे विवेकीकरण

जैसा कि पहले बतलाया जा चुका है भारतवर्ष मे विवेकीकरण की आवश्यकता सन् १९२९ की महान मन्दी के बाद से प्रतीत हुई। उद्योगो को लगातार घाटा होने लगा। इसलिए उद्योगपतियो ने विवेकीकरण के द्वारा अपव्यय रोकने तथा लागत कम करने का प्रयत्न किया। सन् १९३० मे **सीमेन्ट मार्केटिंग कम्पनी** की स्थापना हुई जिसका मुख्य काम सदस्यो के उत्पादन को उचित मूल्य पर बेचना था। प्रत्येक कारखाने मे उत्पादन का कोटा नियत कर दिया गया। इस प्रकार पूर्ति को माँग के हिसाब से सतुलित किया गया। रेलवे से भाडो के लिए सामूहिक सौदा किया गया। सन् १९३६ मे 'एसोसिएटेड सीमेन्ट कम्पनीज' के नाम मे बहुत सी सीमेन्ट कम्पनियो का सयुक्तीकरण कर दिया गया।

शक्कर उद्योग मे प्रतिस्पर्द्धा समाप्त करने के लिए सन् १९३२ मे 'सुगर मार्केटिंग बोर्ड' की स्थापना की गई। परन्तु उससे काम ठीक-ठीक नही चला। इसलिए १९३७ मे शुगर सिण्डीकेट की स्थापना हुई जो सदस्यो के माल को उचित मूल्य पर बेचने लगी। उत्तर-प्रदेश और बिहार की ९२ मिलें इसमें शामिल हुई। सन् १९३८ मे सरकार ने कानून पास करके सिण्डीकेट की

सदस्यता को लाइसेन्स देने के लिए आवश्यक शर्त बना दिया। इससे सिण्डीकेट का महत्व और भी बढ गया। आर्थिक सकट के समय सिण्डीकेट ने बहुत अच्छा काम किया तथा शक्कर उद्योग को नष्ट होने से बचाया।

लौह तथा स्पात उद्योग मे भी विवेकीकरण लागू किया गया। इस उद्योग मे टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी का करीब-करीब एकाधिकार था क्योकि वह कुल उत्पादन का ७५% तैयार करती थी इसलिए विवेकीकरण का काम अधिक सुविधापूर्वक हो सका। टाटा कम्पनी मे श्रम की बचत करने वाले यन्त्रो का उपयोग बढा दिया गया। वैज्ञानिक प्रबन्ध लागू किया गया जिससे लागत काफी कम हो गई। दूसरे इन्जीनियरिंग उद्योगो मे भी श्रम बचाने वाले साधन प्रयोग किए गए। केविन के उद्योगो मे उत्पादन करीब २५% बढ गया तथा कर्मचारियो की सख्या घॅट कर आधी रह गई।

जूट उद्योग मे विवेकीकरण उत्पादन घटाने के रूप मे लागू किया गया जूट की माँग मे अचानक कमी आ जाने के कारण मिलो मे काम के घण्टे घटाकर ४५ प्रति सप्ताह कर दिए। प्रतिस्पर्द्धा दूर करने तथा सहयोग स्थापित करने के लिये जूट मिल एसोसियेशन की स्थापना की गई। इसने प्रतिस्पर्द्धा दूर करने, कोटा निर्धारित करने तथा पूर्ति को माँग के अनुसार सतुलित करने मे अच्छा काम किया है। एसोसियशन ने एक अनुसधान विभाग खोलकर जूट सम्बन्धी अनुसधान को सुविधाएँ प्रदान की है।

इस प्रकार हम देखते है कि द्वितीय महायुद्ध से पहले मन्दी के समय भारत के मुख्य उद्योगो मे विवेकीकरण न्यूनाधिक मात्रा मे लागू किया गया। परन्तु विवेकीकरण की विशेषता सयुक्तीकरण, सयोजन तथा पूर्ति पर नियत्रण करने तक ही सीमित रही। इस समय विवेकीकरण मन्दी की मार के कारण उत्पन्न हुआ था। इसलिए उद्योगो ने अपनी रक्षा के लिए अल्पकालीन योजनाएँ स्वीकार करली थी। एक दूसरी विशेषता यह थी कि विवेकीकरण की योजना मे समन्वय का पूर्ण अभाव था। विवेकीकरण किसी निर्धारित योजना के अनुसार नही हुआ इसका फल यह हुआ कि विवेकीकरण से औद्योगिक कार्य-क्षमता पर कोई स्थायी प्रभाव नही पडा और न कोई चिरस्थायी फल ही प्राप्त हुआ।

युद्धकाल मे विवेकीकरण

सन १९३९ मे द्वितीय महासमर छिड जाने के कारण उद्योगो को अधा-धन्ध मुनाफे होने लगे। विवेकीकरण का मसला कुछ समय के लिए समाप्त हो गया। फिर भी कच्चे माल की कमी तथा उत्पादन मे वृद्धि के लिए कुछ प्रयत्न इस दिशा मे किए गए। सन् १९४५ मे भारत सरकार ने कपडे की कठिनाई को दूर करने के लिए Textile Industry (Rationalisation of Production) Order पास किया इसके अनुसार कुछ उपयोगिता सम्बन्धी किस्म नियत कर दी गई और मिलो को आज्ञा दी गई कि अपने कोटे का ९० प्रतिशत उपयोगिता वस्त्रों के निर्माण मे लगावे। वितरण की व्यवस्था को भी सुधारने का प्रयत्न किया गया।

युद्धोत्तरकाल मे विवेकीकरण

युद्ध समाप्त हो जाने पर कुछ समय तक तो उद्योगो पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। घरेलू बाजार मे उपयोग की वस्तुओ की इतनी भयकर कमी युद्ध काल मे उत्पन्न हो गई थी कि काफी समय तक उद्योगो के पास पर्याप्त माँग बनी रही। परन्तु धीरे-धीरे युद्धकालीन ज्वार उतरने लगा। लाभ कम होने लगे। माँग गिरने लगी। मिलो को अपनी स्थिति बनाये रखने के लिये विवेकीकरण की शरण आना पडा। वर्तमान समय मे विवेकी-करण भारतीय उद्योगो के सामने बहुत बडी समस्या बन गया है।

वर्तमानकाल मे विवेकीकरण की आवश्यकता

(१) भारतीय उद्योगो को लगातार घाटा हो रहा है। कपडे की मिलो मे समस्या और भी जटिल है। तमाम स्टाक इकट्ठा हो रहा है। अनेक मिले बन्द हो चुकी है और बहुत सी आशिक रूप से काम कर रही है। विवेकीकरण द्वारा उसकी लागत घटाना आवश्यक हो गया है।

(२) विदेशी व्यापार मे लगातार कमी होती जा रही है। युद्ध काल मे भारतीय उद्योगो ने काफी बडा बाजार तैयार कर लिया था परन्तु धीरे-धीरे वह समाप्त हो रहा है। इसका कारण यह है कि भारतीय माल महँगा पडता है तथा उसकी किस्म मे कोई सुधार नही हुआ।

इस प्रकार विदेशी प्रतिस्पर्द्धा मे भारतीय उद्योग नहीं ठहर पा रहे है। उदाहरण के लिए युद्धकाल मे भारतीय कपडा मिश्र, ईरान, ईराक, अरब, इन्डोनेशिया, बर्मा इत्यादि देशों मे जाता था परन्तु जापान की स्वतन्त्रता के पश्चात् ये बाजार काफी सीमा तक भारत से छिन गए हैं।

(३) अन्य देशो मे युद्धोत्तर काल मे बहुत बडे परिवर्तन हुए है। जापान ने युद्ध के पश्चात् करीब-करीब सभी करघो तथा तकुओं का नवीनीकरण कर लिया है। सभी करघे आटोमेटिक है जिसमे एक मजदूर ४० करघे तक एक साथ देखता है। भारतीय मिलो की मशीनें बहुत पुरानी है इसलिए उनका नवीनीकरण आवश्यक है। सन् १९५२ मे सुती उद्योग की वकिंग कमेटी ने निम्नलिखित आकडे दिये थे। इसके अनुसार सूती वस्त्र उद्योग में ६५% मशीनरी सन् १९२५ के पहले की है, उसमे ३०% तो सन् १९१० से भी पहले के है। वीविंग विभाग मे ७५% करघे १९२५ मे पहले के है, जिसमे ४९% तो १९१० से भी पहले के है। इसलिए उनका नवीनीकरण अत्यन्त आवश्यक हो गया है।

(४) युद्ध के प्रभाव समाप्त हो जाने के कारण आन्तरिक मॉग मे भी बहुत कमी आ गई है। एक ओर योजना की पूर्ति के लिये सरकार तरह-तरह के कर लगा रही है, दूसरी ओर खाद्य पदार्थो की कीमत बढती जा रही है। इसलिए अन्य उपभोग की वस्तुओ की मॉग स्वत कम हो रही है। जब तक उनकी कीमत कम नही की जावेगी माग मे कोई विशेष वृद्धि नही हो सकती।

(५) देश के विभाजन के कारण जूट तथा रुई जैसे कच्चे मालो की बडी कमी उत्पन्न हो गई है। आवश्यकता इस बात की है कि उनका अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय तथा हर प्रकार की बरबादी रोकी जाय।

(६) योजना की सफलता के लिए बहुत बडी मात्रा मे विदेशी-विनिमय की आवश्यकता है। भारत मे इस समय विदेशी-विनिमय की भयकर कमी का अनुभव हो रहा है। सरकार निर्यात बढाने का हर यथासम्भव उपाय कर रही है। परन्तु इसके लिए दो आवश्यक

शर्ते है, पहले तो भारतीय माल अन्य देशो के मुकाबिले मे सस्ता हो दूसरे उसकी किस्म अच्छी हो। यह तभी सम्भव हो सकता है जब नवीन मशीने लगाई जायें, हर प्रकार की बरबादी को रोका जाय तथा प्राप्त साधनो का अच्छे से अच्छा उपयोग किया जाय।

विवेकीकरण के लिए किए हुए उपाय

युद्धोत्तर काल मे राष्ट्रीय सरकार ने विवेकीकरण के लिए विशेष कदम उठाये जो निम्नलिखित है।

(१) भारतीय प्रमाप सस्था (Indian Standards Institute) —सन् १९४६ मे औद्योगिक विकास योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा दिल्ली मे यह प्रमाप सस्था खोली गई। इसका प्रबन्ध एक साधारण सभा द्वारा होता है जिसके सभापति भारत सरकार के उद्योग मत्री है इसमे पाँच विभाग है।

(१) इजीनियरिंग, (२) निर्माण कार्य (Buildings), (३) रसायनिक पदार्थ, (४) बुनाई उद्योग (Textiles) तथा (५) खाद्य और कृषि। प्रत्येक विभाग का प्रबन्ध एक विभागीय परिषद् द्वारा होता है। भारतीय प्रमाप सस्था का उद्देश्य राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर विभिन्न उद्योगो के स्टैन्डर्ड निश्चित करना है। इस सम्बन्ध मे वह विभिन्न उद्योगो से आँकडे तथा आवश्यक सूचना प्राप्त करती है तथा उनका प्रकाशन भी करती है। इसके अलावा सस्था नए नए स्टैन्डर्ड निर्धारित करने के लिए अनेक प्रयोग कर रही है। सन् १९५२ मे भारतीय प्रमाप अधिनियम बनाया गया। इसके अनुसार सस्था को प्रमाप चिन्ह लगाने का अधिकार मिल गया है। जो कम्पनी सस्था की प्रमापित विधियो तथा प्रमापित किस्म का माल तैयार करेगी उस पर सस्था की 'प्रमापित माल' की मोहर लगा दी जावेगी जो इस बात का प्रमाण होगा कि माल प्रमापित किस्म का है।

विदेशो को निर्यात किये जाने वाले माल की किस्म पर नियत्रण भी इस सस्था के द्वारा रखा जाता है। इसका कारण यह है कि घटिया किस्म का माल विदेशो को भेजने से न केवल देश की बदनामी होती है बल्कि विदेशी व्यापार को बहुत बडा धक्का लगता है। इसलिए जो वस्तुएँ विदेशो को भेजी जाती है प्रमाप सस्था उनमे से कुछ अनायास चुनकर उनका निरीक्षण

करती है कि वे निर्धारित स्टैंन्डर्ड से नीचे तो नही है। आन्तरिक उपयोग मे आने वाले माल के लिए भी इसी प्रकार की जाच होती है। इस प्रकार धीरे-धीरे वस्तुओ की किस्म मे सुधार होगा। सरकारी सस्थाएँ केवल वही माल खरीदती हैं जिस पर प्रमाप सस्था की मोहर हो।

(२) औद्योगिक अनुसंधान :— स्वतत्रता के पश्चात् औद्योगिक अनुसधान की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। भारत सरकार की ओर से एक काउन्सिल आफ साइटिफिक एण्ड इन्डस्ट्रियल रिसर्च की स्थापना हुई है। इसके अतिरिक्त तीन बडी-बडी राष्ट्रीय अनुसधानशालाएँ खोली गई हैं जिनमे से नई दिल्ली मे भौतिक अनुसधान, पूना मे रासायनिक अनुसधान तथा जमशेदपुर मे धात्विक अनसधान किए जावेंगे। इन राष्ट्रीय अनुसधान-शालाओ के अतिरिक्त भी अनेक अनुसधानशालाएँ, प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centre) इत्यादि खोले गए है। इन अनुसधानो से आशा की जाती है कि वस्तुओ की किस्म मे पर्याप्त सुधार होगा।

(३) संयोजन :— औद्योगिक अनुसधानो के अतिरिक्त सयोजन की दिशा मे भी कुछ प्रगति हुई है। लौह उद्योग मे बचत के दृष्टिकोण से *"इन्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी"* तथा *'स्टील कारपोरेशन आफ बगाल"* को एक मे मिला दिया गया। इसी प्रकार बैंकिंग के उद्योग मे भी रिजर्व बैंक की सिफारिश पर दो महत्वपूर्ण सयोजन हुए। एक के अनुसार बगाल के चार बैंक आपस मे मिला दिए गए और दूसरे के अनुसार भारत बैंक का पजाब नेशनल बैंक मे विलयन हो गया।

(४) कपडा उद्योग में विवेकीकरण:—सूती वस्त्र उद्योग भारत का सबसे बडा उद्योग है। युद्धोत्तर काल मे इसमे भी शिथिलता आने लगी। युद्ध काल मे प्राप्त किए हुए विदेशी बाजार एक-एक करके हाथ से निकलने लगे। आतरिक माँग भी कम होने लगी। एक एक करके मिल बन्द होने लगे। फलत अहमदाबाद मे श्रमिको और मिल मालिको मे समझौता हुआ जिसके अनुसार यह तय हुआ कि एक मज़दूर स्पिनिंग विभाग मे चारो तरफ काम देखेगा तथा वीविंग विभाग मे एक व्यक्ति चार करघो की देखभाल करगा। बम्बई तथा मद्रास मे भी प्रति व्यक्ति चार करघे देखने की व्यवस्था लागू की गई। उत्तरी भारत मे विवेकीकरण मे विशेष प्रगति नही हुई। कानपुर के

तीन मिलो मे विवेकीकरण लागू किया गया, परन्तु बाकी मिलो मे श्रमिको के विरोध के कारण सफलता प्राप्त न हो सकी।

बम्बई, अहमदाबाद तथा मद्रास मे मशीनरी का भी जीर्णोद्धार किया गया तथा पुराने करघो की जगह आटोमेटिक करघे लगाए गए परन्तु उसकी प्रगति काफी धीमी रही। उत्तर प्रदेश मे रानीखेत मे त्रिपक्षीय सम्मेलन हुआ जिसमे सैद्धान्तिक रूप मे विवेकीकरण स्वीकार कर लिया गया परन्तु उसके लागू करने की विधि पर श्रमिको और मिल मालिको मे मतभेद हो गया। फलत कानपुर की मिलो मे एक बहुत बडी हडताल हुई जो कई महीने चलती रही। अन्त मे सरकार ने जस्टिस विंध्यवासिनी प्रसाद की अध्यक्षता मे एक कमेटी बना दी जिसने थोडे ही समय पहले अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है। विवेकीकरण का मसला अब भी खटाई मे पडा हुआ है और इस बीच सूती वस्त्र उद्योग--विशेषकर उत्तरी भारत की मिलो की दशा बिगडती जा रही है। कपडे का स्टाक इकट्ठा होता जा रहा है, तथा इस दिशा मे शीघ्र ही कोई महत्वपूर्ण कदम उठाये जाने की आवश्यकता है।

भारत मे विवेकीकरण पर एक दृष्टि

भारत मे विवेकीकरण की प्रगति पर दृष्टि डालने से हम निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचते है।

(१) भारतीय उद्योगो मे विवेकीकरण की प्रगति बहुत धीमी है। प्रगतिशील औद्योगिक देशो की तुलना मे भारतीय उद्योग बहुत पिछडे हुए है। मशीन अत्यन्त पुरानी हैं। श्रमिको की उत्पादक शक्ति बहुत कम है। उत्पादन की विधियाँ अत्यन्त पुरानी है। इसीलिए उत्पादन व्यय भी अधिक है।

(२) जो कुछ विवेकीकरण हुआ भी वह सयोजन तथा श्रमिको पर काम बढाने तक ही सीमित है। मशीनो के नवीनीकरण, उत्पादन विधियो मे सुधार, उत्पादित वस्तुओं के प्रमापीकरण इत्यादि की ओर ध्यान नहीं दिया गया। इसीलिए श्रमिको द्वारा विवेकीकरण का विरोध किया गया है।

(३) विवेकीकरण अलग अलग औद्योगिक इकाइयो पर लागू करने की कोशिश की गई है। समस्त उद्योग पर राष्ट्रीय आधार पर

विवेकीकरण लागू करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इसीलिए भारत में विवेकीकरण नियोजित रूप में नहीं हो रहा है।

भारत में विवेकीकरण कैसे सफल हो ?

भारत में विवेकीकरण की सफलता के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं।

(१) विवेकीकरण की जो भी योजना लागू की जाय उसे श्रमिकों, मिल मालिकों तथा सरकार की सम्मति से निर्धारित किया जाना चाहिए। योजना को लागू करने के लिए प्रत्येक मिल में एक विवेकीकरण समिति बनाई जाय जिसमें मिल मालिकों, श्रमिकों के प्रतिनिधि हों तथा सरकार के उद्योग अथवा श्रम विभाग के प्रतिनिधि हों।

(२) नई मशीनों के लिए पूंजी की समस्या हल करने के लिए प्रत्येक मिल में एक डेवलपमेन्ट फन्ड बनाया जाना चाहिए। इस रकम पर सरकार को इनकम टैक्स की छूट देनी चाहिए। इस डेवलपमेन्ट फण्ड का उपयोग पुरानी मशीनों की जगह नई मशीनें लगाने के लिए किया जाय।

(३) प्रत्येक उद्योग के लिए राष्ट्रीय आधार पर एक समिति की स्थापना की जाय जो उस उद्योग से सम्बन्धित अनुसधान का काम करे। समिति द्वारा हर प्रकार के स्टैन्डर्ड निकाले जायें जैसे फैक्ट्री स्टैन्डर्ड डिजाइन, काम की स्टैन्डर्ड विधियाँ, प्रति व्यक्ति स्टैन्डर्ड उत्पादन इत्यादि।

(४) विवेकीकरण को अपने समस्त स्वरूपों में लागू किया जाय। कारीगरों पर काम बढ़ाने के साथ इस बात का भी ध्यान रक्खा जाय कि काम करने की दशाओं में सुधार हो, नई मशीनें प्रयोग की जायें तथा प्रबन्ध का भी विवेकीकरण हो।

(५) मिल मालिकों तथा श्रमिकों के बीच सहयोग तथा एकता की भावना उत्पन्न करने के लिए श्रमिकों को भी प्रबन्ध में हिस्सा दिया जाय। बहुत से मामलों में दोनों पक्षों में शंका का वातावरण

इस कारण से भी उत्पन्न हो जाता है क्योंकि श्रमिको को आन्तरिक प्रबन्ध के बारे मे कुछ बताया नही जाता।

(६) विवेकीकरण से मिलने वाले लाभ को मिल मालिको, श्रमिको तथा उपभोक्ताओं मे समान रूप से बाँटा जाय। अर्थात् श्रमिको की मजदूरी बढाई जाय तथा वस्तु के दाम भी कम किए जायँ।

(७) किसी भी विवेकीकरण की योजना मे इस बात की चेष्टा की जाय कि बेरोजगारी कम से कम फैले। इसके लिए विवेकीकरण शनै शनै लागू किया जाना चाहिए। इसकी योजना इस प्रकार हो सकती है —

(क) प्रति वर्ष जो लोग वृद्धावस्था, मृत्यु अथवा अन्य कारणों से काम छोड देते है उनकी जगह नए आदमी न नियुक्त किए जायँ और उनका काम दूसरो को बाट दिया जाय।

(ख) जिन लोगो को अलग किया जाय उनके लिए मिल मे किसी दूसरे काम की व्यवस्था की जाय। इस बात का ध्यान रहना चाहिए कि उसके वेतन मे किसी प्रकार की कमी न हो।

(ग) यदि कुछ श्रमिको को अलग करना आवश्यक हो तो ऐसे सभी मजदूरो की एक सूची बना लेना चाहिए, तथा जिस व्यक्ति की जितनी पुरानी नौकरी हो उसे उसी हिसाब से प्राथमिकता देना चाहिए।

(घ) बदली मे उपयोग किए जाने वाले श्रम मे पहले उन लोगो को मौका दिया जाय जो इस प्रकार बेरोजगार हो गए हैं। इसके लिए श्रमिको को लाइसेंस देने की प्रणाली लागू की जानी चाहिए तथा उनकी भरती एम्पलायमेंट एक्सचेज द्वारा होनी चाहिए।

अंतिम सुझाव यह है कि पूँजीपतियो तथा श्रमिको के दृष्टिकोण मे परिवर्तन आवश्यक है। उसके बिना विवेकीकरण की कोई भी योजना सफल नही हो सकती। उद्योगो का उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ के स्थान पर सामाजिक कल्याण होना चाहिए। मिल मालिक, श्रमिक, जनता तथा सरकार सभी के सहयोग एव नियन्त्रण के द्वारा ही विवेकीकरण सफल हो सकता है।

प्रश्न

1. Describe the urgency of introducing Rationalisation in Indian industries. What repurcussion will it have on employment situation in the country ? What are the advantages of *rationalisation* ? (B Com. Agra, 1954)

2. What is meant by rationalisation of Industries ? Give its advantages and disadvantages

3. "*Rationalisation in the widest sense is a reform tending* to use means and methods based on systematic reasoning to the collective activities of the large economic and social groups" Comment on the statement and point out the scope of Rationalisation.

4. Rationalisation in Indian industries has not made much progress. Why ? What methods do you suggest to make it more acceptable to the labour.

5. "*The greatest opposition* to Rationalisation has been from the side of labour" Show what measures should be taken to get the support of labour in any scheme of Rationalisation ?

6. Distinguish between the Rationalisation and Scientific management. Give scope of each.

अध्याय ४

संयोजन
(Combination)

प्रारम्भ मे पूँजीवाद "स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा" व "मुक्त व्यापार (Laissez faire) के सिद्धान्त पर आधारित था। ये ही सिद्धान्त निर्बाध रूप से अठारहवी शताब्दी तथा १९वी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक चलते रहे। इन सिद्धान्तो के आधार पर व्यवसाय तथा उद्योगो मे किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप पसन्द नही किया जाता था। स्पर्धा प्रत्येक व्यवसायी व उद्योगपति के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र व खुली हुई थी। ऐसा विचार किया जाता था कि प्रतिस्पर्धा की प्रवृत्ति प्रतियोगी व्यवसायियों को उत्पादन मे अधिक से अधिक मितव्ययिता लाने के लिए प्रोत्साहित करेगी। परन्तु इस आशा के प्रतिकूल शीघ्र ही मुक्त व्यापार के दोष प्रतीत होने लगे और गला काट प्रतिस्पर्धा भी साकार रूप से दृष्टिगोचर होने लगी। १९वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध मे उत्पादको व व्यवसायियो ने अनेक योजनाएँ बनाई। व्यापारिक एव औद्योगिक सगठन मे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए जिसके फलस्वरूप व्यापारिक एव औद्योगिक सयोजन का विकास हुआ। श्रीयुत हैने ने भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'व्यवसायी सगठन' मे इस कथन की पुष्टि करते हुए लिखा है कि "प्रतिस्पर्द्धा से सयोजन को जन्म मिलता है।"*

सयोजन आन्दोलन के कारण

सयोजन आन्दोलन के कारण अत्यन्त जटिल एव मिश्रित है। विभिन्न कारण आपस मे इतने मिलते-जुलते हैं कि उनका स्पष्टीकरण सहज रूप से सम्भव नही।* फिर भी सयोजन के मुख्य कारणों को तीन भागो मे विभाजित कर सकते है—प्रतिस्पर्धा की हानि को दूर करना, वृहत्परिमाण (Large Scale)

---

* "Competition begets Combination" — Haney : *Business Organisation.*

सगठन के लाभ तथा व्यापार चक्र (Trade Cycle)। इसके अतिरिक्त कुछ सहायक कारण भी है जैसे राष्ट्रीय सरक्षण नीति, अधिक पूंजी की आवश्यकता अधिक लाभ कमाने की इच्छा, आवागमन के साधनो मे वृद्धि एव सुधार, औद्योगिक एव तान्त्रिक परिस्थिति, सयुक्त स्कन्ध व्यवसाय का विकास, सरकारी नीति इत्यादि।

(१) अत्यधिक प्रतिस्पर्द्धा—स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा जब सीमा का अतिक्रमण करने लगती है तो गला काट स्पर्द्धा का रूप धारण कर लेती है। पारस्परिक होड के कारण व्यापारी वितरण सम्बन्धी बहुत से अनावश्यक खर्चे करने लगते है, मूल्यो का गिराना आरम्भ हो जाता है। यहाँ तक कि सभी व्यापारियो को हानि होने लगती है। ऐसी परिस्थिति अधिक समय तक नही चल सकती है। तथा शीघ्र ही प्रतिस्पर्द्धा करने वाले व्यवसायी आपस मे कोई न कोई समझौता करने को मजबूर हो जाते है।

(२) व्यापार चक्रों का आरम्भ—व्यापार चक्र तथा व्यापारिक मन्दी (Slump) के कारण भी सयोजन को प्रोत्साहन मिलता है। व्यवसायिक उन्नति के समय जब कि सभी व्यवसाइयो को खूब लाभ होता है लोगो का ध्यान इस प्रकार के सगठन की ओर नही जाता है परन्तु जब मन्दी का समय आरम्भ होता है माँग कम हो जाती है भाव गिरने लगते है तो सयोजन को बल मिलता है। सयोजन दो प्रकार से होता है एक तो छोटी छोटी अनार्थिक तथा कम कार्यक्षमता वाली इकाइयाँ समाप्त हो जाती है। और बडी बडी इकाइयाँ उनको खरीद लेती है। दूसरे बचे हुए व्यवसायी आपस मे सगठन करके पूर्ति को कम करते है और इस प्रकार गिरते हुए भावो को रोकते हैं।

(३) वृहत् परिमाण सगठन के लाभ—उद्योगो मे प्राय उत्पादन बढने का नियम लागू होता है इसलिए उद्योग का आकार तथा उत्पादन का पैमाना जितना ही बढता जायगा इतनी ही लागत कम होती जायगी इसीलिए कभी कभी दो या अधिक छोटे छोटे उद्योग परस्पर मिल जाते हैं जिसमे कि वे अपने उद्योग का विस्तार अधिक सुविधापूर्वक कर सके इस प्रकार के सयोजन से न केवल उत्पादन तथा वितरण सम्बन्धी खर्चे कम हो जाते है बल्कि उनकी साख पूंजी तथा अन्य साधन भी पर्याप्त विस्तृत हो जाते

है। तथा अन्य इकाइयो की तुलना मे उनकी प्रतिस्पर्द्धा करने की शक्ति भी बढ जाती है।

(४) संरक्षण नीति—कभी कभी सरक्षण नीति भी सयोजन का कारण बन जाती है जब औद्योगिक सरक्षण के द्वारा सरकार विदेशी माल को देश मे आने से रोक देती है तो देश के उत्पादको को भी इस बात का बल मिलता है कि देश के अन्दर भी प्रतिस्पर्द्धा समाप्त कर दें। भारतवर्ष का शुगर सिन्डीकेट इसका उत्तम उदाहरण है। जब भारत सरकार ने शक्कर उद्योग को सरक्षण प्रदान करके विदेशी शक्कर के आयात पर प्रतिबन्ध लगा दिया तो देश के अन्दर भी शकर व्यवसाइयो ने भी अपना सगठन बना लिया। परन्तु कुछ विद्वानो के मतानुसार सरक्षण सयोजन का एक प्रमुख कारण नही है। अमेरिका के औद्योगिक कमीशन ने लिखा है कि—"इस देश तथा यूरोप के अनुभव के आधार पर यह बात सही नही जान पडती कि सरक्षण सयोजन का प्रमुख कारण है। हमारे देश मे बहुत से एकाधिकारी सयोजन ऐसे उद्योगो मे हैं जिनको सरक्षण प्राप्त नहीं तथा इग्लैण्ड मे भी जहाँ किसी प्रकार का सरक्षण नही है कुछ काफी बडे तथा सफल सयोजन हैं।"

(५) यातायात तथा सदेशवाहन के साधनों में सुधार—यातायात तथा सदेशवाहनो मे सुधार होने से प्रतिस्पर्द्धा बढ जाती है। बाजार का क्षेत्र अधिक व्यापक हो जाता है इसलिए लोगो को प्रतिस्पर्द्धा से होने वाली हानि को रोकने के लिए सयोजन करना पडता है। इसके अतिरिक्त इन साधनो के विकास के द्वारा व्यवसाइयो को परस्पर मिलने तथा अपनी कठिनाइयो पर विचार करने का मौका मिलता है इससे भी पारस्परिक समझौते द्वारा सयोजन को प्रोत्साहन प्राप्त होता है।

(६) संयुक्त पूँजी की कम्पनियों का विकास—सयुक्त पूँजी की कम्पनियों ने भी इसके विकास मे काफी बडी सहायता की है। इस प्रकार की कम्पनियाँ अपने अशो को दूसरी कम्पनियो के अशो मे लगाती है जिससे सयोजन उत्पन्न होता है इसके अतिरिक्त जब किसी एक कम्पनी का डाइरेक्टर दूसरी अन्य कम्पनियो का भी डाइरेक्टर हो जाता है तो उससे भी उनमे परस्पर एकता उत्पन्न होती है। इसके अतिरिक्त कभी कभी कई कम्पनियाँ मिल कर एक नई कम्पनी के हाथ मे सारी सत्ता सौप देती है और इस प्रकार

उनमे परस्पर सयोजन हो जाता है। कम्पनियो के द्वारा ही यह सम्भव है कि बहुत बडी सख्या मे लोग प्रबन्ध मे भाग ले सके अतएव इसके द्वारा परस्पर सयोजन को बल मिलता है।

(७) सरकारी नीति—प्राय: सरकारी नीति भी सयोजन के विकास मे सहायक अथवा बाधक बनती है कभी कभी सरकार सयोजन को प्रोत्साहित करती है तो उसे बल प्राप्त होता है भारतवर्ष मे सरकार ने लाइसेन्स देने के लिए शुगर सिन्डीकेट की सदस्यता अनिवार्य कर दी थी इसीलिए इसे बहुत प्रोत्साहन मिला। जर्मनी मे उत्पादक सघो का विकास सरकारी प्रोत्साहन के कारण ही हुआ तथा सरकारी नीति ही अमेरिका मे शक्तिशाली ट्रस्टो के विनाश का कारण बनी। इसके अतिरिक्त सरकार कभी कभी दो या अधिक औद्योगिक इकाइयो को परस्पर मिलने को बाध्य कर देती है जैसे रिजर्व बैंक के आदेश पर पजाब नेशनल बैंक तथा भारत बैंक का सयोजन। सरकार राष्ट्रीयकरण के द्वारा भी प्रत्यक्ष रूप से सयोजन की स्थिति उत्पन्न कर देती है।

(८) आवश्यक कच्चे माल की कमी—कभी कभी युद्धकालीन परिस्थितियो अथवा अन्य कारणो से आवश्यक कच्चे माल का मिलना बन्द हो जाता है ऐसी दशा मे माँग की अपेक्षा पूर्ति के कम होने के कारण भाव अन्धाधुन्ध बढने लगते है जिससे अल्प साधन वाली इकाइयो को बडी हानि होती है। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होने पर भी कभी कभी व्यवसायिक इकाइयाँ पारस्परिक सगठन बनाकर उसके उचित वितरण की व्यवस्था स्वय कर लेती है।

(९) एकाधिकार की अभिलाषा—जब राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे उत्पादन का कार्य कुछ थोडी सी शक्तिशाली इकाइयो के हाथ मे होता है तो भी उनमे परस्पर मिलकर एकाधिकार कायम करने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। ऐसी परम्परा अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र मे काफी देखने को मिलती है तथा तेल, रासायनिक पदार्थ इत्यादि क्षेत्रो मे जहाँ उत्पादन कार्य अधिकतर थोडी सी शक्तिशाली कम्पनियो के हाथ मे है इस प्रकार के सगठन अक्सर देखने को मिलते हैं।

(१०) व्यापारिक संगठन की प्रणाली—किसी देश मे व्या-

पारिक सगठन की प्रणाली भी सयोजन मे सहायक होती है उदाहरण के लिए भारतवर्ष की प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली न मयोजन की दिशा मे बहुत बडी सहायता की है। एक प्रवन्ध अभिकर्ता के अधीन बहुत सी कम्पनियाँ हो जाती हैं तथा उनमे परस्पर सयोजन सम्बन्धी एकता उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार पारस्परिक आधार पर डायरेक्टरो की नियुक्त करने की प्रणाली ने भी इस दिशा मे भी बहुत बडा योग दिया है।

सयोजनों के प्रकार

श्री 'हैने' के अनुसार सयोजित होने का अर्थ है समूह का एक अग बन जाना तथा सयोजन का अर्थ है—किसी सामान्य सयोजन की पूर्ति के लिए मघ बनाने के लिए व्यक्तियो का ऐक्य। अत दो या अधिक सस्थाओ के साहचर्य अथवा परस्पर एकीकरण को सयोजन कहते है। यह सयोजन अनेक प्रकार से किया जाता है परन्तु प्रकृति के अनुसार उसे हम निम्न चार भागो मे बाँट सकते है —

(१) क्षैतिज या समतल (Horizontal)

(२) शीर्ष या उदग्र (Vertical)

(३) वृत्तीय या चक्रित (Circular)

(४) विकर्णिय (Diagonal)

क्षैतिज या समतल सयोजन (Horizontal Combination)

जब एक ही प्रकार का काम करने वाली दो या अधिक व्यापारिक अथवा औद्योगिक इकाइयाँ परस्पर मिल जाती हैं तो उसे क्षैतिज, समतल, अनुप्रस्थ अथवा व्यापारिक सयोजन कहते हैं। ऐसे सयोजनो का निर्माण प्राय पारस्परिक-स्पर्द्धा को कम करने के लिए किया जाता है। चीनी उद्योग का शुगर सिन्डीकेट, सीमन्ट का एशोसिएटेड सीमेन्ट कम्पनी लिमिटेड तथा जूट का जूट मिल एसोसियेशन इस प्रकार के सयोजन के उदाहरण है। इसके अलावा व्यापारिक क्षेत्र मे भी शक्कर व्यवसायी सघ तथा अन्य व्यापारियो के सगठन इसके उदाहरण कहे जा सकते है।

उद्देश्य—क्षैतिज नियोजन के निम्नलिखित उद्देश्य होते है :—

(१) पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा को कम करना।

(२) लम्बे पैमाने पर उत्पत्ति के लाभ प्राप्त करना।

(३) उत्पादन की विधियो मे एकरूपता उत्पन्न करना तथा उत्पादन सम्बन्धी सूचना का आदान प्रदान।

(४) सरकार अथवा अन्य सस्थाओ के सामने उद्योग का प्रतिनिधित्व करने के लिए स्थायी सगठन का निर्माण करना।

(५) कच्चे माल की खरीद तथा तैयार माल की बिक्री की सामूहिक व्यवस्था करना।

(६) पूर्ति पर नियन्त्रण करके माँग और पूर्ति का सतुलन स्थापित करना तथा व्यापार चक्रो को रोकना।

लाभ

(१) अनुचित प्रतिस्पर्द्धा का अन्त—सयोजनो द्वारा पारस्परिक गला काट प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है। जब प्रतिस्पर्द्धा इस सीमा तक पहुँच जाती है कि एक दूसरे की होड मे लोग लगातार भावो को गिराने लगते हैं। प्रचार तथा वितरण सम्बन्धी कार्यो मे बहुत सा धन व्यय करना पडता है तो समस्त इकाइयाँ मिल कर एक सगठन बना लेती है जिससे इस अनावश्यक व्यय को रोका जा सके। इस प्रकार सयोजन के द्वारा प्रतिस्पर्द्धा कम करके उससे होने वाली हानि को रोका जा सकता है।

(२) लम्बे पैमाने पर उत्पत्ति को लाभ—सयोजन हो जाने से उत्पादन का पैमाना बढ जाता है इससे सम्मिलित होने वाले उद्योगो को बहुत से लाभ होते हैं। वे किफायत से माल खरीद सकते है। उत्पादन का खर्चा भी कम हो जाता है। दफ्तर के खर्चे तथा विज्ञापन मे भी बहुत सी बचत हो जाती है। इसके अतिरिक्त उसकी प्रतिस्पर्द्धा करने की शक्ति बाजार की साख तथा आर्थिक स्थिति भी अधिक दृढ हो जाती है। इससे वह अधिक उत्तम साधनो का प्रयोग करके उत्पादन तथा विक्रय की क्षमता मे वृद्धि कर सकता है।

(३) **मांग और पूर्ति का संतुलन**—यदि सयोजन मे सम्मिलित होने वाली इकाइयो की सख्या पर्याप्त है तो उसके द्वारा पूर्ति पर नियन्त्रण भी रक्खा जा सकता है। इकाइयो का सामूहिक सगठन बाजार की स्थिति का अध्ययन करता रहता है। तथा उसी के आधार पर उत्पादन की मात्रा निर्धारित करता है इस प्रकार आवश्यकता मे अधिक उत्पादन तथा उसके समस्त कुप्रभावो से रक्षा हो जाती है तथा औद्योगिक विकास मे पर्याप्त दृढता उत्पन्न होती है।

(४) **व्यापारिक सूचना का प्रसार**—इस प्रकार के सयोजनो द्वारा व्यापारी प्राय अपनी समस्यायें आपस मे विचार के लिए रखते हैं इस प्रकार उत्पादन तथा व्यापार की सूचना का प्रसार होता है तथा उन विधियो मे एकरूपता उत्पन्न होती है औद्योगिक तथा व्यापारिक क्षेत्र मे व्यक्तिवाद समाप्त हो कर सामूहिक रूप से काम करने की भावना को बल प्राप्त होता है।

(५) **औद्योगिक अनुसधान मे सहायता**—एक ही प्रकार की औद्योगिक इकाइयो का सगठन बन जाने पर वे सम्मिलित रूप से अनुसधान की व्यवस्था भी कर सकते है कलकत्ते के जूट मिल एसोसियेशन तथा अहमदाबाद के सूती मिलो के एसोसियेशन ने अपने अपने क्षेत्र मे अनुसधान सम्बन्धी सराहनीय काम किया है। इस प्रकार के अनुसधान से समस्त उद्योग को स्थायी लाभ प्राप्त हो सकता है।

(६) **माल की किस्म मे सुधार**—क्षैतिज सयोजन प्राय माल मे सुधार करने मे बडी सहायता करता है। यह दो प्रकार से हो सकता है एक तो परस्पर उत्पादन सम्बन्धी सूचना के प्रसार तथा अनुसन्धान सम्बन्धी कार्य से किस्म के सुधार मे सहायता मिलती है। कभी कभी क्षैतिज सगठन स्वय माल का प्रमापीकरण कर देता है तथा इकाइयो को एक निश्चित स्तर से खराब माल बनाने पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है। इस प्रकार प्राय ही इस तरह के सगठन माल की किस्म को सुधारने मे सफल हुए है।

(७) **सरकारी नियन्त्रण मे सुविधा**—वर्तमान समय मे औद्योगिक क्षेत्र म सरकारी प्रतिबन्ध बढता जा रहा है सयोजन द्वारा अनेक बिखरी

हुई इकाइयाँ थोडी सी इकाइयो के रूप मे सगठित हो जाती है इसलिए सरकार को उन पर नियन्त्रण रखने तथा अपनी नीति को लागू करने मे सुविधा होती है। यद्यपि कुछ शक्तिशाली सगठन कभी कभी सरकारी नियमो की अवहेलना भी करने लगते है परन्तु यदि उचित रीति से वे सहयोग करने को तैयार हो जायँ तो बहुत सी इकाइयो की तुलना मे उन पर नियन्त्रण निश्चय ही अधिक सरल होगा।

दोप

क्षैतिज सयोजनो के निम्नलिखित दोप है :—

(१) सामूहिक शक्ति का दुरुपयोग—जब अनेक छोटी-छोटी इकाइयाँ परस्पर सगठित होकर शक्तिशाली बन जाती है तो वे प्राय अपनी शक्ति का दुरुपयोग करने लगती है। वे उत्पादन मे सुधार करने के बजाय पूर्ति को कम करके मनमानी कीमते वसूल करते है। इसके अतिरिक्त वे कभी अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर सगठन करके पिछडे हुए देशो का शोषण आरम्भ कर देते हैं और इस प्रकार वहाँ के औद्योगिक विकास मे बाधक बन जाते है। कभी कभी ऐसे शक्तिशाली सगठन राजनैतिक क्षेत्र मे भी हस्तक्षेप करने लग जाते है और इस प्रकार राज्य को अपनी इच्छा और नीति के अनुसार चलने को विवश कर देते है।

(२) कच्चे माल के उत्पादकों का शोषण—जब औद्योगिक निर्माता इस प्रकार का सगठन कर लेते है तो प्राय वे मनमाने भाव पर कच्चे माल की खरीद करते है जिससे उत्पादकों को बडी हानि होती है ऐसे उत्पादक प्राय असगठित और दूर दूर तक बिखरे होते हैं इसलिए वे सहज ही इन शक्तिशाली सयोजनो के शिकार बन जाते है।

(३) छोटे उद्योगपतियों का विनाश—जब औद्योगिक इकाइयाँ के इस प्रकार के शक्तिशाली सगठन बन जाते हैं, तो छोटे उद्योगपतियो को बडी कठिनाई का सामना करना पडता है। प्राय ये सगठन उनसे प्रतिस्पर्द्धा करने लगते हैं जिससे उन्हे नष्ट होते देर नही लगती है। इसके अतिरिक्त माल की पूर्ति तथा मूल्यो पर इन सगठनो का करीब करीब एकाधिकार होता है और छोटे उद्योगपतियो को अपनी नीति उन्ही के अनुसार चलानी पड़ती

है। इस प्रकार की प्रवृति समाजवादी समाज की रचना तथा प्रजातन्त्र के विकास मे बहुत बडी बाधा उपस्थित करती है।

(४) औद्योगिक जडता—सयोजनो के द्वारा जब प्रतिस्पर्द्धा बिल्कुल ही समाप्त हो जाती है तो उद्योग मे प्रगति के स्थान पर जडता उत्पन्न हो जाती है उत्पादन विधियो मे सुधार करने का प्रोत्साहन समाप्त हो जाता है तथा उत्पादन कम करके अधिक लाभ कमाने की धारणा मे कमी आ जाती है सीमित प्रतिस्पर्द्धा औद्योगिक विकास की जीवनी शक्ति है। अतएव इसका समाप्त हो जाना औद्योगिक प्रगति के लिए घातक सिद्ध हो सकता है।

शीर्ष अथवा उदग्र सयोजन (Vertical Combination)

जब एक दूसरे का पूरक कार्य करने वाली दो या अधिक इकाइयाँ आपस मे मिल जाती है जिससे समस्त अथवा एक मे अधिक क्रियाओ का एकीकरण हो जाता है तो उसे उदग्र, शीर्ष, लम्बरूप, उद्योग, विधि अथवा क्रमिक सयोजन कहते है। इस प्रकार के सयोजन मे विभिन्न इकाइयो का कार्य प्रतिस्पर्द्धात्मक न होकर पूरक होता है। अर्थात् एक का निर्मित माल दूसरे का कच्चा माल बन जाता है। इस प्रकार का सयोजन तभी सम्भव है जब समस्त उत्पादन कार्य अनेक विधियो मे विभक्त हो तथा प्रत्येक विधि का उत्पादन अलग अलग होता हो।

उद्देश्य—शीर्ष सयोजन के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं —

(१) समस्त उत्पादन क्रियाओ का सूत्रीकरण करना।

(२) कच्चे माल की खरीद अथवा तैयार माल की बिक्री की अनिश्चिता समाप्त करना।

(३) मध्यस्थो को दिए जाने वाले लाभ को समाप्त करना।

(४) माल की किस्म पर नियन्त्रण करना।

लाभ

[१] बिक्री की निश्चयात्मकता—निचली सीढी पर स्थित उद्योगो को बिक्री की चिन्ता नही रहती क्योकि ऊपर के उद्योग उनका समस्त अथवा

अधिकांश माल खरीद लेते है। इस प्रकार यदि सूत बनाने वाले तथा कपडा बुनने वाले दो मिलो का सयोजन हो जाय तो सूत बनाने वाले मिल को इस बात की चिन्ता नही रहेगी कि सूत कैसे और कहाँ बेचा जाय।

[२] कच्चे माल की निश्चयात्मकता—ऊपरी सीढी पर स्थित उद्योग को भी लाभ होता है। उसे इस बात की चिन्ता नही रहती कि कच्चा माल कहाँ से और किस प्रकार प्राप्त होगा। इसके अलावा वह निचली सीढी के उद्योग को माल की किस्म इत्यादि के सम्बन्ध मे भी आदेश दे सकता है। ऊपर के उदाहरण मे बुनाई के मिल को इस बात की चिन्ता नही करनी पडेगी कि कपडा बुनने के लिए सूत कैसे और कहाँ से प्राप्त होगा।

[३] उत्पादन विधि का सूत्रीकरण—समस्त उत्पादन विधि का सूत्रीकरण हो जाता है। जब विभिन्न क्रियाएँ अलग अलग सस्थाओ द्वारा की जाती है तथा उनमे परस्पर कोई समन्वय नही होता तो उत्पादन मे किसी प्रकार का सुधार सम्भव नही हो पाता। इसके लिए आवश्यक है विभिन्न विधियो के निर्माता परस्पर मिल कर उत्पादन विधियों तथा किस्म इत्यादि का निर्णय करे। यह तभी सम्भव है जब शीर्ष सयोजन किया जाय।

[४] मध्यस्थों का लाभ समाप्त—उत्पादन विधि का सूत्रीकरण हो जाने से बीच के मध्यस्थो का लाभ समाप्त हो जाता है। इस प्रणाली मे विभिन्न विधियो के निर्माताओ के बीच सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो जाता है तथा उनको परस्पर मिलाने के लिए मध्यस्थो की आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

[५] बिक्री सम्बन्धी व्यय मे बचत—विभिन्न विधि के निर्माताओ मे प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो जाने से बिक्री सम्बन्धी व्यय मे पर्याप्त बचत हो जाती है। निचली सीढी के उद्योगो को विज्ञापन तथा बिक्री के लिए अन्य खर्चे नही करने पडते।

[६] माल की किस्म में सुधार—हर अगली सीढी के उत्पादक को पिछली सीढी के उद्योग पर पर्याप्त नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है। इस प्रकार माल की किस्म मे सुधार किया जा सकता है। जहाँ माल कई विधियो मे निर्मित होता है वहाँ एक विधि मे भी खराबी होने पर आगे तक माल को

किस्म खराब हो जाती है। उसे सुधारने के लिए आवश्यक है कि हर अगली विधि के निर्माता को पिछली विधि पर नियन्त्रण प्राप्त हो। यह तभी सम्भव है जब उद्योग मे शीर्ष सयोजन हो।

दोष—

[१] पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा का चालू रहना—इस प्रकार के सयोजन द्वारा विभिन्न विधियो का एकीकरण तो हो जाता है परन्तु पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा बराबर चालू रहती है। मन्दी के समय उद्योगो के समक्ष सूत्रीकरण की समस्या उतनी नही रहती जितनी प्रतिस्पर्द्धा को रोकने तथा उससे उत्पन्न हानियो को कम करने की होती है।

[२] विशिष्टीकरण का अभाव—इसमे *आत्म निर्भरता* की भावना को पोषण मिलता है। प्रत्येक उद्योग अपनी आवश्यकताओ की पूर्ति पिछली विधि के उद्योगो से करना चाहता है। इस प्रकार प्राय एक ही उद्योग को अनेक प्रकार की वस्तुएँ तैयार करनी पडती है जिससे विशिष्टीकरण नही हो पाता। दूसरे ऊपर की सीढी के उद्योगो को खुले बाजार मे अच्छे से अच्छा माल खरीदने को नही मिलता। यदि निचली सीढी की इकाई ठीक नही है तो उसका प्रभाव ऊपरी सीढी के उद्योग की कार्यक्षमता पर भी पडेगा।

[३] सीमित क्षेत्र में उपयोग—इस प्रकार के सयोजन का उपयोग बडे ही सीमित क्षेत्र मे होता है। तथा बहुत बडी सख्या मे औद्योगिक इकाइयो का सयोजन सम्भव नही होता। इससे व्यक्तिगत इकाइयो को तो थोडा सा लाभ हो भी सकता है परन्तु समस्त उद्योग को कोई विशेष लाभ नही पहुँचता। इसीलिए इस प्रकार के सयोजन प्राय विस्तार द्वारा ही होते है परस्पर समझौते के आधार पर कम। जब किसी एक उद्योग का लाभ बढता है तो वह इस बात का प्रयत्न करता है कि कच्चा माल देने वाले अथवा माल खरीदने वाले उद्योग पर अधिकार करके अपना विस्तार किया जाय।

[३] वृत्तीय या चक्रित संयोजन (Circular Combination)

'चक्रित', 'मिश्रित' या 'पूरक' (Circular, Mixed or Complimentary) सयोजन वे होते है, जिनका निर्माण उपरोक्त सयोजनो के उद्देश्यो की

भाँति नही होता है। इस प्रकार के चक्रित संयोजनो की विशेषता उनका आकस्मिक निर्माण है, क्योंकि सदस्य उद्योगो का सम्मिलन केवल उन पर नियन्त्रण व प्रबन्ध प्राप्त करने के उद्देश्य से होता है। उदाहरणार्थ, यदि सूती वस्त्र उद्योग, चीनी उद्योग, इस्पात उद्योग तथा कागज उद्योग आपस मे मिल जायें तो यह चक्रित सयोजन कहलावेगा। भारतवर्ष मे इस प्रकार के सयोजनो के उदाहरण बडी-बडी प्रबन्ध अभिकर्ता कम्पनियो मे मिलते है, जैसे मार्टिन बर्न एण्ड कम्पनी, एण्ड्रयू यूल एण्ड कम्पनी तथा जे० के० ग्रुप आफ मिल्स इत्यादि।

[५] विकर्णीय संयोजन (Diagonal Combination)

यदि किसी मुख्य उद्योग के साथ मे सहायक उद्योग भी मिल जाते है तो ऐसे सयोजन विकर्ण सयोजन कहलाते हैं। उदाहरणार्थ लौह एव स्पात उद्योग तथा मरम्मत उद्योग। कभी-कभी सहायक उद्योग के अभाव मे मुख्य उद्योग को काफी हानि व तकलीफ उठानी पडती है। मशीनों की टूट-फूट व घिसावट होती रहती है, यदि उनकी उचित समय पर मरम्मत न हो तो उत्पादन बन्द हो सकता है, श्रमिक लोग बेकार बैठे रहेंगे। इस प्रकार यह व्यक्तिगत हानि ही नही वरन् सामाजिक हानि भी है।

संयोजनों के प्ररूप (Forms of Combination)

सयोजनो के विभिन्न प्रकारो का अध्ययन करने के पश्चात् सयोजनो के रूपो का अध्ययन भी वाछनीय है क्योकि औद्योगिक एव व्यापारिक क्षेत्र मे सयोजनो का विकास विभिन्न देशो मे विभिन्न प्रकार से हुआ है। एक लेखक के अनुसार प्रतिस्पर्द्धा को कम करने व बडे पैमाने के उत्पादन का लाभ प्राप्त करने के उद्देश्य से सयोजन के अनेक रूप अपनाये गये जो अपने विकास क्रमानुसार निम्नलिखित है —

१—अनौपचारिक समझौते (Informal Agreements);

२—औपचारिक समुच्चयन समझौते (Formal Pooling Agreements);

३—उत्पादन सघ (Cartels);

४—ट्रस्ट (Trusts);

५—सामूहिक हितो की विधि (Community of Interest);

६—धारक कम्पनी विधि *(Holding Company)*;

७—सघनन (Consolidation);

८—व्यापार सघ (Trade Associations).

श्रीयुत हैने (Haney) महोदय ने सयोजनो को मुख्य दो वर्गों मे विभाजित किया है—सरल सयोजन तथा सयुक्त सयोजन। सरल सयोजन प्राकृतिक व्यक्तियो (Natural persons) का सयोजन है। सयुक्त सयोजन के अन्तर्गत उपरोक्त आठो सघ आ जाते है। अध्ययन की सुविधानुसार इनको निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है —

संयोजन के प्ररूप

१—साधारण पार्षद (Simple Associations)

- १—व्यापारिक पार्षद (Trade Associations)
- २—श्रमिक सघ (Trade Unions)
- ३—चैम्बर आफ कामर्स (Chamber of Commerce)
- ४—अनौपचारिक समझौते (Informal Agreements)

२—सयुक्त पार्षद (Compound Associations)

- १-सघान (Federations)
  - (अ) मूल्य सघ (Pools)
  - (ब) उत्पादन सघ (Cartels)
- २-सघनन (Consolidations)
  - (अ) पूर्ण सघनन (Complete)
    - (१) समिश्रण (Amalgamation)
    - (२) मिश्रण (Merger)

(ब) अपूर्ण सघनन (Incomplete)

(१) ट्रस्ट (Trusts)

(२) सामुदायिक हित (Community of Interest)

(३) होल्डिंग कम्पनी (Holding Company)
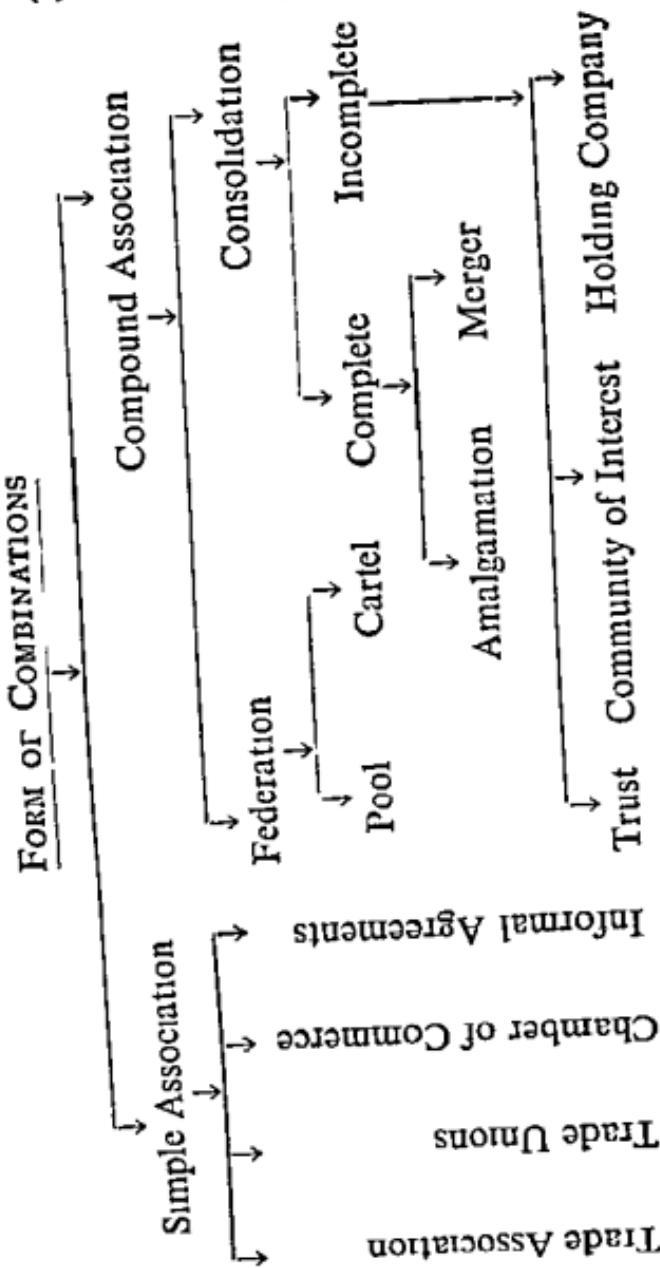
[१] साधारण पार्षद (Simple Association)

इस प्रकार के पार्षद अधिकतर व्यापारिक क्षेत्र मे होते हैं। जब विभिन्न प्रकार की कम्पनियाँ या सार्थ, साधारण व्यापारिक सुविधाओ के लिए अपना कोई सघ बना लेती है तो वे साधारण पार्षद कहलाते हैं। किसी उद्योग के कर्मचारीगण यदि अपने कोई मघ बना लेते है तो वह भी उसी वर्ग मे आते है। इस प्रकार साधारण पार्षद चार प्रकार के होते है —

(अ) व्यापार पार्षद (Trade Association)

(ब) ट्रेड यूनियन या व्यवसायी सघ

(स) चैम्बर ऑव कामर्स

(द) अनौपचारिक समझौते (Informal Agreements)

व्यापार पार्षद

प्रत्येक उद्योग या व्यापार मे कुछ सामान्य समस्याएँ होती हैं। इन सामान्य समस्याओ को सुलझाने के लिए उद्योगपति व्यापारी इत्यादि मिल कर सघ या पार्षद बनाते हैं, इन पार्षद या सघो को व्यापार सघ या व्यापारिक पार्षद कहते है। ये सघ उद्योग या स्थान के आधार पर बनाए जाते हैं तथा व्यक्तिगत विश्वास तथा वचनवद्धता पर आधारित होते हैं। उदाहरण के लिए हम बम्बई मिल मालिक सघ (Bombay Mill Owners Association), *अहमदाबाद सूती वस्त्र मिल मालिक सघ (Ahmedabad Textile Mill* Owners Association), ईस्ट इडिया सूती सघ (East India Cotton Association), सिल्क तथा आर्ट मिल मालिक सघ (Silk and Art Mill Owners Association) तथा कलकत्ता व्यापार सघ (Calcutta Trade Association) इत्यादि ले सकते है।

श्रमिक संघ (ट्रेड यूनियन)

ट्रेड यूनियन से तात्पर्य मजदूरो के सघ से है। मजदूर लोग अपने हितो के रक्षार्थ तथा अपनी समस्याओं को सामूहिक रूप से सुलझाने के लिए इन सघो का निर्माण करते है। मजदूरो का सघ उनकी आय बढाने के हेतु तथा आय

को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यकीय नियम बनाता है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य समस्याओ से सम्बन्धित नियम भी बनाता है।

चैम्बर ऑव कामर्स

चैम्बर आफ कामर्स व्यापारिक वर्ग के सघ होते ह जो अपने सदस्यो के लाभ के लिए कार्य करते है। चैम्बर आव कामर्स स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय होते हैं। ये सघ या तो व्यापारी वर्ग द्वारा निर्मित किए जाते हैं या सरकार व निजी व्यापारियो द्वारा सम्मिलित रूप मे निर्मित किए जाते है। भारत और इग्लैड मे ये सघ निजी व्यापारियो द्वारा निर्मित किए जाते है और जब कि फ्रास मे व्यापारिक समाज तथा सरकार के प्रतिनिधियो द्वारा इनका निर्माण होता है।

स्थान के आधार पर बाम्बे चैम्बर आफ कामर्स, बगाल चैम्बर ऑव कामर्स, मद्रास चैम्बर आफ कामर्स आदि। **राष्ट्रीयता** के आधार पर इडियन चैम्बर ऑव कामर्स, लदन चैम्बर आव कामर्स तथा **अन्तर्राष्ट्रीयता** के आधार पर इन्टर नेशनल चैम्बर आफ कामर्स (फ्रांस) इत्यादि। इन सघो की स्थापना **जातीयता** के आधार पर भी होती है, जैसे मारवाडी चैम्बर ऑव कामर्स जिसकी स्थापना भारतवर्ष मे १९२० म हुई थी।

अनौपचारिक समझौते (Informal Agreements)

अनौपचारिक समझौते आपस मे कीमतो को प्रत्यक्ष रूप से नियत्रित करने के लिए किए जाते है। इन समझौतो को "भद्र पुरुषो के समझौते" (Gentlemen's Agreement) "कार्यवाहक समझौते" तथा "खुला कीमत सघ" इत्यादि नामो से भी पुकारते हैं। इन समझौतो मे भाग लेने वाले सब व्यक्ति या इकाइयाँ (Units) अपना पृथक अस्तित्व रखते हुए अपने वचनो का पालन करने के लिए बाध्य होते है और काम करते है।

२—सघ (Federations)

व्यापारिक समझौते शिथिल तथा ऊपरी होने से प्राय निष्फल हो जाया करते हैं। अत इस दोष को दूर करने के लिए सघ या फैडरेशन्स का निर्माण किया गया है। इस प्रकार के सघो मे सदस्य सार्थो को अपने आन्तरिक मामलो

मे पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, परन्तु बाह्य समस्याओ मे से कुछ अथवा समस्त मामलो के सम्बन्ध मे पारस्परिक समझौता कर लेते हैं।

सघो का निर्माण दो रूप मे हो सकता है, जैसे —

(१) मूल्य सघ (Pools) तथा (२) उत्पादन सघ (Cartels)

मूल्य सघ (Pools)

महोदय हैने के अनुसार, "सघ व्यापारिक सगठन" का वह स्वरूप है जो व्यापारिक इकाइयो के सघान से बनाया जाता है, इसके सदस्य मूल्य के ऊपर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए एक सामूहिक निधि मे मूल्य निर्धारण करने वाले साधनो (Factors) का कुछ अश सम्मिलित करते है और उस सामूहिक निधि को इकाइयो मे विभाजित कर लेते हैं।"*

सघो के निर्माण का मुख्य उद्देश्य प्रतिस्पर्द्धा को दूर कर कीमतो को स्थायी रखने का प्रयत्न होता है। इस उद्देश्य को पूर्ति के लिए माँग एव पूर्ति (Demand and Supply) मे सन्तुलन बनाए रखने की कोशिश की जाती है। इसका प्रभाव यह होता है कि सब सदस्य इकाइयो को समान रूप से बराबर बराबर लाभ प्राप्त हो जाता है। सघ को विभिन्न सदस्य इकाइयो को आन्तरिक मामला म पूरी स्वतन्त्रता होती है, परन्तु सामान्य मामलो मे केन्द्रीय सस्था हस्तक्षेप करती है। समझौते की शर्तो के अनुसार सघो के विभिन्न रूप हो सकते है, जिनम से निम्नाकित मुख्य है —

(१) मूल्य सघ (Price Pools)
(२) बाजार या प्रादेशिक सघ (Market or Territorial Pools)
(३) उत्पादन सघ (Output Pools)

---

* ("A form of business organisation established through federation of business units, whose members seek a degree of control over prices by combining Some factors in price-making process in a common aggregate and apportioning that aggregate among the units"

—(Haney : *"Business Organisation and Combinations"*)

(४) आय अथवा लाभ सघ (Income and Profit Pools)

(५) पेटेन्ट संघ (Patent Pools)

(६) निर्यात सघ (Export Pools)

(७) कृषि सघ (Agricultural Pools)

(८) व्यवसायिक सघ (Traffic Pools)

[१] मूल्य संघ

इस प्रकार के सघ केवल मूल्य सम्बन्धी बातो पर विशेष ध्यान देते है। ये सघ सदस्य निर्माणी सार्थों का उत्पादन मूल्य निर्धारित करते है और समय समय पर इनमे आवश्यक परिवर्तन करते रहते है। सुगमता के लिए एक आदर्श सार्थ चुन लेते हैं। इस सार्थ का जो उत्पादन व्यय होता है वही अन्य सार्थों का उत्पादन व्यय मान लिया जाता है। इस उत्पादन व्यय मे विभिन्न स्थानो को सार्थों का यातायात व्यय और सम्मिलित कर लिया जाता है। इस प्रकार किसी भी सार्थ का विक्रय मूल्य सघ द्वारा निर्धारित मूल्य तथा उस क्षेत्र का यातायात व्यय होगा। उदाहरणार्थ अमेरिका मे एक समय पिट्सबर्ग (Pittsburgh) स्पात उद्योग के लिए आधार स्थान (Basing Point) था। जब पिट्सबर्ग मे स्पात का मूल्य ३० डालर प्रति टन था और पिट्सबर्ग से डुलूथ (Duluth) तक का यातायात व्यय १३'२० डालर प्रति टन था तब मिन्नेसोटा स्पात कम्पनी (Minnesota Steel Co) अपने डूलूथ के ग्राहको से ४३'२० डालर प्रति टन मूल्य लेती थी।*

[२] बाजार या प्रादेशिक सघ

जब बाजारो का विभाजन सघ सदस्य सार्थों मे स्पष्ट रूप मे कर देता है तो वह बाजार या प्रादेशिक सघ कहलाता है। सदस्य सार्थ अपनी निर्मित वस्तुओ को केवल अपने निर्धारित क्षेत्र मे ही बेच सकता है अन्यत्र नही। बाजारो का विभाजन तीन प्रकार से हो सकता है —

---

* Owners · "Business Organisation and Combination, "New York (1946) p. 280. Quoted by Ghosh and Dr. Om Prakash : *Principles and Problems of Industrial Organisation*. p 267.

(१) ग्राहकों का विभाजन करके,
(२) निर्मित वस्तुओ का विक्रय क्षेत्र निर्धारित करके तथा
(३) प्रादेशिक विभाजन करके।

ग्राहकों का विभाजन करके यदि सघ का निर्माण किया जाता है तो उस अवस्था मे उत्पादन सम्बन्धी सम्पूर्ण आदेश सघ के पास आते है और सघ इनका विभाजन सदस्य कम्पनियो में कर देता है। दूसरी रीति के अनुसार सघ यह निश्चित करता है कि विभिन्न सदस्य कम्पनियाँ किन-किन वस्तुओ का उत्पादन करेंगे। तीसरी रीति के अनुसार सघ विभिन्न सदस्य कम्पनियो द्वारा निर्मित वस्तुओ के लिए प्रादेशिक बाजार निश्चित कर देता है।

[३] उत्पादन सघ

इस प्रकार के सघ का निर्माण वस्तुओ की माँग और उत्पादन मे सन्तुलन बनाए रखने के उद्देश्य से किया जाता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के हेतु सघ निर्माण की जाने वाली वस्तु का अनुमान लगाता है। इसके पश्चात् सघ विभिन्न सदस्य कम्पनियो से एक निश्चित समय पर किए गए उत्पादन तथा उसकी बिक्री की सूचना प्राप्त कर लेता है। इसी सूचना के अनुसार सघ प्रत्येक सदस्य कम्पनी के उत्पादन का कोटा *(Quota)* निश्चित कर देता है। इस निश्चित अभ्यंश या कोटा से अधिक उत्पादन कोई सदस्य नही कर सकता है। यदि कोई सदस्य सघ के इस नियम का उल्लघन करता है तो वह सघ द्वारा निर्धारित दड का भागी होता है। इस योजना के अनुसार सघ उत्पादनाधिक्य (Over Production) पर नियन्त्रण रखता है।

[४] आय अथवा लाभ सघ

इस प्रकार के सघ का उद्देश्य सदस्य कम्पनियो की आय अथवा लाभ का वितरण सदस्यो मे निश्चित अनुपात अथवा समान रूप से करना होता है। विभिन्न सदस्य अपनी कुल आय सघ मे जमा कर देते है। सघ इस सम्पूर्ण आय मे से सघ के व्ययों को घटाकर शेष राशि को सदस्य कम्पनियो मे समझौते की शर्तों के अनुसार वितरित कर देता है।

[५] पेटेन्ट या एकस्व सघ

इस प्रकार के सघ अमेरिका मे अधिक प्रचलित है। इनका उद्देश्य किसी

एक वस्तु के उत्पादन का एकस्वाधिकार (Patent Rights) प्राप्त करना होता है। सघ किसी निश्चित वस्तु के बहुत से पेटेन्ट अधिकार प्राप्त करके तथा उनके अनुसार वस्तुओ का निर्माण करके देश अथवा विदेशो म बेचते है। अमरिका मे सर्वप्रथम १९१९ मे रेडियो उद्योग से इस प्रकार का सगठन प्रारभ हुआ। सुप्रसिद्ध जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी (General Electric Co.) के एकस्वाधिकार प्राप्त करने के लिए 'दी रेडियो कार्पोरेशन आव अमेरिका' का निर्माण हुआ, जिसने शनै शनै. विभिन्न कम्पनियो से ४००० से भी अधिक पेटेन्ट अधिकार प्राप्त किए।

[६] निर्यात संघ

इस प्रकार के सघ का निर्माण विदेशी बाजारो मे विदेशी निर्माताओ से प्रतियोगिता करने एव देश का निर्यात बढाने के उद्देश्य स किया जाता है। अमेरिका मे सर्वप्रथम १८१८-१९ के लगभग इस प्रकार के सघो का निर्माण हुआ और द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् इन सघो ने अमेरिका के निर्यात व्यापार को पर्याप्त प्रोत्साहन दिया। ये सघ विभिन्न सदस्यो से आपसी समझौता करके निर्यात के लिए एक ही ट्रेड मार्क निर्धारित कर लेते है।

[७] कृषि सघ

इस प्रकार के सघो का उद्देश्य कृषि उत्पादन के विक्रय से सम्बन्धित प्रतियोगिता को दूर करना होता है। इससे कृषको को अपनी उपज का उचित मूल्य मिल जाता है और उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ हो जाती है। इस प्रकार के सघ अमेरिका मे सर्वप्रथम १९२० मे कृषि उत्पादन के गिरते हुए मूल्य को रोकने के उद्देश्य से स्थापित किए गए थे। भारतीय कृषको की आर्थिक दशा सुधारने के लिए ऐसे सघो का निर्माण वाछनीय है।

[८] व्यावसायिक सघ—(Traffic Pool)

व्यावसायिक सघ बहुधा जहाजी कम्पनियो द्वारा स्थापित किए जाते है। आपसी प्रतियोगिता को दूर करने के उद्देश्य से जहाजी कम्पनियाँ 'शिपिंग कान्फरेन्स' बनाती है जो निश्चित वर्गों की प्रतियोगिता पर नियन्त्रण रखती हैं। ये सघ निश्चित मार्गो के लिए किराया निर्धारित कर देते है तथा नवीन कम्पनियो को क्षेत्र से हटाने के लिए 'छूट प्रणाली' (Rebate) को अपनाते

हैं। यह 'छूट' (Rebate) उन व्यापारिक सस्थाओ को दी जाती है जो अपना सामान सघ के सदस्यो द्वारा विदेशो मे भेजते है अथवा मँगाते हैं।

उत्पादक संघ तथा विक्रय सघ

अथवा

कार्टेल तथा सिडीकेट (Cartels & Syndicates)

कार्टेल या उत्पादक सघ मूल्य सघ (Pool) का ही एक रूप है। परन्तु अन्य मूल्य सघो की अपेक्षा इसका प्रचार इतना अधिक हुआ कि इसका अलग से वर्णन करना आवश्यक है। मूल्य सघो के समान ही कार्टेल भी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा के निवारण के लिए बनाए जाते है। तथा इनका भी उद्देश्य भी स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करके पूर्ति पर एकाधिकार प्राप्त करना तथा इस प्रकार मूल्यो को गिरने से रोकना होता है। साधारण मूल्य सघो तथा कार्टेल मे केवल इतना अन्तर होता है कि मूल्य सघो मे केन्द्रीय बिक्री की व्यवस्था नही होती जबकि कार्टेल मे केन्द्रीय बिक्री का सगठन भी होता है। यद्यपि इस प्रकार के उत्पादक सघो का भी वर्णन मिलता है जहाँ इस प्रकार की बिक्री की व्यवस्था नही थी।

परिभाषा—डा० ईसा के शब्दो मे—कार्टेल स्वतन्त्र व्यवसायो का एक सघ है जो सदस्य इकाइयो के उत्पादन, क्रय, मूल्य निर्धारण या व्यावसायिक शर्तो से सम्बन्धित दायित्वो को क्रियात्मक रूप देता है तथा स्वतन्त्र प्रतियोगिता के विरुद्ध बाजार को प्रभावित करता है।

डा० ईसा की परिभाषा के अनुसार कार्टेल के निम्नलिखित लक्षण है —

(१) यह स्वतन्त्र व्यवसायो का सघ होता है।

(२) सघ का उद्देश्य स्वतन्त्र प्रतिस्पर्द्धा को समाप्त करके मूल्यो को इच्छानुसार प्रभावित करना होता है प्राय इनका उद्देश्य गिरते हुए भावो को रोकना होता है।

(३) भावो को रोकने के लिए तथा प्रतिस्पर्द्धा को कम करने के लिए एक ही प्रकार का काम करने वाले कई औद्योगिक इकाइयाँ आपस मे मिल जाती है और वे उत्पादन क्रय अथवा व्यापार सम्बन्धी

शर्तें बना लेती हैं। कार्टेल का मुख्य कार्य इन शर्तों को कार्य रूप में परिणित करने का होता है, ताकि विभिन्न इकाइयाँ उन शर्तों का पालन करती रहें।

संगठन—कार्टेल प्राय एक सघ अथवा एक सयुक्त पूँजी की कम्पनी के रूप मे होता है। जो भी कम्पनियाँ इसमे सम्मिलित होती हे उन्हे कुछ शर्ते माननी पडती है। ये शर्ते निम्नलिखित प्रकार की हो सकती है।

(१) उत्पादन की मात्रा निर्धारित कर दी जाय तथा जो भी सदस्य उससे अधिक उत्पादन करें उसे सघ द्वारा दडित किया जाय। यह दड प्राय प्रीमियम के रूप मे होता है जो कि इस कार्टेल को देना पडता है। इस प्रकार पूर्ति को माग के अनुसार सन्तुलित किया जा सकता है।

(२) माल की किस्म पर नियन्त्रण कर दिया जाय इसके लिये या तो कार्टेल इस बात का निर्देश कर देती है कि कोई भी इकाई निश्चित किस्म से नीचा माल न बनावें अथवा कुछ विशेष प्रकार का ही माल बनावे। कभी कभी विशिष्टीकरण के आधार पर यह भी तय कर दिया जाता है कि कौन सा कारखाना किस किस्म का माल बनायेगा।

(३) कभी कभी सघ विभिन्न वस्तुओं के लिये न्यूनतम मूल्य निर्धारित कर देती है जिससे अनावश्यक रूप से मूल्यो की कमी पर नियत्रण रखा जा सके। मूल्यो को निर्धारित करने मे माल की किस्म उत्पादन व्यय, वितरण सम्बन्धी खर्चे सभी का ध्यान रक्खा जाता है।

(४) कभी कभी संघ क्षेत्रीय आधार पर बाजार का विभाजन कर देती है जिससे कि दूसरी इकाइयाँ उस क्षेत्र मे अपना माल नही बेच सकती है, ऐसा प्राय अन्तर्राष्ट्रीय उत्पादक सघो मे होता है। जहा काम करने वाली इकाइयो की सख्या बहुत थोडी होती है। हर एक इकाई का बिक्री का क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है तथा दूसरी इकाइयाँ वहाँ अपना माल नही बेचती है और यदि बेचना ही हो तो वहां काम करने वाली इकाई के द्वारा ही बेचती हैं।

(५) संघ प्रायः व्यापारिक शर्तों को भी निश्चित कर देता है। इसमे साख की सीमा तथा अवधि, छूट की दर, माल की सुपुर्दगी इत्यादि शर्ते सम्मिलित होती है। व्यापारिक शर्तो मे एकरूपता होने पर भी प्रतिस्पर्द्धा कम हो जाती है।

(६) सघो द्वारा केन्द्रीय बिक्री का भी प्रबन्ध किया जाता है। इस विधि के अनुसार सम्मिलित इकाइयो को उत्पादन का पूरा हिस्सा अथवा एक निश्चित प्रतिशत पूर्व निर्धारित मूल्यो पर सघ को देना पडता है और सघ केन्द्रीय रूप से उसकी बिक्री की व्यवस्था करता है। भारतीय शुगर सिन्डीकेट मे ऐसी ही व्यवस्था थी। यह शर्त अत्यन्त महत्वपूर्ण है। क्योकि इसके द्वारा उत्पादन की मात्रा तथा भावो पर पूरा नियन्त्रण रखा जा सकता है, साथ ही साथ केन्द्रीय बिक्री होने से बिक्री सम्बन्धी खर्चो मे भी कमी हो जाती है।

एक या अधिक शर्ते एक साथ लगाई जा सकती है। शर्तो मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी होता रहता है। अधिकाश निर्णय बहुमत से किये जाते हैं।

साधारण रूप से कार्टेल तथा सिंडीकेट मे कोई विशेष अन्तर नही है फिर भी कुछ जर्मन लेखको ने इन दोनो मे अन्तर दर्शाने की चेष्टा की है। इन लोगो के अनुसार 'कार्टेल' एक ऐसा सघ है जिसका कार्य मूल्य निर्धारण करना, उत्पादन पर नियन्त्रण रखना तथा बाजारो का वितरण करना है, जब कि 'सिंडीकेट' सकुचित दृष्टिकोण से वस्तुओ के विक्रय का एक सघ है।

उत्पादक संघों का विकास

जर्मनी मे प्रारम्भिक 'कार्टेल' केवल मूल्य निर्धारण समझौते (Price fixing agreements) होते थे। इनका जन्म सर्वप्रथम १८६० मे लोहे, नमक तथा टीन के कारखानो मे हुआ था। १८७० मे केवल ६ कार्टेल थे। १८७० के फ्रेन्को प्रसियन (Franco Prussian) युद्ध तथा १८७९ मे बिस्मार्क द्वारा चालित टैरिफ (Tariff) नीति से कार्टेल पद्धति को बहुत

बढ़ावा मिला और १८८५ से १८९० के मध्य लगभग १२० कार्टेल बन गये। सुप्रसिद्ध 'रेनिश वैस्ट फैलियन कोल सिंडीकेट (Rhenish West Phalian Coal Syndicate) का निर्माण १८९३ में हुआ।

धीरे-धीरे जर्मनी के प्रत्येक उद्योगों में कार्टेल या उत्पादन संघ बन गये, जिनकी स्थिति १९२६ में निम्न प्रकार थी →

उद्योग	कार्टेल द्वारा नियन्त्रित उत्पादन (कुल उत्पादन का प्रतिशत)
कोयला तथा अवशेष (Coal & by products)	१००
लिग्नाइट (Lignite)	५०
पोटाश (Potash)	१००
लोहा तथा स्पात (कच्चा)	१००
लोहा तथा स्पात (सामान)	८०
इन्जीनियरिंग	५०
कैमीकल्स	१००

हर हिटलर (Herr Hitler) के हाथों में सत्ता आ जाने के पश्चात् उत्पादन संघों को और भी बढ़ावा मिला। बजाय उत्पादन कम करने के इनको उत्पादन बढ़ाने की अनुमति मिली। युद्ध सम्बन्धी सामग्रियों के उत्पादन की आशा के साथ-साथ, उत्पादन संघों को कुछ और कार्य भी सौंपे गए जैसे विदेशी उद्योगों को ठप करना, जर्मनी के उद्योगों में अनुसन्धान (Research) करना तथा युद्ध सम्बन्धी एकत्रित माल के लिए विदेशी मुद्रा प्राप्त करना इत्यादि। द्वितीय महायुद्ध काल में महाशक्तिशाली उत्पादन संघों की स्थापना

हुई जैसे आई० जी० फरबन (I G. Ferben) जर्मन उत्पादन सघ। अमेरिकन युद्ध तथा कोषालय विभाग (U. S War and Treasury Department) के अनुमान के अनुसार उपरोक्त कार्टेल के नियन्त्रण मे ३८० जर्मन सार्थ थे। इसके अतिरिक्त इसके सम्पूर्ण ससार के सगठन मे ९३ देशो की ५०० कपनियाँ थी। परन्तु हिटलर के पतन के पश्चात इन उत्पादन सघो का पतन भी हुआ है। जुलाई १९४५ मे हुई पोट्सडाम कान्फ्रेन्स (Potsdam Conference) के समझौते के अनुसार बजाय केन्द्रीयकरण के विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाई गई है।

अन्तर्राष्ट्रीय सघ (International Cartels)

उत्पादक सघो का कार्य क्षेत्र केवल राष्ट्रीय सीमाओ तक ही सीमित नही रहता। अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर भी अनेक सघो का सगठन हुआ है। सबसे पहला अन्तर्राष्ट्रीय कार्टेल सन् १९२३ मे स्वीडन तथा अमेरिका के बीच दियासलाई के व उत्पादन तथा बिक्री के लिए हुआ। इसके लिए इन्टरनेशनल मैच कारपोरेशन की स्थापना की गई। कारपोरेशन ने दक्षिणी अमेरिका, चीन, भारतवर्ष, हालैड, वेलजियम तथा स्वीजरलैड इत्यादि अनेक देशो मे कई फर्मों को खरीद लिया है तथा समस्त ससार मे अपनी शाखाएँ खोली हैं।

सन् १९२६ मे फ्रास तथा जर्मनी के बीच पोटास के वितरण के लिए समझौता हुआ। समस्त विदशी व्यापार का ७० % जर्मनी को तथा ३० % कोटा फ्रास को मिला। घरेलू बाजार मे प्रत्येक देश को पूरी छूट थी। इसी वर्ष यूरोपियन रा स्टील कार्टेल (Europian Raw Steel Cartel) का निर्माण हुआ। इसके अनुसार जमनी, फ्रास, वेलजियम, लक्जेमबर्ग तथा सार के बीच मे तीन तीन महीने के लिए उत्पादन का कोटा निर्धारित कर दिया गया। यह कोटा विभिन देशो के १९२५ के उत्पादन के आधार पर निर्धारित किया गया था। यदि किसी देश का उत्पादन निर्धारित कोट मे अधिक हो तो उसे कार्टेल को ४ डालर प्रति टन अधिक देना पडता था। यदि उत्पादन कोटे से कम हो तो उसे २ डालर प्रति टन के हिसाब से मिलता था। कार्टेल के खर्चे के लिए प्रत्येक देश को १ डालर प्रति टन के हिसाब से देना पडता था।

सन् १९२६ मे ही ब्रिटिश, फ्रेन्च तथा जर्मन उत्पादको ने मिल कर अल्यूमिनियम कार्टेल का निर्माण किया। समझौता आरम्भ मे दो वर्ष के लिए

किया गया। उत्पादन का कोई कोटा नही था। परन्तु कोई देश दूसरे के घरेलू बाजार मे प्रतिस्पर्द्धा नही कर सकता था। उनमे आपस मे और भी कई शर्तें तय हुई जैसे पेटेन्ट का विनिमय तथा तात्रिक ज्ञान का प्रचार। इसी बीच मे लिनोलियम की बिक्री के लिए ग्रेट ब्रिटेन, जर्मनी, हालैंड, फ्रास, इटली के बीच लिनोलियम कार्टेल का निर्माण हुआ। मूल्यों का निर्धारण, घरेलू बाजार की स्वतन्त्रता तथा निर्यात पर नियत्रण इसकी खास खास शर्तें थी। इसी प्रकार इगलैंड तथा जर्मनी की दो प्रमुख फर्मों के बीच नकली रेशम से सम्बन्धित समझौता हुआ। दोनो फर्मो ने सम्मिलित रूप से कोलोन (Cologne) मे एक नए कारखाने का निर्माण किया।

उत्पादक संघों के गुण—

(१) इनका निर्माण अत्यन्त सरल होता है इसीलिए इनका प्रचलन सबसे अधिक है। इनके निर्माण मे सबसे बडी आसानी यह है कि व्यक्तिगत इकाइयो को अपनी स्वतन्त्रता का त्याग नही करना पडता है।

(२) सगठन की शर्तें आवश्यकतानुसार घटाई बढाई जा सकती है। अपने अत्यन्त साधारण रूप मे उत्पादक सघ एक साधारण सगठन मात्र होते है। परन्तु आवश्यकता पडने पर माल की किस्म, मात्रा तथा मूल्य इत्यादि से सम्बन्धित दूसरे नियम भी बनाये जा सकते हैं। इसमे उत्पादक सघो मे बडी लोच रहती है।

(३) कोई भी सदस्य किसी भी समय इसकी सदस्यता स्वीकार कर सकता है अथवा त्याग सकता है। इसमे भी सघो के निर्माण मे सहायता मिलती है।

(४) सघो का प्रबन्ध बहुत ही प्रजातन्त्रात्मक होता है सभी सदस्यो को अपनी बात कहने का अधिकार रहता है। तथा निर्णय बहुमत से ही लिए जाते है। इसमे इस बात की सम्भावना नहीं रहती कि कोई विशेष वर्ग दूसरो का अहित कर सके।

(५) उत्पादक सघ प्रतिस्पर्द्धा को कम करने मे काफी सफल हुए हैं इनके द्वारा बिक्री तथा वितरण के कार्य मे बडी आसानी होती है तथा विज्ञापन और बिक्री सम्बन्धी बहुत से खर्चों की बचत हो जाती है।

(६) उत्पादक सघ साख की किस्म के सुधार मे भी सहायता देते है वे प्राय खराब किस्म के माल पर रोक लगा देते है। तथा सामूहिक रूप से औद्योगिक अनुसधान की व्यवस्था भी करते है। इसके अतिरिक्त अनेक उत्पादको को एक साथ मिलने का अवसर प्राप्त होता है जिससे परस्पर उत्पादन सम्बन्धी सूचना का विनिमय होता है। तथा लोग एक दूसरे के ज्ञान और अनुभव से लाभ उठा सकते है।

(७) उत्पादक सघ व्यवसाइयो और सरकार के बीच मे मध्यस्थ का काम भी देते हैं। इससे सरकार को अपनी नीति के अमल करने म सहूलियत होती है क्योकि बहुत से स्वतन्त्र उत्पादको की अपेक्षा एक सघ से व्यवहार करने मे हमेशा अधिक सुविधा होती है।

(८) उत्पादक सघ पूर्ति पर नियन्त्रण रख कर मूल्यो के अनावश्यक उच्चावचन को रोक सकते है तथा भावो मे स्थिरता लाते है इस प्रकार बाजार की अनिश्चितता समाप्त होती है।

उत्पादक सघो के दोष—

(१) उत्पादक सघो का निर्माण जितनी आसानी से होता है उनका विघटन भी उतनी ही जल्दी हो जाता है। वे विपत्ति की सन्तान (Children of Distress) कहे जाते है, क्योकि आर्थिक सकट मे प्राय ही उनका निर्माण हो जाता है। परन्तु सकट समाप्त होते ही वे विघटित हो जाते हैं।

(२) उत्पादक सघो का सगठन अत्यन्त ढीला होने के कारण उत्पादन विधियों मे कोई सुधार नही हो पाता है। प्राय सघो का मुख्य कार्य उत्पादन घटा कर भाव ऊँच करना तथा इस प्रकार अपनी इका इयो को हानि से बचाना होना ह। इसीलिए उत्पादक सघो से उद्योगो को कोई स्थायी लाभ नही होता है।

(३) उत्पादक सघो का सगठन सुदृढ न होने के कारण बहुत से सदस्य मनमानी करने लगते हैं तथा सघ के नियमो का उल्लघन करने लगते है। सघ का अधिकार उनके व्यक्तिगत प्रबन्ध मे बिलकुल

नही रहता है। इसलिए वे पर्याप्त सीमा तक स्वतंत्र रहते हैं। उत्पादक सघो की यह एक बहुत बडी कमजोरी है जो उनके स्थायित्व म बाधक होती है।

(४) सघ प्राय ही दलबन्दी के अड्डे बन जाते हैं कुछ बड और शक्तिशाली सदस्य उस पर अपना अधिकार जमा लेते है तथा ऐसे नियमो व शर्तों का निर्माण करते ह जो उनके हित म हो। इससे छोटी छोटी इकाइयों को बडी हानि होती है। तथा उनकी स्वतन्त्रता छिन जाती है। उत्पादक सघ अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर पिछडे हुए देशों का शोषण करते हैं। वे प्राय अपनी शक्ति का दुरुपयोग मूल्य वृद्धि के रूप म करते है। छोटी छोटी नई इकाइया के पनपन की आशा समाप्त हो जाती है। उपभोक्ता इन शक्तिशाली सघों के हाथ की कठपुतली बन जाता है।

३—सघनन (Consolidation)

आन्तरिक तथा बाह्य (Internal and External) मितव्ययिताओं को प्राप्त करने के उद्देश्य से उद्योग की विभिन्न इकाइया (Units) म मिल कर एक सघ बनाती हैं जिसे सघनन (Consolidation) कहते है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है सघनन दो प्रकार के होते है —

(१) अपूर्ण सघनन (*Incomplete Consolidation*)

(२) पूर्ण सघनन (Complete Consolidation)

अपूर्ण सघनन म उद्योग की विभिन्न इकाइया (Units) का निजी अस्तित्व बना रहता है परन्तु पूर्ण सघनन म लगभग सभी इकाइया (*Units*) या एक आध को छोड कर अन्य सभी का अस्तित्व खत्म हो जाता है। अपूर्ण व पूर्ण सघननो का विस्तार पूर्वक विवेचन अगले पृष्ठो म किया गया है।

अपूर्ण सघनन (Incomplete Consolidation)

अपूर्ण सघनन तीन रूप म हो सकते है —

(१) ट्रस्ट या प्रन्यास (Trusts)

(२) समुदाय हित सयोजन (Community of Interest)

(३) होल्डिंग या सधारी कम्पनी (Holding Company)

(९) ट्रस्ट या प्रन्यास

अंग्रेजी शब्द 'ट्रस्ट' का शाब्दिक अर्थ विश्वास होता है। जब किसी सम्पत्ति को कुछ व्यक्तियो को इस उद्देश्य से सौप जाता है कि वे उसे दूसरो के हित अथवा किसी विशेष उद्देश्य जैसे धार्मिक (Religious) अथवा 'दान देने' (Chritable) इत्यादि के प्रयोग मे लावेंगे तो कहा जाता है कि अमुक सम्पत्ति 'ट्रस्ट' में दे दी गई है। इस प्रकार के 'ट्रस्ट' मन्दिरो अस्पतालो (Hospitals) तथा शिक्षा सस्थाओ मे पाए जाते है। परन्तु इस अध्याय में हमारा सम्बन्ध केवल 'सयोजन ट्रस्ट्स' (Combination Trusts) से है। जिनका निर्माण अमेरिका मे उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण में एकाधिकार के रूप मे हुआ था।

श्री राबर्टसन ने अपनी पुस्तक "दी कन्ट्रोल आव इन्डस्ट्री" मे 'ट्रस्ट' की व्याख्या इस प्रकार की है —

"इस प्ररूप मे, जो कि अब समाप्त हो गया है, विभिन्न कम्पनियो के अशधारी (Share Holders) कुछ 'ट्रस्टी' लोगो (Trustee) को अपना सम्पूर्ण स्टाक हस्तातरित कर देते है, जिनको उनका उपयोग करने का अधिकार प्राप्त था, तथा वे (Trustees) उसके (Share-Stock) बदले मे ट्रस्ट सार्टीफिकेट देते है, जिससे उनको होने वाला लाभाश (Dividend) मिलता रहे।"*

जिन विश्वासपात्र व्यक्तियो को सम्पत्ति सौपी जाती उन्हे 'ट्रस्टी' (Trustee) कहते है। और जो सम्पत्ति दी जाती है उसे "ट्रस्ट प्रौपर्टी" (Trust Property) कहते है। ट्रस्ट द्वारा प्राप्त ट्रस्ट सार्टीफिकेट अधिकारियो को 'बेनीफिसियरीज' (Benificiaries) कहते है।

---

* "Under this form, which is now obsolete, the shareholders of the separate companies, made over all their stock to a number of trustees, who received power of attorney to deal with it as they thought fit, and who issued instead of it trust certificates, carrying a claim to the payment of dividends to the original share-holders".

—Robertson · *"The Control of Industry,"* page 78.

ट्रस्ट के अन्तर्गत सम्पूर्ण सदस्य सार्थो को अपना आन्तरिक तथा वाह्य (Internal and External) नियन्त्रण ट्रस्ट के आधीन दे देना होता है। दूसरे शब्दो मे सम्पूर्ण सदस्यो के माल उत्पादन की विधियों (Productive Processes) से लेकर विपणि नीति (Marketing Policy) तक के अधिकार केवल एक नियन्त्रण मे होते है।

संगठन

साधारण रूप से ट्रस्टो का निर्माण इस प्रकार होता है। विभिन्न कम्पनियों के अंशधारी अपने सम्पूर्ण स्टाक ट्रस्ट को हस्तान्तरित कर देते है और इसके बदले मे उन्हे ट्रस्ट सार्टीफिकेट मिल जाते है। ट्रस्टो का प्रबन्ध कुछ विशिष्ट लोगो द्वारा होता है जिन्हे ट्रस्टी कहा जाता है। ये वास्तव मे सम्मिलित इकाइयो के प्रतिनिधि होते है। इस प्रकार एक बार ट्रस्टियो के चुन जाने पर सम्मिलित होने वाली इकाइयों के आन्तरिक तथा वाह्य प्रबन्ध पर ट्रस्टियो का अधिकार हो जाता है। इस प्रकार उनके समस्त कार्य का एकीकरण हो जाता है। ट्रस्ट तथा उत्पादक सघो मे यही सबसे बड़ा अन्तर है, कि उत्पादक सघ केवल ऊपरी एकता स्थापित करते है जब कि ट्रस्टों के द्वारा सम्मिलित इकाइयो का पूरे तौर पर एकीकरण हो जाता है।

ट्रस्टों के स्वरूप

(१) साधारण ट्रस्ट—इस प्रकार के ट्रस्टो का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इनका आरम्भ अमेरिका के मैसाचुसेट्स नामक राज्य मे हुआ था इसीलिए इनको 'मैसाचुसेट्स' ट्रस्ट भी कहते है। इनमे सम्मिलित होने वाली इकाइयो के अंशधारी अपने अंश ट्रस्टियों को सौप देते है और ट्रस्टी उनके बदले समस्त कम्पनियो का प्रबन्ध करते है।

(२) मताधिकारी ट्रस्ट—इस प्रकार के ट्रस्टों का निर्माण इसलिए होता है जिसमे कम्पनी के प्रबन्ध मे किसी प्रकार का परिवर्तन न हो। जब कोई अंशधारी अपने अंशो को दूसरे के हाथ बेच देता है तो प्राय. प्रबन्ध भी बदल जाता है। नई प्रबन्धक समिति नई नीति चलाती है और इस प्रकार उसमे बराबर परिवर्तन होता रहता है। इसलिए कभी कभी कम्पनी अपने उपनियम के अनुसार इस बात की व्यवस्था करती है कि कम से कम ५१ प्रतिशत अंश

किसी ट्रस्ट मे दे दिये जायँ। ऐसे अश ट्रस्ट के अश कहलाते हैं तथा उनका हस्तातरण नही हो सकता। इस सम्बन्ध मे अमेरिका की Pure Oil Co. की यह उपधारा विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 'समस्त अशों का बहुमत अश-धारियो द्वारा स्वीकृत स्थायी ट्रस्ट के पास रहेगा जिससे कम्पनी पर नियन्त्रण तथा समस्त सम्बन्धित लोगो की रक्षा तथा हित की पूर्ति के लिए जो नीति अपनाई गई है, उसकी सुरक्षा हो सके।" इन्हे मताधिकारी ट्रस्ट इसलिए कहते है क्योंकि ट्रस्ट को केवल बहुमत मताधिकार समर्पित किया जाता है।

(३) विनियोग ट्रस्ट या प्रबन्ध ट्रस्ट—ऐसे ट्रस्टो का निर्माण नव निर्मित कम्पनियो को सुगमता से पूंजी प्राप्त करने मे सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से होता है। इन ट्रस्टो के अशो (Shares) तथा ऋण पत्रों (Debentures) को जनता मे अधिक से अधिक मात्रा मे बेचा जाता है। इन अशो और ऋण पत्रो से एकत्रित राशि अन्य कम्पनियो के अश (Shares) खरीदने मे व्यय की जाती है। कभी-कभी राजकीय प्रतिभूतियाँ (Government Securities) भी खरीदी जाती है। किन किन प्रतिभूतियो व अशो मे ट्रस्ट के धन का विनियोग करना चाहिए, इस विषय का अन्तिम निर्णय सचालको की सभा (Board of Directors) निश्चित रूप से करती है।

विभिन्न कम्पनियो मे विनियोजित राशि पर ब्याज (Interest) मिलता है। इस सम्पूर्ण लाभाश (Dividend) और ब्याज को एकत्रित करके, सचालक गण अपने ट्रस्ट की उस वर्ष की उन्नति का अनुमान लगाते है। समयानुकूल वे अपने अशधारियो को लाभाश देते है। कभी-कभी 'ट्रस्ट' का विनियोजन कार्य इतना फैला होता है कि सचालक गणो की छोटी छोटी समितिया सुचारु रूप से प्रबन्ध नही कर पाती। ऐसी दशा मे सामूहिक प्रबन्ध (Group Management) का आश्रय लिया जाता है और फर्म या मैनेजिंग एजेंट को सुपुर्द कर दिया जाता है।

इस प्रकार के ट्रस्टो के निर्माण मे यह सुविधा रहती है कि वे सयुक्त स्कन्ध प्रमण्डल (Joint Stock Companies) अधिनियम के अन्तर्गत ही बडी सरलता से बनाये जा सकते है।

(४) स्थायी या इकाई ट्रस्ट—जिस समय सारे व्यवसायिक जगत मे अवसाद (Depression) फैल रहा था और चारो ओर कम्पनियो मे

असफल होने के समाचार प्राप्त हो रहे थे उस समय विनियोग ट्रस्ट (Investment trusts) की विशेष निर्बलता का प्रथम बार आभास मिला। लगभग प्रत्येक प्रकार की प्रतिभूतियो का मूल्य उस समय तक गिर चुका था। कम्पनियों के लाभाश दिन प्रतिदिन गिरते जा रहे थे। बहुत सी साधारण कम्पनियाँ तो सदैव के लिए समाप्त हो गई। उनमे विनियोजित ट्रस्ट का सब धन नष्ट हो गया। ऐसी दशा मे अन्य प्रकार के ट्रस्टो का उदय हुआ, जिन्हे स्थायी ट्रस्ट (Fixed Trusts) कहते है। कुछ अन्य लेखको ने इसी प्रकार के ट्रस्टो को इकाई ट्रस्ट (Unit Trusts) की सज्ञा दी है।

ऐसे ट्रस्टो का जन्म अमेरिका मे १९३१–३२ के लगभग हुआ। 'वाल स्ट्रीट अवसाद' (Wall Street Depression) जो कि व्यवसायिक जगत मे, भारतवर्ष के प्लासी के युद्ध के समान प्रसिद्ध है, सबसे अधिक स्थायी ट्रस्टो के निर्माण मे सहायक हुआ। अमेरिका मे लगभग १० करोड डालर की पूँजी के स्थायी ट्रस्ट स्थापित किये गये। इनमे सचालको द्वारा विनियोग निश्चित कर दिए जाते थे, अर्थात् प्रत्येक स्थायी ट्रस्ट केवल कुछ निश्चित कम्पनियो के अशो मे ही रुपया लगा सकता था। दूसरे इनकी अवधि भी निश्चित सी रहती है लगभग १० वर्ष या २० वर्ष। इस अवधि के पश्चात् ये स्थायी ट्रस्ट अपना व्यवसाय किसी अन्य नए ट्रस्ट को बेच देते है। विक्रय करते समय, मूल्य निर्धारण के लिए अधिकतर उस ट्रस्ट द्वारा विनियोजित अशो, प्रतिभूतियो और ऋणपत्रो का मूल्याकन कर लिया जाता है, और उसी मूल्य पर व्यवसाय बेच दिया जाता है।

इस प्रकार के स्थायी ट्रस्ट स्वय स्थायी नही होते, इन्हे स्थायी केवल इस अर्थ मे कहा जाता है कि जो कुछ रुपया विनियोजित किया जाता है वह कुछ निश्चित कम्पनियो मे किया जाता है और जब तक वह ट्रस्ट अपना व्यवसाय करता है, उस समय तक फिर विनियोजन मे कोई रूपान्तर नही किया जाता है।

ट्रस्ट तथा उत्पादक सघो मे अन्तर

उत्पादक सघ तथा ट्रस्ट दोनो ही सयोजन की प्रमुख प्रणालियाँ है परन्तु दोनो मे पर्याप्त अन्तर है, यह अन्तर इस प्रकार है —

[१] कार्टेल का इकाइयो पर बहुत सीमित अधिकार रहता है जो

विशेषकर मूल्य निर्धारण उत्पादन पर नियन्त्रण तथा वितरण इत्यादि तक ही सीमित रहता है परन्तु ट्रस्टो को आन्तरिक प्रबन्ध तक मे बडे ही व्यापक अधिकार प्राप्त हो जाते है। इस प्रकार ट्रस्ट जहाँ एक प्रकार का सघनन है कार्टेल केवल उनका सगठन मात्र है।

[२] कार्टेल प्राय अल्पकालीन तथा अस्थायी होते है, उनका निर्माण जितनी जल्दी होता है उतनी ही जल्दी वे समाप्त हो जाते हैं। परन्तु ट्रस्ट अधिक स्थायी होते हैं और एक बार बन जाने पर आसानी से समाप्त नही होते हैं।

[३] कार्टेल का उद्देश्य प्राय पूर्ति पर नियन्त्रण करके मूल्यो को बढाना होता है जब कि ट्रस्टों का उद्देश्य प्रबन्ध के एकीकरण द्वारा लम्बे पैमाने के उत्पादन के लाभ प्राप्त करना होता है।

[४] कार्टेल मे सम्मिलित होने वाली इकाइयो का व्यक्तिगत स्वामित्व कायम रहता है परन्तु ट्रस्ट मे यह अधिकार समाप्त हो जाता है इसीलिए ट्रस्टो की अपेक्षा कार्टेल अधिक आसानी से बन जाते हैं।

[५] कार्टेल का क्षेत्र अधिक व्यापक हो सकता है। उसके सदस्यो की सख्या अधिक होती है। राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर भी अनेक उत्पादक सघो का निर्माण हुआ है। परन्तु ट्रस्टो मे सम्मिलित इकाइयो की सख्या प्राय सीमित होती है, क्योकि सम्मिलित होने वाली इकाइयो को अपनी स्वतन्त्रता का परित्याग करना पडता है।

[६] कार्टेल के सगठन मे काफी लोच होती है। उसकी शर्ते आवश्यकतानुसार शिथिल अथवा दृढ की जा सकती है। कभी-कभी तो यह एक साधारण मान्यताओ के रूप मे ही होती है। परन्तु अन्य अवसरो पर उन्हे केन्द्रीय बिक्री के रूप मे दृढ किया जा सकता है। ट्रस्टो मे इस प्रकार की लोच नही है।

ट्रस्टो का विकास

'ट्रस्टो' का निर्माण सर्व प्रथम अमेरिका मे 'स्टेन्डर्ड आयल ट्रस्ट' के नाम से १८७९ मे हुआ और जिसका पुनर्सगठन (Re-organisation)

१८८२ में हुआ। 'दी काटन आयल ट्रस्ट' तथा 'लिनसीड' आयल ट्रस्ट' का निर्माण क्रमश १८८४ तथा १८८५ में हुआ। १८८७ में 'ह्विस्की ट्रस्ट' (Whisky Trust), 'लीड ट्रस्ट' (Lead Trust) तथा 'शुगर ट्रस्ट' का निर्माण हुआ। इन्होंने बहुत काल तक ऊँचे मूल्यों को बनाए रखा।

परन्तु अधिक शक्तिशाली होने पर इन ट्रस्टो ने अमेरिका के बाजारों पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया और जनता का शोषण (Exploitation) करने लगे। फलत जनता इस प्रकार के सयोजनो का विरोध करने लगी और वहाँ की राज्य सरकार को ऐसे सयोजनो के विरुद्ध कानून पास करने के लिए बाध्य कर दिया। सन् १८९० में 'शरमैन एन्टी ट्रस्ट एक्ट' (Sherman Anti-Trust Act) पास किया गया जिसके अनुसार किसी भी प्रकार का सयोजन अवैध (Illegal) घोषित कर दिया गया। फलस्वरूप 'शुगर ट्रस्ट' तथा स्टैन्डर्ड आयल ट्रस्ट, क्रमश १८९० तथा १८९२ में समाप्त हो गए। इसके अतिरिक्त ऐसे बहुत से ट्रस्ट तथा सहायक कम्पनियाँ भी समाप्त हो गई।

१९१४ में 'क्लेयटन एक्ट' (Clayton Act) तथा फेडरल ट्रेड कमीशन एक्ट' बनाए गए। 'क्लेयटन एक्ट' के अनुसार वे सभी क्रियाएँ राज्य द्वारा दण्डनीय थी जो बाजार की प्रतिस्पर्द्धा (Competition) को किसी प्रकार भी कम करने की चेष्टा में की जाती थी। १९१८ म वेब एक्ट' पास किया गया जिसके अनुसार ऐसे सयोजन या पार्षद (Association) बनाए जा सकते थे जिनका ध्येय निर्यात व्यापार को बढाना होता था।

ट्रस्टों के लाभ—सयोजन की प्रणाली के रूप में ट्रस्टों के निम्नलिखित गुण होते है —

(१) इनका सगठन अधिक शक्तिशाली तथा स्थायी होता है। इस प्रकार दीर्घकालीन योजनाएँ बनाई जा सकती है, तथा उन्हे प्रभावपूर्ण ढग से लागू भी किया जा सकता है।

(२) इसके द्वारा लम्बे पैमाने की उत्पत्ति के समस्त लाभ प्राप्त हो जाते है। उत्पादन, प्रबन्ध इत्यादि मे काफी बचत हो जाती है। केन्द्रीय बिक्री के द्वारा बिक्री सम्बन्धी व्यय तथा विज्ञापन व्यय में भी काफी बचत हो जाती है।

(३) ट्रस्ट छोटी-छोटी, अनार्थिक अथवा अनुपयुक्त स्थान पर स्थित कारखानों को बन्द कर सकता है तथा उनकी पूँजी का उपयोग ऐसे कारखानों के विकास में कर सकता है जिनकी स्थिति तथा अन्य सुविधाएँ अधिक उपयुक्त हों।

(४) उत्पादन की प्रमापित विधियों का उपयोग किया जा सकता है। तथा विभिन्न औद्योगिक इकाइयों की लागत की तुलना करने के लिए तुलनात्मक लागत के सिद्धान्त का उपयोग किया जा सकता है। साथ ही साथ विभिन्न इकाइयों के बीच पूर्ण सहयोग तथा समन्वय स्थापित किया जा सकता है।

(५) साधनों के विकास के साथ साथ ट्रस्ट अधिक उत्तम मशीनों की स्थापना कर सकता है। अनुसधान कार्य भी अधिक सुविधापूर्वक किया जा सकता है। यद्यपि कार्टेल से भी यह सब सम्भव है परन्तु ट्रस्ट में यह सब अधिक प्रभावपूर्ण ढग से किया जा सकता है।

(६) ट्रस्टों में प्रबन्ध का एकीकरण हो जाने से इकाइयों के व्यक्तिगत लाभ की समस्या समाप्त हो जाती है। क्योंकि लाभ का विभाजन सामूहिक रूप में होता है। उत्पादक सघों की भाँति उनमें दलबन्दी तथा सघ के नियमों का अतिक्रमण करके विशेष लाभ प्राप्त करने की प्रवृत्ति नहीं पाई जाती।

दोष—

(१) "गील्ड्स के अनुसार ट्रस्टों का सबसे बडा दोष यह है कि सस्थापक अथवा ट्रस्टी मिथ्या वर्णन तथा तथ्यों का छिपाकर विनियोक्ताओं का शोषण करते हैं तथा अपने अन्य मित्रों के लिए विशेष लाभ प्राप्त करते हैं।" ऐसा ही दोष भारतीय प्रबन्ध अभिकर्ताओं में भी देखा गया है।

(२) इसमें अति-पूँजीकरण का बडा डर रहता है। अनेक कारखानों के कारण उनकी सामूहिक कीमत का पता लगाना अत्यन्त कठिन होता है तथा प्राय समस्त उत्पादकों को कीमत से कहीं अधिक मूल्य के अश निकाल दिए जाते हैं। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में

औद्योगिक सयोजन तथा ट्रस्टो के कमीशन के समक्ष गवाही देते हुए एक डिस्टिलरी (Distillery) के स्वामी ने बतलाया कि प्रत्येक डिस्टिलरी की वास्तविक कीमत से चौगुने मूल्य के ट्रस्ट सार्टीफिकेट निकाले गए थे।

(३) ट्रस्ट प्राय· अपनी सामूहिक शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। वे अनुचित रूप से उत्पादन घटा कर मूल्यो मे वृद्धि कर देते हैं। प्राय· वे विदेशो मे प्रतिस्पर्द्धा करने के लिए देश के अन्दर अधिक मूल्य लेते है। अत्यधिक शक्तिशाली ट्रस्ट राजनैतिक क्षेत्र मे भी हस्तक्षेप करने लगते है तथा सरकार के निर्माण मे बडा ही प्रभावपूर्ण भाग लेते है।

(४) इनके द्वारा ट्रस्ट के बाहर छोटी छोटी इकाइयो का शोषण होने लगता है ट्रस्ट ऐसी इकाइयों से अनुचित प्रतिस्पर्द्धा आरम्भ कर देते हैं। वे प्राय बैंक, बीमा कम्पनियों तथा यातायात कम्पनियो पर काफी प्रभाव रखते है तथा अपने प्रतियोगियो के खिलाफ विशेष सुविधाये ही नही प्राप्त करते बल्कि गुप्त समझौतो द्वारा उनके मार्ग मे रोडे भी उत्पन्न कर देते है। प्रो० कामन्स (Commons) के मतानुसार वे प्रतियोगी सम्थान को साख मे कमी करके, व्याज की दर बढा कर अथवा दिए हुए ऋणो को वापस लेकर नष्ट कर देते हैं तथा बाद मे उसे बडी सस्ती दर पर खरीद लेते है।

प्रोफेसर क्लार्क (J B Clark) ने तो यहाँ तक लिखा है कि ट्रस्ट कभी कभी उत्तम कार्यक्षमता वाली औद्योगिक इकाइयों को भी समाप्त करने मे सफल हो जाते है। उन्होंने इसकी तीन विधियो का वर्णन किया है। पहला, वे ऐसे लोगो को विशेष कमीशन देते है जो केवल ट्रस्ट का ही माल बेचते है। इस प्रकार प्रतियोगियो के माल की बिक्री कम कर देते है। दूसरा, जहाँ पर प्रतियोगियो का माल बिकता हो उस क्षेत्र मे लागत से भी कम मूल्य पर माल बेचते हैं तथा हानि को अन्य क्षेत्रो से पूरा करते हैं। तीसरा, यदि प्रतियोगी किसी एक किस्म का ही माल बनाता है तो उस किस्म की कीमत गिरा कर हानि को अन्य किस्मों से पूरा करते जिनमे प्रतियोगिता की कमी है।*

* *Quoted by Shields* Evolution of Industrial Organisation.

इसी प्रकार संयुक्त राष्ट्र के फेडरल ट्रेड कमिश्नर ने अपनी सन् १९१८ की रिपोर्ट में गोश्त पैक करने की कम्पनियों के शक्तिशाली संयोजन के सम्बन्ध में लिखा था—ये अपनी शक्ति का दुरुपयोग पशुओं के बाजार को अनुचित तथा अवैध ढंग से प्रभावित करने, अन्तर-राज्य तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियन्त्रित करने, बन्द गोश्त तथा अन्य खाद्य सामग्री भावों को नियन्त्रित करने, उत्पादक तथा उपभोक्ता दोनों को ही धोखा देने, प्रभावपूर्ण प्रतिस्पर्द्धी को नष्ट करने, रेलों, स्टाक यार्ड कम्पनियों तथा नगर पालिकाओं से विशेष सुविधा प्राप्त करने, तथा अनुचित लाभ कमाने में करती हैं।"‡

इन्हीं दोषों के कारण अमेरिका में सन् १८९० में शर्मन एण्टी ट्रस्ट नियम (Sherman Anti Trust Law) पास करके ट्रस्टों को अवैध घोषित कर दिया गया। सुप्रीम कोर्ट ने अपने फैसले में ट्रस्टों को अवैध ठहराया। इसके पश्चात् ही ट्रस्टों का विकास रुक गया। अनेक ट्रस्टों को सधारी प्रमण्डलों (Holding Companies) में परिवर्तित कर दिया गया अथवा अन्य प्रकार से संघनित कर दिया गया।

२—समुदाय हित संयोजन (Community of Interests Combination)

सन् १८९० में अमेरिका में 'शरमैन एण्टी ट्रस्ट एक्ट' द्वारा ट्रस्टों का निर्माण अवैध (Illegal) घोषित कर दिया गया था। अत उद्योगों को विनाश से बचाने के लिए एक नवीन प्रकार के संयोजन का निर्माण किया गया जिसका नाम 'समुदाय हित' संयोजन पड़ा।

ओवन्स (Owens) ने समुदाय हित की परिभाषा इस प्रकार की है —

'जब एक ही व्यक्ति के हाथ में कई कम्पनियों के अंश आ जाते हैं तो उन कम्पनियों के बीच एकता पूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।'*

ऐसे संयोग निगमों (Corporations) के पारिवारिक दल या आर्थिक

---

‡ *Quoted by* · British Committee on Trusts

* ("A harmonious relationship established between two or more companies as a result of the ownership of their stock by the same persons ")

दल मे भी हो सकते हैं। १९३५ मे भी रॉक फैलर दल (Rock Feller Group) के अन्तर्गत अमेरिका मे एक बैंक व छ आयल कम्पनियाँ थी। उसी वर्ष मैलन (Mellon) फेमिली ग्रूप के अन्तर्गत 'मैलन नेशनल बैंक', दी यूनियन ट्रस्ट कम्पनी' दो गैस तथा विद्युत कम्पनियाँ तथा नौ औद्योगिक कम्पनियाँ थी। शक्तिशाली आर्थिक ग्रूप 'जे०पी० मौरगन्स' (J.P. Morgans) का काफी प्रभाव व नियन्त्रण था। इनके नियन्त्रण मे ८९ कम्पनियों में १२६ सचालक पद (Directorships) थे, जिनके आर्थिक साधन बीस मिलियन डालर से भी अधिक थे। इतना ही नही मौरगन्स का आर्थिक सम्बन्ध ब्रिटेन की प्रसिद्ध शक्तिशाली कम्पनी 'लॉर्ड काटो' (Lord Catto) से भी था, जिसका हित भारत की प्रसिद्ध प्रबन्ध अभिकर्त्ता सार्थ 'एण्ड्रयू यूल एण्ड कम्पनी' मे था।

इन सयोजनो मे केन्द्रीय नियन्त्रण अथवा प्रबन्ध नही होता है, बल्कि विभिन्न कम्पनियों के सचालक व्यवसायिक तथा औद्योगिक नीति की महत्वपूर्ण बातों पर विचार करने के पश्चात् एक निर्णय करते है। यह निर्णय उद्योग के विभिन्न सदस्यों के हित के लिए होता है। इस प्रकार के सयोजन मे एक कम्पनी के सचालक अथवा अन्य पदाधिकारी अन्य कम्पनियो की सचालक सभा (Board of Directors) मे सम्मिलित कर लिए जाते हैं। इस प्रणाली को *'इटरलौकिंग डायरेक्टोरेट'* (*Interlocking Directorate*) भी कहते है। *'प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली तथा समुदाय हित सयोजन'* मे काफी समानता पाई जाती है। अत ये भारतवर्ष मे भी बहुत सख्या मे पाए जाते हैं।

३—होल्डिंग या संधारी कम्पनी (Holding Company)

अपूर्ण सघनन का तीसरा प्ररूप सधारी या सूत्रधारी कम्पनी है। सधारी कम्पनियों का निर्माण सबसे पहले अमेरिका मे १९वी शताब्दी के अन्त मे जब कि वहाँ ट्रस्टों को अवैध (Illegal) घोषित कर दिया गया था, हुआ। भारतवर्ष मे इनका निर्माण १९१३ से इन्डियन कम्पनीज एक्ट बनने के बाद हुआ।

विभिन्न कम्पनियो मे हितो का एकीकरण करने के उद्देश्य से कभी-कभी एक पृथक कम्पनी का निर्माण किया जाता है जो विभिन्न कम्पनियो (जिन पर वह नियत्रण रखना चाहती है) के बहुमत देने वाले अशो को खरीद लेती हैं।

ऐसी कम्पनी को सधारी या सूत्रधारी कम्पनी (Holding Company) कहते है। कम्पनियाँ, जिन पर नियन्त्रण किया जाता है यद्यपि वे अपना अस्तित्व पृथक ही रखती हैं फिर भी 'होल्डिंग कम्पनी' के इशारो पर ही नाचती है।

'होल्डिंग कम्पनी' की नियन्त्रित कम्पनियो को 'सहायक कम्पनियाँ' (Subsidiary Companies) कहते है।

इन्डियन कम्पनीज एक्ट १९५६ के अनुसार कोई भी कम्पनी जो अन्य कम्पनियो के अशो (Shares) को किसी मनोनीत व्यक्ति के माध्यम से धारण करती है, तथा

(१) ऐसे क्रय किए हुए अश कुल निर्गमित (Issued) अशो के ५० % से अधिक हो,

(२) क्रय किये हुए अशो पर ५० % से अधिक मताधिकार प्राप्त हो,

(३) इस कम्पनी को अन्य कम्पनियों की सचालक सभा (Board of-Directors) में बहुसख्य (Majority) सचालको को नियुक्त करने का अधिकार प्राप्त हो तो ऐसी कम्पनी को 'होल्डिंग या सूत्रधारी' कम्पनी कहते हैं।

श्री ए० डी० क्लाउड ने होल्डिंग कम्पनी की व्याख्या इस प्रकार की है –

सच्चे अर्थ मे होल्डिंग कम्पनी उन कम्पनियो को कहते है जो दूसरी कम्पनियो को अपने हाथ में लिए बिना केवल उनके अशो का स्वामित्व खरीद लेती है। उनका काम शुद्ध रूप मे प्रशासकीय होता है तथा इसकी अनुमति उन्ही राज्यो मे दी जाती है जहाँ कम्पनियों द्वारा दूसरी कम्पनियो के अशो को खरीदने पर प्रतिबध नही होता। स्वामित्व के अधिकार एक विशेष अधिकारी द्वारा सम्पन्न किए जाते हैं। साधारण रूप से जिन कम्पनियो के अश वे खरीदती हैं उनमें उद्देश्य की अधिक विभिन्नता की अनुमति नही दी जाती है।*

---

* "Holding companies, strictly speaking are those which are formed to hold stock of other corporations while undertaking no operations themselves. They are purely administrative in function and are permitted in States where corporations are not prohibited from holding stock in other corporations Rights of ownership are exercised by a duly appointed officer of the holding company In general they are not permitted too great a diversity in the purposes of the companies whose stocks they own" A. D Cloud Quoted by Kimball and Kimball *Principles of Industrial Organisation* Page 118

होल्डिंग कम्पनी के उद्देश्य

(१) विभिन्न कम्पनियो का अस्तित्व पृथक होते हुए भी उनके प्रबन्ध एव औद्योगिक नीति मे केन्द्रीयकरण लाना,

(२) आपसी प्रतियोगिता को दूर करना, तथा

(३) अपनी पूजी के लाभ का विनियोग अन्य साधनो मे करना।

संघारी कम्पनियों के प्ररूप

सघारी कम्पनियाँ अनेक प्रकार की होती है परन्तु सुविधा के लिए हम उनके निम्नलिखित वर्गीकरण कर सकते हैं :—

[१] प्रमुख तथा मध्यस्थ संघारी कम्पनी (Primary and Subsidiary holding company)—कभी कभी एक सघारी कम्पनी के मातहत कई कम्पनियाँ होती ह तथा उन कम्पनियो के अधीन भी कई कम्पनियाँ होती है। इस प्रकार कम्पनियो की अधीनता की तीन सीढियाँ होती हं। सबसे ऊपर की सीढी पर स्थित कम्पनी जो स्वय किसी की अधीन नही होती प्रमुख सघारी कम्पनी कहलाती है, बीच की सीढी पर स्थित कम्पनी जो स्वय ऊपर की कम्पनी की अधीनस्थ शाखा होती है तथा नीचे की कम्पनियो की प्रमुख होती है, मध्यस्थ सघारी कम्पनी कहलाती है। नीचे के चार्ट मे विस्तृत विवरण देखिए :—
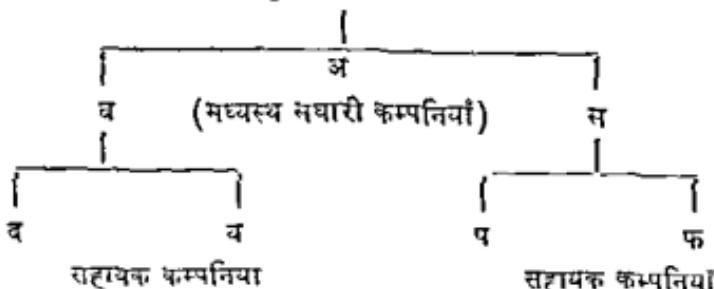
[२] जनक तथा परिणाम संघारी कम्पनियाँ (Parent and Consolidated or offspring holding company)—जब सघारी कम्पनी की स्थापना पहले होती है तथा बाद मे वह अन्य कम्पनियों

को खरीदती है तो उसे जनक संघारी कम्पनी कहते है। जब अनेक कम्पनिया आपस मे मिलकर अपने अधिकार किसी नई कम्पनी को सौप देती है तो यह नई संघारी कम्पनी, परिणाम सघारी कम्पनी कहलाती है, क्योकि यह अधीनस्थ कम्पनियों द्वारा उत्पन्न होती है।

(२) अर्थ तथा स्वामित्व संघारी कम्पनी (Finance and Proprietory holding Companies)—जब कोई कम्पनी अपने अधीन कम्पनियो पर नियन्त्रण नही रखना चाहती बल्कि उनकी आर्थिक आवश्यकताओ को पूरा करके ही लाभ प्राप्त करना चाहती है तो उसे अर्थ सघारी कम्पनी कहते है। ऐसी कम्पनियाँ मन्दी के समय किसी कम्पनी के अश खरीद लेती है तथा इस प्रकार उस पर अधिकार जमा लेती है। परन्तु शीघ्र ही उचित मूल्य प्राप्त होने पर ये अशो को बेच भी देती है इसीलिए इन्हे अर्थ सघारी कम्पनी कहते है। जब अंश खरीदने का उद्देश्य कम्पनी पर अधिकार करना होता है तो उसे **स्वामित्व सघारी** कम्पनी कहते हैं। इनका स्वामित्व अधिक स्थायी होता है।

(४) शुद्ध तथा संचालक संघारी कम्पनी (Pure and Operating holding Company) — कभी-कभी बहुमत अश पर स्वामित्व होते हुए भी सघारी कम्पनी अधीनस्थ कम्पनी के आन्तरिक मामलो मे हस्तक्षेप नही करती। वह उस पर केवल अपना स्वामित्व मात्र रखती है। ऐसी कम्पनी को शुद्ध सघारी कम्पनी अथवा अव्यवसायिक सघारी कम्पनी कहा जा सकता है। परन्तु जब वह अधीनस्थ कम्पनी के कामो मे सक्रिय भाग लेती है तो उसे सचालक सघारी कम्पनी कहते है।

ट्रस्ट तथा संघारी प्रमण्डलों में अन्तर— ट्रस्ट तथा सघारी प्रमण्डल बहुत सी बातो मे एक दूसरे से मिलते जुलते है। परन्तु फिर भी उनमे निम्नलिखित अन्तर पाया जाता है :—

ट्रस्ट	सघारी प्रमण्डल
१ इनकी उत्पत्ति पारस्परिक समझौते द्वारा होती है।	१ इनकी उत्पत्ति अंशों के क्रय के द्वारा होती है। एक कम्पनी दूसरे के बहुमत अंशों को खरीद कर उसका स्वामित्व प्राप्त कर लेती है।
२ इकाइयों को अलग होने का अधिकार होता है। उनकी स्थिति स्वतन्त्र रहती है।	२ मातहत कम्पनी की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है। उसे अलग होने का तब तक अधिकार नहीं होता जब तक सघारी कम्पनी उसके अंश बेच न दे।
३ यह एक अपूर्ण सघनन है क्योंकि सम्मिलित इकाइयों की स्वतन्त्रता कायम रहती है।	३ यह पूर्ण सघनन है क्योंकि सम्मिलित इकाइयों की स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है तथा समस्त अधिकार सघारी कम्पनी के हाथ मे चले जाते है।
४ सम्मिलित होने वाली इकाइयों का पद समानता का होता है।	४ मातहत इकाइया, प्रधान कम्पनी के अधीन हो जाती है।
५ सदस्य इकाइयों की सख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है।	५ सदस्य इकाइयों की सख्या अपेक्षाकृत कम होती है तथा वह प्रधान कम्पनी के साधनों पर निर्भर रहती है।
६ प्रबन्धक ट्रस्ट को वही अधिकार प्राप्त होते है जो समझौते द्वारा दिये जाते है।	६ प्रधान कम्पनी को मातहत कम्पनी के अन्तर्नियमों के अनुसार समस्त अधिकार मिल जाते हैं। वे उसमे आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी कर सकते है।

होल्डिंग कम्पनी के लाभ

(१) वैधानिक अस्तित्व—होल्डिंग कम्पनियो का निर्माण कम्पनीज एक्ट के अन्तर्गत होने के कारण इनका अस्तित्व स्थायी एव वैधानिक होता है। यह लाभ अन्य सयोजनो मे उपलब्ध नही होता। क्योकि इनका निर्माण कम्पनी एक्ट के अन्तर्गत न होते हुए अनुबन्ध (Contract) के अनुसार होता है।

(२) मितव्ययिता—सहायक कम्पनियो (Subsidiary Co.) के प्रबन्ध एव सचालन सम्बन्धी व्यय होल्डिंग कम्पनी द्वारा सामूहिक रूप मे किये जाते हैं। इस प्रकार आन्तरिक व्ययो मे मितव्ययिता आ जाती है और निरर्थक व्यय नही करने पडते।

(३) प्रतियोगिता का अन्त—होल्डिंग कम्पनी अपनी सहायक कम्पनियो मे सहकारिता एव सहचर्य की भावना उत्पन्न कर लेते है। इससे आपसी प्रतियोगिता समाप्त हो जाती है।

(४) पूंजी जमा करने मे सुविधा—होल्डिंग कम्पनियो के प्रवर्तक तथा निर्माणकर्ता बडे धनवान व्यक्ति होते हैं। उनका सम्बन्ध देश के बडे-बडे पूंजीपतियो से होता है। अत वे बडी सुगमता से अशो (Shares) व ऋण-पत्रो (Debentures) का निर्गमन करके पूंजी प्राप्त कर सकते है।

(५) स्थायी अस्तित्व—होल्डिंग कम्पनियो का निर्माण सदस्यो की स्वेच्छा से नही होता, अत इनका समापन भी सदस्यो की स्वेच्छा पर निर्भर नहीं होता। इस प्रकार इसका (Holding Co.) अस्तित्व अपेक्षाकृत स्थायी होता है।

(६) तान्त्रिक एव औद्योगिक लाभ—होल्डिंग कम्पनी के अतर्गत अनेक सहायक कम्पनियाँ होने के कारण तान्त्रिक एव औद्योगिक विशेषज्ञो की सेवाएँ प्राप्त की जा सकती है और इन सेवाओं का लाभ सभी सहायक कम्पनियो को प्राप्त हो सकता है। होल्डिंग कम्पनी अपनी सहायक कम्पनियो का कुछ धन चन्दे के रूप मे ले सकती है जो कि तान्त्रिक एव औद्योगिक अनुसन्धान कोष म जमा किया जा सकता है और जिसमे से तान्त्रिक एव औद्योगिक अनुसधान सम्बन्धी व्ययो को पूरा किया जा सकता है।

(७) सहायक कम्पनियों का पृथक अस्तित्व—होल्डिंग कम्पनी के अन्तर्गत अनेक सहायक कम्पनियाँ होते हुए भी सहायक कम्पनियो का अस्तित्व पृथक ही रहता है। यदि किसी एक कम्पनी की ख्याति गिर भी जाती है तो उसका धब्बा अन्य कम्पनियो पर नही लगता।

होल्डिग कम्पनियों की हानियाँ

(१) केन्द्रीय नियन्त्रण—होल्डिग कम्पनी की व्यवस्था के अन्तर्गत नियन्त्रण का केन्द्रीयकरण हो जाता है। इसके अनेक लाभ होते हुए भी कुछ हानियाँ भी है जो राष्ट्रीय हित के सर्वथा विरुद्ध है।

(२) देश की आर्थिक नीति पर नियन्त्रण—होल्डिग कम्पनियो के निर्माण से देश का आर्थिक कलेवर कुछ सीमित व्यक्तियो के हाथ मे चला जाता है। ये व्यक्ति अपनी असीमित शक्ति के कारण देश की आर्थिक नीति को भी प्रभावित करने मे सफल होते है।

(३) विनियोक्ताओं को हानि—होल्डिग कम्पनी के प्रवन्धकगण विनियोक्ताओं या अशधारियो को कम्पनी की क्रियाओं से अनभिज्ञ रखते है। ये लोग सहायक कम्पनियो से होने वाले लाभ का एक बहुत बडा भाग स्वय लेते है। इससे विनियोक्ताओ को हानि होती है।

बम्बई शेयर होल्डर्स एसोसियेशन के अनुसधान के अनुसार शुद्ध लाभ का वितरण इस प्रकार होता है —

कम्पनियो की सख्या	उद्योग	प्रबन्धकर्त्ताओ का लाभाश	अशधारियो का लाभाश
२२	सूती वस्त्र उद्योग, अहमदाबाद	७०·५%	३१%
३९	सूती वस्त्र उद्योग, बम्बई	३८·८%	४६·२७%
१६	जूट उद्योग	३६·९%	७८%
१४	कलकत्ता	५४·२%	७३ ३%

(४) प्रतिस्पर्धा का अन्त—होल्डिंग कम्पनियाँ अधिक प्रभावशाली होने पर अपने उद्योग की अन्य कम्पनियों का जड से उन्मूलन करने मे सफल होते हैं। इस प्रकार प्रतियोगिता का बिल्कुल अन्त हो सकता है। परन्तु औद्योगिक उन्नति के लिए स्वस्थ प्रतियोगिता का होना आवश्यक है।

(५) अति पूँजीकरण (Over Capitalisation)—होल्डिंग कम्पनियो मे साधारण रूप से पूँजी की अधिकता रहती है। इससे विनियोक्ताओ को लाभांश कम दर से मिल पाता है इससे विनियोक्ताओ को हानि होती है।

पूर्ण संघनन (Complete Consolidation)

जब समान व्यवसाय करने वाले दो या दो से अधिक कम्पनियाँ एक दूसरे के साथ पूर्णरूपेण विलीन हो जाती है तो उसे पूर्ण सघनन कहते है। पूर्ण सघनन विभिन्न प्रकार से व्यवसायिक जगत मे होता है। मुख्यतया भारतवर्ष मे दो प्रकार के पूर्ण सघनन पाए जाते है। प्रथम सम्मिश्रण (Amalgamation) और द्वितीय सविलयन (Absorption)।

(१) सम्मिश्रण (Amalgamation)

जब समान व्यवसाय करने वाली दो या दो से अधिक कम्पनियाँ एक साथ मिल जाये और उनके मिलने से एक नवीन कम्पनी का निर्माण हो, तो ऐसे सघनन को सम्मिश्रण (Amalgamation) कहते हैं। इस प्रकार की सघनित (Amalgamated) कपनी के निर्माण करने मे जो कपनी भाग लेती है, उनका निस्तार (Liquidation) करके नवीन, (बनने वाली) कम्पनी को बेच दिया जाता है। नवीन कम्पनी, मिश्रित होने वाली सम्पूर्ण कम्पनियो की परिसम्पत (Assets) और देयता (Liabilitis) को पूरा-पूरा भार लेती है। उनकी मिश्रित पूँजी नवीन सम्मिश्रित कम्पनी की आधार शिला बनाती है। निस्तारण होने वाली कपनियो (Liquidating Companies) के अशधारियो (Share holders) को नवीन कपनी के पूर्णतया परिदत्त अश (Fully paid Shares) प्राप्त हो जाते हैं।

सम्मिश्रण के लाभ

(१) सम्मिश्रण द्वारा प्रबन्ध व्यय व कार्यालय व्ययों मे काफी बचत होने की आशा रहती है।

(२) गला काट स्पर्धा (Cut throat Competition) का भय नही रहता। इसलिए उचित लाभ कमाने की आशा रहती है।

(३) उस व्यवसाय विशेष मे, विपणि नियन्त्रण (Market Control) करने का बहुत कुछ अवसर मिल जाता है जो सम्मिश्रण कम्पनी जितनी अधिक शक्तिशाली होगी, उतना ही अधिक प्रभाव उसकी विपणि मूल्य (Market Price) पर पडेगा। शक्तिशाली सम्मिश्रण कम्पनियो के लिए सीमित क्षेत्र मे एकाधिकार (Monopoly) प्राप्त करने मे विशेष सुविधा रहती है।

(२) संविलयन (Absorption)

जब कोई प्रमन्डल अच्छी प्रकार से चलता होता है, और कोई अन्य प्रमन्डल आर्थिक व व्यवसायिक सुविधाओ मे फँसा होने के कारण उस अच्छे प्रमन्डल मे विलीन होने का प्रस्ताव करे या वह स्वय किन्ही शर्तों पर दुविधा ग्रस्त प्रमन्डल का कारोबार अपने मे मिला लें तो ऐसी दशा को सविलयन (Absorption) कहते है। इस प्रकार के सविलयन साधारणतया प्रत्येक देश मे होते है। उद्देश्य इस स्थान पर भी व्यय कम करना और अधिक से अधिक लाभ कमाना होता है। दोनो प्रमन्डलो के विलीन कर लेने से व्यवसाय के प्रबन्ध मे बहुत बचत हो जाती है। बडे–बडे स्थानो की पूर्ति के लिए दो–दो आदमियों के स्थान पर एक–एक आदमी नियुक्त किया जाता है। जैसे इन्जीनियर का उदाहरण ले लीजिये। दोनो कम्पनी जब तक अलग–अलग थी, उस समय उन्हे अलग–अलग इन्जीनियर लगाने पडते थे। किन्तु व्यवसाय सविलयन कर लेने के उपरान्त एक ही इजीनियर से काम चला लिया जाता है। आवश्यकतानुसार छोटे पद के कर्मचारी बढाकर एक ही इन्जीनियर से काम चल जाता है।

भारतवर्ष मे सम्मिश्रण और सविलयन की उतनी 'आवश्यकता' अनुभव नही की जाती जितनी कि और देशो मे की जाती है। इसका एक मुख्य कारण यह

है कि हमारे देश मे अधिक्तर वडी–बडी सयुक्त स्कध प्रमन्डलो का प्रबन्ध कुछ गिने चुने व्यवसाइयो के हाथ मे है। जिन्होने मुख्यतया अपनी प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियाँ *(Private Limited Companies) बना रक्खी है। वे अपनी* इन निजी कम्पनियो की आर्थिक शक्ति और व्यक्तिगत ख्याति के आधार पर अनेकानेक सार्वजनिक कपनियाँ (Public Limited Companies) का व्यवसाय अपने नियन्त्रण मे ले लेते है ये निजी कम्पनियाँ अपने आपको प्रबन्ध अभि कर्ताओ के रूप मे व्यावसायिक जगत के समक्ष प्रस्तुत करते है। उन्हे जब किसी एक दो कम्पनियो का प्रबन्ध प्राप्त हो जाता है तो वे अन्य सार्वजनिक कम्पनियाँ *अन्य क्षेत्रो मे स्थापित करना प्रारम्भ कर देते है।*

भारतवर्ष के व्यवसायिक व औद्योगिक विकास के इतिहास का अध्ययन करने से बडी सरलतापूर्वक पता लग जाता है कि किस प्रकार उन प्रारम्भिक औद्योगिक विकास के दिनो मे जब कि जनता (Public) की उद्योगो मे कोई दिलचस्पी *नही थी और नए–नए धन्धे चलाने के बडे–बडे मिल्स (Mills) व निर्माणी* इकाइयाँ स्थापित करने के लिए जनता रुपया देने को तत्पर नही थी, उस समय इने–गिने व्यवसाइयो ने ही सहायता पहुँचाई थी। उस समय की अनेका-*नेक सुविधाओ का आज स्वप्न मे भी सही–सही नक्शा नही खीचा जा सकता* तब ही प्रथम बार भारतवर्ष मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ (Managing Agents) का जन्म हुआ और उन लोगो के निरन्तर परिश्रम व अकथनीय प्रयास ने उन्हें *भारतवर्ष के औद्योगिक जगत मे स्थायी स्थान दिला दिया, जिस कोई भी* दस–पाँच साल मे नही कर सकती। उन सस्थाओ के नष्ट होने मे समय लगेगा।

प्रश्न

1. Discuss the nature, objects and economics of Vertical and Horizontal combinations in industry.
(Agra, B Com , 1958)

2. Describe briefly the chief causes responsible for industrial combinations. What evils are generally associated with such combinations ? (Agra, B Com , 1957)

3. *Distinguish between a 'Cartel' and a 'Trust'.* Define

clearly 'Vertical' and 'Horizontal' combinations with reference to their existence in two principal Indian industries

(Agra, B Com , 1956)

4. What is a 'trust' ? How many kinds of trust are there ? How does a trust differ form a holding company ?

(Agra, B Com , 1955)

5. Define clearly 'Vertical' and 'Horizontal' combinations, with reference to their existence in two principal Indian industries. Distinguish between a 'Cartel' and a 'Trust', bringing out their main features. (Agra, B Com , 1954)

6. Examine the trend towards amalgamations and mergers in India, and discuss the causes of such combinations.

(Agra, B Com , 1952)

7. Describe the various forms which by agreements to limit competition among producers and sellers may take place.

8 Indicate the chief reasons for the modern tendency towards amalgamation of business undertakings Point out the effects of such amalgamation (Bombay, B Com , 1942)

9 What is a holding company ? How does it differ from a pool or trust ? Discuss the value of such combinations from the social and economic points of view.

(Allababad, B Com., 1945)

10 Give the main classification of business combinations. Illustrate your answer from Indian conditions.

(Agra, B Com , 1948)

11. "Combinations by giving rise to monopoly harm the interests of consumers " "Combinations by reducing costs offer goods and services at lower price to consumers" Reconcile these views. (Agra, B Com , 1947)

12. Discriminate clearly between Trusts and Cartels and explain the conditions which favoured the growth of trusts in the U. S. A., and Cartels in Germany.

अध्याय ५

भारत में संयोजन आन्दोलन
(Combination Movement in India)

भारतवर्ष के उद्योग धन्धो मे सयोजन आन्दोलन उतना प्रचलित नही हुआ है जितना विदेशो मे। सयोजन आन्दोलन सर्वप्रथम अमेरिका के उद्योगो मे उन्नीसवी शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ। यद्यपि प्रारम्भिक काल मे इसका विरोध जनता व सरकार दोनो के ही द्वारा किया गया परन्तु फिर भी किसी न किसी रूप मे इसका विकास होता गया और बीसवी शताब्दी तक उसका विकास पूर्णतया हो गया। सयोजन का विकास केवल अमेरिका तक ही सीमित न रहा, बल्कि अन्य पश्चिमी देशो म भी हुआ और २०वी शताब्दी के प्रथम चरण से भारतीय उद्योगो मे भी यह आन्दोलन प्रारम्भ हो गया। परन्तु यह आन्दोलन बहुत ही मन्द गति से विकसित हुआ और आज भी इसका पूर्ण विकास नही हो पाया है। इसके कुछ विशेष कारण है जिनका विवेचन अगले पृष्ठो म किया गया है।

सयोजन आन्दोलन के मन्दगति के कारण

(१) अविकसित औद्योगिक ढाँचा

औद्योगिक क्षेत्र मे भारत अन्य देशो मे अपेक्षाकृत बहुत पिछडा हुआ है। यहाँ पर बडे बडे कारखानो व निर्माणियो की मात्रा भी अधिक नही है क्योकि बडे बडे तथा सगठित उद्योगो का विकास ही १९वी शताब्दी के उत्तरार्ध (Later Half) से आरम्भ हुआ, जब कि अन्य देशो मे सयोजन आन्दोलन विकसित हो रहा था।

(२) गला काट प्रतियोगिता का अभाव

हमारे देश का क्षेत्रफल विशाल तथा उसकी आबादी घनी होने के कारण उद्योगो को अपने निर्मित माल के विक्रय के लिए सघर्ष एवम् प्रतियोगिता

नही करनी पडती है। अभी तक ऐसे वर्ष बहुत कम आए है जिन वर्षों मे वस्तु उत्पादको व निर्माताओ ने अपने माल के विषय मे कठिनाई अनुभव की हो अथवा विभिन्न उत्पादकों को पारस्परिक गला काट स्पर्धा का सामना करना पडा हो। वास्तव मे देखा जाय तो हमारे देश का औद्योगिक सगठन इतना सुदृढ़ नही हो सका है जिससे वे हमारे देश वासियो की माँगो को पूर्णतया पूरा कर सकें।

(३) प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली द्वारा उद्योगो का नियन्त्रण

भारतवर्ष में कुछ विदेशी व अन्य देशी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की कम्पनिया है जिनके नियन्त्रण व प्रबन्ध मे भारतवर्ष की अधिकतर सीमित कपनियाँ है। सयोजन निर्माण मे वे (प्रबन्ध अभिकर्ता) अपनी व्यक्तिगत ख्याति व प्रतिष्ठा को धक्का लगता हुआ समझते है। इसलिए उन्होने इस प्रकार की प्रवृत्तियो को अधिक प्रोत्साहन नही दिया है।

प्रबन्ध अभिकर्ता विभिन्न व्यवसायिक कम्पनियों का प्रबन्ध करते हैं तथा कम्पनियो का पृथक अस्तित्व रहते हुए भी व्यवस्था का नियन्त्रण केवल कुछ इने गिने व्यक्तियो के हाथ मे ही रहता है। इस प्रकार भारत मे एक ही प्रबन्ध अभिकर्ता अनेक प्रमण्डलों का नियन्त्रण करता है, जिसे हम सामूहिक प्रबन्ध (Group, Management) कह सकते है। इस प्रकार से प्रमन्डलो का सघनन (Consolidation) तो नही होता, परन्तु सघनन के लाभ पूर्णतया कपनियों को प्राप्त हो जाते हैं। अत भारत म सयोजन आन्दोलन को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिलता।

निम्न तालिका से ज्ञात होगा कि कितनी कम्पनियों का सामूहिक प्रबन्ध हमारे देश मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा होता है —

प्रबन्ध अभिकर्त्ता	नियन्त्रित कम्पयियो की सख्या
(१) एन्ड्रयू यूल एन्ड कपनी	७८
(२) गिलैंडर्स अवर्थनाट एन्ड कपनी	७०
(३) टाटा इन्डस्ट्रीज	५१
(४) डालमिया जैन एण्ड कम्पनी	२५

(५) विरला ब्रदर्स १७
(६) वालचन्द एण्ड कम्पनी १५
(७) जे० के० इन्टस्ट्रीज़ १४
(८) जेम्स फिनले एण्ड कम्पनी ४

(५) भारतीय उद्योगपतियों की प्रवृत्ति

भारतीय उद्योगपति सयोजनो का निर्माण करके अपना नियन्त्रण खोना नही चाहते, अत वे सदैव सयोजन आन्दोलन के विपक्ष मे रहते है।

(४) सरकार की सहायता का अभाव

सयोजन के निर्माण मे अन्य देशो मे सरकार का भी हाथ होता है। जर्मनी मे सयोजन निर्माण के लिए सबसे अधिक सहायता सरकार की ओर से मिली थी। कुछ उदाहरण ऐसे भी पाये जाते हैं, जब केवल सरकार के दबाव के कारण ही सयोजन निर्माण करना पडा। अमेरिका मे कारपोरेशनो और ट्रस्ट के निर्माण मे वहुत कुछ सहायता दी जाती है, किन्तु कार्टेल्स और पूल्स के निर्माण के लिए अमेरिका की कितनी ही रियासते (States) विरुद्ध रही है और समय समय पर सयोजन न वनने देने के लिए, इनके विरुद्ध अधिनियम (Anti-Combination Act) बनाए गए है। ब्रिटेन म भी सयोजन निर्माण काय मे कोई बाधा नही डाली गई और न आजकल ही डाली जाती है। भारतवर्ष मे सरकार की ओर स ऐसी कोई सहायता इस दिशा मे नही मिली है।

इन सब उपरोक्त कारणो से सयोजन आन्दोलन का भारत मे अधिक सफलता नही मिली है, परन्तु फिर भी कुछ उद्योगो जैसे सीमेन्ट, शक्कर, सूती वस्त्र, जूट, कागज, तेल एव पैट्रोल, लोहा एव इस्पात, कोयला, बैंकिंग तथा बीमा इत्यादि मे सयोजन आन्दोलन ने स्थान पाया है। इन सयोजनो का वास्तविक स्वरूप औद्योगिक सयोजन न होत हुए आर्थिक स्वरूप है क्योंकि इनका सगठन प्रवन्ध अभिकर्ताओं द्वारा आर्थिक सुविधा की दृष्टि से हुआ है। जो कुछ भी सयोजन हुए हैं वे विश्व युद्ध के बाद विदेशियो की तीव्र प्रतिस्पर्धा एव देशी उत्पादको की प्रतिस्पर्धा के कारण हुए है।

सीमेट उद्योग

भारतवर्ष मे सयोजन निर्माण की ओर सर्वप्रथम सीमेट उद्योग मे सन्

१९२५ मे कदम उठाया गया था। टैरिफ बोर्ड से संरक्षण प्राप्त न कर सकने के कारण तथा विदेशी सीमेंट निर्माताओ तथा विक्रेताओ की गलाकाट प्रतिस्पर्धा (Cut Throat Competition) के कारण बहुत से भारतीय सीमेंट निर्माता नष्ट हो गये और शेष नष्ट होने की दशा को प्राप्त होते जा रहे थे। अतः उन्होंने १९२६ मे एक एसोसियेशन बनाया, जिसका नाम 'इन्डियन सीमेंट मैनुफैक्चरर्स एसोसियेशन' था। सन् १९३० में अपने माल की एक ही संस्था के द्वारा विक्रय करने के उद्देश्य से 'सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी' का निर्माण किया गया, जिसको हम 'कार्टेल' या 'सिन्डीकेट' कह सकते है, क्योंकि इसका ध्येय सीमेंट की बिक्री व वितरण पर नियन्त्रण रखना था, परन्तु इसको अधिक सफलता न मिल सकी। अत १९३७ में एक पूर्ण सविलयन (Complete Consolidation) की योजना तैयार करनी पडी। एक नई कम्पनी 'दी एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी' (*The Associated Cement Company*) का निर्माण किया गया। इस कम्पनी ने तत्कालीन सीमेंट उत्पादनकर्ताओ मे से ११ कम्पनियाँ, जसे कटनी, बुन्दी, पजाब, पोर्टलैंड, इन्डियन सीमेंट कम्पनी इत्यादि को विलीन (Merged) कर लिया।

कालान्तर मे 'दी एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी' (A. C. C.) ने अनेक सीमेंट कम्पनियो का निर्माण कर लिया है। 'दी पटियाला सीमेंट कम्पनी लिमिटेड', 'दी एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी' की सहायक कम्पनी है। इसके अतिरिक्त 'दी एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी' का 'सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी आफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड' की पूंजी मे काफी भाग है, जिसने उसे उसकी क्रियाओ पर नियन्त्रण करने का अधिकार प्राप्त है। 'वर्मा सीमेंट कम्पनी' की पूंजी मे भी इसका काफी भाग है।

बाद मे डालमियाँ ग्रुप (Dalmia Group) की कम्पनियो का निर्माण हुआ और गला काट प्रतिस्पर्धा (Cut Throat Competion) फिर से होने लगी। डालमियाँ से समझौता करके बाजारो के क्षेत्र निश्चित कर दिए गए। द्वितीय महायुद्ध ने सीमेंट उद्योग की स्थिति को बिल्कुल परिवर्तित कर दिया। अति उत्पादन के स्थान पर सीमेंट की नितांत कमी (Acute Shortage) हो गई। युद्धोपरात तेजी (Post-war Boom) के चार वर्ष पश्चात् अति उत्पादन की समस्या आ खडी हुई। देश की विविध योजनाओ को सफल बनाने के लिए प्रथम व द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे अधिक सीमेंट निर्माण करने के लक्ष्य निर्धारित किए गए है। प्रथम पचवर्षीय योजना का लक्ष्य २७ लाख टन सीमेंट

से बढ़ा कर ४० लाख टन सीमेंट तक कर देना था जब कि द्वितीय पंचवर्षीय का लक्ष्य ४० लाख टन से बढ़ा कर १०० लाख टन कर देना है।

चीनी मिल उद्योग (Sugar Industry)

भारतवर्ष का चीनी मिल उद्योग विशेष कर उत्तर प्रदेश और बिहार दो प्रदेशों तक ही सीमित (Localised) है। इन दो प्रदेशों के अतिरिक्त दक्षिण मे मद्रास व बम्बई प्रदेशों म इसको विकसित करने के प्रयत्न किए जा रहे हैं। इन दोनों प्रदेशो मे अभी विशेष सख्या मे मिलें नही हैं। उत्तर प्रदेश तथा बिहार दानो की सीमाएँ मिली होने के कारण बहुत समय तक दोनो प्रदेशों की मिलों ने सम्मिलित विक्रय सघ (Sugar Syndicate) का निर्माण कर रक्खा था।

चीनी उद्योग मे किसी सीमा तक उदग्र (Vertical) सयोजन भी पाया जाता है। बहुत सी मिलें जैसे रामपुर की बुलन्द तथा 'राजा शुगर वर्क्स' के पास अपनी दुकाने (Firms) हैं। कुछ मिले शराब बनाने तथा मिठाइयाँ बनाने का काम भी करती है।

सन १९३० तथा उसके बाद मिलो की सख्या मे एक दम वृद्धि हो जाने से चीनी के उत्पादन पर नियन्त्रण रखने की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। १९२९ से १९३७ तक भारतवष मे केवल २७ चीनी मिलें थी। १९३४ से १९३५ तक इनकी सख्या १३० हो गई। इस वृद्धि का मुख्य कारण १९३१ में सात वर्ष के लिए दिया गया सरकारी सरक्षण (Protection) था। इस सरक्षण के फलस्वरूप उत्पादन मे भी काफी वृद्धि हुई। १९२९ से १९३० तक भारतवर्ष मे एक लाख टन से भी कम चीनी का उत्पादन होता था जो कि १९३७ मे बढ कर १२ ३ लाख टन हो गया।

अति उत्पादन (Over Production) तथा तीक्ष्ण प्रतियोगिता के कारण चीनी के दाम गिरने लगे। इतनी मात्रा मे उत्पादन करके उसे उचित मूल्य पर विक्रय करने की समस्या उद्योगपतियो के समक्ष जटिल बनी हुई थी। इस समस्या को हल करने के लिए 'शुगर मिल ओनर्स एसोसियेशन' ने केन्द्रीय विक्रय की एक योजना बनाई और जुलाई १९३७ मे 'शुगर सिण्डीकेट' का निर्माण किया। इस 'सिण्डीकेट' के प्रयत्नस्वरूप मूल्यो मे काफी वृद्धि हुई। १९३८ मे १९३९ तक सिण्डीकेट' ने सफलतापूर्वक कार्य किया, परन्तु १९३९

से १९४० तक अति-उत्पादन (Over-production) फिर से हो जाने के कारण सिण्डीकेट को कठिनाई का सामना करना पड़ा। सिण्डीकेट ने चीनी के मूल्य बहुत ऊँचे निर्धारित कर दिए थे जो कि अप्रैल सन् १९४० में सिण्डीकेट को बाध्य होकर गिराने पड़े। जून १९४० में उत्तर प्रदेश और बिहार की सरकारों ने इसकी मान्यता (Recognition) वापिस ले ली, यद्यपि वही (मान्यता) अगस्त १९४० में फिर दे दी गई।

किन्तु समस्त भारतवर्ष की चीनी मिलों को मिलाने के प्रयत्न निरन्तर चलते रहे। १९४२ में देश के सम्पूर्ण उद्योगों को सगठित करने का प्रयत्न किया गया और इस सम्बन्ध में 'सेन्ट्रल शुगर एडवाइजरी बोर्ड' की सभा भी हुई। युद्धकालीन परिस्थितियों ने चीनी की माँग बढ़ा दी। चीनी के उचित वितरण इत्यादि की व्यवस्था करने, मूल्य के नियन्त्रण करने तथा अन्य अनेक कार्यों के लिए सरकार ने 'कन्ट्रोल' की व्यवस्था की। 'कन्ट्रोल' के समय में 'शुगर सिण्डीकेट' की आवश्यकता नहीं रही। कन्ट्रोल हटते ही नवम्बर १९४७ से दिसम्बर १२, १९४९ तक फिर उसने चीनी के मूल्य निर्धारण व वितरण इत्यादि में काफी भाग लिया, उसके उपरान्त सिण्डीकेट में विभाजन हो गया। बिहार वाली कम्पनियों ने अपना अलग संयोजन निर्माण करने का निश्चय किया। भारतवर्ष की सम्पूर्ण मिलों ने मिलकर 'आल इंडिया शुगर एसोसियेशन का निर्माण किया है।

जूट उद्योग (Jute Industry)

जूट उद्योग हमारे देश का सबसे सगठित उद्योग है और इसके सभी कारखानों ने अधिकतम सहकारिता से कार्य किया है। 'इंडियन जूट मिल्स एसोसियेशन की स्थापना जुलाई सन् १८८६ में हो गई थी, उस समय इसका नाम 'जूट मैन्यूफैक्चरर्स एसोसियेशन' था। सन् १९०२ में इसका नाम बदल कर वर्तमान नाम रखा गया। इसका कार्य अपने सदस्य कारखानों के उत्पादन, मूल्य एव बिक्री पर तथा कच्चे माल की खरीद पर नियन्त्रण रखना है। अत. इसको कार्टेल (Cartel) या उत्पादन सघ भी कहते हैं। इसके मुख्य उद्देश्य निम्नांकित हैं —

(१) जूट सम्बन्धी वस्तुओं के मूल्य निर्धारित करना।
(२) पारस्परिक समझौतों के आधार पर उत्पादन नियन्त्रित करना व सीमित रखना।

(३) समयानुसार कार्य करने के घन्टो को घटा कर विदेशी माँग के अनुकूल पूर्ति (Supply) बनाए रखना।

(४) अनुसधान (Research) के हेतु अन्वेषणशालाएँ (Research Laboratories) खोलना तथा प्रायोगिक शिक्षा का उचित प्रबन्ध करना। इस एसोसियेशन की रसायनशाला मे उच्च श्रेणी के वैज्ञानिक कार्य कर रहे है। इसका सम्बन्ध 'बगाल चैम्बर आव कामर्स' से भी है। इसके दो सदस्य बगाल की धारा सभा मे भी जाते है तथा 'रेलवे फ्रेट एडवाइजरी कमेटी' मे भी इसके सदस्य लिए जाते हैं।

इस प्रकार इस एसोसियेशन ने अनुसधान तथा तान्त्रिक शिक्षा को काफी प्रोत्साहन तथा आर्थिक सहायता दी है। यह सम्पूर्ण उद्योग की उत्पादन क्षमता (Productive Capacity) का लगभग ९५% भाग नियन्त्रित करता है। मुश्किल से दस-बारह मिल्स इसके नियन्त्रण से बाहर है, परन्तु उन्होंने भी इसकी क्रियाओ के साथ अपना सहयोग प्रदान किया है।

सूती वस्त्र उद्योग (Cotton Textiles)

भारतवर्ष मे सूती कपडो की मिलो की सख्या ४०० से अधिक होने के कारण सयोजन पूर्णतया सम्भव नही हो सका है। यत्र-तत्र छोटे-छोटे सयोजन व सविलयन (Mergers) व समिश्रण (Amalgamation) अवश्य दृष्टिगोचर हो जाते है। मदुरा मिल्स कम्पनी लिमिटेड ने क्रमश सन् १९२४, १९२७ एव १९२९ मे 'कोरस मिल्स', 'टेनेहेली मिल्स' तथा 'पाडयन मिल्स' का सविलयन (Merger) किया। 'बैंगलोर वूलन काटन एण्ड सिल्क मिल्स' ने 'कैसरेहिन्द वूलन एण्ड काटन मिल्स' का क्रय किया। 'बकिंघम कर्नाटक मिल्स' तीन मिलो का सविलयन है।

सन् १९३० मे कुछ मिल मालिको द्वारा 'लकाशायर काटन कारपोरेशन' के आधार पर ३४ सूती मिलो के सयोजन की एक योजना तैयार की गई थी। किन्तु वह कार्यान्वित न की जा सकी, सूती कपडो की मिलो के हितो के रक्षार्थ कुछ 'ट्रेड एसोसियेशन' आवश्यकतानुसार अवश्य स्थापित किए गए हैं, जैसे 'बाम्बे मिल ओनर्स एसोसियेशन' तथा 'अहमदाबाद मिल स्टोर्स एसोसियेशन' इत्यादि।

इसी प्रकार 'ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन' एक चक्रित सयोजन (Circular Association) है जिसके नियन्त्रण मे निम्न कम्पनियाँ हैं :—

(१) कानपुर काटन मिल्स लिमिटेड,
(२) कानपुर ऊलन मिल्स लिमिटेड,
(३) कूपर एलन एण्ड कम्पनी लिमिटेड,
(४) नार्थ वैस्टर्न टेनरी कम्पनी लिमिटेड,
(५) एम्पायर इन्जीनियरिंग कम्पनी लिमिटेड, तथा
(६) न्यू ईगर्टन वूलन मिल्स लिमिटेड ।

इसी भाँति बिरला ब्रादर्स लिमिटेड, जे० के० इण्डस्ट्रीज लिमिटेड, डालमियाँ जैन एण्ड कम्पनी के नियन्त्रण में बैंक, बीमा कम्पनी, कपडा उद्योग, कागज़ उद्योग इत्यादि अनेक उद्योगो के कारखाने है। अत इन्हे भी चक्रित या क्षैतिज (Circular) सयोजन कहते हैं।

कागज़ उद्योग (Paper Industry)

कागज़ उद्योग मे 'इण्डियन पेपर मेकर्स एसोसिएशन' के अन्तर्गत बहुत सी मिल्स सम्मिलित हैं। यह 'एसोसिएशन' कागज़ की कीमतो को निर्धारित करता तथा कागज़ सम्बन्धी अनुबन्धो (Contracts) को केन्द्रीय तथा राज्य (State) सरकारो से तय करता है। यह एसोसिएशन 'कीमत संघ' (Price Pool) का उदाहरण प्रस्तुत करता है।

दियासलाई उद्योग (Match Industry)

दियासलाई बनाने वाली कम्पनियो मे 'वैस्टर्न इण्डियन मैच कम्पनी' (Western Indian Match Co) जो कि विमको (WIMCO) के नाम से प्रसिद्ध है, एक शक्तिशाली स्विडिश (Swedish) सयोग है। यह लगभग एक दर्जन कारखानो पर नियन्त्रण करती है। इसके अतिरिक्त यह अप्रत्यक्ष रूप से बहुत सी भारतीय कम्पनियो मे भाग लेकर उन पर नियन्त्रण रखती है।

लोहा एवं स्पात उद्योग (Iron & Steel Co.)

इस उद्योग मे सयोजन के लिये अधिक क्षेत्र (*Scope*) नही है क्योकि

कारखानो की संख्या सीमित है। परन्तु फिर भी अक्टूबर २९, १९५२ को राष्ट्रपति द्वारा परिचालित (Promulgated) आर्डिनेंस (Ordinance) के अनुसार १ जनवरी १९५३ मे 'स्टील कारपोरेशन आव बगाल' (SCOB) तथा 'इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी' (I. I. S. Co.) का सयोजन हो गया।

स्टील कारपोरेशन आव बंगाल (S. C. O. B.)
तथा
'इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी' (I. I. S. Co.)
के संयोजन के कारण

इन दो प्रमुख कम्पनियो का सयोजन 'कम्पनीज एक्ट' के अन्तर्गत नही हुआ है बल्कि राष्ट्रपति द्वारा २८ अक्टूबर १९५२ को *प्रकाशित आर्डीनेंस* (Ordinance) के अनुसार १ जनवरी १९५३ से हुआ। इस सयोजन के कार्यान्वित होने का इतिहास इस प्रकार है। 'इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड' ने दिसम्बर १९३६ मे *'बगाल आइरन कम्पनी'* को खरीद लिया। इस विलयन (Merger) मे 'बगाल आइरन कम्पनी' को अपनी पूँजी का ३/४ भाग तथा 'इण्डियन आयरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड' को अपनी पूँजी का १/४ भाग समाप्त *(Write Off)* कर देना पडा।

अगले वर्ष 'स्टील विभाग' *(Steel Section)* खोलने के लिए ५ करोड रुपये से अधिक पूँजी की आवश्यकता पडने पर 'इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी' के अशधारियो से इस पूँजी को प्राप्त करना, उचित नही समझा गया। अत १९३७ मे एक नवीन 'स्टील वर्क्स' (Steel Works) की स्थापना एक प्रथक इकाई के रूप मे *'इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी'* के साथ की गई। इसके पास 'स्टील कारपोरेशन आव बगाल' की सामान्य पूँजी (Equity Capital) का लगभग आधा भाग था। इसी समय से इन दोनो कम्पनियो को मिला देने की योजना थी।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् जब युद्ध नियन्त्रित मूल्य (War Price Controls) हटा लिए गए और "टैरिफ बोर्ड" के द्वारा नए मूल्य निर्धारित किए गए, तब 'दी स्टील कारपोरेशन आव बगाल' तथा 'दी इन्डियन आइरन एन्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड' ने अनुभव किया कि यदि ये दोनो कम्पनियाँ मिला दी

जायँ तो दोनो को ही लाभ होगा। उस समय से प्रत्येक "टैरिफ बोर्ड" (Tariff Board) इन दोनों कम्पनियो के सयोजन के लिये सिफारिश करता रहा है। १९५० से सरकार ने भी इन दोनो कम्पनियो के सयोजन प्रश्न पर विचार करने के लिये कहा है।

इन दोनो कम्पनियो के सयोजन के प्रश्न को "टैरिफ कमीशन" को २९ अगस्त १९५२ की रिपोर्ट ने बहुत बल मिला। लोहा एव स्पात के उत्पादन को बढाने के उद्देश्य से सरकार ने "अन्तर्राष्ट्रीय बैंक" (International Bank for Reconstruction and Development) से सलाह ली। 'अतर्राष्ट्रीय बैंक' ने देश की औद्योगिक उत्पादन शक्ति तथा विशेष रूप से लोहा एव स्पात उद्योग के विस्तार के सबध मे "टेक्नीकल मिशन" (Technical Missions) भेजे। 'टेक्नीकल मिशन' ने दोनो सार्थों का निरीक्षण करते ही, लोहा एव स्पात् उत्पादन की वृद्धि के हित मे दोनो कम्पनियो के मिल जाने का सुझाव दिया।

सन् १९५२ के प्रारम्भ मे ही भारतीय सरकार ने इन दोनो कम्पनियो के प्रबन्ध अभिकर्ता (Managing Agents) 'मार्टिन बर्न लिमिटेड' (Martin Burn Limited) से लौह एव स्पात् के उत्पादन की वृद्धि के सम्बन्ध मे बातचीत की। इसी वर्ष 'अन्तर्राष्ट्रीय बैंक' ने मि० जार्ज डी० वुड्स (Mr. George D. Woods) की अध्यक्षता मे एक 'टैक्नीकल मिशन' इस सम्बन्ध मे भारत भेजा। इस मिशन की रिपोर्ट के आधार पर "बैंक" ने भारतीय सरकार को सूचित किया कि वह १५ करोड रु० का ऋण देने को तैयार है यदि दोनो कम्पनियाँ आपस मे मिल जायँ।

साधारण रूप मे दोनो कपनियो के अशधारियो को इस प्रकार के सयोजन की शर्तों पर विचार करने के लिये पूंछना चाहिये था। परन्तु इस तरह की व्यवस्था मे काफी समय लग जाने की सम्भावना थी जो कि आवश्यक पूंजी प्राप्त करने मे बाधक हो सकती थी। इन सब कठिनाइयो तथा देश के लौह एव स्पात उत्पादन को तुरन्त वृद्धि की आवश्यकता को दृष्टिकोण म रख कर यही उचित समझा गया कि दोनों कम्पनियो का सयोजन शीघ्रातिशीघ्र कर दिया जाय। फलस्वरुप राष्ट्रपति ने ऐसा करने के लिए अपना आध्यादेश (Ordinance) जारी कर दिया।

इन दोनो कम्पनियो के सयोजन से खर्चो मे कमी होने की सम्भावना है।

इसका सबसे उत्तम उदाहरण यही है कि 'दी स्टील कारपोरेशन आव बगाल' के प्रबन्ध अभिकर्त्ता (Managing Agents) 'मार्टिन बर्न लिमिटेड' को १५०००) रु० मासिक दिया जाने वाला कार्यालय व्यय (Office Allowance) बन्द कर दिया गया। मार्टिन बर्न लिमिटेड 'दि इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड' के प्रबन्ध अभिकर्ता के रूप मे उसी वेतन पर कार्य करेंगे और 'दी स्टील कारपोरेशन आव बगाल लि०' के पद से हटाए जाने की क्षति पूर्ति नही मांगेंगे।

सयोजित 'दी इण्डियन आइरन एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड' का उत्पादन लक्ष्य ७ लाख टन स्पात (Steel) प्रतिवर्ष तथा ४ लाख टन कच्चा लोहा (Pig Iron) बिक्री के लिए उत्पन्न करना है।

विस्तार कार्यक्रम का व्यय (Cost of Expansion-Programme)

१९५३/५७ के विस्तार कार्यक्रम का व्यय ३१ करोड रु० होगा और उसके अन्तर्गत निम्नलिखित निर्माण कार्य (Installations) होंगे —

कोक ओविन्स (Cock Ovins)

वडी भट्टियाँ (Blast Furnaces)

रालिंग मिल्स (विस्तार) (Rolling Mills Extensions)

मेल्टिग शाप (Melting Shop)

३१ करोड रुपये का लगभग आधा भाग अन्तर्राष्ट्रीय पुनर्निर्माण तथा पुनर्विकास बैंक' (International Bank for Reconstruction and Development) ने देने का वचन दिया है। इस धन का उपयोग विदेशों से आवश्यक सामान के आयात मे किया जावेगा। शेष धन (लगभग १५ करोड रु०) कम्पनी को अपने निजी साधनो तथा भारतीय सरकार से ऋणों के रूप मे प्राप्त करना होगा। सन् १९५० मे सरकार ने इन दोनों कम्पनियों को ५ करोड रु० का ऋण दिया था। सयोजन के पश्चात् १॥ करोड का ऋण दिया। इसके अतिरिक्त सरकार ने १० करोड रु० का एक विशेष ऋण देने का निश्चय किया जो अरक्षित (Unsecured) होगा तथा अनिश्चित काल तथा बिना ब्याज के दिया जावेगा।

कोयला उद्योग

कोयला उद्योग मे बहुत से सम्मिश्रण हुए है। सन् १९१९ में आठ कपनियों का विलियन करके 'बराकार कोल कम्पनी' (Burrakar Coal Co.) का निर्माण हुआ था। १९३७ मे स्थापित कोयला जाँच समिति (Coal Enquiry Committee) भी सम्मिश्रण के पक्ष मे थी। 'दी न्यू बीरभूमि कोल कम्पनी' ने अनेक कोयला खान उद्योगो का सम्मिश्रण किया है। अभी हाल मे ही श्री बलवन्तराय मेहता की अध्यक्षता में एक कमेटी नियुक्त की गई थी, जिसने कोयले की खानो के एकीकरण के सम्बन्ध में सुझाव दिए हैं।

बैंक एवं बीमा उद्योग

बैंकिग एव बीमा क्षेत्र में बैंको की अपेक्षा बीमा कम्पनियो मे सयोजन अधिक प्रचलित है। फ्री इन्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लि० कानपुर, आयन इन्श्योरेन्स कम्पनी लि० कलकत्ता तथा फेडरल इण्डिया इन्श्योरेन्स कम्पनी लि० देहली के नाम उल्लेखनीय थे परन्तु अब इनका सयोजन सरकारी तौर पर 'लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन ऑव इण्डिया' के नाम से हो गया है।

बैंकिग क्षेत्र मे कलकत्ता की चार बैंको कोमिल्ला बैंकिग कारपोरेशन, बगाल सेन्ट्रल बैंक, हुगली बैंक तथा कोमिल्ला बैंकिग यूनियन इत्यादि के सविलियन से 'दी युनाइटेड बैंक आव इन्डिया लिमिटेड' का निर्माण हुआ। इसी प्रकार भारत बैंक का सम्मिश्रण दी पजाब नशनल बैंक मे हो गया है। सविलियन की एक और योजना चल रही है। इसके अनुसार 'दी राजस्थान बैंक' 'जोधपुर बैंक' एव 'जयपुर बैंक' का एकीकरण हो जावेगा।

वास्तव मे देखा जाय तो बैंकिग व्यवसाय मे एकीकरण के लिए अभी पर्याप्त क्षेत्र है 'रिजर्व बैंक आव इन्डिया' इस ओर काफी प्रयत्नशील है। इस उद्देश्य की पूर्ति करने के हेतु 'भारतीय बैंकिग अधिनियम' (Indian Banking Act) मे भी आवश्यक सशोधन कर दिए गए हैं।

शिपिग रिंग्स एव कॉन्फ्रेंसेज
(Shipping Rings and Conferences)

शिपिग उद्योग म नौवहन चक्र (Shipping Rings) सम्मेलनो (Conferences) तथा समझौतो (Agreements) के आधार पर व्यापार का कोटा

अथवा क्षेत्र निर्धारित कर दिया जाता है। इस प्रकार का समझौता 'ब्रिटिश इन्डिया स्टील नेवीगेशन कम्पनी' तथा 'सिंधिया स्टीम नेवीगेशन कम्पनी' मे हुआ है। इन समझौतों के अनुसार विभिन्न जहाजी कम्पनियाँ जूट को देश के आन्तरिक भागों से जूट के तटवर्तीय बाजारो तक पहुँचाते हैं।

तेल एव पैट्रोल उद्योग

'बर्मा पेट्रोलियम कम्पनी' 'रौयल एण्ड शैल ग्रूप', 'बर्मा आयल कम्पनी' तथा 'आसाम आयल कम्पनी' ने मिल कर तेल एव पैट्रोल के क्रय एव विक्रय मूल्यों पर नियन्त्रण रखने के लिए 'कीमत सघ' (Price Pool) का निर्माण किया है।

भारतीय संयोजन आन्दोलन की विशेषताएँ

[१] सयोजन आन्दोलन का उद्योगो के विस्तार के द्वारा होना

भारतीय सयोजन आन्दोलन की सबसे प्रमुख विशेषता यह है कि इसकी उत्पत्ति सम्मिश्रण (Amalgamation) या सविलयन (Absorption) के द्वारा न होकर विस्तार (Expansion) के द्वारा हुई है। भारतीय उद्योगों मे सयोजन की उत्पत्ति (Evolution) प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली के उगम व विस्तार से घनिष्ट सम्बन्ध रखती है, अर्थात् प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली के विकास के साथ-साथ सयोजन आदोलन का विकास भी हुआ। वास्तव मे इस प्रकार के औद्योगिक सगठन के विकास से एक ही प्रबन्ध अभिकर्ता के अन्तर्गत उद्योगो के आर्थिक (Financial) प्रबन्धकीय (Managerial) तथा शासकीय (Administrative), अनुकूलन (Integration) को बल मिलता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा प्रर्वातत (Promoted) सार्थो (Concerns) के सफल हो जाने पर उन्हे (अभिकर्त्ताओ को) नवीन सार्थों की स्थापना तथा उनका विस्तार करने के लिए प्रोत्साहन मिला। फलस्वरूप जूट, कागज, सीमेट तथा चाय कम्पनियो के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने कोयले की आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए अपनी निजी 'कोलरीज' (Collieries) की स्थापना की तथा कच्चे माल के आयात व निर्मित माल के वितरण के हेतु अपनी आन्तरिक स्टीमर कम्पनियाँ (Internal Steamer Companies) का निर्माण किया। इस प्रकार से प्रबन्ध अभि-

कर्त्ताओ की नियन्त्रित कम्पनियो को उदग्र (Vertical) तथा क्षैतिज (Horizontal) सयोजनों के लाभ प्राप्त हो जाते हैं।

इस प्रकार हमारे देश मे जो भी क्षैतिज (Horizontal) तथा उदग्र (Vertical) सयोजन है उन्हे औद्योगिक सयोजन की अपेक्षा आर्थिक सयोजन (Financial Integration) कहे तो अधिक उचित होगा, क्योकि आर्थिक व्यवस्था को दृष्टि से प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने सयोजनो को अपनाया है। प्रमुख प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नियन्त्रण मे कितनी कम्पनिया है इसका अनुमान इस तालिका से लगेगा।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता का नाम	नियन्त्रित कम्पनियों की सख्या
१ एन्ड्रीयूल	७८
२ बर्ड एण्ड कम्पनी	३१
३ ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन	१६
४ मार्टिन बर्न	२०
५ जारडाइन हैन्डरसन	२६
६ गिलैन्डर्स अर्बुथनाट	७०
७ मैक लायड	५५
८ आक्टीवस स्टील	५७
९ करमचन्द थापर	२४
१० जे० के०	१४
११ पेरसी लेसली एण्ड कम्पनी	४२

[२] आर्थिक सत्ता (Economic power) का कुछ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथ मे सचयन (Concentration)

भारतीय सयोजन आन्दोलन की दूसरी विशेषता यह है कि इसके कारण कुछ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के हाथ मे आर्थिक सत्ता एकत्रित हो गई है।

टाटा, बिरला, डालमिया, सिंघानिया तथा थापर लोग देश के औद्योगिक उत्पादन के एक बहुत बडे भाग पर नियन्त्रण करके अपने को बडे-बडे प्रन्यासो (Trusts) के रूप मे विकसित कर रहे हैं। युद्धोपरान्त काल से बडे प्रन्यासो (Trusts) के द्वारा छोटे प्रन्यासो के सम्मिश्रण व सविलयन (Amalgamation and Absorption) की प्रथा प्रचलित हो गई है। इस प्रथा के प्रचलित होने के दो मुख्य कारण है। प्रथम तो स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर विदेशियो द्वारा अपने व्यवसायो को बेचना तथा द्वितीय कुछ बडे व्यापारियो (Business *magnates*) द्वारा अपने व्यवसायो को ऊँचे मूल्य पर बेचना।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने इन व्यवसायो को खरीद कर उनका पुनर्गठन व विस्तार किया। उदाहरणार्थ 'ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन लिमिटेड' ने १९४६ मे कानपुर की सुप्रसिद्ध बैग सदरलैंड एण्ड कम्पनी (Begg Southerland & Co) को खरीदा। १९४७ मे सुप्रसिद्ध प्रबन्ध अभिकर्त्ता फर्म मैकलाईड एण्ड कम्पनी लि० *(Mcleod & Co. Ltd.)* ने 'बैग डनलप एण्ड कपनी लिमिटेड' (Begg Dunlop & Co. Ltd.) को खरीदा। डालमिया ने 'गोवन ब्रदर्स लिमिटेड' (Govan Brothers Ltd) के आर्थिक तथा प्रबन्धकीय हितो (Interests) को खरीदा। डालमिया (Dalmia) ने 'बैनेट कोलमैन एण्ड कपनी लिमिटेड' (Benett Coleman & Co. Ltd) के समाचार पत्रो के एक समूह (Group) के आर्थिक हितो (Financial Interests) तथा कुछ बडी जूट कपनियो तथा पजाब नेशनल बैंक लिमिटेड के अशो को खरीद कर उनमे नियन्त्रण सम्बन्धी अधिकार प्राप्त किए।

श्री अशोक मेहता ने अपनी पुस्तक "Who Owns India" मे यह दर्शाने की चेष्टा की है कि देश के समस्त उद्योगो के सचालन की बागडोर वास्तव मे चोटी के २० व्यक्तियो के हाथो मे है। ऐसा अनुमान है कि भारत की ५०० प्रमुख औद्योगिक इकाइयो पर २००० सचालको का प्रबन्ध है, किन्तु इन २००० सचालको के पद पर केवल ८५० व्यक्ति कार्य कर रहे है। इनमे से १००० पदो पर केवल ७० व्यक्ति कार्य कर रहे है और शेष १० पर ७८० व्यक्ति। चोटी पर केवल १० व्यक्ति है, जो ३०० सचालक

पदो का भार अपने ऊपर लिए हुए है। इसका स्पष्टीकरण निम्न तालिका करती है :—*

व्यक्ति	सचालक पदो की सख्या	औसत
८५०	२०००	२·३३
७०	१०००	१४·२८
१०	३००	३०

ऐसे भी उदाहरण पाए जाते है, जहाँ एक ही व्यक्ति ३०–४० कम्पनियो का सचालन करता है। उदाहरणार्थ श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ५१ विभिन्न कम्पनियो के सचालक है।

युद्धोपरान्त व विशेष रूप से स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतवर्ष मे उद्योगपतियो ने विदेशी सस्थाओ तथा हितो (Interests) का क्रय भी जोरो से किया है, जैसा कि हम पहले बता चुके है। १९५१ मे बैंक आव इगलैंड द्वारा प्रकाशित पुस्तक (Study of Overseas Investments) मे दर्शाया है कि भारत तथा पाकिस्तान मे ब्रिटिश विदेशी विनियोग ८२% के लगभग गिर गया है। इसके साथ–साथ भारतीय उद्योगो मे योरोपियन सचालको की सख्या भी कम हो गई है। निम्न तालिका इस कथन की पुष्टि करती है —†

कम्पनियो की सख्या तथा प्रकार	१९३२ के सचालकों की सख्या		१९४९ मे सचालको की सख्या	
	भारतीय	योरोपियन	भारतीय	योरोपियन
१० कोल कपनीज़	—	३४	१७	७८
११ ,, ,,	१६	२६	३२	२५
१३ जूट कपनीज़	—	४९	१९	४४
२१ ,, ,,	३५	५३	६३	३१
३ इजीनियरिंग कपनीज़	—	६	३	११
४ ,, ,,	८	११	१५	८
१४ अन्य कपनियाँ	—	५३	३०	३७
६ ,, ,,	९	१९	१८	१९

* Who Owns India *By Ashok Mehta*

† Capital, Annual Number, December, 1949.

विदेशी सम्बन्ध तथा बड़े व्यापार की प्रवृत्ति

उपरोक्त विवेचना से स्पष्ट है कि धीरे-धीरे भारतीय उद्योगों का भारतीयकरण होता जा रहा है। इसके विपरीत ऐसा भी देखने में आता है भारतीय तथा विदेशी उद्योगपतियों में सक्रिय साझेदारियाँ (Working Partnerships) होती जा रही है, सन् १९४३-४४ में ही केवल, लगभग १०५ भारतीय कम्पनियों (Indian Limiteds) का रजिस्ट्रेशन हुआ। १९४५ में 'भारतीय उद्योगपतियों का एक मडल' (Mission) जिसमें टाटा तथा बिरला जैसे लोग भी सम्मिलित थे, ब्रिटेन भ्रमणार्थ गया। इस 'मिशन' के फलस्वरूप भारतीय तथा ब्रिटिश साझेदारी की नींव पड़ी। भारतीय उद्योगपतियों, पूँजीगत सामान (Capital Goods), तान्त्रिक कुशलता (Technical Skill), एकस्व तथा निमार्णी एकाधिकारों (Patent Manufacturing Rights) की माग की।

"नफील्ड-बिरला मोटर डील" (Nuffield-Birla Motor Deal)—*अप्रैल १९४५ में सर्वप्रथम, भारत तथा ब्रिटिश का व्यवसायिक समझौता "नफील्ड-बिरला" मोटर डील के रूप में हुआ। 'नफील्ड' एक शक्तिशाली दल (Group) है जिसके अन्तर्गत मौरिस मोटर्स, वूल्जले मोटर्स, रिले मोटर्स, एम० जी० कार कम्पनी, मैकेनाइजेशन, नफील्ड टूल्स एण्ड गेजेज इत्यादि सार्थ हैं। नफील्ड के सहयोग से प्रथम भारतीय कारों के निर्माण के हेतु "हिन्दुस्तान मोटर्स" की स्थापना की गई जिसके प्रथम अध्यक्ष श्री बी० एम० बिरला थे। प्रमुख आर्थिक पत्रिका 'ईस्टर्न इकोनामिस्ट' (४ जनवरी, १९४६) ने नफील्ड-बिरला साझेदारी को "वित्तीय सयोजन" (Financial Merger) की सज्ञा दी है।*

अन्य मोटर सम्बन्धी साझेदारियाँ—पिछले कुछ वर्षों में कुछेक मोटर साझेदारियाँ देश की मोटर कम्पनियों ने विदेशी मोटर कम्पनियों से की है। *कार तथा ट्रकों के निर्माण के हेतु 'अशोक मोटर्स लि०' ने 'आसटिन मोटर्स' के साथ सम्पर्क स्थापित किया। 'आसटिन मोटर्स के 'अशोक मोटर्स लि०' में आर्थिक हित है तथा सचालक सभा में अपने सचालकों को मनोनीत (Nominate) करने का अधिकार है। इसी प्रकार की दूसरी कम्पनी 'स्टैन्डर्ड मोटर प्रोडक्ट्स आफ इन्डिया लिमिटेड' है। इसके प्रवर्तक 'यूनियन कम्पनी मद्रास' है। सितम्बर १९४९ में ब्रिटेन की सबसे बड़ी मोटर कम्पनी*

के प्रमुख सर विलियम रुट्स (Sir William Rootes) तथा भारतीय कर्पा ियो के बीच समझौता हुआ।

साइकिल उद्योग—साइकिल उद्योग मे भी विदेशी विनियोगो को खुला क्षेत्र मिला है। बी० एस० ए० साइकिल कम्पनी ने अपनी फैक्ट्री भारतवर्ष मे २५ लाख रु० की पूँजी लगाकर स्थापित की है। इसमे विदेशी विनियोग लगभग १ लाख पौंड के है। हरकुलिस साइकिल तथा सैन-रेले कम्पनी ने भी इसी प्रकार की योजनायें प्रारम्भ की हैं।

केमिकल उद्योग (Chemical Industry)—केमिकल उद्योग मे 'इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज' तथा 'टाटा' के मध्य हुए समझौते उल्लेखनीय हैं। 'इम्पीरियल केमिकल इन्डस्ट्रीज' (I. C. I) एक बहुत शक्तिशाली ब्रिटिश एकाधिकृत (Monopolistic) सस्था है। युद्ध के पूर्व यह कपनी मुख्य केमीकल्स ९५% ब्रिटिश उत्पादन पर नियन्त्रण रखती थी। १९४३ मे इसकी आय १४८ करोड रु० थी। इस कपनी के सम्पर्क ससार की शक्तिशाली एकाधिकारी सार्थ आई० जी० फरबन (I G Farben) तथा डू पौंट (Du Pont), (जिनका निर्माण जर्मनी मे हुआ था) मे हैं। युद्धोपरान्त इस कपनी (I C I.) ने अपने व्यवसाय को इगलैंड, दक्षिणी अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, कनाडा तथा भारत मे फैलाया है। भारतवर्ष में इसके दो कारखाने है। एक कारखाना 'खेवरा' (Khewra) मे तथा दूसरा कलकत्ता मे है। इसकी निर्गमित पूँजी ३१ करोड रु० है।

आई० सी० आई० तथा टाटा समझौते (I C I—Tata Deal) के अतर्गत आई० सी० आई० भारतीयो को तान्त्रिक शिक्षा देगी, अपने एकस्वो (Patents) का लाभ प्रदान करेगी तथा विभिन्न निर्माण की जाने वाली कपनियो की पूजी मे भाग लगी। आई० सी० आई० तथा टाटा सार्थ की चुकता पूँजी ५ करोड रु० है।

रेयन उद्योग (Rayon Industry)—रेयन उद्योग मे 'इन्डो-ब्रिटिश' साझेदारी हुई है। सिर सिल्क लिमिटेड ने अगस्त १९४६ मे 'लैन्सिल्स' (Lansils) की ब्रिटिश फर्म से समझौता किया। इसके प्रवन्ध अभिकर्त्ता हैदराबाद कन्सट्रक्शन क०' है। प्रवन्धकर्त्ताओ को अपने कमीशन का २५% भाग २० वर्ष तक 'लैन्सिल्स' भेजना होगा।

इन्जीनियरिंग उद्योग—बम्बई की किरलोस्कर्स नामक इन्जीनियरिंग फर्म ने 'ब्रिटिश आयल इन्जिन्स लि०' ब्रिटिश इलेक्ट्रिकल इन्जीनियरिंग कम्पनी लि० तथा पैरी एण्ड कम्पनी से गठबन्धन किया है। दो फर्म किरलोस्कर आयल इन्जिन्स लि०, तथा किरलोस्कर इलेक्ट्रिक कपनी, जिनके प्रमुख सचालक क्रमश श्री श्रीराम तथा श्री सी० आर० सुरजनारायण है, की स्थापना आयल इन्जिन्स तथा इलेक्ट्रिक मोटर्स निर्माण के हेतु की गई है।

बिरला ब्रदर्स तथा ब्रिटिश फर्म बेबकाक एण्ड विल्काक्स ने 'स्मोक्ट्यूब बायलर्स' के निर्माण के हेतु एक समझौता किया है इसी प्रकार मशीन निर्माण उद्योग के सबन्ध मे भी श्री कृष्ण राजू ठेकरसे तथा टैक्सटाइल मशीनरी मेकर्स लि० (T. M. M) के अध्यक्ष श्री कैनेथप्रेस्टन के बीच समझौता हुआ है। समझौते की शर्तो के अनुसार (T. M M) पूंजी का २६% भाग लेगी तथा सचालक सभा मे २५% सीटे सुरक्षित रखने का अधिकार है। 'दि नेशनल मशीनरी मैन्यूफैक्चरर्स लिमिटेड' बम्बई के पास 'थाना' नामक स्थान पर 'स्पिनिंग मशीनरी फैक्ट्री' २५ फरवरी १९५२ को खोली है। कपनी की अधिकृत (Authorised) पूंजी ५ करोड रु० है।

भारत और अमेरिका के बीच समझौते

युद्धोपरान्त भारत ओर अमेरिका के बीच कुछ समझौते हुए हैं। १९४५ मे बालचन्द हीराचन्द ने क्रिसलर कारपोरेशन के साथ समझौता करके 'प्रीमियर आटोमोबाइल्स वर्क्स' की स्थापना की। इसी प्रकार सर पुरुषोत्तमदास ठाकुर दास तथा ए० डी० श्राफ जैसे उद्योगपतियो द्वारा स्थापित 'नेशनल रेयन कारपोरेशन लिमिटेड' के सबन्ध अमेरिका के 'स्केनेन्ड्र रेयन कारपोरेशन' तथा 'लौकउड ग्रीन एण्ड कम्पनी से हैं। इसके अतिरिक्त 'स्टुडबेकर-बिरला' नामक समझौता भी हुआ है। 'दी मोटर हाउस (गुजरात) लि०', अमेरिकन (केसर) तथा ब्रिटिश (जार्वेट) कारो का सयोजन किया करेगी।

इसके अतिरिक्त कुछ "Rupee Subsidiaries" भी स्थापित की गई है। उदाहरणार्थ 'गुडइयर टायर एण्ड रबर कम्पनी (इण्डिया) लि०' ३ करोड रु० की लागत से, 'एसोसिएटेड बैटरी मेकर्स (ईस्टर्न) लि०' १ करोड रु० की पूंजी से तथा 'ब्रिटिश ड्रग हाउस (इण्डिया) लि०' १५ लाख रु० की पूंजी से स्थापित की गई है।

नवम्बर १९५१ मे भारतीय सरकार, ब्रिटिश तथा दो अमरीकी कम्पनियो के बीच ६० करोड रु० की लागत से तीन 'आयल रिफाइनरीज' स्थापित करने के सम्बन्ध मे समझौत हुए हैं। यह समझौते इस प्रकार हैं —

१—अमेरिका की 'दि स्टैन्डर्ड वैक्यूम आयल कपनी' बम्बई मे ३५ मि० डालर की लागत से दस लाख टन की क्षमता (Capacity) की 'आयल रिफाइनरी' स्थापित करेगी।

२—वर्मा शैल (ब्रिटिश) १५ मि० पौड की लागत से १५ लाख टन की क्षमता (Capacity) की आयल रिफाइनरी स्थापित करेगी।

३—अमेरिका की कालटैक्स क० तीसरी आयल रिफाइनरी कलकत्ता में खोलेगी।

जनवरी १९५२ मे सरकारी स्तर (Government Level) पर एक दूसरा इन्डो-अमेरिकन समझौता हुआ है जिसके अनुसार दोनो देशो मे पाँच-पाच करोड डालर देकर 'इन्डो-अमेरिका टैक्नीकल कोआपरेशन फन्ड' की स्थापना की है।

इस प्रकार अमेरिका का व्यापारिक प्रभाव भारतवर्ष पर दिन प्रतिदिन बढता जा रहा है।

भारतवर्ष में आर्थिक शक्ति का केन्द्रीयकरण (Concentration of Economic power in India)

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारत के उद्योगो मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने शक्ति का बहुत बडी सीमा तक केन्द्रीयकरण कर लिया है। इसका एक प्रमुख कारण सचालको का अधिकाधिक स्वामित्व भी है। अन्य देशो से तुलना करने पर पता चलता है कि भारतवर्ष मे अन्य देशो की अपेक्षा बहुत अधिक सचालकीय केन्द्रीयकरण पाया जाता है। इस कथन की पुष्टि निम्न तालिकाओ से हो जावेगी। प्रो० सार्जेंट फ्लोरेंस के अनुसार सयुक्त राज्य (U K.) मे २१५७ सचालको का वितरण निम्न प्रकार था —

सचालको की सख्या	कुल का प्रतिशत	सचालकीय सख्या
९१०	४२	१
५४७	२६	२ या ३
३०६	१४	४ या ५
२५८	१२	६ से १०
१३८	६	१० से ऊपर

राष्ट्रीय साधन समिति (National Resources Committee) के अनुसार सयुक्त राज्य अमेरिका (U. S A.) मे युद्ध से पहले २५० कम्पनियो मे सचालकीय विभाजन इस प्रकार था —

सचालको की सख्या	सचालित कम्पनियो की सख्या
१	९
३	८
६	७
६	६
१९	५
४८	४
१०२	३
३०३	२

यद्यपि भारतवर्ष मे इस प्रकार की अक गणना नही की गई है, परन्तु १९३२ मे तटकर समिति (Tarrif Board) के समक्ष जो साक्षी दी गई थी उनके आधार पर बम्बई मे ६ सचालक क्रमश ६५, ४२, ३४, २९, २६ और २९ कम्पनियो के सचालक थे। १९४७ तक भारतवर्ष मे ५०० उद्योगो का सचालन २००० सचालको द्वारा किया जाता था, किन्तु सचालकीय कार्य केवल ८५० व्यक्तियो के हाथ मे था और इनमे से १००० केवल ७० व्यक्तियों के आधीन था। १० व्यक्तियों के पास ३०० सचालकीय कार्यालय थे। 'कम्पनी ला कमेटी' जो कि भाभा समिति के नाम से अधिक प्रसिद्ध है, मे बताया गया है कि १९५३ मे भी एक व्यक्ति के पास १५ से २० सचालकीय कार्यालय थे और कुछ दशाओ मे तो ३० सचालकीय कार्यालय तक भी थे।

प्रश्न

1. Examine the trend towards amalgamations and mergers in India, and discuss the causes of such combinations.

(Agra, B Com , 1952)

2. How do you explain the slow appearance of Combination in Indian Industry ?

3. Give the main classification of business combinations Illustrate your answer from Indian conditions.

(Agra, B. Com , 1948)

4 Trace briefly the growth of combinations in Indian industry What do you know about the big business deals negotiated with foreign industrialists after 1945 ?

(Allahabad, B. Com., 1952)

अध्याय ६

औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन

(Industrial Finance)

औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन किसी भी देश के औद्योगीकरण मे महत्वपूर्ण स्थान रखता है। कोई भी व्यवसाय चाहे वह बडे पैमाने पर हो या छोटे पैमाने पर हो बिना अर्थ-प्रबन्धन के सफल नही हो सकता। अर्थ-प्रबन्धन सम्पूर्ण औद्योगिक व्यवसायो का प्राण या जीवन है। अर्थ-प्रबन्धन की उचित व्यवस्था न होने के कारण अनेक औद्योगिक विकास की योजनाये असफल तथा बेकार हो जाती है। भारत की भी औद्योगिक उन्नति न होने का मुख्य कारण उचित अर्थ-प्रबन्धन का न होना ही है। विदेशी सरकार की इस ओर कोई विशेष रुचि न थी। इसमे उसका स्वार्थ छिपा हुआ था जो सर्व विदित है। भारत उस समय इगलैंड के निर्मित माल की खपत का मुख्य केन्द्र बना हुआ था। अत विदेशी सरकार की उपेक्षित नीति से भारत के औद्योगीकरण को बडा आघात पहुँचा। आज हमारा देश जब कि सर्वोन्मुखी उन्नति के द्वार पर खडा है और औद्योगिक विकास को सभी योजनाओं मे प्रथम स्थान दिया जा रहा है, यह परमावश्यक है कि औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन की समुचित व्यवस्था की जाय।

पूँजी की आवश्यकता

व्यवसायिक सस्थाएँ दो प्रकार की होती है — (१) औद्योगिक और (२) व्यापारिक। प्रत्येक औद्योगिक सस्था को दो प्रकार की पूँजी की आवश्यकता होती है — (१) स्थायी या अचल पूँजी (Fixed Capital) और (२) कार्यशील या चल पूंजी (Circulating or Working Capital)

स्थायी पूँजी (Fixed Capital)

स्थायी पूजी की आवश्यकता स्थायी सम्पत्ति के क्रय करने के लिए होती है। इसका आशय भूमि, भवन, मशीनरी तथा प्रारम्भिक व्ययो से है।

कम्पनी के निर्माण के पूर्व बहुत से प्रारम्भिक व्यय प्रवर्तकों को करने पड़ते हैं। इनका विश्लेषण निम्न प्रकार है :—

१—वास्तविक सम्पत्ति (Tangible Property)

(अ) स्थायी सम्पत्ति (Fixed Assets)

[१] भूमि तथा भवन
[२] प्लाट तथा मशीनरी, फरनीचर तथा सज्जा
[३] विविध स्थायी सम्पत्ति

(ब) चालू सम्पत्ति (Current Assets)

[१] धन (Cash Balance)
[२] स्टाक
[३] देनदार तथा विनिमय विपत्र
[४] विविध चालू सम्पत्ति

२—अवास्तविक सम्पत्ति (Intangible Investments)

[अ] प्रवर्तन व्यय (Promotion Expenses)
[ब] व्यवस्थापन व्यय (Organization Expenses)
[स] प्रारम्भिक हानि (Operating Losses)
[द] अर्थ प्रबन्धन का व्यय (Cost of Financing)
[य] ख्याति तथा पेटेन्ट्स (Goodwill & Patents)

स्थायी पूजी प्राप्त करने के साधन—जैसा कि उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि स्थायी पूजी दीर्घकालीन आर्थिक व्यवस्था के काम आती है। अत: स्थायी पूजी प्राप्त करने के लिये दीर्घकालीन अर्थ प्रबन्धन की आवश्यकता होती है। मुख्यरूप से स्थायी पूजी निम्नरूप मे एकत्र की जाती है :—

[अ] अंश पत्रों का निर्गमन करके,
[ब] ऋण पत्रों का निर्गमन करके,
[स] सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण ले करके,
[द] व्यापारिक अधिकोषों मे ऋण ले करके,
[य] विशिष्ट अर्थ प्रबन्धन संस्थाओं से ऋण ले करके।

इन सब साधनों का अध्ययन विस्तार में अगले पृष्ठों में किया गया है।

२—कार्यशील पूजी या चल पूजी (Circulating or Working Capital)—कम्पनी को अपने व्यापार के चलाने मे प्रतिदिन कुछ व्यय करना होता है जो कार्यशील पूजी मे से किया जाता है। कार्यशील पूजी की परिभाषा के सम्बन्ध म दो भिन्न मत पाये जाते है। प्रथम मत के अनुसार 'कार्यशील पूजी का आशय चालू सम्पत्ति (Current Assets) और चालू देनदारियो (Current Liabilities) से है और इसका समर्थन लिंकोलन (Lincoln), सलियर्स (Saliers), स्टैविस (Stavens) जैसे अर्थ-प्रबन्धन विशेषज्ञो ने किया है।

दूसरे मत के अनुसार 'कार्यशील पूँजी का अर्थ केवल चालू सम्पत्ति से माना जाता है और इस मत के समर्थक फील्ड (Field), बेकर (Baker), मैलेट Mallot) तथा मीड (Mead) हैं। इन मतान्तरो के होते हुए भी कार्यशील पूजी का तात्पर्य उस पूजी से लगाया जाता है जिससे कच्चा माल व अन्य सम्बन्धित वस्तुये क्रय की जाती हैं, पारिश्रमिक दिया जाता है तथा विक्रय व विज्ञापन सम्बन्धी व्यय इत्यादि किये जाते है।

कार्यशील पूजी इतनी मात्रा मे होनी चाहिये जिससे कम्पनी के दैनिक व्यय माल के निर्माण होने के पूर्व के व्यय तथा उसकी बिक्री होने तक के सब व्यय, सुचारु रूप से होते रहे, पूजी की तनिक भी कमी होने पर औद्योगिक या व्यापारिक सस्थाओ का पतन अवश्यम्भावी है। सक्षेप मे कायशील पूजी व्यापारिक सस्थाओ का जीवन रक्त है।

कार्यशील पूजी के रूप (Forms of Working Capital)

कार्यशील पूजी को उसकी आवश्यकता के अनुसार दो भागो म विभाजित किया जा सकता है।

(अ) स्थायी अथवा नियमित कार्यशील पूँजी—चालू सम्पत्ति म विनियोजित (Invested) धन का एक भाग उतना ही स्थायी होता है जितना स्थायी सम्पत्ति (Fixed Capital) का है। उदाहरणार्थ प्रत्येक औद्योगिक प्रमन्डल को कच्चे माल का न्यूनतम स्टाक रखने के लिए अपूर्ण कार्यों के लिए निर्मित माल, यन्त्र तथा साज सज्जा (Equipment) के लिए नियमित रूप से धन की आवश्यकता होती है।

(ब) मौसमी या विशेष कार्यशील पूजी—बहुत सी कपनियो

को मौसमी परिवर्तनों के अनुसार कार्यशील पूजी की आवश्यकता भी होती रहती है। कुछ पूजी की आवश्यकता असाधारण परिस्थितियों के कारण भी हो सकती है। उदाहरणार्थ भविष्य में ऊँचे होने वाले मूल्यों का लाभ उठाने के लिए कच्चे माल का स्टाक बढ़ाने के लिए गला काट प्रतिस्पर्धा (Cut Throat Competition) दूर करने के लिए, हड़ताल तथा लाक आउट्स सम्बन्धी समस्याएँ सुलझाने के लिए, तथा विशेष विज्ञापन करने के लिए अतिरिक्त कार्यशील पूंजी की आवश्यकता होती है।

नियमित तथा मौसमी कार्यशील पूंजी का अन्तर एक व्यवसायी के लिए विशेष महत्व की वस्तु है। केनीथ फील्ड (Keneeth Field) के अनुसार नियमित कार्यशील पूजी को लघुकालीन आधार पर प्राप्त नही करना चाहिए अन्यथा व्यापार के किसी भी समय बन्द हो जाने की आशका बनी रहती है। इसी कारण साधारण कार्यशील पूंजी को स्थायी पूंजी से अधिक महत्व दिया जाता है। भारतीय २९ प्रमुख उद्योगों मे की गई गवेषणा के अनुसार कार्यशील पूंजी का अनुपात स्थायी सम्पत्ति मे अधिक है, जैसा कि निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है :—

वर्ष	स्थायी सम्पत्ति		कार्यशील पूंजी	
	सम्पूर्ण पूंजी का प्रतिशत	धन राशि (करोड रुपयों मे)	सम्पूर्ण पूजी का प्रतिशत	धन राशि (करोड रुपयो मे)
१९४७	४३·९	१७७·२	५६·१	२२६·३
१९४८	४१·६	१२५·६	५९·४	२८६·५
१९४९	४४·७	२३७·५	५५·३	१८२·०
१९५०	४२·०	२५८·१	९८·०	३५६·४
१९५१	३८·६	२७५·२	६१·४	४३७·८
१९५२	४१·२	३००·९	५८·८	४२९·८

कार्यशील पूंजी प्राप्त करने के साधन (Sources of Working Capital)

कार्यशील पूंजी के दो रूप होने के कारण उसे प्राप्त करने के साधन भी दो प्रकार के होते हैं :—

(१) स्थाई साधन तथा

(२) चालू या मौसमी साधन।

(१) स्थाई साधन—नियमित कार्यशील पूजी, अंश-पत्रो तथा ऋण-पत्रो का निर्गमन करके तथा अर्जित लाभ का पुर्नविनियोग (Ploughing back of profits) करके प्राप्त की जाती है।

(२) चालू या मौसमी साधन—मौसमी या विशेष कार्यशील पूंजी आन्तरिक और बाह्य साधनों द्वारा प्राप्त की जाती है। आन्तरिक साधनो से पूंजी प्राप्त करने की मात्रा कम्पनी के लाभोपार्जन की क्षमता, सचित कोषो तथा ह्रास (Depreciation) कोषों की नीति पर निर्भर होती है। बाह्य साधनो के अन्तर्गत बैंक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, जननिक्षेप, देशी बैंकर तथा महाजन, विशिष्ट अर्थ-प्रबन्धन सस्थाएँ तथा कम्पनी की बचतें सम्मिलित है।

पूँजीकरण या अर्थ-प्रबन्धन योजना

(Capitalization or Financial Plan)

किसी भी कम्पनी की सफलता अथवा असफलता उसकी अर्थ-प्रबन्धन योजना पर निर्भर होती है। यदि यह कहा जाय कि अर्थ-प्रबन्धन योजना व्यापारिक क्रियाओं की सफलता की कुन्जी है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। एक नव निर्मित कम्पनी की अर्थ-प्रबन्धन योजना कुछ प्रमुख आर्थिक सिद्धान्तो पर आधारित होती है। प्रारम्भ मे पूँजीकरण (Capitalization) धन के मूल्याकन (Valuation) तथा मात्रा (Amount) के अर्थ मे प्रयोग किया जाता था। परन्तु आजकल पूँजीकरण तथा अर्थ-प्रबन्धन योजना एक ही अर्थ मे प्रयुक्त किए जाते है।

पूँजीकरण पूँजी तथा पूजी स्कध (Capital and Capital Stock) मे भिन्न है। पूजी स्कध मे केवल वह पूजी सम्मिलित होती है, जिस पर कि कम्पनी का स्वामित्व होता है। पूजीकरण मे स्वामित्व वाली पूँजी तथा ऋण द्वारा प्राप्त पूजी, दोनों ही सम्मिलित होती है। स्वामित्व वाली पूजी अशो को तथा ऋण द्वारा प्राप्त पूजी ऋण-पत्रों (Debentures) तथा बध-पत्रो (Bonds) को इगित करती है। यदि कम्पनी के पास कुछ अतिरेक (Surplus) या अविभाजित लाभ (Undivided Profit) है तो वह पूजीकरण के अन्तर्गत नही आता है।

पूँजीकरण मे पहले कुल सम्पत्ति निश्चित कर ली जाती है तत्पश्चात् इस पूँजी को विभिन्न साधनों (Sources) में वितरित किया जाता है। पूजी की मात्रा तथा उसके एकत्रित करने के साधनो का उचित अनुमान कम्पनी का प्रवर्तक (Promoter) लगाता है। इसके लिए कोई निश्चित नियम नहीं है। इसका निर्धारण कम्पनी की प्रकृति और मुद्रा बाजार की अवस्था के अनुसार किया जाता है। इस प्रकार पूँजीकरण या अर्थ-प्रबन्धन योजना का अध्ययन तीन रूपो मे किया जाता है —

(१) पूँजी की मात्रा (Amount of Capital)
(२) पूँजी का प्ररूप (Form or Composition of Capital)
(३) पूँजी का प्रबन्ध (Administration of Capital)

अर्थ-प्रबन्धन योजना की विशेषताएँ

किसी भी कम्पनी की अर्थ-प्रबन्धन योजना बनाते समय अथवा पूँजीकरण करते समय निम्न बातो पर ध्यान देना चाहिए —

(१) सरलता (Simplicity)—जहाँ तक हो सके किसी भी कपनी का आर्थिक ढाँचा सरलतम होना चाहिए जिससे उसका प्रबन्ध सरलता से हो सके। दूसरे शब्दा मे पूँजी एकत्रित करने के साधन सरल तथा कम से कम होने चाहिए।

(२) योजनात्मक पूर्व ज्ञान (Planning Foresight)—अर्थ-प्रबन्धन योजना बनाने से पहले कपनी के क्षेत्र तथा उसके कार्यो के बारे मे पूर्व ज्ञान तथा ठीक अनुमान आवश्यक है। क्योकि इन बातो के उचित निर्धारण पर ही अर्थ-प्रबन्धन योजना की कार्यक्षमता आधारित होती है। कभी-कभी आर्थिक सशोधन (Financial Adjustments) करना भी आवश्यक हो जाता है। अत अर्थ-प्रबन्धन योजना ऐसी होनी चाहिए जिससे उसमे आवश्यक सशोधन सरलतापूर्वक हो सके।

(३) आर्थिक साधनों का अधिकतम प्रयोग (Intensive use of Economic resources)—एक अच्छी अर्थ-प्रबन्धन योजना मे सभी उपलब्ध साधनो का अधिकतम प्रयोग होना चाहिए। इसके अतिरिक्त स्थायी तथा कार्यशील पूँजी मे उचित सन्तुलन होना चाहिए। जिससे पूँजी का उत्तम प्रयोग हो सके। स्थायी पूँजी का अतिरेक (Suplus) कार्यशील

पूंजी के अभाव को दूर करने के लिए तथा कार्यशील पूंजी का अतिरेक स्थायी पूंजी के अभाव को दूर करने के लिए न करना चाहिए, क्योंकि इससे कम्पनी के आर्थिक सकट मे फस जाने का भय रहता है।

(४) लोच (Elasticity)—एक वैज्ञानिक अर्थ-प्रबन्धन योजना मे पर्याप्त लोच होनी चाहिए। योजना मे लोच से तात्पर्य यह है कि आवश्यकता के समय कपनी अपनी विस्तार सम्बन्धी योजनाओं को सफलतापूर्वक धन प्रदान कर सके। लोच के अभाव मे कपनी की व्यापारिक क्रियाओ तथा विस्तार सम्बन्धी योजनाओ मे बाधा पड सकती है।

(५) आकस्मिक घटनाओ के लिए व्यवस्था—कपनी की अर्थ-प्रबन्धन योजना बनाने वालो को भावी आकस्मिक घटनाओ के लिए कुछ प्रावधान (Provision) करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि पूंजी का कुछ भाग ऐसी अदृश्य घटनाओं के लिए सुरक्षित अवश्य कर देना चाहिए।

(६) तरलता (Liquidity)—कम्पनी को अपनी सम्पत्ति का एक निश्चित प्रतिशत नकद (Casb) रखना चाहिए। इस 'निश्चित प्रतिशत' का निर्धारण कम्पनी की साइज, अवधि, साख, व्यापारिक चक्र की अवस्था तथा व्यवसाय की प्रकृति के आधार पर होता है।

अति पूंजीकरण (Over Capitalization)

'अति पूंजीकरण' का अर्थ साधारण रूप से लोग पूंजी के आधिक्य या अधिकता से लगाते हैं। परन्तु 'अति पूंजीकरण' का यह अर्थ बिल्कुल गलत है। 'अति पूंजीकरण' उस समय हो सकता है जब कि कम्पनी मे पूंजी का अभाव भी हो। 'अति पूंजीकरण' का वास्तविक अर्थ यह है कि 'कम्पनी इतना भी लाभोपार्जन नही करती है, जिससे इसकी प्रतिभूतियां (Securities) *सम मूल्य पर (At par) बिक सकें।'* दूसरे शब्दो मे यदि अशो (Shares)*

---

* 'The term over capitalization indicates that company is not earning enough to *make its securities sell at par*.'

Ghosh and Dr Om Prakash *Principles and Problems of Industrial Organisation*

का निर्गमन वास्तविक आवश्यकताओं से कहीं अधिक कर दिया गया हो जिससे लाभाँश की दर इतनी कम हो गई हो, जो अशो का विनय उनके सम मूल्य (At par) पर न होने दें तो उसे 'अति पूँजीकरण' कहते है। अति पूँजीकरण वाली कम्पनी मे विनियोजित धन का प्रयोग भी उचित रूप से नही होता है।

अति पूँजीकरण प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से निम्न दशाओ मे हो सकता है :—

(१) इतनी अधिक पूँजी का निर्गमन जिसका कम्पनी मे सद् उपयोग न हो सके।

(२) यदि घिसावट (Depreciation) अवशेष (Obsolescence) तथा अन्य आकस्मिक घटनाओं के लिए अपर्याप्त प्रावधान (Provision) किया गया हो जिससे सम्पत्ति (Assets) की कार्यक्षमता कम हो गई हो। ऐसी दशा मे कम्पनी की लाभोपार्जन की क्षमता गिर जाती है और अशधारी लोग भी समझ जाते है कि उनके अशो का वह मूल्य नही रहा है जिस पर उन्होंने स्वय क्रय किया था।

(३) यदि बाहर से अति ऊँची ब्याज की दर पर ऋण प्राप्त किए गए हो जिससे कम्पनी के लाभो का एक बहुत बडा भाग ब्याज के रूप मे चला जाता हो और अशधारियो के लिये बहुत कम लाभाश रह जाता हो।

(४) यदि कम्पनी का निर्माण समृद्धिकाल (Boom period) मे हुआ हो। समृद्धिकाल मे वस्तुओं के मूल्य ऊँचे होने के कारण कम्पनी की सम्पत्ति इत्यादि भी अधिक मूल्य पर खरीदी जाती है, जिसके फलस्वरूप पूँजी की मात्रा भी अधिक होती है। अवसाद काल (Depression period) आने पर भी सम्पत्ति का वही मूल्य रखा जाता है जब कि यथार्थ मे उसका मूल्य गिर जाता है। इस (अवसाद) काल मे सार्वजनिक मन्दी होने के कारण कम्पनी के लाभ भी कम हो जाते है। ऐसी अवस्था मे लाभाश की दर बहुत कम या नाम मात्र को रह जाती है, परिणाम स्वरूप अशो के मूल्यों का स्तर भी गिरने लगता है।

(५) कुछ औद्योगिक कम्पनियाँ कम उत्पादन करते हुए भी अपनी स्थापना, मशीनरी, साज सज्जा इत्यादि पर बहुत अधिक पूँजीगत

व्यय कर देते हैं। इससे उनके निर्माण सम्बन्धी व्यय (Operational Costs) बढ़ जाते है और अशधारियो के लिए लाभांश कम रह जाते हैं।

इस प्रकार 'अति पूंजीकरण' (Over Capitalization) प्राय. अधिक अंशों के निर्गमन, अचल सम्पत्ति के अशुद्ध मूल्याकन, बाहर से अधिक ऋण लेने, समृद्धिकाल मे व्यवसाय प्रारम्भ करने, अधिक व्यवस्था व्यय करने तथा घिसावट तथा आकस्मिक घटनाओ आदि के लिए कम प्रावधान करने से होता है।

द्रवित पूंजी (Watered Capital)

यदि किसी कम्पनी मे उसकी सम्पत्ति वास्तविक मूल्य से अधिक दिखाई जाती है तो उस अधिक धन के बराबर वाली पूंजी को द्रवित पूंजी कहते हैं। दूसरे शब्दो मे यदि कोई कम्पनी सम्पत्ति (*Assets*) को उसके वास्तविक मूल्य से अधिक मूल्य पर खरीदती है तो कहा जाता है कि उस कम्पनी की पूंजी 'द्रवित' (Watered) है। डाक्टर हसबैंड तथा डाक्टर डाकरे के अनुसार "द्रवित स्कध (Watered Stock) होने की प्रमुख पहचान प्रवर्तकों की इच्छा पर निर्भर होती है, जो कि स्कध का विक्रय करते है। यदि जान बूझ कर अशधारियो के शोषण के उद्देश्य से सम्पत्ति का मूल्य बढा दिया जाता है तो 'द्रवित दशा' का होना निश्चित है।"*

उदाहरण—इस कथन का स्पष्टीकरण एक नवनिर्मित कम्पनी के उदाहरण से सरलतापूर्वक हो जावेगा —

---

* The primary test of Watered Stock is found in the intent of the promoters who sell the stock. If there is a deliberate attempt to milk the shareholders by the inflation of the value of the assets, a watered condition is the inevitable result."

Dr. Husband and Dr. Dockeray : *Modern Corporation Finance*, p. 194

आर्थिक चिट्ठा (Balance Sheet)

देनदारियाँ (Liabilities)	धनराशि	लेन दारियाँ (Assets)	धनराशि
	रु०		रु०
अंश पूंजी	८,००,०००	भवन	४,००,०००
		मशीनरी	३,००,०००
		अन्य सम्पत्ति	१,००,०००
	८,००,०००		८,००,०००

इस उदाहरण मे यदि भवन का यथार्थ मूल्य ३,००,००० रु० तथा मशीनरी का यथार्थ मूल्य २,००,००० रु० हो तो कहा जावेगा कि भवन तथा मशीनरी दोनो मे एक-एक लाख रुपए का द्रव्य (Water) है। इस प्रकार पूंजी दो लाख रुपए की मात्रा तक द्रवित (Watered) है।

'द्रवित पूजी' तथा 'अति पूजीकरण' (Watered Capital and Over Capitalization)

'द्रवित पूजी' और 'अति पूजीकरण' का प्रयोग एक ही अर्थ मे नही किया जाता है। इन दोनों मे काफी अन्तर है। 'द्रवित पूजी' का प्रश्न कम्पनी के प्रवर्तन के समय उठता है। जितनी भी सम्पत्ति खरीदी जाय वह उसके यथार्थ मूल्य पर ही खरीदी जानी चाहिए। यदि वह (सम्पत्ति) यथार्थ मूल्य से अधिक पर खरीदी जाती है अथवा खरीदने के पश्चात् बेकार साबित होती है तो वह द्रवित (Watered) कही जावेगी। 'अति पूजीकरण' इसके विरुद्ध कम्पनी के निर्माण के कुछ वर्ष पश्चात् दृष्टिगोचर होता है।

कम्पनी मे द्रवित स्कध (Watered Stock) होने पर भी 'अति पूंजीकरण' नही हो सकता है, यदि कपनी की लाभोपार्जन क्षमता इतनी अधिक है जिससे उसके अंशों का विक्रय प्रब्याज (Premium) पर होता है।

अव पूजीकरण (Under Capitalization)

जब किसी कपनी मे आवश्यकता से कम अर्थात् अपर्याप्त पूजी होती है तो उसे 'अव पूजीकरण' (Under Capitalization) कहते हैं। 'अव पूजीकरण'

'अति पूंजीकरण' (Over Capitalization) का बिल्कुल विलोम होता है। 'अति पूंजीकरण' की दशा मे पूजी की बहुतायत होती है जबकि 'अव पूंजीकरण' मे प्रारम्भ से ही पूजी का नितात अभाव होता है। ऐसी अवस्था मे कपनियाँ अपनी आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति अल्पकालीन ऋणो तथा निक्षेपो (Deposits) से करते है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अहमदाबाद की सूती वस्त्र मिलो मे मिलता है। ये मिलें अधिकतर अल्पकालीन जन निक्षेपो (Short term Public Deposits) पर निर्भर रहती है। जन निक्षेप प्राय ६ माह से १ वर्ष तक की अवधि के होते है।

अव पूजीकरण की दशा मे कपनी का वास्तविक मूल्य (Real Value), पुस्तक मूल्य (Book Value) से कही अधिक होता है जो निम्न दशाओ मे सम्भव होता है —

[१] भावी आय का निम्न अनुमान (Under estimation of future earnings)—अर्थ प्रबन्धन योजना बनाते समय कभी-कभी आय कम आकी जाती है और इसी अनुमान पर कपनी का पूजीकरण आधारित कर दिया जाता है। यदि भविष्य मे लाभ अनुमान से अधिक होते है तो उस अवस्था मे कपनी का 'अव पूजीकरण' हो जाता है। भावी आय का निम्न अनुमान जान बूझकर नही बल्कि सयोगवश हो जाता है।

[२] आय मे अदृश्य वृद्धि—बहुत सी कम्पनियाँ जिनका निर्माण अवसाद काल (Depression Period) मे होता है, ऐसे समय मे विनियोजित पूजी पर अपेक्षाकृत अधिक लाभ होने लगता है।

[३] निश्चित लाभाश नीति—कुछ कम्पनियाँ लाभाश के सबध मे एक निश्चित नीति का पालन करती है। वे (कम्पनियाँ) घिसावट नवीनीकरण (Renewals) तथा पुनःस्थापन (Replacements) के लिए सचित कोष स्थापित करके तथा अर्जित आय का पुनर्विनियोग (Ploughing back of earned income) करके पर्याप्त धन एकत्रित कर लेते हैं। इसका फल यह होता है कि कम्पनी को लाभ अधिक होने लगते है और उसके अशो का वास्तविक मूल्य (Real Value) पुस्तक मूल्य (Book Value) से बढ जाता है।

[४] उच्च कार्यक्षमता बनी रहती है— कम्पनियाँ अपनी पिछली बचतो के द्वारा उत्पादन के आधुनिकतम साधनो तथा अभिनवीकरण

(Rationalisation) की योजनाओ का पालन करके अपनी कार्यक्षमता को बढा सकते है। चूंकि लाभ कम्पनी की कार्यक्षमता पर निर्भर होते है, बढ जाते है तथा तदनुसार कम्पनी का वास्तविक मूल्य, पुस्तक मूल्य से बढ जाता है।

पूजी मिलान (Capital Gearing)

उद्योग मे पूजी की अत्यधिकता तथा अभाव दोनो ही हानिकारक होते है। अत किसी भी उद्योग की पूजी को इस प्रकार व्यवस्थित करना चाहिए कि उसका मिलान (Gearing) हो सके। पूजी का मिलान कम्पनी की समस्त पूजी मे विभिन्न प्रकार के अशो तथा प्रतिभूतियो (Securities) के अनुपात से निश्चित किया जाता है। यदि सम्पूर्ण पूजी के अनुपात से साधारण अशो का निर्गमन किया गया हो और उधार ली गई पूजी (Debentures and loans) का अनुपात अधिक हो तो उसको अशो का अधिक मिलान (High Gearing of Capital) कहा जाता है। इसके विपरीत साधारण पूजी का अनुपात ऋणात्मक पूजी से अधिक हो तो उसको निम्न मिलान (Low Gearing) कहते है।

उदाहरण के लिए यदि किसी औद्योगिक सार्थ की कुल पूजी ५० लाख रु० है। इसमे से यदि ३० लाख रुपये ऋण–पत्रो (Debentures) का निर्गमन करके तथा २० लाख रुपय अशो का निर्गमन करके प्राप्त किए गए हो तो इस अनुपात को 'अधिक–मिलान' (High Gearing) कहा जावेगा। इसके विपरीत यदि ३० लाख रुपये अशो का निर्गमन करके तथा २० लाख रुपय ऋण–पत्रो का निर्गमन करके प्राप्त किए गए हो तो उस अनुपात को 'निम्न–मिलान' (Low-Gearing) कहा जावेगा।

औद्योगिक सार्थ की सफलता एव साख स्थिति बनाए रखने के लिए आवश्यक है कि पूजी का उचित मिलान (Proper-Gearing) हो।

प्रश्न

1. What methods would you adopt for raising *(a)* fixed capital and *(b)* working capital for a joint enterprise in India ?

2. What considerations should be kept in my mind while estimating capital requirements of a company ?

3. What are the types of capital ? What is meant by capital gearing ?

4. What do you mean by fixed and working capital ? Discuss their relative advantages and disadvantages

5. How would you estimate and raise fixed and working capital for a joint stock enterprise in India ?

(Agra, B. Com., 1958)

अध्याय ७

भारत में पूँजी प्राप्त करने के साधन

भारतवर्ष मे उद्योग धन्धो की वित्त सम्बन्धी आवश्यकताएँ दो प्रमुख साधनो से पूरी होती है। **प्रथम** तो उद्योगो के आन्तरिक साधनो से तथा **द्वितीय** उद्योगो के वाह्य साधनो से। आन्तरिक और वाह्य साधनो के अन्तर्गत आने वाले उप साधनों का विवरण इस प्रकार है :—

आन्तरिक साधन

(१) अश पत्रो एव ऋण पत्रों का निर्गमन,
(२) धारित (Retained) लाभ अथवा आय की पुर्नविनयोग, तथा
(३) ह्रास कोष (Depreciation Fund) ।

वाह्य साधन

(४) व्यापारिक बैंक,
(५) देशी बैंक,
(६) सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposits),
(७) प्रवन्ध अभिकर्त्ता,
(८) विशिष्ट सस्थाएँ, तथा
(९) विदेशी पूजी।

[१] अंश पत्रों का निर्गमन (Issue of Shares)

औद्योगिक पूजी प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन अश पत्रो का निर्गमन है। अधिक से अधिक पूजी प्राप्त करने के लिए तथा प्रत्येक रुचि के विनियोक्ता को सुविधा प्रदान करने के लिए विभिन्न प्रकार के अश पत्रों का निर्गमन किया जाता है। सन् १९५६ के पूर्व भारतवर्ष में प्रमण्डल द्वारा प्राय· तीन प्रकार के अशो (साधारण, पूर्वाधिकार तथा स्थगित) का निर्गमन होता था परन्तु नवीन कम्पनी अधिनियम १९५६ के अनुसार केवल दो प्रकार के अश पत्र—पूर्वाधिकार (Preferential) तथा सामान्य (Equity) को ही निर्गमित किया जा सकता है।

साधारण अश पत्र (Ordinary Shares)

सम्पूर्ण अशो मे **साधारण अंशों** का ही मुख्य स्थान है। यदि साधारण अशो को *औद्योगिक वित्त व्यवस्था की आधार शिला कहा जाय* तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। साधारण अशो की प्रमुखता उनके कुछ लाभो के कारण है जो कि निम्नलिखित हैं —

(१) प्रमन्डल को पूजी स्थायी रूप से प्राप्त हो जाती है और उसके पुन भुगतान की आवश्यकता नही होती है।

(२) साधारण अश पत्रो के निर्गमन करने मे कम्पनी की सम्पत्ति को प्राधि (Security) नही दी जाती है। अत इस सम्पत्ति को आवश्यकता के समय अतिरिक्त ऋण लेने के हेतु प्रयोग मे लाया जा सकता है।

(३) यदि किसी वर्ष प्रमन्डल को अपर्याप्त लाभ होता है या हानि हो जाती है तो उस अवस्था मे अशधारियो को लाभाश नही दिया जाता है।

इन लाभों के होते हुए भी साधारण अश पत्रो के कुछ दोष हैं। **प्रथम** तो अशधारियो का अधिकार प्रमडल पर हो जाता है और उनकी *तनिक भी धृष्टता से साधारण व्यापारिक कार्यों मे* बाधा पड सकती है। **द्वितीय,** अत्यधिक साधारण अश पत्रो के निर्गमन से सामान्य अश पत्रो (Equity-Shares) को वैधानिक नियन्त्रण के कारण या अन्य किसी कारण से सस्थागत विनियोक्तागण तथा निजी विनियोगीगण क्रय नही कर सकते और इस प्रकार सामान्य पूजी *का लाभ भी नही उठाया जा सकता।* **तृतीय,** अत्यधिक *निर्गमन का प्रभाव* **अति पूजीयन** (Over Capitalization) हो सकता है।

पूर्वाधिकार अश (Preference Shares)

पूर्वाधिकार स्कध या पूर्वाधिकार वाले अश, अन्य पूजी के भाग है जिन पर कुछ विशेष *पूर्वाधिकार अश-धारियो को प्राप्त होते है। यह इस प्रकार की* प्रतिभूति होती है जिनमे ऋण पत्रो (Debentures) व साधारण अश-पत्रो की विशेषताएँ किसी सीमा तक मिश्रित होती है। पूर्वाधिकार अशो का उद्गम सर्व प्रथम इगलैंड मे हुआ और आरम्भ मे यह अश पत्र

'अक्रियाशील' (Passive), 'लाभदायक' (Profitable) स्वदेशी' (Country) के नामो से तथा साधारण अश पत्र 'क्रियाशील' (Active), 'जोखिम वाले' (Adventurers) तथा 'स्वदेशाभिमानी' (Patriotic) के नामो से प्रचलित थे। सर्वप्रथम १८२६ मे पूर्वाधिकार अश पत्र लाभाश प्राप्त करने के पूर्वाधिकार (Preferential dividend rights) सहित निर्गमित किए गए। उस समय कुछ पूर्वाधिकार अशो पर लाभांश प्राप्त करने का अधिकार ऋण-दाताओ के भी ऊपर होता था। सन् १८५७ मे पूर्वाधिकारी अश पत्र एक न्यायालय के निर्णय के अनुसार सचयी (Commulative) बना दिए गए। इन अश पत्रो को और अधिक आकर्षित तथा लोकप्रिय बनाने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार के अधिकार दिए गए है जो कि निम्न प्रकार है —

(१) आय सम्बन्धी पूर्वाधिकार—पूर्वाधिकार वाले अशो मे अशधारियो को कम्पनी द्वारा उपार्जित आय के वितरण मे प्राथमिकता की जाती है। साधारण अशधारियो को उस समय तक लाभाश नही दिया जाता है जब तक पूर्वाधिकारी अशधारियो को। इस प्रकार लाभाश प्राप्त करने की प्राथमिकता का अधिकार सचयी (Commulative) या असचयी (Non-Commulative) हो सकता है। यदि लाभाश प्राप्त करने का अधिकार सचयी है तो उस अवस्था मे भी अशधारी का लाभाश प्राप्त करने का अधिकार समाप्त नही होता जबकि कम्पनी ने उस वर्ष कोई भी लाभाश घोषित न किया हो। अर्थात् अशधारी अपना लाभाश अगले वर्ष या वर्षो मे जबकि कम्पनी को लाभ हो, प्राप्त करने का अधिकार रखता है। इसके विपरीत यदि पूर्वाधिकार असचयी है तो उस अवस्था मे अशधारी लाभाश केवल उसी वर्ष प्राप्त कर सकेगा जबकि लाभ हुआ हो अन्यथा नही।

(२) सम्पत्ति सम्बन्धी पूर्वाधिकार—साधारणतया पूर्वाधिकारी अशधारियो का पूर्वाधिकार लाभाश प्राप्त करने का होता है और कम्पनी की सम्पत्ति पर पूर्वाधिकारी व साधारण अशधारियो दोनो ही का समान अधिकार होता है। हाँ पूर्वाधिकारी अशधारियो को पूजी वापस देने मे प्राथमिकता दी जाती है और इसी कारण कुछ लोग यह समझने लगते है कि पूर्वाधिकारी अशधारियो को कम्पनी की सम्पत्ति बेचने या लेने का अधिकार होता है। परन्तु ऐसी बात नही है। पूजी की वापिसी किसी दूसरे रूप या साधनो के द्वारा भी की जा सकती है।

(३) नियन्त्रण सम्बन्धी पूर्वाधिकार—अधिकतर मतदान का अधिकार साधारण अंशधारियों को होता है। यद्यपि पूर्वाधिकारी अंशधारी कम्पनी के हिस्सेदार समझे जाते हैं, परन्तु फिर भी मतदान के अधिकार से उन्हें वंचित रक्खा जाता है। हाँ इन लोगों को आकस्मिक अधिकार (Contingent Rights) विशेषतया ऋण प्राप्त करने के सम्बन्ध में, तथा पूर्वाधिकार अंश-पत्रों पर शेष (Arrear) लाभांश प्राप्त करने के सम्बन्ध में दिए जाते हैं।

(४) परिवर्तन सम्बन्धी पूर्वाधिकार—कम्पनी के प्रारम्भिक जीवन में पूर्वाधिकारी अंशधारियों को सुरक्षा प्रदान करने के लिए परिवर्तन सम्बन्धी सुविधा (Priviledge) दी जाती है। इस प्रकार से पूर्वाधिकारी अंश-धारी अपने अंशों को साधारण अंशों में परिवर्तित करके साधारण अंशधारी बन सकते हैं। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है परिवर्तन सम्बन्धी शर्तें अनाकर्षक होती जाती हैं और कुछ वर्ष पश्चात् यह सुविधा सदैव के लिए बन्द कर दी जाती है।

(५) भुगतान सम्बन्धी पूर्वाधिकार—नवीन कम्पनी अधिनियम १९५६ की धारा ८० के अनुसार सीमित दायित्व वाली कम्पनी, यदि उसे पार्षद अन्तर्नियमों द्वारा अधिकार प्राप्त है तो वह शोध्य पूर्वाधिकार अंश (Redeemable Pref. Share) का निर्गमन कर सकती है। इसी अधि-नियम के अनुसार कम्पनी को इस कार्य के लिये 'पूँजी शोध्य संचय निधि' (Capital Redemption Reserve Fund) स्थापित करना आवश्यक है। शोध्य पूर्वाधिकार अंश का कम्पनी वित्त व्यवस्था में विशेष स्थान है। यह अर्ध-स्थायी (Semi-Permanent) पूँजी प्राप्त करने का एक अच्छा साधन है।

पूर्वाधिकार अंशों के लाभ

पूर्वाधिकार अंशों के निर्गमन के अनेक लाभ हैं जिनमें से प्रमुख निम्न-लिखित हैं —

(१) पूर्वाधिकार अंश उस वर्ग के विनियोक्ताओं की आवश्यकता की पूर्ति करता है जो आय की निश्चितता एवं नियमितता पर अधिक ध्यान देते हैं।

(२) पूर्वाधिकार अंशों का निर्गमन उस अवस्था में आवश्यक हो जाता

है जब कपनी के पास ऋण पत्रों का निर्गमन करने के लिए पर्याप्त प्रतिभूति नहीं होती है।

(३) ऐसी अवस्था में जब कपनी के प्रबन्धकर्त्ता-गण कपनी की सम्पत्ति को रहन (Mortgage) न रखना चाहते हों और उसे भविष्य की आकस्मिक घटनाओं के लिए सुरक्षित रखना चाहते हों।

(४) पूर्वाधिकार अशो पर केवल एक निश्चित दर से लाभाश दिया जाता है और शेष लाभाश साधारण अशधारियो में वितरित कर दिया जाता है। इस प्रकार से साधारण अशधारियो को एक ऊँची दर से लाभाश प्राप्त हो जाता है।

(५) पूर्वाधिकार अशधारियो को मतदान का अधिकार बहुत ही सीमित होता है अत कितने भी पूर्वाधिकार अशो के निर्गमन से कम्पनी की नीति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं होता है।

(६) पूर्वाधिकार अशो को बोनस के रूप में देकर कपनी के बधों (Bonds तथा सामान्य स्कध (Common Stock) का विपणि मूल्य बढ़ाया जा सकता है।

पूर्वाधिकार अशों की हानियाँ :—

पूर्वाधिकार अशधारियो को उपरोक्त लाभो के होते हुए भी निम्न हानियाँ अथवा असुविधाएं उठानी पड़ती है —

(१) पूर्वाधिकार अशधारियो को मतदान का अधिकार बहुत ही सीमित मात्रा में प्राप्त होता है।

(२) अधिकतर पूर्वाधिकार अशधारियो को कम्पनी की अतिरेक (Excess) आय में भाग लेने का अधिकार नहीं होता है।

(३) पूर्वाधिकार अशो का निर्गमन करने वाली कम्पनी अपने पार्षद सीमा (Articles of Association) में इस प्रकार की व्यवस्था करके या शोध्य पूर्वाधिकार अशो का निर्गमन करके पूर्वाधिकार अशो का भुगतान किसी समय भी या एक निश्चित तिथि के बाद

कर सकती है। इस प्रकार पूर्वाधिकार अशधारी कम्पनी के उस लाभ को प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं जो कम्पनी सुदृढ़ व सुव्यवस्थित होकर प्राप्त करती है।

[३] स्थगित अंश पत्र (Deferred Shares)

इन अशो पर लाभाश, साधारण अशधारियो को एक निश्चित दर से लाभाश देने के पश्चात दिया जाता है। इन अशो को सस्थापक अश (Founders Shares) या प्रवर्तकों के अश (Promoters Shares) कहते हैं क्योंकि ये अधिकतर स्थापकों (Founders) या प्रवर्तकों के द्वारा क्रय किये जाते हैं। इन अशो के निर्गमन का मुख्य ध्येय इनके स्वामियो (Holders) को कम्पनी के प्रबन्ध मे प्रमुख हाथ (Controlling Voice) देना है। ये अश कम मूल्य के होने पर भी, अपेक्षाकृत अधिक मतदान का अधिकार रखते है। इस प्रकार कम मूल्य (Low Denomination) के अशो का निर्गमन एक वैधानिक चालबाजी (Legal Trick) है जिसका गुप्त अभिप्राय कुछ व्यक्तियो के हाथ मे सत्ता उत्पन्न करना है। इस विशेषाधिकार (Privi'edge) का लाभ उठाने के लिए पिछले कुछ वर्षो मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को प्रवृत्ति स्थगित अशो (Deferred Shares) को अधिक से अधिक निर्गमित करने की हो गई है।

परन्तु इस प्रकार के निर्गमन मे सबसे अधिक हानि साधारण अशधारियो को उठानी पडती है और उन्होंने भारत सरकार को प्रस्तुत किए गए स्मारक (Memorandum) मे कहा भी था कि 'यह प्रवृत्ति इतनी खतरनाक है कि इस पर प्रतिबन्ध वैधानिक रूप से अवश्य लगना चाहिए।' * भाभा समिति (Bhabha Committee) जो 'कम्पनी अधिनियम समिति' (Company Law Committee) के नाम से प्रसिद्ध है, का कथन भी उपरोक्त अशधारियो के सुझाव से मिलता-जुलता है। समिति के विचार मे 'नियमत विभिन्न मतदान का अधिकार रखने वाले स्थगित अशो की नाममात्र को प्रशसा की जा सकती है और कुछ विशेष दशाओ को छोड़कर यह केवल एक वैधानिक

---

* The practice is so heinous that it must be checkmated by means of legislation."

चाल है जिससे कम पूंजी के स्वामित्व द्वारा किसी उपक्रम (Undertaking) पर नियन्त्रण प्राप्त किया जाता है।"†

ऋण पत्र (Debentures)

[२] बंध तथा ऋण पत्रों का निर्गमन

औद्योगिक पूंजी प्राप्त करने का दूसरा साधन ऋण पत्रों तथा बंधों (Bonds) का निर्गमन है। ऋण पत्र (Debentures) रक्षित (Secured) व अरक्षित (Unsecured) दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। अमेरिका में अरक्षित बंधों (Bonds) को ही ऋण पत्र (Debenture) कहते हैं। परन्तु भारतवर्ष ने इस सम्बन्ध में इंगलैंड की नकल की है जहाँ इस प्रकार का भेद नहीं किया जाता। यहाँ बन्धों (Bonds) और ऋण पत्रों (Debentures) का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है। भारतीय कम्पनी अधिनियम (१९५६) ऋण पत्र को परिभाषित नहीं करता, केवल इतना बताता है कि इसके अन्तर्गत ऋण-पत्र स्कंध (Debenture Stock) सम्मिलित होते हैं। [धारा २ (१२)] ऋण-पत्र साधारणतः उस पलेख को कहते हैं जो ऋण की स्वीकृति होती है अथवा जिसके द्वारा ऋण प्राप्त किया जाता है। ऋण पत्र (Debenture) की उत्पत्ति लैटिन शब्द "Debre" से हुई है जिसका अर्थ केवल ऋण मात्र में होता है चाहे वह रक्षित (Secured) हो या अरक्षित (Unsecured)। ऋण पत्रों का निर्गमन कम्पनी के पार्षद सीमा नियमों के अनुसार ही हो सकता है अन्यथा नहीं।

ऋण पत्रों के रूप (Kinds of Debentures)—

ऋण पत्र विभिन्न प्रकार के होते हैं। अध्ययन की सरलता के दृष्टिकोण से उन्हें अगले पृष्ठ पर दिए गए चार्ट के रूप में व्यक्त किया जा सकता है —

---

† "In our opinion, deferred shares with disproportionate voting rights have, as a rule, little to commend themselves, and except in very rare cases are merely a legal desire for securing control over an undertaking, with a comparatively small holding of share capital"

(Report of the Company Law Committee, pp. 35-36)
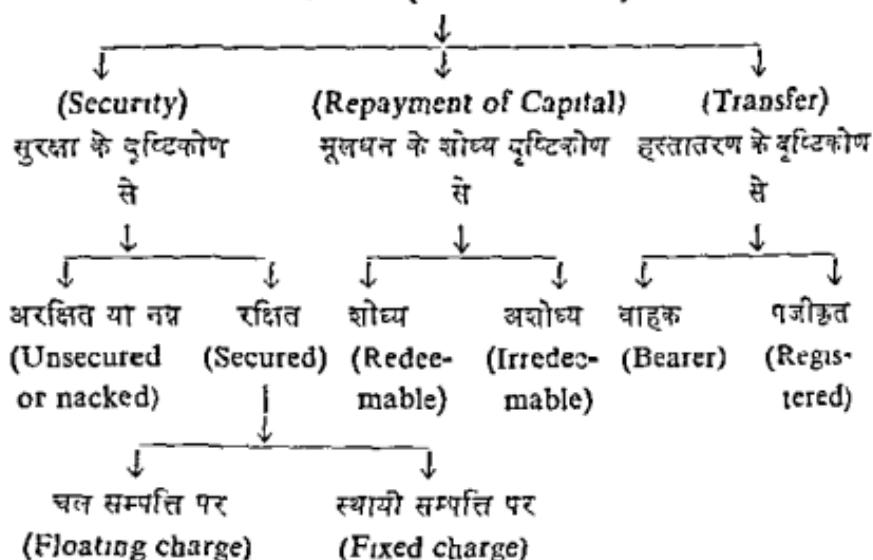
(१) **रक्षित तथा अरक्षित ऋण पत्र**—सुरक्षा के दृष्टिकोण से ऋण पत्र दो प्रकार के हो सकते हैं—रक्षित तथा अरक्षित। यदि ऋण-पत्रो का निर्गमन कपनी की सम्पत्ति को रहन अथवा बन्धक के रूप मे रख कर किया गया है तो ऐसे ऋण पत्र **रक्षित** ऋण पत्र कहलाते है और यदि ऋण पत्रों का निर्गमन बिना किसी ऐसी प्रतिभूति के किया गया है तो वे **अरक्षित या नग्न** (Nacked) ऋण पत्र कहलाते है। अमेरिका मे, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रथम प्रकार के ऋण-पत्र **'बध'** (Bonds) और द्वितीय प्रकार के ऋणपत्र **'ऋण-पत्र'** (Debentures) कहलाते है।

रक्षित ऋण पत्र भी दो प्रकार के होते है। जिन ऋण पत्रों का निर्गमन स्थायी सम्पत्ति के बन्धक (Mortgage) पर होता है उन्हे स्थायी ऋण पत्र (Fixed Debentures) कहते हे। बन्धक के रूप मे दी गई स्थायी सम्पत्ति का विक्रय नही हो सकता और न उसे पुन बन्धक के रूप मे दिया जा सकता है। जिन ऋण पत्रो का निर्गमन चल सम्पत्ति की प्रतिभूति के आधार पर किया जाता है उन्हे **चल ऋण पत्र** (Floating Debentures) कहते है। चल ऋण पत्रो की सम्पत्ति का प्रयोग कम्पनी अपने दैनिक कार्यो के लिए पूर्ववत् कर सकती है परन्तु समापन (Winding up) के समय ऋण पत्र-धारियो को ऐसी सम्पत्ति से भुगतान लेने का अधिकार है।

(२) शोध्य एवं अशोध्य ऋण पत्र—शोध (Repayment) के दृष्टिकोण से ऋण पत्र दो प्रकार के हो सकते है—शोध्य तथा अशोध्य। शोध्य ऋण पत्रों से हमारा आशय उन ऋण पत्रो से है जिनका भुगतान किसी निश्चित समय के बाद कर दिया जाता है। परन्तु कुछ ऐसे ऋण पत्र होते है जिनका भुगतान केवल समापन के समय ही होता है। समापन के पूर्व ऐसे ऋण पत्रधारी भुगतान माग भी नही सकते है। हा इन ऋण पत्रो पर एक निश्चित दर से कम्पनी के आजीवनकाल तक ब्याज दिया जाता है।

(३) वाहक तथा पंजीकृत ऋण पत्र (Bearer & Registered Debentures)—हस्तातरण के दृष्टिकोण से ऋण पत्र वाहक तथा पंजीकृत हो सकते हैं। वाहक ऋण पत्र वे ऋण पत्र होते है जिनका हस्तातरण किसी भी समय हो सकता है और उसका कोई भी धारक (Holder) ऋण पत्रो का ब्याज अथवा भुगतान प्राप्त कर सकता है। परन्तु पंजीकृत या रजिस्टड ऋण पत्रो मे ऐसा नहीं होता है। यह वे ऋण पत्र होते है जिनके धारियो (Holders) के नाम ऋण पत्र रजिस्टर मे लिखे जाते है इन्ही रजिस्टड धारियो को ऋण पत्रो का भुगतान तथा ब्याज लेने का अधिकार होता है।

बंध (Bonds)

बंध कम्पनी और धारियो के मध्य हुए समझौते (Agreement) को इंगित करते है। बंध बताते है कि बंध धारियो के कुछ अधिकार व स्वत्व (Claims) निगमन करने वाली कम्पनी के प्रति है। बंध धारियो (Bond holders) के पूर्ण अधिकार तथा कम्पनी के नियम (Covenant) एक प्रलेख मे लिखे होते है जिन्हे प्रतिज्ञा पत्र (Indenture) कहते है। अमेरिका मे बंध धारक (Bond holders) अपने अधिकारो की सुरक्षा के लिए तथा कम्पनी द्वारा प्रतिज्ञा पत्र की शर्तों का पालन करने के लिए एक व्यक्ति को चुनते है जिसे प्रन्यासी (Trustee) कहते है। प्रन्यासी अपने बंध-धारियो के हितो की रक्षा के लिए भरसक प्रयत्न करते हैं।

बंधो का वर्गीकरण (Classification of Bonds)

बंधो का स्पष्ट एवं सतोषजनक वर्गीकरण तो वास्तव मे असम्भव है। अमरिका मे एक ही प्रकार के बंधो को भिन्न-भिन्न नामो से पुकारा जाता है।

अत. भिन्न-भिन्न नाम लेते हुए भी कुछ बध ऐसे है जिनकी विशेषताएँ लगभग एक सी है। फिर भी भिन्न-भिन्न प्रकार के बन्धो को निम्न प्रकार विभाजित किया जा सकता है :—
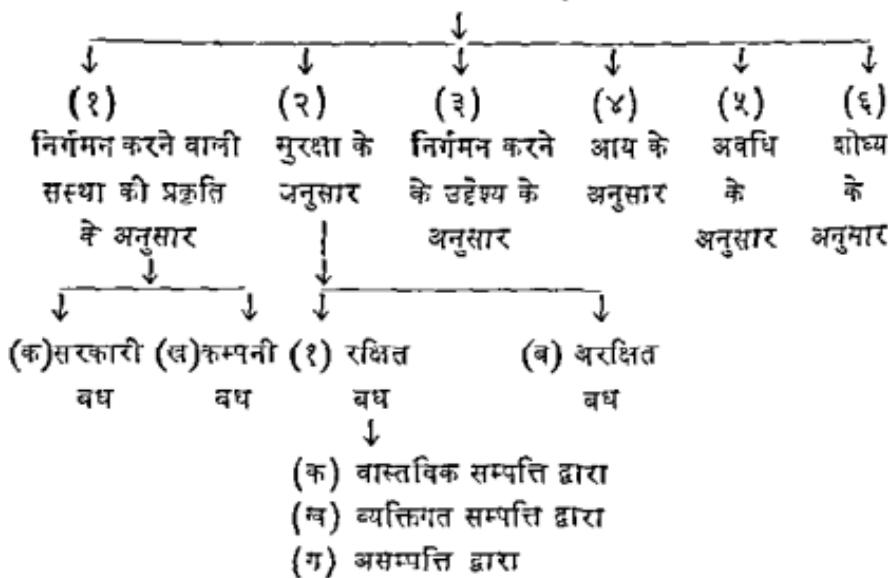
(१) सस्था की प्रकृति के अनुसार

निर्गमन करने वाली सस्था या तो सरकार स्वय हो सकती है या कोई कारपोरेशन के रूप मे सस्था जैसे रेलवे कपनी, सार्वजनिक कल्याणकारी सस्था, औद्योगिक सस्था इत्यादि। सरकार द्वारा निर्गमित बन्धो को राज्य बध (Govt Bonds & State Bonds) कहते है। रेलवे क०, सार्वजनिक कल्याणकारी सस्था तथा औद्योगिक सस्थाओ द्वारा निर्गमित बधो को क्रमश रेलवे सार्वजनिक बध (Public Bonds) तथा औद्योगिक बध कहते है।

(२) सुरक्षा के अनुसार

सुरक्षा की दृष्टि से बधो को दो वर्गो मे विभाजित किया जा सकता है :-

(१) रक्षित बध *(Secured Bonds)*

(२) अरक्षित बध (Unsecured Bonds)

(अ) रक्षित बंध

यदि बन्धों का निर्गमन सम्पत्ति को रहन रख कर किया गया है तो वे रक्षित बध कहलाते है । यदि बन्धो का निर्गमन वास्तविक पूंजी को रहन रख कर किया है तो वे रहन बध (Mortgaged Bond) कहलाते हैं । यदि बन्धो का निर्गमन वैयक्तिक (Personal) सम्पत्ति को रहन रखकर किया गया है तो वे वैयक्तिक सम्पत्ति द्वारा रक्षित बन्ध (Secured by Personal Property) कहलाते है । जैसे 'कौलेटरल ट्रस्ट बोंड' तथा 'इक्यूपमेंट ट्रस्ट बौड' इत्यादि । इसी प्रकार यदि बन्धो का निर्गमन सम्पत्ति के अलावा अन्य किसी प्रकार की प्रतिभूत देकर किए जाते है तो वे 'असम्पत्ति द्वारा रक्षित बन्ध' (Secured by non-property) कहलाते है जैसे 'कल्पित बन्ध' (Assumed Bond) *'गारन्टीड बन्ध' तथा सयुक्त बन्ध (Joint Bond) इत्यादि ।*

(ब) अरक्षित बध

इसके विपरीत यदि बन्ध बिना किसी प्रतिभूति के निर्गमित किए जाते है तो वे अरक्षित बन्ध या ऋण पत्र कहलाते हैं ।

(३) निर्गमन करने के उद्देश्य के अनुसार

बधो का वर्गीकरण उनके निर्गमन के उद्देश्य के अनुसार भी किया जा सकता है जैसे 'क्रय मूल्य बध' (Purchase Money Bonds), 'विस्तार एव उन्नति बध' (Extension and Improvement Bonds), सघनन बन्ध (Consolidation Bonds) तथा निस्तार बन्ध (Funding or Refunding Bonds) इत्यादि । जब कभी सम्पत्ति के विक्रेताओं को क्रय मूल्य के रूप मे बन्ध दिए जाते है तो वे 'क्रय मूल्य बन्ध' कहलाते है । कभी–कभी व्यवसाय के 'विस्तार एव उन्नति के लिये बन्ध' कहते है । इसी प्रकार यदि कम्पनी ने विभिन्न प्रकार के छोटे–छोटे निर्गमन किए हैं तो अपनी आर्थिक व्यवस्था को सरल करने के हेतु 'सघनन बध' निर्गमित कर सकती है । यदि कोई कम्पनी वर्तमान बन्धों का शोध्य करने के लिए नवीन बन्धो का निर्गमन करती है तो इस प्रकार के बन्ध 'निस्तार बन्ध' (Refunding Bonds) कहलाते है ।

(४) आय के अनुसार

आय के अनुसार बन्धो का वर्गीकरण निम्न प्रकार हो सकता है —

(१) स्थायी ब्याज वाले बन्ध (Fixed Interest Bonds)

(२) आय के अनुपात वाले बन्ध (Income or Adjustment Bonds)
(३) भागिता तथा लाभ भाजन बन्ध (Participating and Profit Sharing Bonds)
(४) स्थायी बन्ध (Stabilised Bonds)
(५) रजिस्टर्ड बन्ध (Registered Bonds)
(६) कूपन या वाहक बन्ध (Coupon or Bearer Bonds)

(१) स्थायी ब्याज वाले बन्ध—*वे इस प्रकार के बन्ध होते है जिन पर ब्याज सदैव एक ही दर से दी जाती है चाहे कम्पनी की आय बढ गई हो, या कम हो गई हो।*

(२) आय के अनुपात वाले बन्ध—*इस प्रकार के बध उस समय निर्गमित किए जाते हे जब कम्पनी की आय पर्याप्त तथा स्थायी होती है।* कभी-कभी आर्थिक पुनर्गठन होने पर 'समाधान बन्ध' (Adjustment Bonds) निर्गमित किए जाते है और ये उस वर्ग के लोगो को दिए जाते है जो कम लाभदायक स्थिति म होते है।

(३) भागिता तथा लाभ भाजक बन्ध—*इस प्रकार के बन्धधारियो को एक निश्चित दर से ब्याज लेने के अतिरिक्त कम्पनी के लाभ मे भाग लेने का अधिकार भी होता हे।* इस प्रकार के बन्ध उन सस्थाओ के द्वारा निर्गमित किए जाते है जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नही होती है, अथवा उस समय निर्गमित किए जाते है जब मुद्रा बाजार ऊँचा (Strained) होता है।

(४) स्थायी बन्ध—*इस प्रकार के बन्ध सर्वप्रथम १९२५ मे "रैंड कारडैक्स कम्पनी" (Rand Kardex Co) ने निर्गमित किए थे। इस प्रकार* वे बधो पर ब्याज की दर जीवन निर्वाह निर्देशांको (Cost of Living Index Nos) के अनुसार निश्चित की जाती है। यदि जीवन निर्वाह निर्देशाक ऊँचा हो जाता है तो ब्याज की दर भी ऊँची कर दी जाती है, और यदि जीवन निर्वाह निर्देशाक नीचा हो जाता है अर्थात् वस्तुओ के मूल्य गिर जाते हैं तो उसी अनुपात मे ब्याज की दर भी कम कर दी जाती है। यही नियम मूलधन के सम्बन्ध मे भी लगता है। यह बन्ध अधिक प्रचलित नही है।

(५) पजीकृत बन्ध—*ये वे बन्ध होते हैं जिनकी प्रवृष्टि (Entry)*

कम्पनी के रजिस्टर में होती है। इन बंधों का ब्याज केवल रजिस्टर्ड धारियों को ही मिल सकता है।

(६) कूपन या वाहक बन्ध—कूपन बन्धों के साथ में ब्याज के कूपन लगे रहते हैं और प्रत्येक ब्याज की किश्त के भुगतान के लिए एक कूपन होता है। कूपनधारी या कूपन वाहक को ब्याज प्राप्त हो सकता है। इन बन्धों को वाहक बन्ध भी कहते हैं। इनका हस्तांतरण केवल दे देने (Delivery) मात्र से ही होता है।

[५] अवधि के अनुसार

अवधि के अनुसार वर्गीकरण करने पर बन्ध नोट्स (Notes), लघुकालीन, मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन, स्थायी या अशोध्य बन्धों के नाम से पुकारे जाते हैं। नोट्स एक वर्ष से लेकर पांच वर्ष तक की अवधि के होते हैं और कम्पनी की आय पर अधिकार रखते हैं। इनको यथार्थ रूप में बन्ध नहीं कहा जा सकता है। यदि बन्ध लघुकाल, दीर्घकाल या मध्यकाल के लिए निर्गमित किए जाते हैं तो वे लघुकालीन, दीर्घकालीन तथा मध्यकालीन बन्ध कहलाते हैं। जिन बन्धों का भुगतान कम्पनी के जीवन में नहीं किया जाता वे अशोध्य (Irredeemable) बन्ध कहे जाते हैं। इस प्रकार के बन्धों पर ब्याज एक निश्चित दर में दिया जाता है चाहे कम्पनी को लाभ हो अथवा नहीं।

[६] शोध्य के अनुसार

शोध्य के अनुसार बन्धों का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है —

(१) क्रमानुसारी बन्ध (Serial Bonds)
(२) 'सिंकिंग फंड' बन्ध (Sinking fund Bonds)
(३) परिवर्तनशील बन्ध *(Convertible Bonds)*
(४) वापस लिए जा सकने वाले बन्ध (Callable Bonds)

(१) क्रमानुसारी बन्ध—कभी-कभी कम्पनियों के द्वारा एक साथ बहुत से बन्धों का निर्गमन किया जाता है परन्तु उनके भुगतान की तिथि भिन्न-भिन्न होती है। इस प्रकार के निर्गमन को 'क्रमानुसारी बन्ध' (Serial Bonds) कहते हैं। इन बन्धों का मुख्य उद्देश्य विभिन्न प्रकृति व साधन वाले विनि-

योक्ताओ की आवश्यकताओ की पूर्ति तथा अधिक से अधिक धन प्राप्त करना है। जिन बन्धो का भुगतान जितना ही जल्दी किया जाता है, उन पर ब्याज की दर भी अपेक्षाकृत कम होती है।

(२) 'सिंकिग फड' बन्ध—जिन बन्धो के शोध्य के लिए 'सिंकिग फण्ड' पद्धति अपनायी जाती है वे 'सिंकिग फन्ड बन्ध' कहे जाते है। इस पद्धति के अनुसार भुगतान की तिथि तक पर्याप्त धन एकत्रित हो जाता है। इस प्रकार बन्धधारियो को कम्पनी मे विश्वास रहता है और कम्पनी को भी भुगतान के बारे मे निश्चिन्तता रहती है। फलस्वरूप, इस प्रकार के बन्धो का मूल्य बाजार मे बढ जाता है।

(३) परिवर्तनशील बन्ध—वे बन्ध होते है जिनका परिवर्तन अन्य प्रकार की प्रतिभूतियो मे एक निश्चित मूल्य पर हो सकता है। इस प्रकार के विशेष अधिकार (Privledge) का ध्येय बन्धधारियो को कम्पनी की भावी समृद्धि मे भागी होने का अधिकार देना है।

(४) वापस लिए जा सकने वाले बन्ध (Callable Bonds)—कभी-कभी बन्धो का निर्गमन करने वाली कपनियाँ बन्धो को शोध्य के लिए वापस लेने का अधिकार सुरक्षित (Reserve) रखती हैं। इन बन्धो का शोध्य या तो प्रब्याज (Premium) पर किया जा सकता है, या समान मूल्य (At par) पर। इस प्रकार के बन्धो के निर्गमन से कम्पनी की आर्थिक व्यवस्था मे लोच रहती है।

ऋण पत्रो से लाभ

(१) विनियोक्ताओ को लाभ—ऋण पत्रो मे विनियोग करने मे विनियोक्तागण सुरक्षित लेनदार के रूप मे रहते है क्योकि साधारणत ऋणपत्रो का निर्गमन कम्पनी की सम्पत्ति के विरुद्ध होता है। इसके अतिरिक्त ऋण पत्र धारियो को एक निश्चित दर से ब्याज मिलता रहता है चाहे कम्पनी को लाभ हो अथवा हानि।

[२] निर्गमक कम्पनी को लाभ—ऋण पत्रो के निर्गमन से निर्गमक कम्पनी को अनेक लाभ होते हैं जिनमे से निम्न लाभ उल्लेखनीय है—

अ—निश्चित समय के लिए ऋण मिल जाता है—ऋण पत्रो

के निर्गमन मे कम्पनी को निश्चित समय व निश्चित रूप मे ऋण प्राप्त हो जाता है और वह निश्चितता से अपना कार्य सुचारु रूप से चला सकती है।

ब–अधिक से अधिक विनियोक्ताओ से धन प्राप्त हो जाता है—विनियोक्ताओ मे ऐसे लोगो की सख्या अधिक होती है जो अपने धन को सुरक्षित विनियोग मे लगाना चाहते है। फलस्वरूप ऐसे विनियोक्तागण अपने धन को ऋण पत्रो मे विनियोग करते है। कम्पनी को लाभ यह होता है कि वह अधिक से अधिक धन ऋण पत्रो के द्वारा प्राप्त कर लेती है।

स–कम्पनी की अर्थ व्यवस्था में लोच रहती है—कुछ ऋण पत्र ऐसे होते हैं जिनके भुगतान का अधिकार कम्पनी अपने हाथ मे रखती है। इस प्रकार कम्पनी की अर्थ–व्यवस्था मे लोच रहती है। आवश्यकता से अधिक पूंजी होने पर कुछ ऋण पत्रों का भुगतान किया जा सकता है।

द–अशधारियों को लाभाश अधिक मिल जाता है—यदि कपनी ने ऋण पत्रो का निर्गमन पर्याप्त मात्रा मे किया है और पूंजी कम मात्रा में है तो अशधारियो को लाभाश अधिक मिल सकता है। क्योंकि ऋणपत्रधारियो को ब्याज केवल एक निश्चित दर से ही दिया जाता है। परन्तु ऐसा उसी समय हो सकता है, जब कम्पनी को पर्याप्त लाभ होता हो।

ऋण पत्रो से हानियाँ—ऋण पत्रो के इतने लाभ होते हुए भी कुछ हानियाँ अथवा दोष है जिनके कारण ऋण पत्र अपने देश मे अधिक प्रचलित नहीं है। ऋण पत्रो पर अत्यधिक निर्भरता अच्छी व्यापारिक नीति के विरुद्ध है। इस कथन की पुष्टि हमे अमेरिका के १९२९ तथा इसके पश्चात् के औद्योगिक सकट से होती है जबकि अनेक ऋणपत्रो का निर्गमन करने वाली कम्पनियाँ समाप्त हो गई। सक्षेप मे ऋण पत्रों के निर्गमन से निम्न हानियाँ है :—

(१) सकट के समय ऋण प्राप्त करना असम्भव—कम्पनी के सकट ग्रस्त होने पर अथवा अप्रगतिशील होने पर ऋण पत्रो के निर्गमन द्वारा ऋण प्राप्त करना दुष्कर हो जाता है क्योंकि ऐसी अवस्था मे जनता का विश्वास कम्पनी मे हट जाता है।

(२) ऋण पत्रों के निर्गमन से कम्पनी की साख कम हो जाती है—ऋण पत्रो के निर्गमन से कम्पनी की साख विनियोक्ता वर्ग की दृष्टि मे कम हो जाती है। भारतीय बैंक तो ऐसी कम्पनियो को साख सुविधाएँ भी प्रदान नहीं करती है।

(३) कम्पनी को निश्चित ब्याज दर देना होता है—ऋणपत्रो पर ब्याज कम्पनी को अनिवार्य रूप से देनी पडती है चाहे कम्पनी को लाभ हो अथवा हानि। हानि होने की अवस्था मे ब्याज देना, कम्पनी के अस्तित्व को खतरे मे डाल देना है। समय पर ऋणपत्र धारियो को ब्याज का भुगतान न होने पर, यदि वे चाहे तो न्यायालय मे आवेदन पत्र देकर कम्पनी की समाप्ति करा सकते है।

(४) विनियोक्ताओं को हानि—ऋणपत्र धारियो को केवल एक निश्चित दर से ब्याज मिलता है। ब्याज की दर साधारणत कम ही होती है। इस प्रकार ऋणपत्र धारियो को कम्पनी के लाभो मे भाग लेने का अधिकार नही होता जैसा कि अशधारियो को होता है। इसके अतिरिक्त ऋणपत्र धारियो को अशधारियो की भाँति कम्पनी के प्रबन्ध मे भाग लेने का अधिकार नही मिलता और न वे कम्पनी की नीति पर ही कोई प्रभाव डाल सकते है, क्योंकि उन्हे मत देने का अधिकार नही होता है।

भारतवर्ष में ऋण-पत्र एवं अंश-पत्र

भारतवर्ष मे ऋणपत्रो का प्रचलन अन्य देशो की तुलना मे बहुत कम है। एक अनुमान के अनुसार इगलैंड की सम्पूर्ण औद्योगिक पूजी का २०% ऋणपत्रो से प्राप्त होता है जबकि भारतवर्ष मे सम्पूर्ण औद्योगिक पूँजी का ९% ऋण पत्रो के द्वारा प्राप्त होता है। पिछले कुछ वर्षो से तो इनका प्रचलन और भी कम हो गया है। सन् १९५७ मे तो ऋणपत्रो के द्वारा कुलपूँजी का ३·५% (१ करोड रु०) ही प्राप्त हुआ, जबकि सन् १९५६ मे यह प्रतिशत ५·७% (१·३५ करोड रुपये) था। उद्योगवार देखने से ज्ञात होता है कि ऋणपत्र सूती वस्त्र, इन्जीनियरिंग (अलौह धातुएँ), सीमेंट, शक्कर तथा चाय बागानो मे अधिक प्रचलित थे।

१९५७ मे १००१ कम्पनियो द्वारा निर्गमित किए गए अश तथा ऋणपत्र १९५६ की अपेक्षा मे अधिक थे। १९५६ मे इनके निर्गमन मे २३·८ करोड

रु० प्राप्त हुए थे परन्तु १९५७ मे इनसे २९·८ करोड रु० प्राप्त हुए। १९५७ के कुल नये निर्गमनो (Issues) मे साधारण अशो का सबसे अधिक भाग था। इस वर्ष (१९५७) साधारण अशो द्वारा कुल पूंजी का ८४.८% प्राप्त हुआ, जब कि पिछले वर्ष (१९५६) यह प्रतिशत ७५·७ था। यह वृद्धि पूर्वाधिकार अश पत्रो की लागत पर हुई है। १९५७ मे पूर्वाधिकार अशो से कुल पूंजी का केवल ११·८% प्राप्त हुआ, जबकि १९५६ मे यह प्रतिशत १८·७ था। ऋण पत्र शेप धन के लिए उत्तरदायी है, अर्थात् ३·५% सन १९५७ मे और ५.७% सन् १९५७ मे और ५·८% सन् १९५६ मे।

ऋणपत्रों पर दी जाने वाली ब्याज की दर ६ और ७ प्रतिशत के मध्य रही, जबकि पूर्वाधिकार अश पत्रों पर दिये जाने वाले लाभाश की दर ५ और ६ प्रतिशत (अधिकाश कर-मुक्त) के मध्य रही।

ऋण पत्रों के लोकप्रिय न होने के कारण

भारतवर्ष मे ऋण पत्रो के प्रचलित न होने के कारणों को हम तीन भागो मे विभाजित कर सकते हैं :—

१–निर्गमक कम्पनियो की धारणा (Attitude of Issuing Companies)

२–विनियोक्ता वर्ग की मानसिक प्रवृत्ति (Psychology of Investors)

३–सामान्य कारण (General Causes)

१—निर्गमक कम्पनियों की धारणा

(१) अत्यधिक मुद्रांक कर—ऋण पत्रो के निर्गमन करने की लागत अधिक होने के कारण कम्पनियाँ अधिकतर ऋण पत्रो का निर्गमन नहीं करती हैं। उदाहरणार्थ रजिस्टर्ड ऋण पत्रो पर मुद्राक कर (Stamp Duty) ७॥ रु० प्रति १०००) रु० और १५) रु० प्रति १००० रु० देने पड़ते हैं जिससे पूंजी प्राप्त करने का व्यय बढ जाता है।

(२) बैंकों की धारणा—कम्पनियो द्वारा ऋण पत्रो का निर्गमन न करने का कारण यह है कि जो कम्पनियाँ ऋण पत्रो का निर्गमन करती हैं उनकी प्रतिष्ठा बैंको की दृष्टि मे कम हो जाती है और वे (बैंक) ऐसी कम्पनियो को साख सुविधा प्रदान करने मे उदासीन रहते हैं। विदेशों मे

ऐसी बात नही है। वहाँ बैंक ऋण पत्रो को प्रतिभूति (Security) के रूप मे लेकर औद्योगिक कम्पनियो को धन उधार देती है।

(३) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की नीति—भारतवर्ष मे अधिकतर औद्योगिक कम्पनियाँ प्रबन्ध अभिकर्ताओ के नियन्त्रण मे हैं। प्रबन्ध अभिकर्तागण इन कम्पनियो की अर्थ-व्यवस्था कम्पनियो के धन के अन्तर्विनियोग के द्वारा करते रहते है और वे ऋण पत्रो के निर्गमन को उत्साहित नही करते। उन्हे भय रहता है कि स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था होने पर कम्पनियाँ उनके नियत्रण से निकल जावेंगी।

२—विनियोक्ताओ की मानसिक प्रवृत्ति

(१) ऋण पत्रो का ऊँचे अधिमान का होना—भारतवर्ष मे निर्गमन किए जाने वाले ऋण पत्र अधिकतर ऊँचे अधिमान (Denomination) के होते है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है ये साधारणत ५००) से लेकर १०००) रु० तक के होते हैं। इस प्रकार के ऋण पत्रो को केवल धनी वर्ग ही क्रय कर सकता है, साधारण विनियोक्तागण नही। अमेरिका मे भी प्रारम्भ मे ऊँची अधिमान (१०० डालर) के ऋण पत्रो का निर्गमन हुआ करता था परन्तु पिछले कुछ वर्षो से छोटी अधिमान (५० डालर) के ऋण पत्रो का निर्गमन होने लगा है।

(२) विशेष विनियोक्ता वर्ग की ऋण पत्र क्रय करने मे असमर्थता—कुछ विशेष विनियोक्ता वर्ग जैसे बीमा कम्पनियाँ तथा बैंक इत्यादि के ऊपर वैधानिक प्रतिबन्ध है कि वे अपने धन का विनियोग ऋण पत्रो तथा इसी प्रकार की अन्य प्रतिभूतियो मे नही कर सकती हैं। इसके अतिरिक्त कुछ वर्ग के विनियोक्ताओ की प्रवृत्ति सरकारी प्रतिभूतियो मे ही धन विनियोग करने की बन गई है।

(३) ऋण पत्रो के निर्गमन की अनावश्यक शर्तें—भारतवर्ष मे ऋण पत्रो के निर्गमन करने की शर्तें ऐसी नही है जिससे कि जनता इनका क्रय करने के लिए आकर्षित हो सके। अमेरिका मे बंध (Bonds) का निर्गमन अत्यधिक आकर्षक शर्तो के साथ होता है। बन्धधारियो (Bond Holders) को विभिन्न प्रकार की सुविधायें व अधिकार दिये जाते

है। कभी-कभी उन्हे अपने बन्धो (Bonds) को अश पत्रो मे परिणित कराने की स्वेच्छा (Option) भी दी जाती है।

३—सामान्य कारण

(१) स्वतन्त्र व सुसंगठित पूँजी बाजार का अभाव— भारतवर्ष मे ऋण पत्रो के निर्गमन के लिए कोई स्वतन्त्र तथा सुसगठित बाजार नही है। फलस्वरूप ऋण पत्रो के लिए नियमित तथा तत्काल माँग नही रहती है। इसके अतिरिक्त सरकार की अस्थिर औद्योगिक तथा प्रशुल्क नीति (Fiscal Policy) विनियोक्ता वर्ग मे विश्वास उत्पन्न करने मे असमर्थ रहती है।

(२) पूर्ण औद्योगीकरण का अभाव— अन्य देशो की अपेक्षाकृत भारतवर्ष अब भी औद्योगीकरण मे काफी पिछडा हुआ है। इसका मूल कारण हमारे देश की सदियो की दासता है। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पश्चात् इस ओर प्रयत्न अवश्य किए जा रहे है और द्वितीय पचवर्षीय योजना मे औद्योगीकरण पर विशेष बल दिया गया है। अत अभी तक औद्योगिक कम्पनियो के द्वारा ऋण पत्रो का निर्गमन भी सीमित मात्रा मे होता था। इसके अतिरिक्त हमारे देश मे विनियोक्ताओ की सख्या तथा उनके साधन भी सीमित है।

(३) निर्गमक गृहो तथा अभिगोपन गृहों का अभाव— भारतवर्ष मे अन्य देशो की भाति निर्गमक गृह (Issue Houses) तथा अभिगोपन गृह (Under-writing Houses) इत्यादि नही है जिससे ऋण पत्रों का निर्गमन करने वाली कम्पनियो को काफी असुविधा होती है। विदेशो मे इस प्रकार की सस्थायें आर्थिक सलाह, पूजी बाजार के बारे मे सूचना इत्यादि विनियोक्ता वर्ग को देती रहती हैं जिससे उन लोगो मे उत्साह बना रहता हैं।

(४) प्रन्यासी वर्ग (Trustees) की सेवाओं का अभाव— ऋण पत्रो को लोकप्रिय बनाने मे प्रन्यासियो का विशेष महत्व है। वे ऋण पत्रो के धारियो (Debenture Holders) की ओर से उनके हितों की सुरक्षा के लिए सभी कार्य कर सकते है और गडबडी या बेईमानी की अवस्था मे उचित कार्यवाही कर सकते है। इसके अतिरिक्त वे ऋण-पत्रधारियो

(Debenture Holders) को निर्गमन करने वाली कम्पनी की कार्य विधि के बारे मे समय-समय पर सूचना देते रहते है ।

ऋण पत्रों को लोकप्रिय बनाने के सुझाव

ऋण पत्रो को लोकप्रिय बनाने के लिए निम्न सुझाव प्रस्तुत किए जा सकते है :—

[१] ऋण पत्रो का निर्गमन आकर्षक शर्तो तथा ऋण पदाधिकारियों के अधिकारो की समुचित सुरक्षा सहित करना चाहिए ।

[२] ऋण पत्र निम्न अधिमान (Lower Denomination) के होने चाहिए जिससे साधारण विनियोक्तागण भी खरीद सकें ।

[३] ऋण पत्रों के निकास की दर कम करने के लिए मुद्राक कर (Stamp Duty) तथा हस्तातरण कर (Transfer Duty) कम कर देनी चाहिए ।

[४] बैंको की ऋण पत्रों के निर्गमन करने वाली कम्पनियो के प्रति गलत धारणा को दूर करना चाहिए ।

[५] सस्थागत विनियोक्ताओं जैसे बीमा कम्पनियो पर ऋण पत्रों मे विनियोग सम्बन्धी वैधानिक प्रतिबन्धो को दूर करना चाहिए ।

[६] ऋण-पत्राधिकारियों को प्रन्यासियो की सेवाये उपलब्ध करानी चाहिए ।

[७] सुसगठित तथा नियमित पूँजी बाजार का विकास करना चाहिए ।

[८] निकास गृहो तथा अभिगोपन गृहो की सुविधाएँ प्रदान करना चाहिए ।

२—अर्जित आय का पुन विनियोग

(Ploughing back of earned Profits)

कम्पनियाँ बहुधा अपनी आय का एक भाग बचाकर सचय कोष मे रख लेती हैं और इस सचित कोष का प्रयोग वे कम्पनी की भावी विकास योजनाओ मे करती है । कम्पनी की इस प्रकार की अर्थ व्यवस्था को "आन्तरिक अर्थ-व्यवस्था" (Internal Financing) कहते हैं । इसी पद्धति

को तान्त्रिक रूप से "आय का पृष्ठ विनियोग" (Ploughing Back of Profits) भी कहते हैं। यह पद्धति कम्पनी की आर्थिक सुदृढता की दृष्टि से बहुत हितकर है, क्योकि ऋणो से विकास योजनाओ की पूर्ति करना अक्सर खतरनाक होता है। ऋणो के ब्याज से कम्पनी पर आर्थिक भार बढता है और यदि उन ऋणो का भुगतान एकाएक मांगा गया तो कम्पनियो की आर्थिक स्थिति भी कमजोर हो जाती है। अत जहाँ तक हो सके कम्पनियो को इस पद्धति को अपनाना चाहिए।

इस पद्धति मे लाभो का अध्ययन तीन दृष्टिकोण मे कर सकते हैं —

[१] कम्पनी की दृष्टि से,
[२] अशधारियो की दृष्टि से,
[३] सामाजिक दृष्टि से।

[१] कम्पनी की दृष्टि से लाभ

(१) सचित आय के द्वारा कम्पनी मौसमी तथा व्यापारिक उतार चढाओ (Fluctuations) को सहन कर सकते है। यह कम्पनी की सहन शक्ति को व्यापारिक अवसादो (Depressions) का सामना करने के लिए सुदृढ करती है।

(२) वृहत सचित लाभ कम्पनी की लाभाश नीति तथा साख स्थिति को सुविधाजनक बनाने मे सहायक होती है।

(३) अवितरित लाभ कम्पनी को विस्तार सम्बन्धी, विवेकीकरण तथा अन्य उन्नति की योजनाओ को सफल बनाने मे सहायक होते हैं।

(४) घिसावट (Depreciation) टूट फूट तथा मरम्मत इत्यादि के व्ययो को भी इन सचित लाभो से पूरा किया जा सकता है।

(५) अन्त मे अवितरित आय को ऋण पत्रो तथा बन्धो के पुनर्भुगतान मे प्रयुक्त किया जा सकता है।

[२] अशधारियो को लाभ

(१) अशधारियो के अश पत्रो का मूल्य (Value) बाजार मे बढ जाता है।

(२) अशधारियों के विनियोग व्यापारिक उच्चावचनो (Fluctuations) के विरुद्ध सुरक्षित रहते हैं।

(३) अंशधारियों को कम्पनी की बढ़ी हुई साख स्थिति से लाभ होता है। उनकी प्रतिभूतियों का मूल्य बाजार में बढ़ जाता है और उनको उचित समय पर बेच कर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

[३] समाज को लाभ

(१) समाज को कंपनियों द्वारा निर्मित वस्तुएँ तथा सेवाएँ कम मूल्य पर प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार समाज के लोगों के रहन सहन का स्तर ऊँचा हो जाता है।

(२) कम्पनी की संचित बचतें (Accumulated Savings) समाज की आर्थिक सम्पन्नता बढ़ाती है। यदि पूँजी का अभाव रहे तो विविध औद्योगिक तथा अन्य निर्माणी व्यवसाय (Projects) बेकार पड़े रहें।

(३) पुराने तथा नवीन व्यवसायों के सुचारु तथा निरन्तर रूप से चलते रहने में समाज का हित रहता है। कम्पनी की बचतों से व्यवसायों में आर्थिक सुदृढ़ता तथा लोच रहती है।

आन्तरिक अर्थ व्यवस्था का महत्व

आन्तरिक अर्थ व्यवस्था अथवा आय के पृष्ठ विनियोग का महत्व औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन में विशिष्ठ स्थान रखता है। इसकी महत्ता को योजना आयोग (Planning Commission) ने भी प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत औद्योगिक उन्नति की योजना बनाते समय स्वीकार की थी। प्रथम योजना के निजी क्षेत्र (Private Sector) पर होने वाले सम्पूर्ण व्यय (६१३ करोड रु०) में से २०० करोड रु० (लगभग १२ ६ %) कम्पनी की बचतों (Savings) से प्राप्त करने का अनुमान लगाया गया था।

आन्तरिक अर्थ व्यवस्था का महत्व संसार के अन्य औद्योगिक देशों में भी कम नहीं है। इगलैंड में १९१४ तक अधिकतर औद्योगिक व्यवसाय अपनी पूँजी आन्तरिक अर्थ व्यवस्था से ही प्राप्त करते थे। अमेरिका में इसका महत्व और भी अधिक है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण सुप्रसिद्ध फोर्ड मोटर कंपनी से प्राप्त होता है। फोर्ड मोटर कंपनी २८,००० डालर के विनियोग से स्थापित की गई थी जिसकी पूँजी इस समय १ अरब डालर से अधिक है। यह सम्पूर्ण पूँजी आन्तरिक अर्थ व्यवस्था के द्वारा ही जुटाई गई है।

इस प्रकार हम देखते है कि आन्तरिक अर्थ व्यवस्था का महत्व हमारे औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन मे बहुत अधिक है।

रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया की खोज के अनुसार पिछले कुछ वर्षो से आन्तरिक साधनो का महत्व कम हो गया है। १९५७ मे आन्तरिक साधनो द्वारा ६४ ९ करोड रुपये प्राप्त किए गए जो कुल प्राप्त धन के २७·६% थे। १९५६ तथा १९५५ म यह प्रतिशत क्रमश ३७ तथा ५६ था।

आन्तरिक अर्थ व्यवस्था के दोष

(१) आन्तरिक अर्थ व्यवस्था के कारण कपनियाँ एकाधिकारी (Monopolist) का रूप धारण कर लेती है जिससे नवीन उपक्रम (Enterprises) क्षेत्र मे प्रतिस्पर्द्धा के रूप म आने मे असमर्थ रहते हैं।

(२) सचित आय कम्पनी के प्रबन्धको को अश पत्रो के मूल्य मे गडवड करने का अवसर प्रदान करती है। प्रबन्धकगण, अर्जित लाभ को अधिक सचित करके तथा लाभाश की दर कम करके, अश पत्रो का मूल्य बाजार म गिरा देते ह और इस प्रकार कम मूल्य पर अश पत्रो को स्वय खरीद लेते ह इसके विपरीत जब वे अश पत्रो को बचना चाहते ह तो अर्जित लाभ म से लाभाश अधिक वितरित करके अश पत्रो का मूल्य बाजार मे अधिक कर देते हैं। इस प्रकार वे ऊँची दर पर अश पत्रो को बेच कर लाभ उठाते है। अत अनभिज्ञ अशधारियो का ठगने का यह एक उत्तम साधन है।

(३) लाभ के एक बड़ भाग को सचित कोष म डाल कर आय कर बचाया जा सकता है। भारतीय आय कर अधिनियम की धारा २३ अ' इस प्रकार की प्रथा पर रोक लगाती है।

(४) कम्पनी द्वारा सचित लाभ का उपयोग अशधारियो के अहित म प्रयुक्त किया जा सकता है। प्रबन्धक लोग इस धन को अपनी किसी ऐसी कपनी म विनियोग कर सकते है जिसम अशधारियो का हित बहुत ही कम हो।

(५) सचित कोष (Accumulated Reserves) किसी कम्पनी का अति पूजी करण (Over Capitalization) कर सकते हैं। क्योकि

उस कम्पनी के प्रबन्धक उस कोष को बोनस शेयर (Bonus Shares) जारी करके पूंजी मे परिवर्तित कर सकते है ।

इन दोषो के कारण ब्रिटिश प्रेस, ब्रिटिश उद्योगो द्वारा 'आय के पृष्ठ विनियोग' के विरुद्ध आन्दोलन चला रहा है ।

ह्रास कोष (Depreciation Fund)

औद्योगिक कम्पनियाँ आन्तरिक व्यवस्था को सुदृढ बनाये रखने के लिए ह्रास कोष की व्यवस्था करती है। इस कोष मे से मशीनो एव यन्त्रो की मरम्मत तथा पुनर्स्थापन की व्यवस्था की जाती है। ह्रास कोष की व्यवस्था के अनुसार कम्पनी को किसी एक वर्ष मे अत्यधिक आर्थिक साधन नही जुटाने पडते । दूसरे शब्दो मे विकास एव पुनरोद्धार का कार्य सामान्य गति से चलता रहता है ।

'रिजर्व बैंक आफ इन्डिया' की खोज के अनुसार पिछले कुछ वर्षो मे ह्रास कोष द्वारा अर्थ-प्रबन्धन का महत्व बढता जा रहा है। उदाहरणार्थ १९५७ मे इस स्रोत के द्वारा ४६·२ करोड रुपये प्राप्त हुए जो कि कुल धन का १९·६ % था। इसके विपरीत १९५६ मे यह प्रतिशत केवल १५ था। उद्योगवार अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि ह्रास कोष द्वारा अर्थ-प्रबन्धन सूती वस्त्र, लौह एव स्पात, इञ्जीनियरिंग (अलौह धातुएँ) चीनी, सीमेंट, खनिज तेल, जहाज निर्माण, कागज तथा विद्युत उद्योग मे अधिक प्रचलित था ।

वाह्य साधन (External Sources)

रिजर्व बैंक की खोज के अनुसार सन् १९५७ मे भारतवर्ष मे उद्योगो के अर्थ-प्रबन्धन मे वाह्य साधनो का अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा। आलोच्य वर्ष मे कुल २३५ २ करोड रुपये की पूंजी प्राप्त हुई थी जिसमे वाह्य साधनों का अश १७०·२ करोड रुपये था। यह कुल प्राप्त धन का ७२ ४ % था। वाह्य साधनो के अन्तर्गत अनेक उपसाधन आते है जिनका सक्षेप मे वर्णन अगले पृष्ठो मे दिया गया है ।

४—व्यापारिक बैंक तथा औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन

भारतीय अर्थ व्यवस्था की सबसे मुख्य विशेषता यह है कि भारतीय उद्योगो तथा व्यापारिक बैंको मे कोई सम्बन्ध नही रहा है। जहाँ तक स्थाई

पूंजी प्राप्त करने का सम्बन्ध है वह तो केवल औद्योगिक बैंकों से प्राप्त होती है। व्यापारिक बैंक केवल व्यापारिक कार्यों के लिए अल्पकालीन ऋण सुविधायें प्रदान करते है तथा दीर्घकालीन औद्योगिक ऋण देना व्यापार की दृष्टि से अनुचित समझते है। श्री एन० के० वासू के शब्दो से भी इस कथन की पुष्टि होती है। उनके अनुसार "बैंकिंग पद्धति का निर्माण युद्ध-पूर्व अंग्रेजी आधार पर हुआ है जिसकी प्राचीन परम्परा उद्योगो से विरक्त रहने की रही है।"* श्राफ समिति (१९५२) ने भी अपनी रिपोर्ट म बताया है कि व्यापारिक बैंक उद्योगो को दीर्घकालीन ऋण उचित मात्रा मे नही देती है। एक तो वे बिना प्रतिभूति के ऋण नही देती है और दूसरे कम से कम ३० % अन्तर अपने पक्ष मे रखती हैं।

व्यापारिक बैंक कम्पनियो को अल्पकालीन आवश्यकताओ के लिए दो प्रकार से ऋण देती है —

(१) अग्रिम राशि, ऋण, अधिविकर्ष (O/D) तथा (Cash Credit) स्वीकार करके, तथा

(२) विपत्रों (Bills), हुण्डी तथा अन्य व्यापारिक पत्रों की कटौती करके।

इस प्रकार ऋण देने की मात्रा तीन बातों पर निर्भर होती है —

(१) ऋण लेने वाली कम्पनी की साख पर।
(२) प्रतिभूति की प्रकृति पर तथा
(३) बैंक के परिमाण (Size) तथा ऋण देने की शक्ति पर।

(१) ऋण लेने वाली कम्पनी की साख (Credit Rating)

किसी भी कम्पनी की साख की जाच करने के लिए बैंक तीन बातो पर ध्यान देती है जैसे कम्पनी की पूजी, ऋण चुकाने की क्षमता तथा कम्पनी के प्रबन्धको का चरित्र। अमेरिका तथा इगलैंड मे इस प्रकार की विशिष्ट सस्थाय होती है जो देश की किसी भी कम्पनी की साख के बारे म सूचना देती है। इन सस्थाओ को 'क्रेडिट रेटिंग एजेन्सीज़' (Credit Rating

---

* *The Banking system is modelled on the lines of pre-war English deposit banking which has a long tradition of maintaining an attitude of aloofness from industry."* *S K. Basu.*

Agencies) कहते हैं। इसके सर्वश्रेष्ठ उदाहरण अमेरिका की 'डन्स तथा ब्राडस्ट्राट्स (Duns & Bradstrats) तथा इंगलैंड की 'सईट्स' (Syets) संस्थाओं के नाम उल्लेख किये जा सकते हैं। ये संस्थायें विभिन्न प्रकार की व्यापारिक संस्थाओं से सम्बन्धित सूचनाओं का संगठन करती हैं। इसके अतिरिक्त य 'साख शोधन विभाग' (*Credit Cleaning Division*) तथा 'व्यापारिक देय विभाग' (Mercantile Claims Division) रखते हैं जो अग्रिम राशि (*Advances*) एकत्रित करते हैं तथा खर्चों में बचत करते हैं।

भारतवर्ष में इस प्रकार की संस्थायें नहीं हैं जिसका प्रभाव यह होता है कि बैंक कम्पनियों की वास्तविक स्थिति की जाँच करने में असमर्थ रहते हैं और अधिकतर ऋण डावाडोल (Unsound) कम्पनियों को दे जाते हैं जिसकी हानि उन्हें उठानी पड़ती है।

(२) प्रतिभूतियों की प्रकृति (Nature of Security)

कम्पनियों द्वारा बैंकों को ऋण के लिए दी गई प्रतिभूति तीन प्रकार की हो सकती है —

(१) व्यक्तिगत प्रतिभूति या अरक्षित ऋण
(२) प्रत्याभूति ऋण तथा
(३) सुरक्षित ऋण।

(१) व्यक्तिगत प्रतिभूति—भारतवर्ष में व्यक्तिगत प्रतिभूति के आधार पर दिए गए ऋणों की मात्रा अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। १९५५ में भारतीय व्यापारिक बैंकों द्वारा दिए गए ऋणों में से १५.८% या छठवें *भाग से भी कम ऋण व्यक्तिगत प्रतिभूति* पर दिए गए जब कि अमेरिका में ५५.३% या आधे से अधिक ऋण व्यक्तिगत प्रतिभूति पर दिए गए। व्यक्तिगत प्रतिभूमि पर ऋण देने के लिए बैंकों को चाहिए कि उद्योग धन्धों से निकटतम सम्पर्क रक्खें।

(२) गारन्टीड ऋण—भारतवर्ष में अधिकतर ऋण चाहे वे रक्षित हों अथवा अरक्षित (*Unsecured*) बिना दो व्यक्तियों के हस्ताक्षरों के स्वीकार नहीं किए जाते। इनमें से प्रथम हस्ताक्षर प्रबन्ध अभिकर्ता के होते हैं। इस प्रथा को सर्वप्रथम इम्पीरियल बैंक (अब स्टेट बैंक) ने प्रचलित किया था, बाद में अन्य बैंक भी इस प्रथा को अपनाने लगी। इस प्रथा में प्रबन्ध अभि-

कर्त्ताओं का महत्व बढ़ गया और उन्होंने इस स्थिति का अनुचित लाभ उठाया। आश्चर्य की बात है कि यह प्रथा दोषपूर्ण होते हुए भी सरकार द्वारा स्थापित औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) द्वारा भी अपनाई गई है क्योंकि वह भी ऋण देने के पूर्व प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के हस्ताक्षरों पर बल देता है।

रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया गारन्टीड ऋणों के आंकड़ों को अलग से प्रकाशित नहीं करता है परन्तु फिर भी अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसे ऋणों की मात्रा पर्याप्त है। अमेरिका को फेडरल रिजर्व बुलेटिन (Federal Reserve Bulletin) के अनुसार १९४५ में न० रा० अमरिका में सम्पूर्ण रक्षित अग्रिमों (Secured Advances) का लगभग १२ % गारन्टीड ऋण थे।

[३] रक्षित ऋण (Secured)—भारतवर्ष में अधिकतर ऋण सम्पत्ति की प्रतिभूति के आधार पर दिये जाते हैं। सम्पत्ति की प्रतिभूति पर ऋण दो प्रकार से दिया जा सकता है या तो सम्पत्ति को बन्धक (Pledge) रख कर या रहन (Hypothecation) के रूप में रख कर। बन्धक में प्रमाणपत्र के अधिकार का हस्तान्तरण बैंक को प्राप्त हो जाता है तथा बन्धक वस्तुएँ बैंक के अधिकार में रहती हैं। जिनका उपयोग कम्पनी नहीं कर सकती। रहन में कम्पनी वस्तुओं को व्यापार में ला सकती है तथा उन पर अधिकार भी उसी का रहता है। परन्तु बैंक किसी भी समय वस्तुओं का निरीक्षण कर सकता है तथा ऋणी कम्पनी को सामयिक विवरण भी भेजना पड़ता है।

भारतवर्ष में रक्षित ऋणों का प्रतिशत सम्पूर्ण अनुसूचित बैंकों द्वारा १९५५ में दिए गए ऋणों का ४७.८ % था।

श्राफ समिति ने व्यापारिक बैंकों के साधनों को बढ़ाने के लिए तथा निजी क्षेत्र को अधिक अर्थ-प्रबन्धन की सहायता देने के उद्देश्य से अपनी रिपोर्ट में कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिए। इन सुझावों का अध्ययन के दृष्टिकोण से हम दो भागों में विभाजित कर सकते हैं :—

[१] बैंकिंग पद्धति में सुधार तथा
[२] बैंकों के साधनों में वृद्धि।

[१] बैंकिंग पद्धति में सुधार

देश की बैंकिंग पद्धति का सुधार करने के लिए निम्न कार्य करने होंगे —

(१) बैंकिंग प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए—हमारे देश मे लोगो मे अब भी बैंकिंग प्रवृत्ति पूर्ण रूप से जागृत नही हुई है। अन्य देशों की तुलना मे तो हम बहुत ही पीछे है। उदाहरणार्थ हमारे देश मे प्रति देशवासी औसत जमा २५) रु० है जब कि संयुक्त राज्य (United Kingdom) तथा सं० रा० अमेरिका मे क्रमश १,२३९ रु० तथा ४,९९३ रु० है। श्राफ समिति ने बैंकिंग प्रवृत्ति की उन्नति मे बाधक सब दोषो को दूर करने तथा जनता के विश्वास का सम्पादन करने के लिए अपनी रिपोर्ट में बल दिया है।

(२) बैंकों के खर्चों मे कमी करना चाहिए—बैंको के चालन (Operation) के खर्चे अत्यधिक होने के कारण भारतवर्ष मे बैंकिंग की अधिक उन्नति नही हुई है। सन् १९४८ और १९५२ के बीच मे जबकि अनुसूचित बैंको की जमा राशि ८७५·२ करोड से ७१५·३७ करोड रु० रह गई परन्तु बैंको के स्थाई खर्चे बजाय घटने के ९·५ करोड से १२·८४ करोड रु० हो गए। चालक के खर्चों (Operating Costs) को कम करने के लिए उचित कदम उठाने चाहिए।

(३) औद्योगिक ट्रिब्यूनल (Tribunal) के नियमो मे सुधार—श्राफ समिति के अनुसार कुछ दिशाओं मे औद्योगिक न्यायालय के निणय औद्योगिक प्रगति मे घातक सिद्ध हुए है। इन निर्णयो के कारण बैंक के कर्मचारियो म अनुशासनहीनता तथा भ्रष्टाचार अधिक प्रचलित हो गया है जिससे बैंक की कार्यपद्धति मे शिथिलता सी आ गई है। द्वितीय बैंक के काम करने के घन्टो मे कमी हो जाने के कारण व्यापारिक वर्ग को कठिनाई हो गई है। अन्त मे ग्रामीण क्षेत्रो के निर्णयो (Awards) के फलस्वरूप ग्रामीण क्षेत्रो मे बैंकिंग सुविधाओं की उन्नति मे क्षति पहुँची है। इन दोषों को दूर करने के लिए श्राफ समिति ने एक कुशल समिति (Expert Committee) नियुक्त करने की सलाह दी थी।

(४) आय कर तथा बिक्री कर विभागो द्वारा की गई जाँचो मे सुधार—मनुष्यो की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगाने के लिए आयकर तथा बिक्री कर विभागो द्वारा उनके बैंक एकाउन्ट्स का अवलोकन किया जाता है। इससे बैंक के ग्राहको मे अपनी बैंक के प्रति अविश्वास हो जाता है और वे बैंक मे रुपया जमा न करके अपने पास ही रखते है।

अत: श्राफ समिति ने यह सुझाव रक्खा था कि सरकार को ऐसी चेष्टा करनी चाहिए जिससे बैंक और ग्राहक के सम्बन्ध की गोपनीयता (Secrecy) बनी रहे।

(५) शाखाओं का योजनात्मक ढंग पर विस्तार—पिछले कुछ वर्षो से भारतवर्ष मे बैंको के कार्यालयो की सख्या कम होती गई है। इस दोष को दूर करने के लिए गोरवाला समिति ने स्टेट बैंक की स्थापना का सुझाव दिया था। इस सुझाव के अनुसार १ जुलाई १९५५ मे स्टेट बैंक की स्थापना कर दी गई है और पाँच वर्ष के अन्दर ४०० शाखाएँ खोलने का लक्ष्य रखा गया था, जो कि पूरा हो चुका है।

(६) पर्याप्त सुरक्षा का प्रबन्ध—आर्थिक सहायता के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रो मे स्थिति बैंको को पर्याप्त सुरक्षा प्रदान की जाय। अब भी इस प्रकार के सुरक्षा प्रबन्धो का देहातो मे नितात अभाव है।

(७) चल बैंक—छोटे-छोटे ग्रामो मे बैंकिंग प्रवृत्ति को उत्साहित करने के लिए चल बैंको को प्रचलित करना चाहिये। इस योजना की सफलता सरकारी सहायता तथा जनता के सहयोग पर अवलम्बित है।

[२] बैंको के साधनों में वृद्धि

बैंको मे वृद्धि निम्न प्रकार से की जा सकती है।

(१) सार्वजनिक क्षेत्र की प्रतिस्पर्धा का नियमन—मुद्रा बाजार मे सीमित साधन होने के कारण सार्वजनिक सस्थाओ—केन्द्रीय राज्य तथा निजी सस्थाओ (बैंको) मे अनार्थिक प्रतिस्पर्धा रहती है। व्यापार मे प्रतिस्पर्धा वाँछनीय है परन्तु गलाकाट प्रतिस्पर्धा (Cut Throat Competition) सदैव ही अहितकर है। अत. ऐसी कोई व्यवस्था होनी चाहिए जिससे इस सम्बन्ध मे सरकारी तथा निजी सस्थाओ मे समन्वय रहे।

(२) धन स्थानान्तरण की सुविधा—स्थानान्तरण की पर्याप्त सुविधाएँ न होने के कारण बहुत सी बैंको को आवश्यकता से अधिक धन कोष मे रखना पडता है। इसके अतिरिक्त अन्य सुविधाओ के अभाव मे उन्हे अपने

धन का विनियोग सरकारी प्रतिभूतियो मे करना पडता है जिससे उन्हें सीमित आय भी होती है। इस दोष के निवारण के लिए श्राफ सीमित ने परिवहन तथा सवाद (Transport and Communications) के साधनो मे उन्नति करने का सुझाव दिया था।

(३) नियमित जमा बैंकिग— १९५१ से बैंक दर मे वृद्धि हो जाने के कारण बैंको को जमा (Deposits) पर अधिक ऊँची दर से ब्याज देना पडता है। इसके अतिरिक्त विनिमय बको (जो कि अधिकतर ऊँची दर पर जमा लेती है) से प्रतिस्पर्धा होने के कारण भी जमा पर ब्याज ऊँची दर से देनी पडती है। अत श्राफ समिति ने अखिल भारतीय बैंक एसोसिएशन (All India Association of Banks) की स्थापना का सुझाव दिया था।

(४) जमा बीमा (Deposit Insurance) सयुक्त राष्ट्र अमेरिका की जमा बीमा योजना के आधार पर श्राफ समिति ने जमा बीमा निगम (Deposit Insurance Corporation) स्थापित करने का सुझाव दिया है। यद्यपि गोरवाला समिति इस प्रकार की याजना कुछ वर्षो तक अपनाने के पक्ष मे न थी क्योंकि इसकी कार्य विधि लागत (Cost of Operation) अपेक्षाकृति अधिक होगी, परन्तु फिर भी यह तो मानना ही पडेगा कि इस प्रकार की योजना बैंकिग विकास मे अवश्य ही सहायक होगी।

(५) व्यापारिक बैंको को सरकारी जमा प्राप्त करने का अधिकार—अभी तक व्यापारिक बैंको को स्थानीय सरकारो (Local Bodies) के धन को जमा करने का अधिकार नही है। हा वे इस धन को उसी समय जमा कर सकते है जब वे इतना ही धन सरकारी प्रतिभूतियो मे विनियोग करें। श्राफ समिति ने इस सम्बन्ध मे यह सुझाव दिया था कि रिजर्व बैंक द्वारा स्वीकृति बैंको को स्थानीय सरकारो के धन को जमा प्राप्त करने का अधिकार मिलना चाहिये।

(६) सरकार से शीघ्र भुगतान—प्राय ऐसा देखा जाता है कि सरकार द्वारा निजो सस्थाओं को देर से भुगतान किया जाता है जिससे इन सस्थाओं को आर्थिक कठिनाई उठानी पडती है। यदि सरकार इस प्रकार के भुगतान शीघ्र करने लगे तो बैंको की जमा की स्थिति सुधर सकती है।

हर्ष का विषय है कि सन् १९५५ से जमा की स्थिति सुधरने लगी है। १९५५ म अनुसूचित (Scheduled) बैंको की सम्पूर्ण जमा १०१३ ४ करोड रुपये थी जब कि १९५२ मे कुल जमा केवल ८०३ ५ करोड रु० ही थी। प्रतिशत के रूप मे यह वृद्धि १९५२ से १८ ७% अधिक है। यह वृद्धि मुख्यतया अनुकूल भुगतान का सतुलन (Favourable Balance of Payment), औद्योगिक प्रगति तथा राज्य द्वारा घाटे की व्यवस्था के कारण है।

५—देशी बैंको द्वारा अर्थ-प्रबन्धन

(Industrial Finance by Indigenous Bankers)

हमारे देश मे बैंकिंग का व्यवसाय बहुत पुराने समय से होता आया है और यद्यपि आधुनिक ढग के बडे-बडे बैंक हमारे यहाँ भी प्रचलित हो गए है, परन्तु फिर भी प्राचीन पद्धति की बैंकिंग सस्थाओ का हमारी आधुनिक आर्थिक प्रणाली म अब भी महत्वपूर्ण स्थान है। ऐसा कहा जाता है कि ऋण देने का कार्य ईसा के कई शताब्दी पूर्व से होता आया है। हुण्डी का कारोबार लगभग बारहवी शताब्दी मे प्रारम्भ हुआ। उस समय देशी बैंकर्स सिक्का बदलने तथा बहुमूल्य वस्तुओ का अपने पास धरोहर रखने का कार्य भी करते थे। पिछले कुछ वर्षो म कोयले, तेल, चमडे तथा चावल की मिलो ने देशी बैंकर्स से बहुत अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त की है, और उन्होने १०% से लेकर २४ % तक ऋण पर ब्याज दिया है।

सकट के काल मे कुछ अन्य कम्पनियों ने भी, (जो कि अत्यन्त धन के अभाव म थीं) देशी बैंकर्स से ऋण प्राप्त किए है। कभी-कभी इन बैंकर्स से ऋण इसलिए भी लिए गए है जिससे विज्ञापन इत्यादि करन का झझट न करना पडे। श्री नाबागोपाल दास न अपनी पुस्तक 'भारत म औद्योगिक व्यवसाय' (Industrial Enterprize in India) म लिखा है कि 'कम्पनियाँ देशी बैंकर्स को ऊँची ब्याज की दर देना इसलिए पसन्द करती थीं, जिससे सयुक्त स्कध बैंको द्वारा की गई जाँच पडताल, उनके नियमित ढग और अपेक्षाकृत अधिक जोखिम तथा बैंक के काउन्टर (Counter) तथा दरवाजे पर आरूढ सुसज्जित चौकीदार के दर्शन न करने पड।"

द्वितीय महायुद्ध से देशी बैंकर्स का महत्व बहुत कम हो गया है परन्तु लघु प्रमाण के उद्योगो को ये लोग अब भी बहुत अधिक आर्थिक सहायता प्रदान करते है। कृषक गण जो इन लोगों मे अधिकतर ऋण लिया करते थे अब अपेक्षाकृत बहुत कम ऋण लते हैं क्योंकि उनकी आर्थिक अवस्था पहल

से बहुत अच्छी हो गई है। सहकारी साख समितियों ने तो इनके व्यवसाय को बहुत बडा धक्का पहुँचाया है।

६—सार्वजनिक निक्षेप (Public Deposits)

औद्योगिक अर्थ व्यवस्था मे सार्वजनिक निक्षेपो का स्थान कम महत्वपूर्ण नही है। यद्यपि यह प्रथा पूर्णरूप से बम्बई और अहमदाबाद के सूती वस्त्र उद्योग मे प्रचलित है परन्तु अहमदाबाद मे इसका विशेष महत्व है। इस प्रथा का जन्म अविकसित बैंकिंग प्रणाली के कारण हुआ। एक ओर तो जनता को इन लोगो मे अत्यधिक विश्वास था, दूसरे इन लोगो से लेन देन बिना किसी उपचार (Formality) के कर सकते थे जो कि बैंकिंग प्रथा म आवश्यक है। इसके अतिरिक्त बम्बई और अहमदाबाद के मिल मालिक निक्षेपको को नियमित आय तथा कुछ शुद्ध लाभ देते है जो पाश्चमिक ढग की बैंक तथा देशी बैंक नही प्रदान कर सकती है। इस प्रकार औद्योगिक सार्थ अपनी कार्यशील पूंजी का एक बहुत बडा अश अल्पकालीन जन निक्षेपो से प्राप्त करती हैं जैसा कि निम्न तालिका* से स्पष्ट होगा —

	बम्बई (६४ मिल)		अहमदाबाद (५६ मिल)	
	लाख रु०	कुल अर्थ प्रबन्धन का प्रतिशत	लाख रु०	कुल अर्थ प्रबन्धन का प्रतिशत
१—प्रबन्ध अभिकर्ताओ द्वारा ऋण	५३२	२१	२६४	२४
२—बैंको द्वारा ऋण	२२६	९	४२	४
३—सार्वजनिक निक्षेप द्वारा	२७३	११	४२६	३९
४—अश पूंजी निर्गमन द्वारा	१२१४	४९	३४०	३२
५—ऋण पत्रो के निर्गमन द्वारा	२३८	१०	८	१

* Indian Central Banking Enquiry Committee *Minority Report* (1931) pp 329 30 (*The figures relate to Oct., 1930*)

इस तालिका से स्पष्ट है कि सार्वजनिक निक्षेप बम्बई की अपेक्षा अहमदाबाद में अधिक प्रचलित हैं। आरम्भ में बम्बई में भी जन निक्षेप काफी प्रचलित थे परन्तु १९२१ में बम्बई की सूती मिलों में जनता का विश्वास कम हो जाने के कारण, इनका प्रचलन भी कम हो गया है। पिछले कुछ वर्षों से अहमदाबाद में दीर्घकालीन निक्षेप जो पाँच वर्ष से सात वर्ष तक के लिए प्राप्त किए जाते हैं, अधिक प्रचलित हो गए हैं और अधिक से अधिक मिलों का दीर्घकालीन अर्थ-प्रबन्धन इन्हीं निक्षेपों के द्वारा होता है। इन पर ब्याज की दर साधारणतः ४॥ % से ६॥ % तक भिन्न-भिन्न मिलों में रहती है।

इसके अतिरिक्त विश्व व्यापी मन्दी के पश्चात् 'अन्तर्विनियोग' की प्रथा भी बहुत प्रचलित हो गई है। इसके अनुसार एक मिल के 'संचित कोष' दूसरी मिल में निक्षेप (Deposits) के रूप में रख दिए जाते हैं।

सार्वजनिक निक्षेपों से लाभ

(१) ब्याज की दर अपेक्षाकृत कम होती है—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है जन निक्षेपों पर ब्याज की दर बहुत अधिक ऊँची नहीं होती है। यह साधारणतः ४॥ % से ६॥ % तक रहती है और कुछ मिलें जिनकी साख अच्छी है इससे भी कम ब्याज की दरों पर भी निक्षेपों को आकर्षित कर लेती हैं।

(२) अंशधारियों को लाभांश अधिक मिल जाता है—यदि निक्षेप आसानी से कम ब्याज पर सुविधापूर्वक प्राप्त हो जाते हैं, तो अंशधारियों को लाभांश अधिक मात्रा में दिए जा सकते हैं। उदाहरणार्थ बम्बई और अहमदाबाद की सूती मिलें इस पद्धति के अनुसार अपने अंशधारियों को लाभांश ऊँची दर से बाँट सकी हैं।

(३) सम्पत्ति को रहन रखने की आवश्यकता नहीं होती—निक्षेप प्राप्त करने के लिए सम्पत्ति को रहन के रूप में रखने की आवश्यकता नहीं होती जैसा कि ऋण पत्रों के निर्गमन से होता है। इसके अतिरिक्त ऋण पत्रों के निर्गमन में जो वैधानिक व्यय करने पड़ते हैं उनकी कोई आवश्यकता नहीं रहती।

(४) **पूंजी का कलेवर लोचदार रहता है**—पूँजी की अधिकता होने पर कम्पनी निक्षेपो को अस्वीकार कर सकती है, अथवा जिन निक्षेपो की अवधि समाप्त हो चुकी है उनकी वापिसी कर सकती है। इसके विपरीत पूँजी की कमी होने पर निक्षेपों का नवीनीकरण (Renewal) किया जा सकता है अथवा ऋण पत्रो का निर्गमन किया जा सकता है।

(५) **भविष्य की उन्नति के लिए संचित कोष**—अधिक लाभ होने पर लाभो का एक भाग भविष्य की विस्तार योजनाओ को सफल बनाने के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है और आवश्यकता के समय इसे नवीन पूजी मे परिणित किया जा सकता है।

सार्वजनिक निक्षेपो से हानियाँ

(१) **सार्वजनिक निक्षेप 'अस्थाई मित्र' होते है—(Fair Weather friends)** सार्वजनिक निक्षेपो से दीर्घकालीन योजनाओ को कार्यान्वित करना खतरे से खाली नही है क्योकि ये निक्षेप किसी भी समय सूचना देने पर वापिस लिए जा सकते हैं। इसका सबसे अच्छा उदाहरण विश्वव्यापी मन्दी १९२९ के समय मे बम्बई और अहमदाबाद की मिलो मे मिलता है। इस समय जनता का विश्वास कम हो गया था और वह सब प्रकार की मिलो—अच्छी, बुरी व उदासीन—मे धन वापिस लेने लगी थी। कुछ मिलो को तो बन्द होना पडा और कुछ ने अपने मिलो या देशी बैंकरो से ऋण लेकर इस सकट से छुटकारा पाया।

(२) **परिकल्पना को बल मिलता है**—निक्षेपो द्वारा अपेक्षाकृत कम ब्याज की दर पर धन मिल जाने के कारण कभी-कभी कम्पनी को आवश्यकता से अधिक व्यापार-विस्तार करने का मोह हो जाता है। इस पद्धति से लाभ के स्थान पर उल्टे बहुधा हानि होती है और वे परिकल्पना (Speculation) इत्यादि व्यवहार करने लगते है जिसका दुष्परिणाम अशधारियो और निक्षेपको दोनो को ही भोगना पडता है।

(३) **विनियोग-बाजार के विकास मे बाधा पहुँचती है**—सर बासिल पी० ब्लैकेट के अनुसार सार्वजनिक निक्षेपो पर अत्यधिक निर्भरता होने के कारण अच्छी औद्योगिक प्रतिभूतियो जैसे अश पत्र, ऋण पत्रो इत्यादि की पूर्ति कम हो जाती है जिसमे विनियोग बाजार बहुत सकुचित

हो जाता है। ठीक भी है, प्रथम वर्ग की सचित राशि तो जमा के रूप से विनियोग मे चली आती है, और उनके क्रय करने योग्य छोटे मूल्य वाली प्रतिभूतियो का निर्गमन भी नही हो पाता।

प्रबन्ध–अभिकर्त्ता (Managing Agents)

औद्योगिक अर्थ–प्रबन्धन मे प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओ का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। फिस्कल–कमीशन (१९४९–५०) ने प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओ का महत्व स्वीकार करते हुए लिखा है कि "औद्योगीकरण के प्रारम्भिक दिनो मे जब कि न तो साहस और न पूंजी ही प्राप्त थे प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओ ने दोनो ही को प्रदान किया।" प्रबन्ध–अभिकर्त्ता प्रणाली का विस्तार मे अध्ययन अध्याय ८ मे किया गया है।

नोट—विशिष्ट सस्थाओ तथा विदेशी पूंजी का विस्तार मे अध्ययन अगले अध्यायो मे किया गया है।

अध्याय ८

प्रवन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली

(Managing Agency System)

भारतीय औद्योगिक विकास का श्रेय यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली को दिया जाय तो तनिक भी अतिशयोक्ति न होगी। वास्तव में प्रबध अभिकर्त्ता प्रणाली भारत के औद्योगिक विकास की आधारशिला है। साथ ही भारतीय औद्योगिक सगठन का इतिहास भी प्रबध अभिकर्त्ताओ की सफलता का इतिहास है। आधुनिक लगभग सभी मुख्य निर्माणी अथवा उत्पादन उद्योगो जैसे कोयला, लौह एव स्पात, जूट, सूती वस्त्र, जल-विद्युत् (Hydro-electric) शक्कर इत्यादि के प्रवर्त्तन, निर्माण एव सफलता का एक मात्र श्रेय इन्ही अभिकर्त्ताओ को है। इस कथन की पुष्टि भारतीय राजकर समिति (Indian Fiscal Commission) ने भी अपनी १९४९-५० की रिपोर्ट मे की है। रिपोर्ट के अनुसार "औद्योगीकरण के प्रारम्भिक दिनो मे जबकि न तो साहस और न पूजी ही प्राप्त थे, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने दोनो को ही प्रदान किया तथा भारत के वर्तमान सुदृढ उद्योग जैसे सूती वस्त्र, जूट स्पात इत्यादि, विभिन्न सुप्रसिद्ध प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृहो के पथ प्रदर्शन, उत्साह व पोषित देख रेख (Fostering care) के कारण ही इस अवस्था को प्राप्त कर सके है।" टाटा के द्वारा कम्पनी कानून समिति (Company Law Committee) के समक्ष दिये हुए प्रमाण से भी स्पष्ट है कि उन दिनो प्रमडलो का प्रवर्तन एव निर्माण प्रबध अभिकर्त्ताओं की सहायता की अनुपस्थिति मे सम्भव ही न था।* इतना ही नही अपितु प्रबध अभिकर्त्ताओ

---

* "Almost every floatation inviting public subscription did so with the *backing of a firm of managing agents.* The promoters took substantial blocks of shares, arranged for working finance and generally undertook the managemnt of the affairs of the company, guaranteeing *its commitments were required and nursing* the project till it was established"

Evidence of the Tata Industries Ltd, before the Company Law Committee, Report, Vol. I, Part II, P. 688.

ने औद्योगिक प्रमडलो के साथ-साथ अधिकोषो (Banks) की भी स्थापना कर औद्योगिक वित्त को सुलभ एव सरल बनाया। सबसे प्रथम ऐसे अधिकोषो (Banks) की स्थापना 'एलेक्जेण्डर एण्ड कम्पनी' (Alexander & Company) द्वारा बगाल मे हुई थी।

प्रादुर्भाव एवं विकास

(Origin & Development)

भारतीय औद्योगिक प्रणाली मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली कब से अपना विशाल कार्य लेकर समावेश हुई, इसके सम्बन्ध मे कोई निश्चित तिथि बतलाना असम्भव तो नही परन्तु कठिन अवश्य है। परन्तु पुनश्च यह तो सर्वमान्य सत्य है कि इस प्रणाली का उद्भव या प्रादुर्भाव भारत के औद्योगिक विकास के साथ-साथ हुआ। औद्योगिक विकास का श्रेय अग्रेज व्यवसाइयों को है जो सत्रहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे व्यापारिक संस्थाओं के रूप मे आये थे। शुरू-शुरू मे वे केवल आयात-निर्यात का व्यापार करते थे परन्तु बाद मे शनै शनै अन्य कार्यों की ओर भी आकर्षित हुए। उन्होने यहाँ पर औद्योगिक विकास के सभी आवश्यक तत्वों का विपुल योग देखा। जैसे जनसख्या के आधिक्य के कारण विस्तृत एव उत्तम उपभोक्ता बाजार, सस्ते वेतन पर श्रमिक तथा एक कृषिप्रधान देश होने के कारण आवश्यक कच्चा ससाधन इत्यादि पर्याप्त मात्रा मे सुलभ थे। इसके अतिरिक्त धनी लोग भी पर्याप्त सख्या मे थे जो कि उद्योगो से अपनी विपुल धन-राशि को विनियोग करने मे सकोच करते थे। परिस्थिति का लाभ उठाते हुए उन्होंने उद्योगो का प्रवर्त्तन एव निर्माण किया। परन्तु आगामी अनेक वर्षो तक उन्हे हानि ही हाथ लगी। फिर भी वे इस ओर निरन्तर लगे रहे, और उन्हे सफलता प्राप्त हुई। इस सफलता से भारतीय जनता मे विश्वास पैदा हुआ तथा वह इन उद्योगो की ओर आकर्षित हुई।

डा० वीरा एन्स्टे (Dr. Vera Anstey) ने अपनी "भारत का आर्थिक विकास" (The Economic Development of India) नामक पुस्तक मे वर्तमान प्रबन्ध अभिकर्ता प्रणाली के प्रचलन की तिथि सन् १८३३ ई० दी है, जबकि ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपना व्यापारिक कार्य पूर्णतया स्थगित कर दिया था। श्री ज्योफ्री टामसन के अनुसार कलकत्ता की (Messrs Orr, Dignam & Co) नामक सार्थ के श्री जान केव ओर (John Cave Orr)

तथा श्री सिलवेस्टर डिगनाम (Silvester Dignam) प्रथम प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग थे। इस प्रकार प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग दो भागो मे विभाजित किए जा सकते है—अग्रेज और भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ता।

आग्ल प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का उदय सर्वप्रथम बगाल मे हुआ जो कि अग्रेजो (आग्लो) का गढ था। प्रारम्भ मे इन्होने बगाल मे जूट, बिहार मे कोयला तथा लोहा, आसाम मे चाय बागान (Tea plantations) तथा जहाजरानी उद्योग (Shipping) और अन्त मे लाइट रेलवे मद्रास तथा उत्तरी भारत मे खोले। भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने अपने उद्योग विशेषत भारत के पश्चिमी भाग, बम्बई, अहमदाबाद तथा मैसूर इत्यादि के जिलो मे स्थापित किए। पश्चिमी भारत के सबसे अधिक प्रमुख अग्रगणी (Pioneers) पारसी और भाटिया थे, जिनका अनुकरण शीघ्र ही अन्य धनिक वर्गों ने किया।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली न केवल भारत मे ही अपितु ससार के अन्य देशो मे प्रचलित है। यह प्रणाली चीन, मलाया, पूर्वी द्वीप समूह (East Indies) तथा दक्षिणी अफ्रीका की सोने की खानो मे प्रचलित है। इसके अतिरिक्त इग्लैंड तथा अमेरिका मे भी यह प्रणाली किसी न किसी रूप मे पायी जाती है। इतना होने पर भी यह बिल्कुल सत्य है कि ससार के किसी भी खन्ड मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली की इतनी व्यापक महत्ता एव ख्याति नही है, जितनी कि भारतीय भूमि मे।

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का सगठन

प्रबन्ध अभिकर्त्ता वैयक्तिक सार्थ (Partnership firm) या एक सयुक्त स्कन्ध प्रमन्डल—लोक और आलोक—के रूप मे हो सकते हैं। प्रारम्भ मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने अपना सगठन सार्थ के रूप मे किया तथा बाद मे अलोक (Private) और लोक (Public) कम्पनी के रूप मे भी करने लगे। केन्द्रीय व्यापार और उद्योग मत्रालय द्वारा प्रकाशित अप्रैल १९५६ की उद्योग व्यापार पत्रिका के आँकडो से ज्ञात होता है कि ३१ मार्च १९५५ मे ३,९०० प्रबन्ध अभिकर्त्ता सार्थ और प्रमन्डल थे जो ४,९०० प्रमन्डलो का नियन्त्रण करते थे। इनमे से २,५०० प्रबन्ध अभिकर्त्ता वैयक्तिक व सार्थ के रूप मे, १,२०० अलोक व २०० लोक प्रमन्डल के रूप मे थे।

राज्यानुसार (State-wise) पश्चिमी बगाल मे १,५००, बम्बई मे ८००,

मद्रास में ४५०, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, मध्य प्रदेश तथा पजाब प्रत्येक में १०० से अधिक प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग कार्य कर रहे थे। उपरोक्त सात राज्यों के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की सख्या समस्त देश के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की सख्या की ४/५ है।

कुछ समय से प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली में साझेदारी सार्थ (*Partnership firm*) एव अलोक प्रमन्डल से लोक प्रमन्डल (Public company) में परिवर्तित कराने की प्रवृत्ति का जोर हो गया है। उदाहरणार्थ, डकन ब्रदर्स (Duncan Brothers) जिसकी स्थापना सन् १७७५ ई० में एक प्राइवेट सार्थ के रूप में हुई थी, सन् १९४८ में सीमित लोक प्रमन्डल (*Public Limited* Company) बन गई। गिलिण्डर्स आरबुथनॉट एण्ड कम्पनी लिमिटेड का सस्थापन १९३५ में प्राइवेट कम्पनी के रूप में हुआ था और वह भी १९४७ में सीमित लोक प्रमन्डल के रूप में परिणित हो गयी। इसी प्रकार केटिल वैल बुलैन एण्ड कम्पनी लि० (*Kettle Well Bullen & Company Limited*) सन् १९२७ में एक प्राइवेट कम्पनी के रूप में बनी थी, वह भी १९४६ में पब्लिक लि० कम्पनी में परिणित हो गयी। इसके अतिरिक्त पेरी एण्ड क० लि० (Parry & Co. Limited) शा वैलेस एण्ड क० लि० (Shaw Wallace & Co. Ltd.), मैकलाइड एण्ड कम्पनी लि० (*Mcleod & Co. Ltd.*) तथा एण्डरसन राइट लि० (Anderson Wright Ltd) सीमित प्रमन्डल के रूप में क्रमश: १९४६, १९४५ में परिणित हो गई है। अभी हाल ही में 'लीवर ब्रादर्स' (Lever Brothers) भी सीमित प्रमन्डल के रूप में परिणित हो गए है।

यद्यपि प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का सगठन वैयक्तिक (Proprietorship), साझेदारी सार्थ (Partnership Firm) और प्रमन्डल के रूप में होता है परन्तु फिर भी ये वास्तविक दृष्टिकोण से कौटुम्बिक व्यवसाय की तरह होते है और इनके पदों का हस्तातरण परम्परागत होता है। बाहरी लोगों को इसमें स्थान बहुत कम प्राप्त होता है। यद्यपि आग्ल प्रबन्ध अभिकर्त्ता गृहों में अब ऐसी बात नहीं रही है। पुनश्च भारतीय अभिकर्त्ता गृहों में उक्त दोष पूर्णरूपेण वर्तमान है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के कार्य (Functions of Managing Agents)

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के कार्यों का स्पष्टीकरण प्रबन्ध अभिकर्त्ता की

परिभाषा से सम्यक् रूपेण जाना जा सकता है। भारतीय प्रमण्डल अधिनियम (Indian Companies Act) १९५६ की धारा २ (२५) के अनुसार 'प्रबन्ध अभिकर्त्ता वह व्यक्ति सार्थ या प्रमण्डल है जो अधिनियम द्वारा लगाए हुए प्रतिबन्धो के आधीन किसी प्रमण्डल के सम्पूर्ण या अधिकाश मामलो के प्रबन्ध करने का अधिकारी है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचालको के नियन्त्रण व देख-रेख मे कार्य करता है और अपने प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकारो को प्रमण्डल के साथ हुए ठहराव मे या प्रमण्डल के पार्षद सीमा नियम अथवा अन्तर्नियमो से प्राप्त करता है। इस प्रकार प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के निम्नलिखित कार्य है :—

(१) प्रमन्डलों का प्रवर्तन एवं निर्माण (Promotions & Floatation of Companies)—किसी भी नवीन प्रमन्डल की स्थापना के लिए कुछ प्रारम्भिक अनुसधान, प्रारम्भिक व्यय व अन्य साधनो की आवश्यकता होती है। इस कार्य के लिए अन्य देशो मे विशिष्ट सस्थाएँ होती है जैसे अमेरिका मे विनियोगकर्त्ता अधिकोप (Investment Bankers) सयुक्त राज्य (U. K.) मे निर्गमन तथा अभिगोपन गृह (Issue and Underwriting Houses) तथा जर्मनी मे औद्योगिक साख अधिकोष (Industrial Credit Banks)। परन्तु अभाग्यवश हमारे देश मे ऐसी कोई भी विशिष्ट सस्थाएँ अभी तक नही है। यहाँ प्रवर्त्तन व निर्माण का कार्य प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा होता है, जो आवश्यक अनुभव व तात्रिक योग्यता रखते है। उदाहरणार्थ भारत मे टाटा एण्ड सन्स लिमिटेड, डालमियाँ जैन लिमिटेड, बर्ड एण्ड कम्पनी, मार्टिनबर्न एण्ड कम्पनी, जेम्स फिनले एण्ड कम्पनी लिमिटेड, जे० पी० श्रीवास्तवा एण्ड सन्स, करमचन्द थापर एण्ड ब्रदर्स लिमिटड तथा जे० के० इन्डस्ट्रीज लिमिटेड आदि प्रसिद्ध अभिकर्त्ता सस्थाओ ने अनेक उद्योगो का प्रवर्तन किया है। इस कथन की पुष्टि योजना आयोग (Planning Commission) ने भी इन शब्दो मे की है—'निजी क्षेत्र के बहुत से उद्योगो का सचालन एव प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा होता है जो कि देश के वर्तमान औद्योगिक उन्नति के लिए एक बहुत बडी सीमा तक उत्तरदायी है।"*

---

* A majority of industries in the private sector are, at the present time, operated and managed through managing agents who are responsible for a large measure of the industrial development that has so far been achieved in the country.

—*Planning Commission.*

कलकत्ता के 'मालिक सघ' (Employers Association, Calcutta) ने भारतीय कम्पनी कानून समिति (Company Law Committee) को दी हुई अपनी लिखित साक्षी (Evidence) मे कहा है कि "देश के औद्योगिक क्षेत्र का प्रबन्ध लगभग तिहाई भाग दो दर्जन प्रमुख अभिकर्त्ताओ द्वारा होता है।"

(२) आर्थिक सहायता (Financial Assistance)—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य प्रमन्डलो को आर्थिक सहायता प्रदान करना है। ये लोग न केवल प्रारम्भिक पूंजी का प्रबन्ध करते हैं अपितु बाद मे पुनर्सगठन, विकास तथा आधुनीकरण व कार्यशील पूंजी के प्रबन्ध के लिए तथा सकट काल मे समस्त आर्थिक समस्याओं को सुलझाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। प्रबन्ध अधिकर्त्ताओं का आर्थिक सहायता देने वाले Financier) के रूप मे अधोलिखित अवस्थाओ मे और अधिक महत्व बढ जाता है —

(अ) सुसंगठित बाजार का अभाव—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं ने हमारे उद्योगो को पूंजी प्राप्त कराने मे ऐसे समय मे सहायता की है जब कि देश मे कोई सुसगठित पूंजी का बाजार न था। उन्होंने विनियोक्ता (Investores) के रूप मे तथा प्रवन्धित प्रमन्डलो के प्रन्यासी के रूप मे आर्थिक सहायता देने का भार ग्रहण किया तथा विनियोक्ता तथा सयुक्त स्कन्ध प्रमन्डलो (Joint Stock Companies) के बीच सम्बन्ध स्थापित किया। विदेशो की तरह हमारे देश मे अभिगोपक (Underwriters) व निगमन गृह (Issue Houses) नही है, जिसमे निजी विनियोग किया जा सके। इन संस्थाओ के अभाव मे यह कार्य हमारे देश मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा किया जाता है। इस प्रकार इनकी सेवाओ के द्वारा प्रमन्डलो के अश, ऋणपत्रादि शीघ्र बिक जाते हैं जिससे उन्हे पूंजी की प्राप्ति हो जाती है तथा जनता के निष्क्रिय धन का भी उद्योगो मे सदुपयोग हो जाता हैं।

(ब) भारतीय पूंजी की लज्जाशीलता (Shyness of Indian Capital)—भारतीय पूंजी अपनी लज्जाशीलता के लिए प्रसिद्ध है। भारतीय विनियोक्तागण अपनी विपुल धन–राशि उद्योगों मे विनियोग करने मे सकोच करते हैं। प्रबन्ध अभिकर्ता लोग उद्योगो मे स्वय व्यय करके विनियोगी वर्ग मे विश्वास का सम्पादन करते हैं। विनियोक्ताओं मे यह प्रवृत्ति है कि वे अपने धन को किसी प्रमन्डल मे विनियोग करने से पहले उसके प्रबन्ध

अभिकर्त्ता का नाम देखते हैं। अत विभिन्न प्रमन्डलो मे विनियोग प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ की साख पर निर्भर करता है।

(स) अधिकोषो की धारणा (Attitude of Banks)—भारतीय अधिकोषो की यह प्रवृत्ति रही है कि वे किसी उद्योग को ऋण देने से पहले उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता की प्रतिभूति (Security) व जमानत (Guarantee) माँगते है। इस प्रथा को सर्वप्रथम Imperial Bank of India जो आज *State Bank of India* के रूप मे परिवर्तित हो गया है, ने प्रचलित किया था जिसका अनुसरण बाद मे अन्य अधिकोषो ने किया। प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अधिकोषो (Banks) को अपने नियत्रित प्रमन्डल द्वारा प्रार्थित धन राशि पर प्रतिभूति प्रदान करते हैं। कभी-कभी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को इस प्रथा के कारण हानि भी उठानी पडती है। उदाहरणार्थ टाटा इन्डस्ट्रीज़ लिमिटेड को इस प्रतिभूति के देने के कारण १९२३-२८ मे इस काल मे उपार्जित लाभ का लगभग ७० % हानि के रूप मे देना पडा।

(द) विदेशी पूँजी प्रदान करना (Providing Foreign Capital)—जब कभी देश पूँजी का अल्पकाल के लिए या दीर्घकाल के लिए अभाव हो जाता है तो उस समय प्रबन्ध-अभिकर्त्ता लोग अपने नियन्त्रित प्रमण्डलो के लिए विदेशो से पूँजी आयात करते है। विदेशी विनियोक्ता लोग भी पूजी निर्यात करते समय प्रबन्ध अभिकर्त्ता की साख पर ध्यान देते है।

प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ द्वारा आर्थिक सहायता के प्ररूप

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता लोग नवीन व वर्तमान प्रमन्डलो को निम्न प्रकार से आर्थिक सहायता देते हैं —

(i) निजी साधनो से (Own sources)।

(ii) जन-निक्षेपो को स्वीकार करके (Acceptance of Public Deposits)।

(iii) ऋण व अग्रिम की प्रतिभूति देकर (Guaranteeing of loans and Advances)।

(iv) विनियोक्ता प्रमन्डल का कार्य करके (Functioning as an investing Company)।

(v) धन का अन्तर्विनियोग करके (Inter - investment of the Funds) ।

(vi) प्रमन्डलो मे आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करके (Effecting Financial Integrations) ।

(vii) विदेशी पूँजीपतियो से समझौता करके (Entering into Joint-deals) ।

(१) निजी साधनों द्वारा (By own sources)—प्रबन्ध-अभिकर्त्ता लोग अपनी प्रबन्धित कम्पनियो के अश पत्रो को एक बडी मात्रा मे क्रय कर उन्हे पूँजी प्रदान करने मे सहायक होते है । यूरोपियन प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ द्वारा प्रबन्धित कम्पनियो को पूँजी की उपलब्धता के सम्बन्ध मे अधिक कठिनाई नही उठानी पडती क्योकि उनके निर्गमित अश-पत्रो को यूरोपियन एव भारतीय दोनो प्रकार के विनियोक्तागण क्रय कर लेते है । परन्तु भारतीय प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ द्वारा प्रबन्धित कम्पनियो को इस सम्बन्ध मे घोर कठिनाई का सामना करना पडता है । अत भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को अपनी प्रबन्धित कम्पनियो के अश-पत्रो को एक बडी मात्रा मे क्रय करना पडता है । यह प्रथा आज भी भारत मे प्रचलित है ।

(२) जन निक्षेप (Public Deposits)—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के वैयक्तिक साख (Personal Credit) पर हमारे देश के औद्योगिक केन्द्रो जैसे अहमदाबाद तथा बम्बई की कम्पनियों मे जन निक्षेप होते ही है । उदाहरणस्वरूप अहमदाबाद एव बम्बई के वस्त्र व्यवसाय कम्पनियो को कुल पूँजी का क्रमश लगभग ३० % और ११ % जन निक्षेपो से प्राप्त होता है । विनियोक्ता लोग इन स्थानो मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता की आर्थिक स्थिति को कम्पनी की साख योग्यता (Credit-worthiness) की अपेक्षा अधिक महत्व देते है ।

(३) ऋण व अग्रिम की प्रतिभूत देकर (Guaranteeing of loans & Advances)—अधिकोष (Banks) किसी भी कम्पनी को धन राशि ऋण व अग्रिम (Loan and Advances) के रूप मे देने से पूर्व उस कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता की वैयक्तिक प्रतिभूति (Security) को माँगते है । अधिकोष (Banks) कम्पनियों को ऋण, ओवर-ड्राफ्ट व अन्य सुविधाएँ उसी समय तक देते रहते है जब तक कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की आर्थिक स्थिति अच्छी होती है । दूसरी ओर यदि अभाग्यवश किसी प्रबन्ध-अभिकर्ता

की आर्थिक स्थिति अस्त--व्यस्त हो जाती है अथवा वह आर्थिक सकट मे फँस जाता है तो अधिकोष (Banks) अपनी प्रदान की हुई सब सुविधाओं को वापस ले लेती है, चाहे प्रमन्डल की आर्थिक स्थिति कितनी ही अच्छी क्यो न हो। अधिकोषो की इस प्रवृत्ति को सरकार द्वारा सचालित वित्त निगमो (State Sponsored Financial-Corporations) ने भी अपनाया है। इनके द्वारा भी कम्पनियो को ऋण उसी समय मिलते है जब इन ऋणो की प्रत्याभूति (Guarantee) उन कम्पनियो से सम्बन्धित प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा प्राप्त हो जाती है।

(४) विनियोक्ता कम्पनी का कार्य करके—बडे – बडे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नियन्त्रण म बहुत सी विनियोक्ता कम्पनिया होती है जो अन्य प्रबन्धित कम्पनियो की दीघ व अल्पकालीन आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति करती है परन्तु बहुत से प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग स्वय विनियोक्ता प्रमन्डलो का कार्य करते है और इस प्रकार वे कम्पनियो की सम्पूण वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति किया करते है।

(५) धन का अन्तर्विनियोग (Inter - investment of Funds)—एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के प्रबन्ध मे अनेक कम्पनियाँ होती है। अत प्रबन्ध अभिकर्त्ता एक कम्पनी की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति दूसरी कम्पनी के आधिक्य धन के विनियोग से करते है। इस प्रकार के परस्पर विनियोग को कम्पनी सशोधन अधिनियम १९५६ (Companies Amendment Act 1956) द्वारा रोक दिया गया है। परन्तु फिर भी कलकत्ता एम्प्लायस एसोसियेशन' का विचार है कि परस्पर विनियोग एक प्रगतिशील अथ–व्यवस्था (Expanding Economy) के लिए अत्यन्त आवश्यक है और कदाचित औद्योगिक क्षेत्र मे प्राप्त पूँजी को उसी क्षेत्र मे विनियोजित करने का सर्वोत्तम साधन है।'

(६) प्रमन्डलो मे आर्थिक सम्बन्ध स्थापित करके (Effecting Financial Integrations)—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नियन्त्रण मे न केवल विभिन्न प्रकार के व्यवसायिक व औद्योगिक प्रमन्डल होते है अपितु वित्तीय सस्थाएँ तथा बैंक बीमा कम्पनियाँ, विनियोगी प्रन्यास (Investment trusts) इत्यादि भी होते है। इन विभिन्न सस्थाओ मे सम्पर्क स्थापित करके वे वित्तीय सस्थाओ के धन का उपयोग अन्य प्रमन्डलो मे कर सकते है।

(७) विदेशी संयुक्त समझौते (Joint deals)—प्रबन्ध अभिकर्त्तागण विदेशी पूँजीपतियों से व्यापारिक समझौते करते है। जिसके सुपरिणाम व्यापारिक व्यवसाइयो को विदेशी पूँजी सुगमता से प्राप्त हो जाती है। द्वितीय महायुद्धोपरान्त यह प्रवृत्ति बहुत प्रचलित हो गई है।

प्रमडलों की व्यवस्था (Management of Companies)

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का तीसरा महत्वपूर्ण एव प्रशसनीय कार्य प्रमडलो की व्यवस्था करना है। वे अपने तात्रिक ज्ञान एव व्यवसायिक अनुभव द्वारा विभिन्न व्यवसायिक प्रमन्डलो का सगठन, व्यवसाय की आवश्यक्तानुसार करते हैं। अत यदि यह कहा जाय कि भारत मे प्रमण्डलो की यशस्विता प्रवर्त्तन, व्यवस्थापन एव प्रबन्ध कार्य की सफलता का सम्पूर्ण श्रेय इन्ही प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ को है तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं की उपयोगिता या इनसे प्राप्य लाभ

उक्त वर्णित प्रबन्ध-अभिकर्त्ता के कार्यो पर विवेकपूर्ण दृष्टि आकृष्ट करने के उपरान्त उनसे प्राप्य लाभो का सरलता से अनुमान लगाया जा सकता है। नि.सदह हमारे देश की वर्तमान औद्योगिक प्रगति प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ की विभिन्न महत्वपूर्ण एव नि स्वार्थ सेवाओ का प्रतीक है। सक्षेप मे इस प्रणाली के अधोलिखित उल्लेखनीय लाभ है —

(१) प्रमण्डलो का प्रवर्तन एव निर्माण (Promotion & Floatation of Companies)—जैसा कि ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि प्रवर्तक एव निर्माणकर्त्ता का कार्य करने के लिए विशिष्ट सस्थाओ के अभाव के कारण यह कार्य हमारे देश मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ द्वारा ही सम्पन्न होता है। ये लोग प्रमण्डल के व्यवसाय प्रारम्भ होने से पूर्व सम्पूर्ण आवश्यक बातो पर विचार करते हैं, तथा उसे कार्य रूप मे परिणित करने के लिए आवश्यक व्यय व वैधानिक कार्यवाहियो की पूर्ति करते है।

(२) आर्थिक सहायता (Financial Assistance)—जैसा कि हम पहले इस सम्बन्ध म उल्लेख कर चुके ह कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग विभिन्न रीतियो से समय-समय पर प्रमण्डलो को आवश्यक्तानुसार आर्थिक सहायता प्रदान करते रहते ह और प्रमण्डलो को उन्नति की ओर अग्रसर करते

रहते हैं। ऐसा कार्य न केवल वे अपने साधनों (Sources) से ही अपितु अपने सुहृदयों एवं सम्बन्धियों के साधनों से भी प्रमण्डलों को आर्थिक सहायता पहुँचाते हैं और उनको विनाश से रक्षा करते हैं। अब तो यह बात और भी महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि पूँजी नियन्त्रण आदेश (Control of Capital Issues) १९४३ के अनुसार प्रवर्तकों को पूँजी का कुछ अंश अनिवार्यतः लेना पड़ता है।

(३) वैज्ञानीकरण एवं सूत्रीकरण (Rationalisation & Co-ordination)—प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार की व्यवसायिक संस्थाएँ होती हैं जिनके विशिष्टीकरण (Speci. lization) के लिए वे अपने कार्यालय में अलग-अलग विभाग रखते हैं, जिससे उनके सभी प्रबन्धित प्रमण्डलों को लाभ प्राप्त हो सके। व्यक्तिगत रूप में यह सम्भव नहीं होता कि विशिष्ट योग्यता वाले अनुभवी व्यक्तियों को प्रमण्डल नियुक्त कर सकें परन्तु प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के माध्यम से न्यूनतम व्यय पर ही यह सम्भव हो सकता है। इसके अतिरिक्त पूरक व्यवसायों (Supplementary Business) की दशा में यह भी सम्भव है कि एक व्यवसाय द्वारा निर्मित माल दूसरे व्यवसाय में खप जाय। उदाहरणार्थ लोह, यातायात तथा कोयला उद्योगों में तीनों एक दूसरे के पूरक हैं। दूसरी बात जो इस दिशा में महत्वपूर्ण है वह यह है कि प्रबन्ध-अभिकर्त्ता अपना क्रय व विक्रय विभाग भी रखते हैं जिसके द्वारा उनके प्रबन्धित व्यवसायों की आवश्यकता का माल क्रय एवं निर्मित वस्तुओं का विक्रय सुगमता से हो जाता है।

इस प्रकार प्रबन्ध-अभिकर्त्ता अपने व्यवस्थित प्रमण्डलों में एकसूत्रता या सामंजस्य लाते हैं जिसके सुपरिणामस्वरूप उनमें मितव्ययिता होती है और कार्यक्षमता बढ़ती है।

(४) अंशपत्रों और ऋणपत्रों आदि का अभिगोपन (*Underwriting of Shares & Debentures*)—हमारे देश में अन्य देशों की भाँति औद्योगिक प्रतिभूतियों का अभिगोपन करने के लिए विशिष्ट संस्थाएँ उपलब्ध नहीं हैं अतः यह कार्य भी प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा ही सम्पन्न होता है। इसलिए इनकी इन सेवाओं के सुपरिणामस्वरूप कम्पनी के अंश-पत्र, ऋण-पत्रादि शीघ्र बिक जाते हैं जिससे उनको पूँजी प्राप्त हो जाती है तथा जनता की निष्क्रिय विपुल धन राशि का भी उद्योगों में सदुपयोग हो जाता है।

(५) विनियोगों की सुरक्षा (Safety of Investments)—प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपनी ख्याति का बडा ध्यान रखते है और यथाशक्ति इस पर धब्बा नही लगने देते । इसलिए जनता एव विनियोक्ताओ को यह विश्वास हो जाता है कि सुव्यवस्थित प्रबन्ध अभिकर्त्ता के प्रबन्ध मे जो प्रमण्डल होते है उनमे उनके धन का उपयोग सुरक्षित हो जाता है।

(६) प्रतिस्पर्धा का अन्त (End of Competition)—एक ही प्रबन्ध-अभिकर्त्ता द्वारा नियन्त्रित प्रमण्डलो मे प्रतिस्पर्धा का अन्त हो जाता है। इसके विपरीत उनमे सहयोग की भावना बढती है, जिसके परिणामस्वरूप प्रबन्ध एव व्यवस्था मे मितव्ययिता आ जाती है।

प्रबन्ध–अभिकर्त्ता की प्रणाली के दोष एवं हानियाँ
(Defects and disadvantages of Managing Agency)

प्रकृति एव मानवीय प्रयास द्वारा रचित वस्तुओ मे गुण एवं दोष का सम्मिश्रण साथ-साथ हुआ दृष्टिगत होता है। इस अटल नियमानुसार मानवीय प्रयासो के परिणामस्वरूप सगठित प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली मे भी गुण एव दोष दोनो का सम्मिश्रण पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। ऊपर के विवरण मे इस प्रणाली से सम्बन्धित लाभो का अध्ययन करने के उपरान्त हानियो का अध्ययन एक अनिवार्य सा विषय बन जाता है। प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली के अनेक दोष हैं जिसके कुपरिणामस्वरूप सरकार ने समय-समय पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये है जिसका विवेचन आगे किया गया है। इस प्रणाली के अधोलिखित प्रमुख दोष हैं —

(१) आर्थिक प्रभुत्व (Financial Dominance)—प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली मे लगभग सभी उद्योगो के अन्तर्गत औद्योगिक प्रतिफल की अपेक्षा आर्थिक प्रभुत्व की ही महत्ता दिखाई देती है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अधिकतर पूँजीपति ही होते हैं जो तात्रिक योग्यता उतनी नही रखते, जितनी कि आर्थिक सहायता प्रदान कर सकते हैं। इनके आर्थिक प्रभुत्व का परिणाम यह होता है कि यदि किसी समय प्रमण्डल आर्थिक सकट मे फँस जाय तथा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पास पर्याप्त धन न हो तो ऐसे समय मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने अधिकार दूसरे प्रबन्ध-अभिकर्त्ता को जिसके पास पर्याप्त धन है, हस्तातरित कर देते हैं तथा यह नही देखते कि

ऐसे नए प्रबन्ध अभिकर्त्ता में आवश्यक तान्त्रिक एवं व्यापारिक योग्यता है या नही। इस दोष को दूर करने के लिए भारतीय प्रमण्डल अधिनियम (Indian Companies Act) १९५६ ने उनकी इस प्रवृत्ति पर प्रबन्ध लगा दिया है।

(२) प्रमण्डलों के धन का दुरुपयोग (Misuse of Funds)—प्रबन्ध-अभिकर्त्तागण विभिन्न प्रकार से अपने प्रबन्धित प्रमण्डलों के धन का दुरुपयोग करते है जिसका वर्णन अधोलिखित रूप में किया जा सकता है —

(क) वे लोग बहुधा अव्यावसायिक प्रकृति के ऋण व अग्रिम (Loans & Advances) को अपने मित्रो एव साथियो को दे देते है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी ये लोग अपने मित्रो व साथियो के धन का विनियोग कराने की इच्छा से या तो प्रमण्डल सम्पत्ति को रेहन (Mortgage) कर देते है या विशेष रूप से ऋणपत्रो का निर्गमन करते है।

(ख) ऐसा भी देखा गया है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग आजकल प्रमण्डलो को आर्थिक सहायता देने के स्थान पर स्वय आर्थिक सहायता प्राप्त करने की ओर प्रयत्नशील रहते हैं। प्रमण्डलो द्वारा प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के नाम चालू खाते खोले जाते है जिससे वे अपने व्यक्तिगत कार्यों को पुष्ट बनाते है।

(ग) यदा-कदा प्रबन्ध अभिकर्त्तागण अपने प्रबन्धित प्रमण्डल के धन को दूसरे प्रमण्डल मे इसलिए विनियोग कर देते है जिससे उन्हें ऐसे प्रमण्डल में मत देने का अधिकार मिल जाय या वे उसके प्रबन्ध अभिकर्त्ता हो जायें।

(घ) बहुत से प्रमण्डलो को अपने दिए हुए ऋण को इसलिए वसूल नही करते हैं जिससे उन पर अधिकार बना रहे।

(ङ) बहुत से व्यर्थ के पूंजीगत खर्चे केवल इस विचार से करते हैं जिससे उस पर कमीशन प्राप्त हो सके।

(३) अंशों का अत्यधिक सट्टा (Excessive Speculation of Shares)—प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ को बहुत सुगमता से धन प्राप्त

हो जाता है जिसके कुपरिणामस्वरूप उनको अश पत्रो मे सट्टा करने को प्रोत्साहन मिलता है। ये लोग सट्टेबाजी मे इतने व्यस्त हो जाते हैं कि कम्पनी या अशधारियो के हितो की ओर कोई ध्यान नही देते। अत्याधिक सट्टेबाजी के कारण प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ की अधिक दशा बिगड जाती है जिसका प्रभाव प्रबन्धित प्रमण्डलो के अशो पर पडता है। अशो के मूल्य मे अत्याधिक सट्टा होने लगता है। साथ ही उनका मूल्य दिनोत्तर गिरने लगता है।

इसके अतिरिक्त यदि प्रबन्ध-अभिकर्त्ता स्वय कुछ अशो को क्रय करना चाहते है तो उन अशो का मूल्य कम करने के लिए उनपर लाभाश की दर कम कर देते है। इसके विपरीत जिन अशो को वे बेचना चाहते है, उन पर लाभाश की दर बढा देते है। इन दोषपूर्ण कृत्यो का प्रभाव विनियोक्ताओ पर बहुत बुरा पडता है।

(४) संचालकीय नियन्त्रण मे शिथिलता (Slackness in administration)—साधारणतया प्रमण्डलों की व्यवस्था अशधारियो द्वारा निर्वाचित सचालको द्वारा होनी चाहिए। परन्तु अभी तक सचालको की नियुक्ति मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का बहुत बडा हाथ रहा है। प्रथम तो प्रमण्डल के अन्तर्नियम मे ही इस प्रकार का आयोजन कर लिया जाता है जिससे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के मनोनीत व्यक्तियो की ही नियुक्ति सचालक पद पर हो। दूसरे, वे विभिन्न प्रकार के सचालको की नियुक्ति भी इस प्रकार कर देते है जिससे सचालक सभा म प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के पक्ष मे बहुमत हो। तीसरे विभिन्न प्रकार के अशो को विभिन्न प्रकार के मताधिकार देते है, जिनका वितरण वे उन्हीं सचालको को इस प्रकार कर देते है जो उनके पक्ष मे हो। इस प्रकार उनका सचालन सभा मे बहुमत होता है।

सचालकीय नियन्त्रण मे शिथिलता होने का दूसरा मुख्य कारण यह है कि एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता अनेक प्रमण्डलो का प्रबन्ध करता है, जो इतने प्रमण्डलों की व्यवस्था या नियन्त्रण करने मे असफल रहता है। परन्तु अब भारतीय प्रमण्डल अधिनियम १९५६ की धारा ३३२ के अनुसार १५ अगस्त १९५६ के बाद कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता १० प्रमण्डलो से अधिक का प्रबन्ध नही कर सकता।

(५) अयोग्य व्यवस्था (Incompetent management)—प्राथमिक व्यवस्था मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का एकमात्र ध्येय प्रमण्डलों का

प्रवर्तन, निर्माण करना था परन्तु आजकल उनका ध्येय इसके विरुद्ध अत्यधिक लाभोपार्जन करना सा हो गया है। अत प्रमण्डलो की व्यवस्था करना भारतीय पूंजीपतियो के लिए अधिक लाभ कमाने का स्वतन्त्र व्यवसाय हो गया है। परिणामस्वरूप इनके हाथ मे प्रमण्डल की व्यवस्था रहने से इनका लक्ष्य उत्पादन वृद्धि न होकर व्यापार लाभ हो गया है। उदाहरणार्थ सूती वस्त्र उद्योग अपने देश मे जापान से कई वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ था परन्तु फिर भी व्यवसायिक, यान्त्रिक एव प्रतियोगिता की दिशा मे आज भी काफी पिछडा हुआ नजर आता है।

अयोग्य व्यवस्था का दूसरा प्रमुख कारण यह है कि इस प्रथा मे परम्परागत महत्ता अधिक होती है। अर्थात पिता के बाद पुत्र को, पुत्र के बाद पौत्र को तथा इसी प्रकार अनेक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को पैत्रिक अधिकार मिलते है। चूंकि यह आवश्यक नही है कि जो योग्यता एक मनुष्य मे हो वही योग्यता उसके पुत्र या प्रपौत्र मे हो अत प्रबन्ध मे बहुत ही शिथिलता व अयोग्यता रहती है।

(६) अन्तर्विनियोग (Inter-Investment)— प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अपने नियत्रित प्रमण्डलो का विनियोग आपस मे एक दूसरे प्रमण्डल मे कर देते है। इससे आर्थिक दृष्टि से जो प्रमण्डल कमजोर होते हैं उनकी ऐसी कमजोरी दूर हो सकती है। परन्तु यह क्रिया अच्छे प्रमण्डल तथा सामाजिक दृष्टि से हानिकारक है क्योकि जो प्रमण्डल कमजोर है तथा अपनी कार्यक्षमता से अपना अस्तित्व स्थायी नही रख सकते वह समाज के लिए भार स्वरूप है। अत प्रमण्डल अधिनियम १९५६ की धारा ३७२ के अनुसार इस प्रवृत्ति पर नियत्रण लगा दिया गया है।

(७) प्रमण्डलो का शोषण (Exploitation of Companies)—प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अपने व्यवस्थापित प्रमण्डलों का अनेक प्रकार शोषण करते है। प्रमण्डल की आर्थिक दशा की पूर्ण जानकारी उनके इस कार्य मे स्वर्ण मे सुगन्ध का कार्य करती है। वे प्रमण्डल का शोषण अधोलिखित ढङ्ग से करते है —

(क) स्वतन्त्र आर्थिक नीति का अभाव—प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अपने नियन्त्रित प्रमण्डलो पर इतना आर्थिक प्रभुत्व रखते है कि वे प्रमण्डल अपनी स्वतन्त्र आर्थिक नीति को नही अपना सकते है। फलस्वरूप

जो कुछ प्रबन्ध-अभिकर्त्ता लोग कहते हैं वही उनको मानना पडता है चाहे वह उनको हानिकारक ही क्यो न हो। उदाहरणार्थ प्रबन्ध अभिकर्त्ता लाभाश अधिक देर से घोषित इसलिये करना चाहते हैं जिससे —

(अ) उनके मित्र व सम्बन्धियो को लाभ हो सके जो उस कम्पनी की कुछ प्रतिभूति रखते हो।

(ब) वे (प्रबन्ध अभिकर्त्ता) लोग विनियोक्ता वर्ग के समक्ष अधिक कुशल प्रतीत हो, तथा

(स) प्रबन्धित प्रमण्डल उनके ऊपर आर्थिक सहायता के लिए निर्भर रहे।

(ख) अत्यधिक पारिश्रमिक (Excessive Remuneration)—कर जाँच समिति (Taxation Enquiry Committee), जिसने १९४६–५१ काल के सोलह से अधिक प्रमुख उद्योगो की ४७८ कम्पनियो की जाँच की, ने बतलाया है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का औसत पारिश्रमिक लाभ १४ प्रतिशत है। निम्न तालिका १९४६ और १९५१ मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को दिये गये पारिश्रमिक, वितरित लाभाश और सचित लाभ का स्पष्टीकरण करती है —

४७९ कम्पनियो का लाभ और प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का पारिश्रमिक

	(करोड रुपयो मे)	
	१९४६	१९५१
प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का पारिश्रमिक	७·३१	१०·१४
वितरित लाभ (Distributed profits)	१५·५१	२०·६२
अवितरित लाभ (Undistributed profits)	१०·७८	१७·९३
कर (Tax)	२७·८८	२५·२६
योग	६१·४८	७३·९५

इस प्रकार प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को पारिश्रमिक अशधारियो के लाभाश का लगभग आधा प्राप्त हुआ। रिजर्व बैंक आफ इण्डिया के अनुसधान और सास्यिकी (Research and Statistics) विभाग ने भी १९५०–५३ काल के अन्तर्गत ७७१ कम्पनियो की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करके बतलाया है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का पारिश्रमिक इन चार वर्षो मे ४२ करोड रुपय था जो कुल लाभ के लगभग १४ % के बराबर था।

(ग) स्वेच्छाचारी पारिश्रमिक (Arbitrary Remuneration—प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ का पारिश्रमिक न केवल अत्यधिक होता है अपितु अनिश्चित एव स्वेच्छाचारी भी होता है। ये लोग अपने स मासिक या वार्षिक कार्यालय भत्ता (Office Allowance) लेते हैं, यद्यपि कार्यालय के सभी खर्चे प्रमण्डल द्वारा दिए जाते है। यह कार्यालय भत्ता ५००) से ७०००) तक प्रतिमास होता है। परन्तु अब प्रमण्डल अधिनियम १९५६ को धारा ३५३ के अनुसार इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया है।

(घ) क्रय-विक्रय तथा लाभ पर कमीशन (Commission on Purchase, Sales and Profits)—प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अपने पारिश्रमिक के रूप मे न्यूनतम राशि तो लेते ही हैं परन्तु इसके साथ ही साथ क्रय विक्रय तथा लाभ पर भी कमीशन लेते हैं। क्रय विक्रय पर कमीशन प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को प्रमडल की आवश्यकताओ के प्रतिकूल अधिक क्रय व विक्रय के लिये लालायित करता है। इसके अतिरिक्त 'शुद्ध लाभ' की परिभाषा भी नवीन प्रमडल अधिनियम से पूव स्पष्ट नही थी। बम्बई शेयर होल्डर्स एसोसिएशन के अनुसार प्रबध अभिकर्त्ताओ का कमीशन व कार्यालय भत्ता बम्बई की ३९ सूती वस्त्र मिलो म लाभ का ३८.८% और अहमदाबाद की २२ सूती वस्त्र मिलो म ७० ५% है परन्तु नए प्रमडल अधिनियम की ३५६,५८ धाराओ के अनुसार इस प्रकार के कमीशन पर प्रतिबध लगा दिया गया है।

(ङ) अतिरिक्त पुरस्कार (Extra Remuneration)—उपरोक्त पारिश्रमिक के अलावा प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग अतिरिक्त ऋण व अग्रिम राशि पर प्रत्याभूति (Guarantee) देने इत्यादि के लिये अतिरिक्त पुरस्कार भी लेते हैं।

(च) पद समाप्त पर क्षति पूर्ति—प्रबध अभिकर्त्ता लोग एक

और विधि से अपने नियन्त्रित प्रमडलो का शोषण करते हैं। वे लोग अपने और प्रमडल के बीच हुए अनुबधो (Contracts) की समाप्ति पर, अथवा प्रबन्धित कम्पनी के हस्तान्तरित होने पर, तथा राजी से अनुबन्ध की समाप्ति होने पर भी व्यवस्थापित प्रमडल से क्षति पूर्ति (Compensation) ले लेते है। भारतीय प्रमडल अधिनियम १९५६ की धारा ६६ इस दोष को दूर करने के लिये प्रतिबन्ध लगाती है।

(८) पद का हस्तान्तरण (Trafficking or Transfer of office)—प्रबध अभिकर्त्ताओ का खेदपूर्ण दोष यह भी है कि ये लोग अपने पद को दूसरे प्रबध अभिकर्त्ताओ को वस्तु की भाँति बेच देते है तथा अपने कार्यालय को भी किसी अन्य प्रबन्ध अभिकर्त्ता को अधिकाधिक धनराशि लेकर हस्तातरित कर देते है। ये लोग ऐसा करते समय कम्पनी या अशधारियो के हितो का ध्यान बिलकुल नही रखते। यह प्रवृति इतनी अधिक प्रचलित हो गई थी कि २१ जुलाई १९५१ को राष्ट्रपति को एक अध्यादेश (Ordinance) जारी करना पडा जिसके अनुसार इस प्रकार के पदो व कार्यालय का हस्तातरण बिना केन्द्रीय सरकार की अनुमति के वैध नही माना जायगा। भारतीय प्रमडल अधिनियम १९५६ धारा २४३ के अनुसार इस प्रकार का हस्तातरण बिना प्रमडल की सामान्य सभा (General meeting) तथा केन्द्रीय सरकार की अनुमति के नही हो सकता।

प्रबन्ध- अभिकर्त्ताओं पर वैधानिक प्रतिबन्ध

प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ ने अधिकारो व शक्तियो का इतना अधिक दुरुपयोग किया कि सरकार को समय-समय पर उनके ऊपर वैधानिक नियन्त्रण लगाने पडे हैं। १८५३ मे जब भारतीय प्रमडल अधिनियम (Indian Companies Act) स्वीकार किया गया तो उस समय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का कोई अस्तित्व न था। परन्तु तत्पश्चात् इन लोगो ने अपनी शक्तियो का इतना अधिक दुरुपयोग किया कि इनके सम्पूर्ण दोष जनता के सन्मुख आ गये। परिणामत १९३६ में सरकार द्वारा इनको वैधानिक मान्यता दी गई तथा वैधानिक नियन्त्रण भी लगाये गये। सन् १९३६ के अधिनियम मे वैधानिक प्रतिबध इस प्रकार लगाये गये जिससे जनता व अशधारी अधिक सावधान एव सतर्क रह सके। इस अधिनियम मे पृष्ठ २२८ पर लिखित व्यवस्थाएँ उल्लेखनीय हैं—

(१) नियुक्ति व अवधि—प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ की नियुक्ति के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि वह व्यापक सभा मे प्रमडल की अनुमति से होनी चाहिए अन्यथा वह मान्य न होगी। लोक प्रमडलो तथा उनकी सहायक कम्पनियो (Subsidiary Companies) द्वारा किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता को २० वर्ष से अधिक के लिये नियुक्त नही किया जा सकता परन्तु उसकी पुनर्नियुक्ति सम्भव है।

(२) पारिश्रमिक—१५ जनवरी १९३७ के उपरान्त यदि कोई कम्पनी किसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति करती है तो उसका पारिश्रमिक वार्षिक शुद्ध लाभ के निश्चित प्रतिशत के रूप मे होना चाहिये। सम्पूर्ण लाभ, क्रय या विक्रय पर कमीशन नही दिया जा सकता।

(३) अधिकार—सचालकगण प्रबध-अभिकर्त्ताओ को ऋण पत्रो के निर्गमन का अधिकार नही दे सकते तथा कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता सचालको की अनुमति के बिना प्रमडल के धन का विनियोग नही कर सकता।

(४) कार्यालय का हस्तातरण—प्रमण्डल की व्यापक सभा (General meeting) तथा केन्द्रीय सरकार की अनुमति के बिना कोई भी प्रबन्ध-अभिकर्त्ता अपना कार्यालय किसी अन्य व्यक्ति को हस्तातरित नही कर सकता है।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को ऋण देना—कोई भी लोक अथवा उसकी सहायक कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को अथवा यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता सार्थ है, तो उस सार्थ (Firm) के किसी साझेदार को, यदि प्रबन्ध-अभिकर्त्ता एक निजी कम्पनी है तो उस निजी कम्पनी के सचालक को अथवा किसी सदस्य को अपनी धन राशि मे से ऋण नही द सकती।

(६) अन्तर कम्पनी विनियोग—एक ही प्रबन्ध अभिकर्त्ता के द्वारा व्यवस्थापित कम्पनियाँ परस्पर एक दूसरे को ऋण नही दे सकती और न एक दूसरे के अश अथवा ऋण पत्रो को ही क्रय कर सकती है।

(७) विविध—इसी प्रकार कम्पनी के साथ व्यापारिक अनुबध, प्रतिद्वन्दी व्यापार, पारिश्रमिक के हस्तातरण आदि पर नियन्त्रण लगाए गए थे।

सन १९४९ से अधिकोषण सम्बन्धी कम्पनियों के लिए प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति करना अवध घोषित कर दिया गया। इन प्रतिबन्धों के होते हुए भी प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओं ने शोषण का मार्ग निकाल लिया। अत भारत सरकार ने सन १९५१ म एक अध्यादेश Ordinance) जारी किया। इसके अनुसार भारतीय प्रमण्डल अधिनियम १९१३ की धारा ८७ म संशोधन किया गया और यह व्यवस्था की गई कि प्रबन्ध–अभिकर्त्ता द्वारा अपने अधिकारों को सौंपना उस समय तक वध नहीं होगा जब तक कि कम्पनी व केन्द्रीय सरकार उसे स्वीकार न कर ल।

अभाग्यवश १९३६ १९४९ और १९५१ के वैधानिक नियन्त्रण प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओं के दोषों को पूर्णत दूर करने म असफल रहे। फलत भारत सरकार ने १९५१ म प्रमण्डल कानून समिति (Company Law Committee) की नियुक्ति श्री भाभा की अध्यक्षता म की। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट १९५२ म प्रकाशित की जिसके अनुसार एक नया कानून बनाकर १ अप्रैल १९५६ से लागू कर दिया गया।

१९५६ के अधिनियम के द्वारा लगाए गए प्रतिबन्ध

१९५६ के प्रमण्डल अधिनियम म समन्वित नियन्त्रणों के तीन मुख्य उद्देश्य हैं। प्रथम गत बीस वर्षों म प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं म जो दोष आगए हैं उन्हें दूर करना। दूसरे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के अत्याचारों से अंशधारियों तथा साधारण जनता की रक्षा करना तथा तीसरे निजी व्यवसाय को राजनीति (State Policy) के अनुकूल बनाना। य नियन्त्रण अधोलिखित हैं —

(१) प्रवन्ध अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति— प्रबन्ध–अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति पर प्रतिबन्ध धारा ३२४ ३२५ और ३ ५ के द्वारा लगाए गए हैं —

(अ) धारा ३२४ के अनुसार केन्द्रीय सरकार किसी विशेष वर्ग के उद्योगों व व्यवसायों के प्रमण्डलों को सूचित करके रोक लगा सकती है कि निश्चित तिथि के तीन वर्ष बाद अथवा १५ अगस्त १९६० के बाद (जो भी तिथि बाद म हो) व कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता न रख सकें।

(ब) धारा ३२५ के अनुसार कोई भी प्रमण्डल जो कि किसी अन्य प्रमण्डल के प्रबन्ध–अभिकर्त्ता के रूप म काम कर रहा है इस अधिनियम

के लागू होने के उपरान्त अपने लिए प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त नही कर सकता। इसके अतिरिक्त कोई भी प्रमन्डल जिसका स्वयं कोई प्रबन्ध अभिकर्त्ता है किसी दूसरे प्रमन्डल का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त नहीं किया जा सकता।

(स) धारा ३२६ के अनुसार यदि प्रमन्डल पर उपरोक्त धाराएँ लागू नही होती हैं तो उनकी नियुक्ति एव पुर्ननियुक्ति हो सकती है; परन्तु ऐसी नियुक्ति या पुर्ननियुक्ति उसी समय वैध होगी जब वह *सामान्य सभा* (General Meeting) के प्रस्ताव के आधार पर व केन्द्रीय सरकार की अनुमति प्राप्त होने पर की गई हो।

केन्द्रीय सरकार अनुमति उसी समय देगी जबकि :—

(१) ऐसी नियुक्ति या पुर्ननियुक्ति सार्वजनिक हित मे हो ;

(२) प्रस्तावित प्रबन्ध अभिकर्त्ता ऐसी नियुक्ति के लिए योग्य हो तथा उनकी समझौते की शर्ते (Conditions) समुचित व न्यायसगत हो, तथा

(३) ऐसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता ने केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित नियमो की पूर्ति की हो।

(२) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के पद की अवधि (Term of office)—धारा ३२८ के अनुसार इस अधिनियम के लागू होने के उपरान्त कोई भी प्रमन्डल प्रबन्ध अभिकर्त्ता की नियुक्ति अधिकतम् १५ वर्ष की अवधि व पुर्ननियुक्ति अधिकतम १० वर्ष की अवधि के लिए कर सकता है। परन्तु पुर्ननियुक्ति उसी समय हो सकती है जबकि वर्तमान अवधि की समाप्ति मे केवल दो वर्ष शेष हों। हाँ यदि केन्द्रीय सरकार उचित समझे तो इसके पूर्व भी पुर्ननियुक्ति की आज्ञा दे सकती है।

धारा ३३० के अनुसार वर्तमान प्रबन्ध अभिकर्त्ता समझौते १५ अगस्त सन् १९६० को समाप्त हो जावेंगे। परन्तु इस अधिनियम के किसी नियम के अनुसार यदि उनकी पुर्ननियुक्ति कर दी जाती है तो वह समझौता इस उक्त तिथि को समाप्त न होगा।

(३) प्रबन्ध अभिकर्त्ता समझौते में परिवर्तन—धारा ३२९ के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता समझौते की शर्तो मे परिवर्तन उसी समय हो

सकता है जब उसके बारे में प्रमन्डल की सामान्य सभा मे प्रस्ताव स्वीकार हो गया हो तथा केन्द्रीय सरकार की पूर्व अनुमति प्राप्त हो गई हो।

(४) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा प्रबन्धित प्रमन्डलों की संख्या पर नियंत्रण—धारा ३३२ के अनुसार १५ अगस्त १९६० के बाद कोई भी प्रबन्ध अभिकर्ता दस कम्पनियो से अधिक का प्रबन्ध अभिकर्त्ता नही हो सकता। प्रबन्धित कम्पनियों की सख्या की गणना करते समय निजी कम्पनी जो किसी पब्लिक कम्पनी को न तो सहायक कम्पनी और न होल्डिग कम्पनी है, असीमित कम्पनी तथा ऐसी कम्पनी जिसका उद्देश्य लाभोपार्जन नही है, सम्मिलित नही किया जायगा।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का पारिश्रमिक तथा पुरस्कार—धारा ३४८ के अनुसार पब्लिक कम्पनी अथवा निजी कम्पनी जो किसी पब्लिक कम्पनी की सहायक कम्पनी है, अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को किसी वर्ष मे शुद्ध लाभ के १० % से अधिक पुरुस्कार के रूप मे नही दे सकती। यदि किसी वर्ष लाभ न हुए हों अथवा अपर्याप्त हुए हो तो धारा (४) के अनुसार न्यूनतम पुरुस्कार ५०,०००) निश्चित किया जा सकता है। यह राशि केन्द्रीय सरकार की अनुमति से बढायी भी जा सकती है।

धारा ३५२ के अनुसार १० % से अधिक पुरुस्कार उसी अवस्था मे दिया जा सकता है जबकि विशेष प्रस्ताव द्वारा कम्पनी ने स्वीकार कर लिया हो तथा केन्द्रीय सरकार से अनुमति भी प्राप्त कर ली गई हो।

इस सम्बन्ध म इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि कम्पनी द्वारा उन सचलकों, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ, सेक्रेट्रियो (Secretaries) तथा कोषाध्यक्षों (Treasurers) को दिया हुआ पारिश्रमिक या पुरस्कार कम्पनी के शुद्ध लाभ के ११ % से अधिक नही होगा।

धारा ३५४ के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को कार्यालय भत्ता (Office Allowance) नही दिया जायगा। हां यदि उसने कम्पनी के लिए वास्तव में कोई खर्चा किया है और सचालक सभा अथवा कम्पनी ने सामान्य सभा (General Meeting) मे स्वीकार कर लिया है, तो ऐसे खर्चे उसे मिल सकेंगे।

अभी हाल ही मे ३० सितम्बर १९५९ को भारतीय गणतन्त्र राष्ट्र के

हमारे व्यापार एव उद्योग मन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के कमीशन के सम्बन्ध मे Slab System का आयोजन किया है। इस नए आयोजन के अनुसार प्रमन्डल के लाभ मे बढोत्तरी के साथ-साथ प्रबन्ध-अभिकर्त्ता की कमीशन दर घटती जायगी।

दस लाख रुपये वार्षिक लाभ होने की दशा मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता को अधिकतम् १० % की दर से कमीशन दिया जा सकता है। एक करोड या इससे अधिक वार्षिक लाभ की दशा मे कमीशन की दर ४ % होगी।

(६) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा पद हस्तातरण (Transfer of office)—धारा ३४३ के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने पद का हस्तातरण बिना कम्पनी की सामान्य सभा तथा केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के नही कर सकता है।

(७) पद का उत्तराधिकार—धारा ३३४ के अनुसार इस अधिनियम के लागू होने के उपरान्त प्रबन्ध अभिकर्त्ता का पद उत्तराधिकार द्वारा हस्तान्तरित नही किया जा सकता।

धारा ३३६ के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता को प्रबन्धित कम्पनी के हस्तान्तरित होने पर अथवा कम्पनी और प्रबन्ध अभिकर्त्ता के बीच हुए अनुबन्धों की समाप्ति पर क्षतिपूर्ति (Compensation) एक निश्चित राशि से अधिक नही दी जायगी। क्षतिपूर्ति की राशि या तो प्रबन्ध अभिकर्त्ता के शेष समय के पुरस्कार (जो उसे मिला होता यदि वह अपनी अनुबन्धित अवधि से पूर्व हटाया न गया होता) अथवा तीन वर्ष का पुरस्कार जो भी कम हो दिया जावेगा।

(८) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के अधिकारो पर प्रतिबन्ध—धारा ३६८ के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता चाहे उसकी नियुक्ति इस अधिनियम के पूर्व अथवा बाद मे हुई हो अपने अधिकारो का प्रयोग प्रबन्धित कम्पनी की सचालक सभा के निरीक्षण नियन्त्रण तथा निदेशो के अनुसार तथा कम्पनी के पार्षद-सीमा नियम (Memorandum of Association) तथा अन्तर्नियम के आधार पर ही कर सकेंगे।

इस अधिनियम की सातवी सूची (Schedule VII of the Act) के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता को निम्न कार्य करने के लिए प्रबन्धित कम्पनी की

सचालक सभा की पूर्व अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है —

(अ) किसी व्यक्ति को कम्पनी का प्रबन्धक (Manager) नियुक्त करना।

(ब) किसी व्यक्ति को, जो उसका अथवा उसके साथी का सम्बन्धी है, कम्पनी म उच्चपदाधिकारी (Officer) या स्टाफ मेम्बर के पद पर सचालक सभा द्वारा निर्धारित वेतन से अधिक वेतन पर नियुक्त करना।

(स) सचालक सभा द्वारा निर्धारित समय से अधिक धन की पूँजीगत सम्पत्ति का क्रय करना अथवा विक्रय करना।

(द) यदि प्रबन्धित कम्पनी का कोई स्वत्व (Claim) प्रबन्ध अभिकर्त्ता या उसके साथी के पास है तो उसकी भुगतान की अवधि को बढाना।

(य) यदि प्रबन्धित कम्पनी के विरुद्ध प्रबन्ध अभिकर्त्ता अथवा उसके साथी का कोई हिसाब या अधिकार है तो तत्–सम्बन्धी सम–झौता करना।

(९) प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ऋण देना—धारा ३६९ के अनुसार पब्लिक लिमिटेड कम्पनी या उसकी सहायक कम्पनी अपने प्रबन्ध अभिकर्त्ता को ऋण नही दे सकती है। हाँ आवश्यकतानुसार सचालकों की अनुमति से प्रबन्ध–अभिकर्त्ता के नाम मे चालू खाता (Current Account) कम्पनी के व्यवसाय के सम्बन्ध मे खोला जा सकता है। अधिकतम राशि २०,०००) तक को हो सकती है।

(१०) अन्य प्रबन्धित कम्पनियो को ऋण देना—धारा ३७० के अनुसार, यदि उधार देने वाली (Lending) और उधार लेन वाली (Borrowing) दोनों कम्पनियाँ एक ही प्रबन्ध–अभिकर्त्ता द्वारा प्रबन्धित हैं तो उधार देने वाली कम्पनी उसी समय उधार दे सकती है जब उसके अंश-धारियो ने विशेष प्रस्ताव द्वारा स्वीकृति दे दी हो।

यह प्रतिबन्ध निम्न दशाओं मे नहीं लगता है —

(अ) यदि होल्डिंग कम्पनी द्वारा अपनी सहायक (Subsidiary) कम्पनी को ऋण दिया गया हो, तथा

(ब) यदि प्रबन्ध-अभिकर्त्ता ने अपने स्रोत से अपनी किसी प्रबन्धित कम्पनी को ऋण दिया हो।

(११) अन्तर्विनियोग पर प्रतिबन्ध—धारा ३७२ के अनुसार *कोई भी कम्पनी एक ही प्रबन्ध-अभिकर्त्ता के अन्तर्गत प्रबन्धित कम्पनियों के* अंश अथवा ऋण पत्र अपनी प्रार्थित पूंजी (Subscribed Capital) के १० % तक क्रय कर सकती है। परन्तु किसी भी दशा मे एक ही समूह मे ऐसे विनियोग किए जाने वाले प्रमण्डल की प्रार्थित पूंजी के २० % से अधिक नही होना चाहिए। यदि इन सीमाओ से अधिक विनियोग करना हो तो विनियोक्ता कम्पनी की सामान्य सभा मे ऐसा प्रस्ताव पास होना चाहिए तथा केन्द्रीय सरकार से अनुमति भी प्राप्त होनी चाहिए।

यह प्रतिबन्ध किसी बैंकिंग कम्पनी, बीमा कम्पनी तथा निजी कम्पनी, जो किसी पब्लिक कम्पनी की सहायक कम्पनी नही है, पर लागू नही होता है।

(१२) प्रबन्ध अभिकर्त्ता द्वारा कम्पनी से प्रतियोगी व्यवसाय—धारा ३७५ के अनुसार कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनी के विशेष प्रस्ताव की आज्ञा बिना प्रबन्धित कम्पनी के समान अथवा उससे प्रतियोगी व्यापार नही कर सकता। निम्न दशाओ मे प्रबन्ध अभिकर्त्ता अपने नाम से व्यवसाय करता हुआ माना जावेगा —

(अ) कोई साझेदारी (Firm) है जिसमे वह साझेदार हो।

(ब) कोई निजी कम्पनी है, जिसमे वह २० % अथवा अधिक अंशों पर मताधिकार रखता हो।

(स) कोई कम्पनी है, जिसमे वह ७० % अथवा अधिक अंशों पर मताधिकार रखता हो।

(१३) कम्पनी के पुनर्संगठन एवं एकीकरण पर समझौते—धारा ३७६ के अनुसार यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता और प्रबन्धित कम्पनी के बीच ऐसा कोई समझौता है जिससे कम्पनी के पुनर्संगठन अथवा एकीकरण मे बाधा पड़ती हो अथवा उसमे ऐसी कोई शर्त हो जिससे पुनर्निर्मित कम्पनी को उसी प्रबन्ध अभिकर्त्ता अथवा सेक्रेटरी, कोषाध्यक्ष तथा व्यवस्थापक की *नियुक्ति उसी पद पर करना अनिवार्य हो, अवैध होगा।*

(१४) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा संचालकों की नियुक्ति—धारा ३७७ के अनुसार प्रबन्ध-अभिकर्त्ता लोग सचालक सभा मे केवल एक संचालक को नियुक्ति कर सकते है, यदि सचालको की कुल सख्या पाँच से अधिक है तो उस अवस्था मे वे दो सचालक नियुक्त कर सकते है।

(१५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ को क्रय कमीशन देना—धारा ३५८ के अनुसार, यदि कम्पनी के लिए माल का क्रय देश के अन्दर किया गया हो तो कम्पनी के प्रबन्ध-अभिकर्त्ता अथवा उसके साथी को उस पर कमीशन नहीं मिलेगा। परन्तु यदि वास्तव मे माल के क्रयार्थ कोई व्यय हुआ है तो उसे प्रबन्ध अभिकर्त्ता को लेने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त यदि माल भारत के बाहर क्रय किया गया हो तो निम्न शर्तों के आधार पर कमीशन मिल सकेगा :—

(क) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता या उसका सहयोगी विदेश मे कार्यालय रखता हो।

(ख) भुगतान विशेष प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया गया हो जिसमे प्रबन्ध अभिकर्त्ता द्वारा रखे गए कार्यालय की प्रकृति, कार्य क्षेत्र, व्यय तथा कार्य का अनुपात इत्यादि बातो का समावेश होना चाहिए।

(ग) विशेष प्रस्ताव तीन वर्ष से अधिक अवधि के लिए न होना चाहिए।

(घ) प्रत्येक प्रस्ताव पृथक रजिस्टर मे लिखा जाना चाहिए।

(१६) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को विक्रय कमीशन देना—धारा ३५६ के अनुसार कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता अथवा उसके सहयोगी को कम्पनी की उत्पादित वस्तुओ की बिक्री पर कमीशन नहीं दिया जावेगा, यदि वस्तुओ का विक्रय देश के अन्दर हुआ है। हाँ इस सम्बन्ध मे वास्तविक व्यय अवश्य दिए जावेंगे। यदि वस्तुएँ देश के बाहर बेची गई है तो निम्न शर्तों के आधार पर कमीशन दिया जा सकेगा :—

(क) यदि विदेश मे जहाँ वस्तुओ का विक्रय किया गया है, उसका कार्यालय हो।

(ख) इस बिक्री के लिए कमीशन विशेष प्रस्ताव द्वारा स्वीकार किया गया हो।

(ग) इस कार्य के लिए अन्य रूप से खर्चा न मिलता हो।

(घ) प्रवन्ध अभिकर्त्ता या उसके सहयोगी की नियुक्ति इस पद (विक्रय अभिकर्त्ता) पर पाँच वर्ष से अधिक समय के लिए न होगी।

(ङ) प्रस्ताव मे नियुक्ति की शर्तों का समावेश होना चाहिए।

(च) नियुक्ति की शर्तें एक पृथक रजिस्टर मे होनी चाहिए।

(१७) कम्पनी और प्रवन्ध अभिकर्त्ता के बीच समझौते—धारा ३६० के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता अथवा उसके सहयोगी तथा प्रबन्धित कम्पनी के मध्य क्रय-विक्रय सम्पत्ति की पूर्ति, अश व ऋण पत्रो के अभिगोपन तथा सेवा करने के बारे मे अनुबन्ध हो सकता है।

परन्तु इस दिशा मे अनुबन्ध के वैध होने के लिए कम्पनी के विशेष प्रस्ताव के आधार पर स्वीकृति आवश्यक है।

(१८) प्रवन्ध अभिकर्त्ता का निष्कासन—प्रबन्ध अभिकर्त्ता को उसके पद से निम्न दशाओ मे हटाया जा सकता है —

[अ] **धारा ३३७** के अन्तर्गत साधारण प्रस्ताव द्वारा कपट या विश्वास-भग होने पर, तथा

[ब] **धारा ३३८** के अन्तर्गत कम्पनी साधारण सभा मे विशेष प्रस्ताव द्वारा अति लापरवाही अथवा अति दोषपूर्ण व्यवस्था होने पर।

(१९) सेक्रेटरी तथा कोषाध्यक्ष की नियुक्ति—कम्पनी के प्रबन्ध मे और अधिक सुधार एव सुचारुता लाने के विचार से इस अधिनियम की धारा २ (४) के अनुसार सेक्रेटरी व कोषाध्यक्ष को नियुक्ति का आयोजन किया गया है। ये लोग सचालक सभा के अधीन कार्य करेंगे और प्रबन्ध मे भाग ले सकेंगे। परन्तु इन्हे सचालको को नियुक्त करने का अधिकार नहीं है तथा कम्पनी से कोई समझौता भी नही कर सकते। इनका वेतन या पारिश्रमिक कम्पनी के शुद्ध लाभ के ७॥ % तक हो सकता है।

कम्पनी अधिनियम संशोधन समिति (१९५७)

कम्पनी अधिनियम १९५५ की आलोचनाएँ व्यापारीगण, कम्पनी प्रबन्धक वर्ग तथा अशधारियो सभी के द्वारा की गई हैं। इन आलोचनाओ के सत्यापन

के लिए भारतीय सरकार ने मई १९५७ में श्री ए० वी० विश्वनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में एक एड्हाक समिति की स्थापना की। शास्त्री समिति ने अपनी रिपोर्ट नवम्बर १९५७ मे प्रेषित की। समिति ने वर्तमान कम्पनी अधिनियम मे कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन करने का सुझाव नही दिया। हाँ उसने कम्पनी अधिनियम को अधिक सुविधापूर्वक लागू होने के लिए तथा इस काल मे अनुभव की गई कठिनाइयो को दूर करने के लिए कुछ सुझाव दिए। समिति ने यह भी इगित किया कि सरकार ने अभी तक प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के भविष्य के सम्बन्ध मे कोई निश्चित नीति नहीं बनाई है, अत अब आवश्यक है कि सरकार शीघ्र ही इस सम्बन्ध मे एक निश्चित नीति बना ले जिससे धारा ३२४ के अन्तर्गत १५ अगस्त १९६० तक कोई स्पष्ट लाभ उठाया जा सके।

दिसम्बर १९५८ मे लोक सभा मे कुछ सदस्यो ने इस प्रश्न को फिर उठाया और बहुत से सदस्यो ने 'डिपार्टमेंट आफ कम्पनी ला एडमिनिस्ट्रेशन' बनाने का सुझाव दिया, जिससे सार्वजनिक सीमित (Public Ltd) कम्पनियो की क्रियाओं पर कडी निगाह रखी जा सके। सदस्यो का विचार था कि नवीन कम्पनी अधिनियम से कम्पनियो के प्रबन्ध मे कोई महत्वपूर्व सुधार नही हुआ है। फलस्वरूप वाणिज्य एव उद्योग मन्त्री ने शीघ्र ही कम्पनी अधिनियम को सशोधित करने का वादा किया।

भारतीय कम्पनी सशोधन बिल १९५९
(Indian Companies' Amendment Bill 1959)

फलस्वरूप १ मई १९५९ को लोक सभा मे 'भारतीय कम्पनी सशोधन बिल' पेश किया गया। यह बिल 'ज्वाइन्ट सेलेक्ट कमेटी' को विचार करने के लिए हस्तातरित कर दिया गया। इस 'कमेटी' मे ४५ सदस्य–३० लोक सभा से और १५ राज्य सभा से—थे। यह बिल नि सन्देह 'शास्त्री समिति' के सुझावो के अनुसार पास कर दिया गया है, परन्तु शास्त्री समिति के कुछ सुझावों को या तो बिल्कुल छोड दिया गया है अथवा उनमें कुछ सशोधन कर दिया गया है।

इस नवीन सशोधन का उद्देश्य पिछले वर्षो मे अनुभव की गई कठिनाइयो एव दोषो को दूर करने का है। दो महत्वपूर्ण परिवर्तन प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की नियुक्ति एव उनके पुरस्कार (Remuneration) के सम्बन्ध मे हैं।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की नियुक्ति—कम्पनी अधिनियम १९५६ की धारा ३२६ के अनुसार कम्पनियो को प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति के

सम्बन्ध मे केन्द्रीय सरकार की अनुमति लेना आवश्यक है। १९५९ मे इसमे और सशोधन कर दिया गया है। कम्पनियाँ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की नियुक्ति के सम्बन्ध मे जो भी आवेदन पत्र भेजे वे नवीन सशोधित फार्म पर भेजी जावें। इस सशोधित फार्म मे प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के सम्बन्ध मे अधिक सूचना देनी होती है। यही नही कम्पनियो के लिए यह भी आवश्यक कर दिया गया है कि वे समाचार पत्रो मे इनकी नियुक्ति के सम्बन्ध मे विज्ञापन करावें और इन विज्ञापनो की प्रतियाँ अन्य आवश्यक सूचनाओ (Particulars) सहित केन्द्रीय सरकार को भेजें। कम्पनियो को प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ के आवेदन पत्रो की सात प्रतियाँ (Copies) भी सरकार को भेजना आवश्यक कर दिया गया है।

प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ के पद की अवधि से सम्बन्धित धारा ३२८ मे भी सशोधन किये है। इस सशोधन के अनुसार प्रबन्ध-कर्त्ताओं अथवा सचिवो तथा कोपाध्यक्षो (Treasurers) की नियुक्ति अधिकतम् १० वर्ष के लिए तथा पुर्ननियुक्ति ५ वर्ष के लिए हो सकती है।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं का पुरुस्कार—१९५६ के कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनी अपने प्रबन्ध-अभिकर्त्ता को किसी वर्ष मे शुद्ध लाभ के १० % से अधिक पुरुस्कार के रूप मे नही दे सकती। १९५९ के सशोधन के अनुसार प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओ तथा सचिवो एव कोपाध्यक्षो को पुरस्कार इस प्रकार दिया जावेगा—*

	प्रबन्ध अभिकर्त्ता	सचिव तथा कोपाध्यक्ष
प्रथम १० लाख रुपये के लाभ पर	10 %	$7\frac{1}{2}$ %
अगले ,, ,, ,,	9 %	$6\frac{3}{4}$ %
,, ,, ,, ,,	8 %	6 %
,, ,, ,, ,,	7 %	$5\frac{1}{4}$ %
,, ,, ,, ,,	6 %	$4\frac{1}{2}$ %
,, २५ लाख ,, ,,	$5\frac{1}{2}$ %	$4\frac{1}{8}$ %
,, ,, ,, ,,	5 %	$3\frac{3}{4}$ %
१ करोड रुपये से ऊपर लाभ पर	4 %	3 %

* National Herald, October 25, '59.

प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली का भविष्य

प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली के भविष्य एव अस्तित्व के सम्बन्ध मे कोई निश्चित धारणा नही बनाई जा सकती है। जब से इसने भारतीय औद्योगिक सगठन मे अपना अस्तित्व सुदृढ किया तभी से "मुन्डे-मुन्डे मतिर्भिन्ना" नामक अकाट्य सिद्धान्त के आधार पर इस सम्बन्ध मे भिन्न-भिन्न मत प्रकट किए गए है। अनेक कमीशनो तथा फिसकल कमीशन, आयकर जाँच आयोग तथा योजना आयोग समितियो जैसे भारतीय केन्द्रीय जाच समिति, कम्पनी कानून समिति ने इस समस्या की ओर इगित किया है। कुछ लोग इस प्रणाली को जड से समाप्त कर देने के पक्ष मे है परन्तु अन्य लोग इस विचार से सहमत नही है—पार्लियामेट मे इस सबध मे काफी जोरदार बहस गत वर्षो मे होती चली आ रही है।

कम्पनी कानून समिति (Company Law Committee)–का विचार था कि 'तमाम दोषो और खराबियो के बावजूद जिन्होने इस प्रणाली को विकृत कर दिया है, देश के वर्तमान औद्योगिक सगठन के लिए इस प्रणाली के ऊपर निर्भर रहना लाभकारी सिद्ध होगा।" भूतपूव केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री सी० डी० दशमुख ने भी ऐसा ही विचार प्रकट किया था। उनके अनुसार 'प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली को अभी समाप्त करने का समय नही आया है। 'यदि हम प्रबन्ध अधिकर्त्ता प्रणाली का समाप्त कर देना चाहते हैं तो देश के औद्योगिक सगठन को बहुत क्षति पहुँचेगी।" भूतपूर्व केन्द्रीय वित्त मन्त्री श्री टी० टी० कृष्णमचारी ने भी प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली के महत्व पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'यदि प्रबन्ध-अभिकर्त्ता के विरुद्ध लगाए गए आरोपो को किसी सीमा तक सत्य मान भी लिया जाय, तब भी उसका अस्तित्व पूर्णतया समाप्त नही हो जाता है और मेरे विचार से उसका अस्तित्व ऐसी वस्तु है जिसे हम जान सकते है तथा उस पर गर्व कर सकते है। बहुत बडी सीमा तक औद्योगिक सस्थाओ के बहुत से प्रबन्धको ने इस खेल को खेला है, पूँजी को आकर्पित किया है, अशधारियो को उचित लाभ पहुँचाया है, जनता मे विश्वास उत्पन्न करके बचत (Savings) और विनियोगो को प्रोत्साहित किया है। अत मै दृढता के साथ कहता हूँ कि जब तक हम अन्य स्थानापन्न (Substitutes) प्राप्त न कर लें, हमको इन दोषो के साथ चलाना और निभाना है।"

उक्त दृष्टिकोण को सामने रखते हुए १९५६ के प्रमण्डल अधिनियम तथा १९५९ के संशोधन बिल मे प्रबन्ध-अभिकर्त्ता प्रणाली को पूर्णतया समाप्त नही किया गया है अपितु उनके दोषो को समाप्त करने के लिए अधिकाधिक वैधानिक नियन्त्रण को उनके प्रत्येक अनैतिक आचरणो पर लगा दिया गया है। सरकार ने इस प्रकार का कदम उठाकर वास्तव मे अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दिया है जिसके परिणाम-स्वरूप औद्योगिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण उत्पन्न हो गया है।

———

अध्याय ९

राज्य तथा अर्थ प्रबन्धन

(The State and the Industrial Finance)

जर्मनी, जापान, अमेरिका तथा यूरोप मे सरकार ने औद्योगिक वित्त प्रदान करने मे महत्वपूर्ण कार्य किया है। भारतवर्ष मे सरकार ने औद्योगिक इकाइयो की किसी प्रकार भी सहायता न की क्योकि 'स्वतन्त्र व्यापारिक नीति' (Laissezfaire) को भली-भाति अपनाया जा रहा था। इसका मुख्य कारण इग्लैड की स्वार्थपूर्ण नीति थी। इग्लैड न सदैव से यही प्रयत्न किया है कि भारत केवल कच्चे माल का निर्यातकर्त्ता तथा निर्मित माल के आयात-कर्त्ता के रूप म रहे जिससे इग्लैड के कारखानो को कच्चा माल प्राप्त होता रहे और उसके द्वारा निर्मित माल की खपत होती रह। भारत की औद्योगिक नीति भी ऐसी बनाई गई थी जिससे अँग्रेजी उद्योग-धन्धो की ही उन्नति हो। इस प्रकार अन्य देश अपने उद्योग-धन्धो की उन्नति करते रहे और भारतीय सरकार सन् १९१४ तक कोई कदम न उठा सकी।

१९१४ मे विश्वयुद्ध आरम्भ हो जाने के कारण सरकार को अपनी नीति मे कुछ परिवर्तन करना पडा। १९१६ के औद्योगिक कमीशन ने सुझाव दिया कि सरकार को औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन मे एक निश्चित भाग लेना चाहिए। औद्योगिक कमीशन के सुझाव को प्रान्तीय सरकारो ने स्वीकार करते हुए कुछ अधिनियम बनाए। सर्वप्रथम १९२२ मे मद्रास सरकार ने अधिनियम बनाया ओर तत्पश्चात् बम्बई, बिहार, उडीसा तथा उत्तर प्रदेश की सरकारो ने भी अधिनियम बनाए। इन अधिनियमो के अनुसार औद्योगिक व्यवसायो को पर्याप्त आर्थिक सहायता दी गई परन्तु फल सन्तोषजनक न रहे।

१९२९ मे नियुक्त केन्द्रीय बैंकिंग जाँच समिति ने प्रान्तीय औद्योगिक निगम (Provincial Industrial Corporations) उद्योगो को आर्थिक सहा-यता देने के हेतु स्थापित करने की सिफारिश की। परन्तु अभाग्यवश भारतीय सरकार ने द्वितीय महायुद्ध तक कोई कदम न उठाया।

द्वितीय महायुद्धोपरान्त औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन की समस्या अधोलिखित कारणो से और अधिक महत्वपूर्ण एव गम्भीर हो गई :—

(१) युद्धकालीन उद्योगो का शान्तिकालीन दशा मे परिवर्तन,
(२) उद्योगो मे नियोजित मशीनरी तथा प्लाट का नवीनीकरण,
(३) वर्तमान औद्योगिक इकाइयो का विस्तार एव अभिनवीकरण, तथा
(४) योजनात्मक ढग से नवीन औद्योगिक इकाइयो की स्थापना।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने औ०अ०प्र०की ओर काफी ध्यान दिया और उस समय से अब तक उद्योग-धधो को सहायता देने के लिए अधोलिखित सस्थाएँ स्थापित हो चुकी है —

(१) औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation)
(२) राज्य वित्त निगम (State Financial Corporation)
(३) औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (Industrial Credit & Investment Corporation Private Ltd.)
(४) राष्ट्रीय उद्योग विकास निगम (National Industrial Development Corporation Private Ltd.)
(५) राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम (National Small Industries Corporation Private Ltd.)
(६) अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम(International Finance Corporation)
(७) पुन अर्थ-प्रबन्धन निगम (Refinance Corporation)

इन सब निगमो का सविस्तार अध्ययन अगले पृष्ठो मे किया गया है।

(१) औद्योगिक वित्त निगम
(Industrial Finance Corporation of India)

भारतीय औद्योगिक सार्थो (Concerns) को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन साख सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना १ जुलाई १९४८ को की गई। इसका समावेश Industrial Finance Corporation Act 1948 (XV of 1948) मे है।

निगम की स्थापना की पृष्ठभूमि

सन् १९४५ मे भारतीय सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के लेख मे यह इङ्गित किया था कि औद्योगिक विनियोग निगम (Industrial Investment

Corporation) की स्थापना के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। बाद में इस पर विचार-विमर्श हेतु वित्त मन्त्रालय ने रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया से परामर्श माँगा। रिज़र्व बैंक आफ इण्डिया ने एक विधेयक बनाया। जिसमे औद्योगिक इकाइयो को मध्यकालीन तथा दीर्घकालीन साख सुविधायें प्रदान करने के लिए औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation) की स्थापना के लिए सुझाव दिया। यह बिल सर्व प्रथम विधान सभा मे १९४६ के बजट अधिवेशन मे सर आरचीबेल्ड रालैंड्स (Sir Archibald Rowlands) के द्वारा प्रस्तुत किया जाने वाला था, परन्तु अन्य विधान सम्बन्धी कार्यो की अधिकता के कारण यह सम्भव न हो सका। बाद मे श्री आर० के० सन्मुखम चेट्टी ने कुछ सशोधन करके इसको प्रस्तुत किया। परिणामत २७ मार्च १९४८ को गवर्नर जनरल की सम्मति भी प्राप्त हो गई और यह अधिनियम (Act) के रूप मे १ जुलाई सन् १९४८ से औद्योगिक ससार के अन्दर चलन मे आ गया।

निगम के आर्थिक साधन

(अ) पूंजी—औद्योगिक वित्त निगम की स्थापना १० करोड रुपये की अधिकृत पूंजी से की गई जो कि ५ हजार रुपये के २० हजार अशो मे विभाजित है। इस समय ५ करोड रुपये के मूल्य के केवल १० हजार अशो का निर्गमन किया गया है और शेष अशो का निर्गमन समय-समय पर केन्द्रीय सरकार द्वारा किया जायगा। अशो की मूल राशि तथा २॥ % लाभाश की गारन्टी केन्द्रीय सरकार ने दी है।

निर्गमित अशो का क्रय केन्द्रीय सरकार, रिज़र्व बैंक, अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनियाँ, विनियोग करने वाले ट्रस्टो तथा इसी प्रकार की अन्य सस्थाओ एव सहकारी बैंको द्वारा किया गया है। प्रारम्भ मे इन सस्थाओ को एक निश्चित अनुपात मे अशो का आबन्टन (Allotment) किया गया था, परन्तु कालान्तर मे इस आबन्टित सख्या मे कुछ परिवर्तन हो गया है। इसका स्पष्टीकरण निम्न तालिका के आधार पर किया जा सकता है :—

३० जून १९५६ की स्थिति का व्यौरा

क्रमांक	संस्थाएँ	पूर्व निर्धारित अंशो की संख्या	क्रय किये गये अंशो की संख्या	धन राशि (रुपये)
१	केन्द्रीय सरकार	२,०००	२,०००	१,००,००,०००
२	रिजर्व बैंक आफ इण्डिया	२,०००	२,०५४	१,०२,७०,०००
३	अनुसूचित बैंक	२,५००	२,४०५	१,२०,२५,०००
४	बीमा कम्पनीज़, विनियोग ट्रस्ट तथा अन्य वित्त संस्थाएँ	२,५००	२,५९८	१,२९,९०,०००
५	सहकारी संस्थाएँ	१,०००	९४३	४७,१५,०००
	योग	१०,०००	१०,०००	५,००,००,०००

निगम के अंशो के पुनर्भुगतान की तथा २। % वार्षिक लाभांश की गारन्टी केन्द्रीय सरकार के द्वारा दी गई है। अधिकतम लाभांश देने की दर ५ % निर्धारित की गई है, परन्तु इस दर से लाभांश उसी अवस्था मे दिया जा सकता है जबकि कारपोरेशन का संचित कोष (Reserve Fund) चुकता पूँजी के बराबर हो गया हो और केन्द्रीय सरकार द्वारा गारण्टी के अन्तर्गत दी गई धन राशि चुका दी गई हो। कालान्तर मे जबकि संचित कोष चुकता पूँजी के बराबर हो जाय, और ५ % लाभांश देने के पश्चात् भी यदि कुछ अतिरेक बचता है तो वह केन्द्रीय सरकार को दे दिया जायगा।

(ब) ऋण–पत्र पूँजी (Debenture Capital)—कारपोरेशन ऋण–पत्रो का निर्गमन करके तथा बन्धो (Bonds) का विक्रय करके कार्यशील पूँजी प्राप्त कर सकता है परन्तु ऋण–पत्रो, बन्धो (Bonds) तथा अन्य इसी प्रकार से प्राप्त की हुई पूँजी, कारपोरेशन की चुकता पूँजी तथा संचित कोष (Reserve Fund) के पाँच गुने से अधिक नही होनी चाहिये।

(स) रिजर्व बैंक से ऋण—धारा २१ (३) (अ) के अन्तर्गत कारपोरेशन केन्द्रीय राज्य सरकार की प्रतिभूतियो के विरुद्ध रिजर्व बैंक से ९० दिन की अवधि के लिए धन उधार ले सकती है। धारा २१ (३) (ब) के अन्तर्गत कारपोरेशन अपने ऋण पत्रो का प्रतिभूति के आधार पर अधिक

से अधिक ३ करोड़ रुपये का धन १८ माह की अवधि के लिए उधार ले सकता है।

(द) जमा (Deposits)—कारपोरेशन जनता से कम से कम ५ वर्ष के लिए तथा अधिक से अधिक १० करोड़ रुपये की धनराशि तक जमा (Deposits) स्वीकार कर सकता है।

(य) विदेशी मुद्रा में ऋण—१९६० के संशोधित अधिनियम (Amendment Act) के अनुसार कारपोरेशन विश्व बैंक (I B R D) से विदेशी मुद्रा में ऋण ले सकता है और भारतीय सरकार ऐसे ऋणों पर गारण्टी देगी। १९५२ में विश्व बैंक से ८ मि० डालर के ऋण लेने का प्रस्ताव रक्खा गया था, परन्तु इसे बाद में वापस ले लिया गया।

(र) केन्द्रीय सरकार से ऋण—१९५२ के संशोधित अधिनियम की धारा २१ (४) के अनुसार निगम केन्द्रीय सरकार से ऋण लेने का अधिकारी है। १९५६ तक कारपोरेशन ने इस प्रकार का कोई भी ऋण नहीं लिया है। परन्तु केन्द्रीय सरकार ने द्वितीय योजना काल में निगम को २५ करोड़ रुपये का ऋण देने की व्यवस्था की है।

कारपोरेशन की आर्थिक स्थिति को और सुदृढ़ करने के लिए एक विशेष संचय-कोष स्थापित किया गया है। इस कोष में केन्द्रीय सरकार, तथा रिजर्व बैंक के अंशों पर प्राप्त होने वाले सम्पूर्ण लाभांश उस समय तक जमा किये जायेंगे जब तक कि इसकी राशि ५० लाख रुपये न हो जाय।

कारपोरेशन का प्रबन्ध

औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम संशोधित अधिनियम (I F C Amendment Act) १९५५ के अन्तर्गत १८ दिसम्बर १९५५ से निगम के प्रबन्ध में महत्वपूर्ण परिवर्तन किए गए हैं। इस तिथि से पूर्व अधिनियम की धारा १० के अनुसार निगम का प्रबन्ध एक संचालक समिति (Board of Directors) द्वारा होता था जिसकी सहायता के लिए एक कार्यकारिणी समिति (Executive Committee) भी थी। इसके अतिरिक्त एक प्रबन्ध संचालक भी होता था जिसे निगम की ओर से प्रबन्ध सम्बन्धी पूर्ण अधिकार तथा शक्तियाँ प्राप्त होता था।

अब औद्योगिक अर्थ निगम (I. F. C) का प्रबन्ध एक पूर्णकालीन वृति

पाने वाले (Full Time Stipendiary) चेयरमैन के द्वारा होता है जिसकी सहायता के लिए एक 'जनरल मैनेजर' भी होता है। नवीन चेयरमैन तथा 'जनरल मैनेजर' की नियुक्ति 'आनरेरी चेयरमैन' तथा प्रबन्ध सचालक के स्थान पर की गई है। नवीन वृत्ति पाने वाले चेयरमैन की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार निगम की सचालक सभा की सलाह से तीन वर्ष के लिए करती है।

सचालक सभा मे निम्नलिखित सदस्य होते है —

(१) केन्द्रीय सरकार द्वारा मनोनीत (Nominated)	४
(२) रिजर्व बैंक के केन्द्रीय बोर्ड द्वारा मनोनीत	२
(३) अनुसूचित बैंको द्वारा निर्वाचित (Elected)	२
(४) बीमा कम्पनियो तथा विनियोग ट्रस्टो द्वारा निर्वाचित	२
(५) सहकारी बैंको द्वारा निर्वाचित	२

१९५५ के नवीन सशोधित अधिनियम के अनुसार शासकीय समिति समाप्त कर दी गई है और उसके स्थान पर केन्द्रीय समिति (Central Committee) का निर्माण हुआ है। केन्द्रीय समिति के निम्नलिखित सदस्य होगे —

(१) चेयरमैन	१
(२) मनोनीत सचालको द्वारा निर्वाचित सचालक	२
(३) निर्वाचित सचालको द्वारा निर्वाचित सचालक	२

सचालक सभा का चेयरमैन ही केन्द्रीय समिति का चेयरमैन होता है। पदाधिकारियो को चुनने मे सरकार ने बडी सावधानी से काम लिया है। केन्द्रीय सरकार के एक बहुत ही अनुभवशील व्यक्ति (At Present Shri K. R K Menon and previously Sir Sri Ram) जो बैंकिग क्षेत्र के विशेषज्ञ है, को 'जनरल मैनेजर' के पद पर आसीन किया गया है।

कारपोरेशन का मुख्य कार्यालय नई दिल्ली मे, तथा शाखा कार्यालय बम्बई, कलकत्ता, कानपुर तथा मद्रास मे है।

कारपोरेशन अधिनियम (I F C. Act) सचालक सभा के सदस्यों से यह आशा करता है कि उद्योग, व्यापार तथा जन-हित को सामने रखते हुए व्यापारिक सिद्धान्तो का पालन करेंगे। सचालक सभा को केन्द्रीय सरकार द्वारा दिये गये आदेशो के अनुसार काय करना पडेगा। धारा ६ के अन्तर्गत सचालक सभा को भग किया जा सकता है, यदि वह केन्द्रीय सरकार के आदेशो का पालन करने मे असफल रहती है।

निगम के उद्देश्य तथा क्षेत्र

औद्योगिक वित्त निगम का मुख्य उद्देश्य, सार्थो को मध्यकालीन एव दीर्घकालीन सहायता प्रदान करना हे। अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक सार्थ का अर्थ किसी भी पब्लिक लिमिटेड कम्पनी, या सहकारी समिति जिसका निर्माण, व रजिस्ट्रेशन भारतीय अधिनियम के अन्तर्गत हुआ है, और जो वस्तुओ के निर्माण, सुधार अथवा उनके स्थान से खोदने अथवा विद्युत शक्ति के उत्पादन तथा वितरण से सम्बन्धित है, लगाया जाता है। सन् १९५२ मे निगम की क्रियाओं का क्षेत्र बढाने के लिए अधिनियम का सशोधन किया गया और उसके अनुसार शिपिंग कम्पनियों को भी औद्योगिक सार्थो की परिभाषा मे सम्मिलित किया गया है।

छोटे पैमाने की औद्योगिक इकाइया इसके क्षेत्र म हटा दी गई है क्योकि वे राज्य वित्तीय निगमों (S. F. C.) के अन्तर्गत आती है। राष्ट्रीय उद्योग कारपोरेशन का उद्देश्य भी निजी औद्योगिक व्यवसायो, जिनका वर्णन 'पब्लिक लिमिटेड कम्पनी' के आधार पर या 'सहकारी समितियों' के आधार पर हुआ है, की सहायता करना है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नही है कि आधारभूत उद्योग (Basic Industries) निगम म ऋण लेन के योग्य नही है। यदि आधारभूत उद्योगा का निर्माण पब्लिक लिमिटड कम्पनी के आधार पर हुआ है तो वे कारपोरेशन से ऋण लेने के पूरे अधिकारी है।

औद्योगिक अर्थ–प्रबन्धन निगम अधिनियम १९४८ का सबसे बडा दोष यह था कि निगम केवल उन्ही औद्योगिक सार्थो को ही ऋण दे सकता था जो कि पहले से ही व्यापार कर रहे होते थे और यह उन सार्थो का ऋण नहीं दे सकता था जो व्यापार प्रारम्भ करने वाले थे। इन दोषो के निवारणार्थ अधिनियम (I. F. C. Act) का १९५५ मे सशोधन किया गया। इस सशोधन के अनुसार निगम नवनिर्मित कम्पनियो को आर्थिक सहायता कर सकता था और उसने वैस्ट कोस्ट पपर मिल्स लिमिटड बम्बई, को १ करोड रुपये का ऋण देकर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस कम्पनी को ऋण उसी समय स्वीकृत हो गया था जबकि उसकी पूँजी का क्रय जनता द्वारा नहीं हुआ था। दूसरे शब्दो मे कम्पनी को ऋण उसके निर्माण होते ही प्राप्त हो गया।

निगम के कार्य

औद्योगिक वित्त निगम अधिनियम १९४८ (I F. C Act 1948)

की धारा २३ के अनुसार निगम अधोलिखित कार्य कर सकता है —

(१) *औद्योगिक संस्थाओं के ऋणों पर जिसे उन्होंने सार्वजनिक बाजार में लिया है और जिसके भुगतान की अवधि अधिक से अधिक २५ वर्ष है, गारण्टी दे सकता है।*

(२) औद्योगिक संस्थाओं द्वारा निर्गमित स्टाक, अंश-पत्र (Shares) बन्ध (Bonds) या ऋण-पत्रों का अभिगोपन करना, यदि इन प्रतिभूतियों (Securities) का विक्रय सात वर्ष के अन्दर कर दिया जाता है।

(३) औद्योगिक संस्थाओं को अधिक से अधिक २५ वर्ष की अवधि के लिए ऋण तथा अग्रिम (Advance) देना तथा उसके द्वारा निर्गमित ऋण-पत्रों, जिनकी अवधि २५ वर्ष से अधिक नहीं है, क्रय करना।

निषेध कार्य

निगम निम्नलिखित कार्य नहीं कर सकता है—

(१) *अधिनियम की शर्तों के विरुद्ध जमा (Deposits) स्वीकार करना।*

(२) *किसी भी सीमित दायित्व वाली कम्पनी के अंशों अथवा स्टाक को प्रत्यक्ष रूप से क्रय करना।*

(३) ७ वर्ष की अवधि से अधिक के पत्रों अथवा ऋण-पत्रों का अभिगोपन करना।

(४) १ करोड़ से अधिक का ऋण देना।

ऋण देने में सावधानियाँ

(१) *निगम उस समय तक किसी भी ऋण की स्वीकृति अथवा अभिगोपन नहीं करता है जब तक कि उस पर प्रत्याभूति न हो।*

(२) किसी भी एक औद्योगिक संस्था को दिये जाने वाले ऋण की अधिकतम राशि ५० लाख रुपये से १९५२ में १ करोड़ रुपया कर दी गई है। १ करोड़ रुपया से अधिक का ऋण केवल उसी अवस्था में दिया जा सकता है जबकि भारतीय सरकार ने उस पर गारन्टी दी हो।

(३) यदि ऋण लेने वाली कम्पनी ऋण का भुगतान करने में अथवा

निगम द्वारा निर्धारित शर्तों के पालन में कोई गलती करती है तो निगम को कम्पनी के विरुद्ध उचित कार्यवाही करने, उस कम्पनी की सचालक सभा में सचालक (Director) नियुक्त करने, उसके प्रबन्ध को अपने हाथ में लेने इत्यादि का अधिकार है। *निगम को ऐसी ऋण लेने वाली कम्पनियों से भुगतान की तिथि* (Due Date) से पूर्व भी भुगतान मांगने का अधिकार प्राप्त है।

निगम की कार्य-विधि

औद्योगिक वित्त निगम किसी भी उद्योग को ऋण देने से पहले, ऋण लेने वाली कम्पनी से निर्मित किये जाने वाले माल की प्रकृति, कारखाने की स्थिति का स्थापन (Location), भूमि पर अधिकार, भवन, विद्युत शक्ति की उपलब्धता, टेक्नीकल स्टाफ, बाजार की स्थिति, उत्पादन की अनुमानित लागत, मशीनों की किस्में, दी जाने वाली प्रतिभूति का मूल्य, सहायता लेने का उद्देश्य तथा लाभ कमाने व ऋण चुकाने की क्षमता इत्यादि के बारे में विस्तृत सूचना प्राप्त कर लेता है।

इसके बाद निगम के अधिकारियों द्वारा ऋण लेने वाली कम्पनी का निरीक्षण कराया जाता है। पदाधिकारी निगम को कम्पनी का लेखा (Account Books), सम्पत्ति की वास्तविक स्थिति, प्रबन्ध की कार्यक्षमता, कच्चे माल की उपलब्धता तथा निर्मित माल के बाजार की स्थिति के बारे में सूचना देते हैं। औद्योगिक कम्पनियां अपने कुशल तात्रिक पदाधिकारियों को इस सम्बन्ध में वार्तालाप करने के लिए भेज सकती हैं।

निगम ऋण लेने वाली कम्पनियों से सामयिक (Periodical) रिपोर्ट लेता है। इसके अतिरिक्त वह उन कम्पनियों का समय-समय पर निरीक्षण भी इस उद्देश्य से करता रहता है जिससे वह ऋणों के सदुपयोग करने, वस्तुओं के निर्माण की लागत को कम करने, तथा उनकी किस्म में सुधार करने की चेष्टा करते रहें। निगम विभिन्न भारतीय सरकार के मन्त्रालयों (Ministries) तथा 'काउन्सिल ऑफ साइन्टिफिक एण्ड इण्डस्ट्रियल रिसर्च' के सहयोग, सलाह तथा सहायता से कार्य करेगा।

ऋण देते समय निगम निम्न बातों (Considerations) को ध्यान में रखता है :—

(१) उद्योग का राष्ट्रीय महत्व,

(२) उसके द्वारा निर्मित वस्तुओ की देश मे माग,

(३) तात्रिक व्यक्तियो एव कच्चे माल की उपलब्धता,

(४) प्रबन्ध की योग्यता,

(५) दी गई प्रतिभूति की प्रकृति,

(६) निर्मित वस्तुओ के गुण (Qual ty), तथा

(७) प्रस्तावित योजना की सम्भावना तथा लागत।

निगम द्वारा की गई क्रियाओ का व्यौरा

३० जून १९५८ को निगम ने अपनी १०वी वर्षगाठ पूरी की। इस बीच निगम ने विभिन्न सार्थो से ६२३ आवेदन पत्र प्राप्त किए जो कि १२३ करोड रुपये की धनराशि के लिए थे। इन आवेदन पत्रो मे से २८१ आवेदन पत्र जो कि ६३ करोड रुपये के लिए थे स्वीकृत कर लिए गए और २१६ आवेदन पत्र जो कि २४ ५ करोड रुपये के लिए थे अस्वीकृत कर दिए गए।

३० जून १९५८ तक निगम ने ६२ ९ करोड रुपये के कुल ऋण १८५ कम्पनियो को स्वीकृत किये और जिनमे से कुल ३४ ८४ करोड रुपये वास्तव म वितरित कर दिये गए। इसका स्पष्टीकरण निम्न तालिका से होता है—

(करोड रुपयो मे)

		ऋण की कुल स्वीकृत धन राशि	वास्तव मे दी गई धन राशि
३० जून	१९४९	३ ८२	१ ३३
	१९५०	७ १९	३ ४१
,,	१९५१	९ ५८	५ ७९
,,	१९५२	१४ ०३	७ ५७
,,	१९५३	१५ ४७	१० ०७
,,	१९५४	२० ७४	१२ ८९
,	१९५५	२८ ०८	१४ ५३
,	१९५६	४३·२१	१६ ७३
,,	१९५७	५५ १२	२६·५१
,,	१९५८	६२ ९	३८ ८४

३० जून १९५८ तक उद्योगो के अनुसार (Industry-wise) ऋणों का विवरण इस प्रकार है–

(करोड रुपयों मे)

उद्योग		कुल स्वीकृत धन राशि
(१)	चीनी	१९·१७
(२)	सूती वस्त्र	८·७३
(३)	रसायन	८·५३
(४)	कागज	५·७१
(५)	सीमेंट	५·०७
(६)	लौह एवं स्पात (साधारण)	२·२८
(७)	मैकेनिकल इन्जीनियरिंग	२·०८
(८)	सिरैमिक्स एव ग्लास	१·९२
(९)	विद्युत इन्जीनियरिंग	१·७६
(१०)	आटोमोबाइल एव ट्रैक्टर	१·६५
(११)	रेयन	१·१०
(१२)	टैक्सटाइल मशीनरी	·८३
(१३)	विद्युत शक्ति	·८३
(१४)	अल्यूमिनियम	·५०
(१५)	अलौह-धातुऐं	·४६
(१६)	खनिज	·३७
(१७)	ऊनी वस्त्र	·३५
(१८)	प्लाई उड	·३०
(१९)	तेल मिल्स	·११
(२०)	विविध	१·१७
	कुल	६२·९२

राज्यानुसार (State-wise) स्वीकृत ऋणो का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि निम्न राज्यो को प्राथमिकता दी गई—

राज्य (State)	स्वीकृत राशि
	(करोड रुपयो मे)
(१) बम्बई	१८·६९
(२) मद्रास	८·५७
(३) पश्चिमी बगाल	६·३३
(४) उत्तर-प्रदेश	५·००
(५) मैसूर	४·८०
(६) बिहार	४·७८
(७) केरल	४·२८
(८) अन्य	१०·४५
योग	६२·९

ब्याज की दर

निगम (I. F. C) की स्थापना की तिथि से फरवरी १९५२ तक निगम द्वारा लिए जाने वाले ब्याज की दर ५½% रही। मूलधन (Principal) की किश्त तथा ब्याज की राशि निश्चित तिथि (Due Date) पर प्राप्त हो जाने पर ½% की छूट (Rebate) भी दी जाती है। इस प्रकार शुद्ध (Net) ब्याज की दर ५ प्रतिशत ही थी। ऋणो द्वारा प्राप्त धन की लागत बढ जाने के कारण निगम को १९५२ और १९५३ मे ब्याज की दर क्रमश ६% तथा ६½% करनी पडी, परन्तु छूट की दर यथावत अर्थात् ½ प्रतिशत ही रही। धन एकत्रित करने की लागत मे पुनर्वृद्धि हो जाने के कारण २३ अप्रैल १९५७ से ब्याज की दर ७% कर दी गई। छूट की दर पूर्ववत ही रही। १९५७ से अब तक ब्याज की दर मे कोई परिवर्तन नही हुआ है।

लाभ

१९५७-५८ (३० जून १९५८) मे निगम (Corporation) को १·५५ करोड रुपये का कुल लाभ (Gross Profit) हुआ जबकि पिछले वर्ष केवल ४३·०६ लाख रुपये का कुल लाभ हुआ। १९५७-५८ मे प्रशासन सम्बन्धी व्यय कुल लाभ का ६ प्रतिशत था। इस वर्ष शुद्ध लाभ (Net Profit) २८ २०

लाख रुपये हुआ जोकि पिछले सब वर्षों से अधिक था। प्रारम्भ से अब तक निगम द्वारा अर्जित लाभों का विवरण इस प्रकार है :—

वर्ष	शुद्ध लाभ (लाख रु०)
३० जून १९४९	०·८६
,, १९५०	३·०६
,, १९५१	७·९४
,, १९५२	९·२५
,, १९५३	२३·१७
,, १९५४	१३·१९
,, १९५५	९·७०
,, १९५६	१०·१८
,, १९५७	११·२५
,, १९५८	२८·२०

१९५८-५९ मे औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम (I F C.) के द्वारा दिए गए ऋण एव अग्रिमो (Loans & Advances) मे पिछले वर्ष की अपेक्षा मे ४·६१ करोड रुपये की वृद्धि हुई। जून १९५९ मे अदत्त (Outstanding) धनराशि ३३·३५ करोड रुपये थी। निगम ने पूँजीगत् वस्तुओ (Capital Goods) के आयात के लिए स्थगित भुगतानों (Deferred-Payments) से सम्बन्धित पाच योजनाओ के लिय गारन्टी दी, और १·६० करोड रुपये के परिवर्तनशील ऋणपत्र निर्गमन का अभिगोपन दो अन्य वित्तीय सस्थाओ के साथ किया। इसके अतिरिक्त एक ३७·५ लाख रु० सचयी भुगतान योग्य पूर्वाधिकारी अनपत्र निर्गमन का भी अभिगोपन किया। निगम ने नवम्बर १९५८ मे ४ ३८ करोड रुपये के '४½ प्रतिशत बॉन्ड्स १९६८' का निर्गमन करके अपने वित्तीय साधनों में वृद्धि की। इस प्रकार जून १९५९ तक कुल अदत्त (Outstanding) बाड्स १६·७५ करोड रुपये के थे। इसी वर्ष भारत सरकार ने P. L. 480 Funds म से निगम को १० करोड रुपये ऋण के रूप मे दिये।

सन् १९५९-६० को औद्योगिक अर्थ-प्रबन्ध निगम (I. F. C.) का स्थिति ब्यौरा इस प्रकार था —

औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम के दायित्व एवं सम्पत्तियाँ

(लाख रुपयों में)

वर्ष	दायित्व (Liabilities)									सम्पत्तियाँ (Assets)		
					उधार की राशियाँ							
	सञ्चित कोष	सन्दिग्ध ऋणों के लिए सञ्चय	करों के लिए प्रावधान	बंध एवं ऋण पत्र	कुल योग (Total)	रिज़र्व बैंक से उधार	सरकार से उधार	अन्य दायित्व	कुल दायित्व अथवा सम्पत्तियाँ	नकद धन एवं बैंक में धन	ऋण एवं अग्रिम	अन्य सम्पत्तियाँ
१९५१-५२	२	—	—	५८१	—	—	—	५४०	११२३	५५	६५५	५४
१९५२-५३	३	—	—	५८१	—	—	—	५६१	११४४	२६	८६२	५६
१९५३-५४	१०	—	१८	७८१	३०	३०	—	५४६	१३८४	५	११२०	५९
१९५४-५५	१५	५	१०	७८१	—	—	—	५५२	१३६२	२३	१२७८	६०
१९५५-५६	१९	२०	१०	७८१	६१	६१	—	५८०	१४७०	२	१४०१	६७
१९५६-५७	२४	४३	२०	७८१	७०७	१०७	६००	६०२	२१७५	१	२०७०	९६
१९५७-५८	२९	१५	१६	१२३७	१५००	—	१५००	६०२	३३९९	५११	२६२०	१८०
१९५८-५९	४५	१५	२४	१६७५	१०९४	९४	१०००	६५१	३५०४	७२	३२१०	२२३
१९५९-६०	६४	१५	३८	२२२४	९१३	८८	८२२	८५३	४१०७	४	३६७३	४३०

Source—*Reserve Bank of India Bulletin*, June, 1960 p. 858

औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम की आलोचनाएँ

जिस समय लोक सभा मे औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम (सशोधन) विधेयक १९५२ तथा औद्योगिक एव राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगमो (सशोधन) विधेयक १९५५ पर बहस हो रही थी, उक्त निगम की कठोर आलोचना की गई। लोक सभा के सदस्यो तथा अन्य लोगो ने जो आलोचनाये की और दोष लगाये उनका सक्षिप्त ब्यौरा इस प्रकार है —

(१) निगम प्रमण्डलों को ऋण देते समय पक्षपात व भेद-भाव की भावना रखता है, अर्थात् निगम केवल उन्ही सस्थाओं को ऋण स्वीकृत करता था जिसमे उसके सचालक या अन्य पदाधिकारी हित रखते हो।

(२) निगम पूर्णतया सरकार के स्वामित्व एव नियन्त्रण मे न होने के कारण एक बडे व्यवसाय के रैकेट (Big Business Racket) की भांति कार्य कर रहा है जिससे कुछ व्यापारिक महारथियों की चतुरता सम्पूर्ण देश की आर्थिक स्थिति को अपने अधिकार मे ले सकती है।

(३) निगम उन प्रान्तो या क्षेत्रो मे, जो अपेक्षाकृत कम विकसित है, औद्योगिक उद्योग-धन्धे स्थापित करने मे असफल रहा है।

(४) निगम ने सुस्थापित बडे पैमाने के उद्योगो की ओर अधिक ध्यान दिया है और लघु तथा मध्य स्तर के उद्योगो की उपेक्षा की है। इससे देश की आर्थिक उन्नति को बाधा पहुँचाती है।

(५) निगम ने ऐसी औद्योगिक इकाइयो को ऋण दिए है जो पचवर्षीय योजना के कार्यक्रम के अन्तर्गत नही आती हैं। निगम ने आधारभूत तथा पूँजीगत वस्तुओ के उद्योगों को बहुत कम सहायता दी है जबकि उपभोक्ता वस्तुओ के उद्योगो को पर्याप्त सहायता दी है।

(६) निगम ऋण लेने वाली कम्पनियो के द्वारा व्यय की जाने वाली राशि की देख-रेख करने मे असफल रहा है जिससे वस्तुओ के उत्पादन तथा उत्पादन शक्ति (Installed Capacity) मे कोई वृद्धि नही हुई।

(७) निगम कम्पनियों को सामान्य पूंजी नहीं प्रदान करता है और उनको अन्य संस्थाओं का मुंह ताकना पड़ता है।

(८) निगम ने ऐसी कम्पनियों को भी ऋण दिया है जो खूब लाभ कमा रहीं थी तथा अपनी ख्याति के कारण मुद्रा बाज़ार में ऋण प्राप्त कर सकती थी।

(९) यह भी कहा गया है कि निगम अपने स्थापन व्यय (Establishment Expenses) तथा अन्य व्ययों में मितव्ययिता नहीं कर रहा है।

इन दोषों तथा आलोचनाओं के आधार पर निगम की क्रियाओं का पर्यवेक्षण कराने के लिए भारतीय सरकार ने दिसम्बर १९५२ में एक समिति श्रीमती सुचेता कृपलानी एम० पी० की अध्यक्षता में नियुक्त की। इस समिति के अन्य सदस्य श्री बी० बी० गाधी, श्री श्रीनारायण मेहता, श्री पी० ए० नारियलवाला, श्री आर० सूर्यनारायण राव, तथा श्री जी० बासु थे। इस समिति को निम्न बातों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देनी थी —

(१) लोक सभा में औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम (संशोधन) विधेयक पर बहस के समय निगम के द्वारा दिये गये ऋणों पर लगाये गये दोष (पक्षपात) की छान बीन करना।

(२) यह पता लगाना कि ऋण देने समय साधारण रूप से उचित सावधानी रखी जाती है अथवा नहीं।

(३) निगम की ऋण देने की नीति को इस विचार से देखना कि वह निगम के अधिनियम के उद्देश्यों तथा सरकार द्वारा निर्गमित आदेशों का पालन करती है अथवा नहीं।

(४) निगम की क्रियाओं में सुधार करने के लिए उचित सुझाव देना।

समिति के सुझाव

श्रीमती सुचेता कृपलानी समिति ने अपनी रिपोर्ट ७ मई १९५३ को प्रस्तुत की। इस समिति ने बहुत से साधारण सुझाव दिये तथा 'सोदेपुर ग्लास वर्क्स' (Sodepur Glass Works) को दिये गये ऋण के बारे में भी विस्तारपूर्वक रिपोर्ट दी।

जहाँ तक प्रथम दोष का सम्बन्ध है समिति की राय में यह आधार रहित है। समिति ने यह अवश्य स्वीकार किया है कि ऐसे उद्योगों, जिनमे निगम के सञ्चा-

लक या अध्यक्ष तनिक भी हित रखने से उनको ऋण सुगमता व शीघ्रता से मिल गया है। समिति ने यह भी स्वीकार किया है कि निगम ऋण देते समय सुस्थापित व ख्यातिप्राप्त उद्योगो को अन्य उद्योगों की अपेक्षा प्राथमिकता देता है। समिति ने किस आधार पर ऐसा निर्णय किया, रिपोर्ट मे नही बताया गया है फिर भी भारतीय सरकार ने इस समिति की रिपोर्ट की विवेचना करते हुए कहा है कि "समिति ने जो कुछ भी रिपोर्ट दी है, सही तथ्यो पर आधारित है।"

समिति द्वारा दिये गये सुझावो को अध्ययन की दृष्टि मे हम तीन भागो मे बाँट सकते है --

(१) शासन तथा सगठन सम्बन्धी (Administrative and Organisational);

(२) कार्य विधि सम्बन्धी (Procedural Matters), तथा

(३) नीति सम्बन्धी (Matters of Policy)।

(१) शासन तथा संगठन सम्बन्धी

इस सम्बन्ध मे समिति ने निम्न सुझाव दिए है :--

(१) निगम के वर्तमान अवैतनिक अध्यक्ष (Honorary Chairman) तथा वैतनिक प्रबन्ध सचालक (Managing Director) के स्थान पर पूर्ण वैतनिक अध्यक्ष (Whole Time Paid Chairman) तथा एक जनरल मैनेजर की नियुक्ति होनी चाहिए।

(२) प्रत्येक उप-कार्यालय (Branch Office) के लिए एक क्षेत्रीय सलाहकार परिषद (Panel of Advisors) होना चाहिए जिनमे से कुछ सदस्य ऋण आवेदन-पत्रों पर विचार करने के लिए चुन लेना चाहिए, इसके अतिरिक्त कभी-कभी निगम की सचालक सभा को *बम्बई, कलकत्ता, मद्रास इत्यादि मे अपनी मीटिंग करनी चाहिए।*

(३) समिति की राय मे प्रबन्ध सचालक के हाथ मे अधिक अधिकारो का केन्द्रीयकरण उचित नही। प्रबन्ध सचालक तथा उप-प्रबन्ध सचालक के कर्तव्य तथा अधिकारो को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर देना चाहिए।

(४) निगम को ऋण लेने वाली कम्पनियो की सचालक सभा मे अपने

पदाधिकारियो को सचालक नियुक्त करने के अधिकार का अधिक से अधिक प्रयोग करना चाहिए। इन सचालको को ऋण देने वाली कम्पनी के स्थिति-विवरण (Balance Sheet) तथा हानि लाभ के खातो पर हस्ताक्षर करने का अधिकार होना चाहिए।

(५) ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिससे निगम की सचालक सभा पर बडे-बडे उद्योगपतियो का आधिपत्य न हो सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सरकार को चाहिए कि वह निगम की सचालक सभा मे एक अर्थशास्त्री, एक प्रबन्धकीय विशेषज्ञ तथा एक चार्टर्ड एकाउन्टेन्ट को मनोनीत करे। मनोनीत किये गये सचालको मे एक ऐसा भी व्यक्ति होना चाहिए जो लघु उद्योगो के विकास मे हित रखता हो।

उपरोक्त सुझाओ को सरकार ने लगभग मान लिया है तथा तदनुसार व्यवस्था की जा चुकी है।

कार्य विधि सम्बन्धी सुझाव

(१) निगम का कोई भी सचालक जो किसी भी ऋण लेने वाली कम्पनी मे हित रखता हो तो उसे अपने हित को प्रकट कर देना चाहिए। ऐसी कोई भी सार्थ (Concern) जिसमे निगम का कोई भी सचालक, प्रबन्ध सचालक, या साझेदार या प्रबन्ध-अभिकर्त्ता हो तो उस कम्पनी को ऋण नही दिया जायगा। यदि *निगम का कोई सचालक किसी ऋण लेने वाली कम्पनी का केवल* साधारण सचालक या अशधारी हो तो कम्पनी को ऋण उसी *अवस्था मे मिलेगा जब निगम की सचालक सभा के सचालकगण,* जो मत देने के अधिकारी है, एकमत से ऋण देने के लिए प्रस्ताव *पास कर दें। ऐसा सचालक जो किसी कम्पनी को ऋण दिलाने मे* हित रखता हो, तो सचालक सभा की शासकीय समिति (Executive Committee), जिसमे इस ऋण पर विचार किया जा रहा हो, उपस्थित नही होना चाहिए।

(२) ऋणो को स्वीकृत करने मे सचालको की सभा को अन्तिम अधिकार होना चाहिए तथा शासकीय समिति को चाहिए कि वह कठिन तथा मुख्य ऋणो वाले प्रार्थना-पत्रो को सचालक-सभा की अनुमति के लिए बाद मे प्रस्तुत करे।

(३) निगम को अपनी वार्षिक रिपोर्ट जिसमें अधिक से अधिक सूचना हो तथा पचवर्षीय रिपोर्ट जिसम ऋण लेने वाली कम्पनियो के नाम प्रत्येक ऋण लेने वाली कम्पनी की क्रियाओ एव सफलताओ के बारे मे तथा उद्योगो के विकास की स्थिति के सम्बन्ध मे सूचना प्रकाशित करनी चाहिए। स्थिति विवरण (B/S) तथा लाभ–हानि के खातो का प्रारूप भी सशोधित कर देना चाहिए।

(४) ऋण देते समय कम से कम ५० % का अन्तर रखना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ऋण लेने वाली कम्पनी अपनी सम्पत्ति का अतिमूल्यन (Over Valuation) न कर दे। ऋण लेने वाली कम्पनियो की लाभोपार्जन शक्ति, तथा दीर्घ-कालीन पूंजी की आवश्यकताओ के सम्बन्ध मे ऋण स्वीकृत करने से पहले ठीक–ठीक अनुमान लगा लेना चाहिए। ऋण लेने वाली कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं को अपने अशो को बिना निगम की आज्ञा के बेचने का अधिकार नही होना चाहिए।

(५) ऋणो के स्वीकृत करने मे तथा उनको चुकाने मे जो देर लगती है उसे कम से कम कर देना चाहिए।

(६) निगम के पास तात्रिक विशेषज्ञो का दल होना चाहिए।

(७) निगम यदि किसी कम्पनी को खरीद लेता है तो उसका प्रबन्ध विभागीय प्रबन्ध या प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के द्वारा होने की अपेक्षा सिद्धान्तत मनोनीत सचालको की सभा को दे देना चाहिए।

अभी तक निगम ने केवल एक ही कम्पनी 'सोदेपुर ग्लास वर्क्स' का क्रय किया है जिसका प्रबन्ध मनोनीत सचालको के द्वारा किया जा रहा है।

(३) नीति सम्बन्धी सुझाव

इस सम्बन्ध मे समिति ने निम्न सुझाव दिये है —

(१) निगम को पचवर्षीय योजना मे दी गई प्राथमिकताओ के अनुसार तथा योजना आयोग के द्वारा ४२ उद्योगो के अनुसूचित कार्यक्रम का पालन करना चाहिए। निगम को ऐसी कम्पनी को ऋण स्वीकृत नही करना चाहिए जो स्वय काफी विकसित हो चुकी है।

(२) औद्योगिक अर्थ–प्रबन्धन अधिनियम को धारा ६—(३) के अनुसार

सरकार को निगम को सिद्धान्त अपनाने के सम्बन्ध मे आदेश देने चाहिए। सरकार को निगम को ऐसे आदेश देना चाहिए जिसमे अविकसित तथा विकसित क्षेत्रो का स्पष्ट ज्ञान होना चाहिए। निगम को ५० लाख से अधिक राशि वाले आवेदन पत्रो को तीन वर्ष तक केन्द्रीय सरकार के सामने रखना चाहिए।

(३) इस समय तक निगम के राष्ट्रीयकरण के लिए सुझाव नही दिया गया है। लोक सभा के सदस्यो को निगम के दैनिक शासन मे अधिक हस्तक्षेप नही करना चाहिए। परन्तु लोकसभा को इसकी क्रियाओ पर नियन्त्रण रखने के सम्बन्ध मे समिति ने सुझाव दिया कि लोक सभा की एक 'पब्लिक कारपोरेशन कमटी' बना दी जाय।

(४) निगम को सामान्य पूँजी या जोखिम पूँजी मे भाग नही लेना चाहिए।

(५) निगम के सचित कोष के ५ करोड रुपये से अधिक हो जाने पर सामान्य पूँजी मे भाग लेने पर विचार किया जा सकता है।

(६) निजी सीमित कम्पनियो को निगम अश नही दे सकता है।

(७) निगम किसी कम्पनी के अस्थायी अशो, जिनको वह किसी बैंक से प्राप्त करता है पर गारन्टी दे सकता है।

(८) किसी नई कम्पनी के लिए प्रारम्भिक वर्षो मे ब्याज की राशि को स्थगित कर सकता है।

(९) उन कम्पनियो के सम्बन्ध मे जिनका निर्माण व पजीयन भारतवर्ष मे हुआ है परन्तु अशधारियो की सख्या विदेशियो की अधिक है तो यह निश्चित करना कि ऐसी कम्पनी भाग लेने की अधिकारी है अथवा नही।

(१०) जहाँ पर कोई राज्य विशेष पृथक रूप से राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम स्थापित करने मे असमर्थ हो तो ऐसी दशा मे दो राज्य निगम की स्थापना कर सकते है। औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम की क्रियाओ का स्पष्ट विवेचन होना चाहिए।

उपरोक्त सुझावो को भारत सरकार ने लगभग पूर्ण रूप मे स्वीकार कर लिया है।

श्राफ समिति के सुझाव

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया द्वारा नियुक्त श्राफ कमेटी ने निजी क्षेत्र को आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम की क्रियाओं का पर्यवेक्षण भी किया। समिति ने इस सम्बन्ध में निम्न दोष व सुझाव प्रस्तुत किए —

(१) ऋणों की स्वीकृति में विलम्ब—समिति ने देखा कि निगम द्वारा स्वीकृत १३० मामलों में से २६ एक महीने में, ०९ दो महीने में और ७४ दो महीने में स्वीकृत किये गये। विलम्ब का कारण आवेदन पत्रों में वैधानिक उपचारों की कमी थी।

इस दोष को दूर करने के लिए समिति ने सुझाव दिया कि मुख्य दफ्तर में वैधानिक परामर्शदाताओं का दल रखा जाय।

(२) ऋण देने की शर्तें—निगम की ऋण देने की शर्तें बहुत ही अनावश्यक हैं। उदाहरणार्थ निगम ५० % का मार्जिन रखने के अतिरिक्त उस कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्ताओं की प्रत्याभूति पर भी जोर देता है। समिति ने सुझाव दिया कि निगम को ऋण देने वाली कम्पनी की सुदृढ़ता के आधार पर ऋण देना चाहिए प्रबन्ध अभिकर्ताओं की प्रत्याभूति पर नहीं।

(३) अधिक ब्याज दर—निगम ऋण लेने वाली कम्पनियों से जो ब्याज लेता है वह अपेक्षाकृत बहुत अधिक है। यह ब्याज की ऊंची दर नवनिर्मित औद्योगिक कम्पनियों के विकास में बाधा डाल सकती है। समिति के विचार में निगम को नवीन कम्पनियों के प्रारम्भिक काल में नीची दर से ब्याज लगाना चाहिए और बाद में कम्पनी की लाभोपार्जन शक्ति बढ़ने पर ब्याज की दर बढ़ाई जा सकती है।

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम
(State Financial Corporation)

औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम की स्थापना के समय केन्द्रीय सरकार ने राज्यों के लिए पृथक अर्थ-प्रबन्धन निगम स्थापित करने का विचार किया था। औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम (I F C) पब्लिक लिमिटेड कम्पनियों और सहकारी समितियों की अर्थ सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

छोटे पैमाने तथा मध्यम वर्ग के उद्योग उसके क्षेत्र के अन्तर्गत नही आते है। इसके अतिरिक्त केवल एक निगम छोटे पैमाने तथा मध्य वर्ग के उद्योगो की विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओ की पूर्ति भी नही कर सकता है। अत. केन्द्रीय लोक सभा ने २८ सितम्बर १९५१ को राज्य अर्थ-प्रबन्धकीय अधिनियम (State Financial Act) पास किया जिसके अनुसार राज्य सरकारों को अपने-अपने राज्य मे अर्थ-प्रबन्धन निगम स्थापित करने का अधिकार मिल गया। 'मद्रास इनवेस्टमेंट कारपोरेशन लिमिटेड' जिसकी स्थापना इस अधिनियम (S. F C. Act) के पास होने से पहले हुई थी, भी उसी अधिनियम के *अन्तर्गत आ गया है।*

राज्य अर्थ-प्रबन्धकीय निगम (S F. C) अधिनियम की बहुत सी बाते औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम अधिनियम १९३८ से मिलती जुलती है। परन्तु राज्य अर्थ-प्रबन्धकीय अधिनियम, औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम मे तीन बातो मे भिन्न है :—

(१) औद्योगिक सार्थ (Industrial Concern) की परिभाषा को विस्तृत कर दिया गया है और अब उसके अन्तर्गत प्राइवेट लि० कम्पनियाँ, *साझेदारियाँ तथा स्वामित्वधारी सार्थ (Proprietory Concerns)* भी आते हैं।

(२) राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम के अशो को जनता तथा बैंक भी खरीद सकती है जो अनुसूचित नही हैं।

(३) राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम (S. F. C.) अधिक से अधिक २० वर्षों के लिए ही ऋण तथा अग्रिमो (Loans and Advances) को दे सकता है अथवा उनके लिए गारण्टी दे सकता है जबकि *औद्योगिक अर्थ – प्रबन्धन निगम (I. F. C.)* २५ वर्ष के लिए उपरोक्त कार्य कर सकता है।

निगम के आर्थिक साधन

(अ) पूँजी—राज्य अर्थ प्रबन्धन निगम की पूँजी सम्बन्धित आवश्यकताएँ राज्य सरकार के द्वारा निश्चित की जाँयगी। केन्द्रीय सरकार ने इन निगमो की पूँजी की न्यूनतम् तथा अधिकतम् सीमाएँ निर्धारित कर दी है। न्यूनतम् सीमा ५० लाख रुपया तथा अधिकतम् सीमा ५ करोड रुपये है। जनता भी निगम की अश पूँजी का २५ % भाग क्रय कर सकती है, शेष पूँजी का क्रय राज्य सरकार, रिज़र्व बैंक, अनुसूचित बैंको, बीमा कम्पनियों तथा अन्य आर्थिक सस्थाओ द्वारा किया जायेगा। राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार

से परामर्श करके विभिन्न विनियोक्ता संस्थाओं के अनुपात का निर्धारण करती है ।

राज्य सरकार, केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित शर्तों पर मूलधन के पुनर्भुगतान तथा वार्षिक लाभांश की गारन्टी देती है। लाभांश की दर राज्य सरकार द्वारा गारन्टीड दर से अधिक उस समय तक नही हो सकती जब तक कि निगम का संचित कोष, चुकता पूंजी के बराबर न हो जाय और जब तक राज्य सरकार द्वारा दिए गए धन का पुनर्भुगतान न हो गया हो। परन्तु किसी भी दशा मे लाभांश की दर ५ % से अधिक नहीं हो सकती ।

(ब) बन्ध तथा ऋण-पत्र (Bords & Debentures)—अपने आर्थिक साधनों के लिए निगम (S. F C) बन्ध एवं ऋण-पत्रों का निर्गमन कर सकता है। परन्तु इस प्रकार प्राप्त किए हुए ऋण की राशि तथा अन्य आकस्मिक दायित्वों मे प्राप्त धन राशि, चुकता पूंजी तथा संचित कोष के ५ गुने से अधिक नही हो सकती है। इन निर्गमित बन्धो एवं ऋण-पत्रों के मूलधन तथा ब्याज के भुगतान के सम्बन्ध मे राज्य सरकार केन्द्रीय सरकार की अनुमति से गारन्टी देगी।

(स) जमा की स्वीकृति (Acceptance of Deposits)—निगम जनता से जमा भी स्वीकार कर सकता है। जमा कम से कम ५ वर्ष की अवधि के लिए होने चाहिए। ऐसी जमा की कुल राशि निगम की चुकता पूंजी से अधिक न होनी चाहिए।

निगम का प्रबन्ध

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम का प्रबन्ध एक संचालकों की सभा, जिसमे १० सदस्य होते है, के द्वारा होता है। संचालकों का चुनाव निम्न प्रकार होता है—

(१) राज्य सरकार द्वारा मनोनीत	३
(२) रिजर्व बैंक से केन्द्रीय बोर्ड द्वारा मनोनीत	१
(३) औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम द्वारा मनोनीत	१
(४) राज्य सरकार द्वारा निर्वाचित प्रबन्ध संचालक	१
(५) अनुसूचित बैंकों द्वारा निर्वाचित	१
(६) सहकारी बैंकों द्वारा निर्वाचित	१
(७) अन्य आर्थिक संस्थाओं द्वारा निर्वाचित	१
(८) अन्य अंशधारियों द्वारा निर्वाचित	१
कुल योग	१०

सचालक गणो को उद्योग व्यापार तथा जन–हित को सामने रखते हुए व्यापारिक सिद्धान्तो का पालन करना चाहिए। निगम के नीति सम्बन्धी मामलो म राज्य सरकार के निर्णय मान्य होते है। राज्य सरकार सभा को भग कर सकती है, यदि सभा उनके आदेशो का पालन करने मे असफल रहती है ।

निगम के कार्य

राज्य अर्थ–प्रबन्धन निगम निम्नलिखित कार्य कर सकता है —

(१) औद्योगिक सस्थाओ के निर्गमित अशो व ऋण पत्रो का अभिगोपन करना। ऐसे ऋण–पत्रो का निर्गमन अधिक से अधिक २० वर्ष के लिए होना चाहिए।

(२) औद्योगिक सस्थाओ को अधिक से अधिक २० वर्ष के लिए ऋण देना अथवा उनके निर्गमित ऋण–पत्रो का क्रय करना।

(३) औद्योगिक सस्थाओ द्वारा स्वतन्त्र बाजार (Open Market) मे अधिक से अधिक २०वर्ष की अवधि के लिए प्राप्य ऋणो का अभिगोपन करना।

(४) औद्योगिक सस्थाओ द्वारा स्कन्धो (Stocks) अशो, (Shares), बन्धो (Bonds) अथवा ऋण–पत्रो का अभिगोपन करना, यदि विक्रय ७ वर्ष म जनता को कर देना है।

निगम के निषिद्ध कार्य

(१) अधिक से अधिक उद्योगो की सहायता करने के विचार से निगम किसी एक औद्योगिक साथ को अपनी चुकता पूँजी के १० % भाग अथवा १० लाख रु० (जो भी कम हो) मे अधिक नही द सकता।

(२) निगम किसी भी औद्योगिक सार्थ के अशो अथवा स्कन्धो (Stocks) को प्रत्यक्ष रूप से क्रय नही कर सकता।

(३) निगम जनता से ५ वर्ष से कम अवधि की जमा (Deposits) स्वीकार नही कर सकता है।

(४) निगम अपने अशो की प्रतिभूति पर ऋण नही दे सकता।

(५) निगम अपनी चुकता पूजी से अधिक राशि की जमा (Deposits) स्वीकार नही कर सकता है।

निगम की क्रियाओं का विवरण

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम अधिनियम १९५१ के पास होने के समय से लेकर मार्च १९५८ तक विभिन्न राज्यों मे तेरह निगम स्थापित हो चुके है। मैसूर सरकार ने भी इस प्रकार के निगम को स्थापित करने का निर्णय कर लिया है। इस समय तक स्थापित निगमो की निर्गमित पूँजी मे रिजर्व बैंक का भाग १० % से लेकर २० % तक रहा है। केन्द्रीय सरकार ने तीन राज्य सरकारों-आसाम, सौराष्ट्र तथा ट्रावनकोर कोचीन—को कुछ आर्थिक सहायता ऋणों के रूप मे दी है जिससे वे राज्य सरकारे अपने निगमों के अंशों को खरीद सकें। केन्द्रीय सरकार ने इस उद्देश्य के लिए १९५५-५६ के बजट म १ करोड़ रुपये का प्रावधान किया था।

अभी तक जितने भी निगम स्थापित किये गये है वे अपनी शैशवावस्था मे है और अनेक असुविधाओं एव बाधाओं का सामना कर रहे है। वे अभी इस अवस्था म नहीं हैं जिससे वे उद्योगों को सहायता समुचित रूप से पहुँचा सकें। इसके अतिरिक्त वे आवेदन पत्रो को किसी न किसी कारण से अस्वीकृत कर देते है और जो भी आवेदन पत्र स्वीकार किये जाते है उन पर ऋण स्वीकार करने मे बहुत विलम्ब होता है, इससे ऋण लेने वाले उद्योगों को बहुत असुविधा एव कठिनाई होती है।

ऐसा कहा जाता है कि निगम अधिकतर अपेक्षाकृत बडी औद्योगिक संस्था को ऋण देते है। इस प्रकार लघु उद्योगों, जिनको सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से ही इन निगमों की स्थापना हुई है, बिना सहायता के रह जाते है। इसके अतिरिक्त कुछ राज्यो म राज्य सरकारे निगमो की क्रियाओ म हस्तक्षेप करती है और कुछ उद्योगों को अप्रत्यक्ष रूप से आर्थिक सहायता भी देती है। उदाहरणार्थ राज्य-अनुदान उद्योग अधिनियमों (State Aid To Industries Act) के अन्तर्गत राज्य सरकारे लघु उद्योगों को आर्थिक सहायता देती है। इसका प्रभाव यह होता है कि लघु उद्योग कारपोरेशन से ऋण न लेकर राज्य

सरकारो से प्रत्यक्ष रूप से ऋण लेते हैं। हैदराबाद राज्य सरकार वित्तीय निगम इस कथन की पुष्टि करता है। इस निगम के पास १९५५–५६ मे पिछले वर्ष की अपेक्षा बहुत कम आवेदन–पत्र आये और इसका मुख्य कारण यही था कि वहाँ का 'स्माल स्केल इन्डस्ट्रीज़ बोर्ड' लघु उद्योगो को अधिक सुविधाजनक शर्तों पर ऋण देता था। आन्ध्र निगम को भी इसी प्रकार की कठिनाई का सामना करना पडा।

१९५६-५७ मे १० राज्य अर्थ-प्रबन्ध निगमो को ३५·७ लाख रुपये का शुद्ध लाभ हुआ जबकि १९५५-५६ मे यह लाभ कुल २५ लाख रुपये ही था। आय-कर (Income-Tax) के लिए प्रावधान कर देने के पश्चात् निगमो के लाभाश बाँटने के लिए पर्याप्त शेष न रहा। परिणामस्वरूप इस कमी को पूरा करने के लिये उन्होने अपनी-अपनी राज्य सरकारो से सहायता माँगी। १९५६-५७ मे यह सहायता २०·३ लाख रुपये थी जबकि १९५५-५६ मे इसकी राशि १६·६ लाख रुपये थी। मार्च १९५७ तक निगमो को दी गई कुल सहायता ५५ १ लाख रुपये थी।

१९५८-५९ मे १९५७-५८ की अपेक्षा मे राज्यकीय अर्थ-प्रबन्ध निगमो के अग्रिमों (Advances) मे २·२१ करोड रुपये की वृद्धि हुई। मैसूर राज्य मे भी एक निगम की स्थापना हो जाने से निगमो की कुल सख्या १३ हो गई है। तीन निगमो ने बॉण्ड्स का निर्गमन करके २·५० करोड रुपये की अतिरिक्त धनराशि को प्राप्त किया। कुछ राज्यो मे निगमो Corporations) के राज्य सरकारो की ओर से लघु उद्योगो को सरकारी रियायती आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिये अभिकर्त्ता (Agents) नियुक्त किया गया है। इस समय यह अभिकर्त्ता प्रणाली उत्तर प्रदेश, आन्ध्र-प्रदेश, बम्बई तथा पजाब मे प्रचलित है। बिहार सरकार भी इसी व्यवस्था को अपनाने जा रही है।

राज्यकीय अर्थ-प्रबन्ध निगम अधिनियम १९५१ की धारा ३७ 'अ' के अनुसार रिज़र्व बैंक ने अभी तक ९ निगमो का निरीक्षण कर लिया है।

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम — दायित्व एवं सम्पत्तियाँ
(Liabilities and Assets)

(लाख रुपयों में)

वर्ष	निगमों की संख्या	दायित्व (Liabilities)					कुल दायित्व अथवा सम्पत्तियाँ	सम्पत्तियाँ (Assets)				
		पूंजी एवं कोष										
		चुकता पूंजी	संचित कोष	अन्य कोष	बंध एवं ऋण पत्र	अन्य दायित्व		नकद धन एवं बैंक में धन	सरकारी प्रतिभूतियों में विनियोग	ऋण एवं अग्रिम	ऋण पत्र	अन्य सम्पत्तियाँ
१९५२-५३	१	—	—	—	—	८	८	७	—	—	—	—
१९५३-५४	५	४००	—	—	—	३	४०३	३१३	७८	८	—	३
१९५४-५५	७	५९८	—	—	—	११२	७१०	३२२	२६७	१०६	—	१४
१९५५-५६	१२	१०२८	१	—	—	४०	१०७०	३६०	३९४	२७२	१४	३०
१९५६-५७	११	१२२८	३	५	३६	२०३	१४७५	३५९	४०१	६५०	१४	५१
१९५७-५८	१२	१३१०	५	६	२६०	२२३	१८०४	४६०	३०६	९३५	१४	८९
१९५८-५९	१०	१३३२	७	७	६१२	३७४	२३३२	७९२	२८०	११३४	१४	११२
१९५९-६०	१३	१४३२	९	७	७१७	४७३	२६३८	७२१	३२२	१३९०	१४	१९१

Source—*Reserve Bank of India Bulletin*, June, 1960 p. 858

विभिन्न राज्यों मे अर्थ प्रबन्धन निगम

पंजाब अर्थ-प्रबन्धन निगम

पजाब की सरकार ने १ फरवरी १९५३ को पजाब अर्थ-प्रबन्धन निगम की स्थापना की। इस निगम का प्रधान कार्यालय जालन्धर मे है। इसकी अधिकृत पूंजी ३ करोड रुपये है और निर्गमित पूंजी १ करोड रुपया है जिसका नय इस प्रकार है —

(१) पजाब सरकार	३० लाख रुपये
(२) रिजर्व बैंक	२० ,, ,,
(३) अनूसूचित बैंक तथा बीमा कम्पनियाँ	३० ,, ,,
(४) जनता	२० ,, ,,

इस निगम का उद्देश्य लघु एव माध्यमिक उद्योगो को दीर्घकालीन ऋण देना है। पजाब सरकार ने पूंजी की वापसी तथा ३ % लाभाश की गारण्टी दी है। इसके प्रबन्ध एव कार्यो के सम्बन्ध मे राज्य औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन निगम अधिनियम १९५१ लागू होगा। इस निगम के प्रबन्ध सचालक श्री एन० डी० नागिया है।

निगम प्रथम २ लाख रुपये पर ६ % ब्याज और २ लाख रुपये से अधिक पर ६॥ % ब्याज लेता है। मूलधन तथा ब्याज का निश्चित तिथियों पर भुगतान दने पर १॥ % की छूट दी जाती है।

पजाब निगम ने अपना कार्यक्षेत्र बढा रखा है क्योंकि दिल्ली मे कोई पृथक निगम नही है। इस प्रकार पजाब अर्थ प्रबन्धन निगम पजाब और दिल्ली दोनो मे कार्य करता है। पेप्सू राज्य के पजाब मे सम्मिलित हो जाने से पजाब राज्य का कार्यक्षेत्र और भी बढ गया है।

बम्बई राज्य मे अर्थ-प्रबन्धन निगम

बम्बई राज्य मे बम्बई के वित्त मत्री श्री जीवराव मेहता की घोषणानुसार राज्य अर्थ प्रबन्धन निगम की स्थापना ३० नवम्बर १९५३ को हो गई है। इसकी अधिकृत पूंजी ५ करोड रुपये है। इस पूंजी का नय राज्य सरकार, सयुक्त स्कन्ध बैंकों, बीमा कम्पनियों, सहकारी बैंको, विनियोग प्रन्यास **(Investment Trust)** तथा अन्य आर्थिक सस्थाओ ने किया है।

बम्बई राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम का प्रमुख कार्यालय बम्बई में है।

उद्देश्य

बम्बई राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम का उद्देश्य भी अन्य राज्य निगमो की भाँति राज्य के आर्थिक विकास के लिए आर्थिक सुविधाएँ प्रदान करना है।

कार्य

[१] औद्योगिक इकाइयो के ऋणपत्र खरीदना तथा उन्हे ऋण देना।

[२] औद्योगिक इकाइयो द्वारा 'स्टाक एक्सचेंज' मे लिए गये ऋण की गारण्टी देना।

[३] औद्योगिक इकाइयो के ऋणपत्र, बन्ध एव स्कन्धो (Stocks) के निर्गमन का अभिगोपन करना।

[४] औद्योगिक इकाइयो को कम से कम १०,०००) तथा अधिकतम् ५ लाख रुपये का ऋण देना।

ऋण देने की शर्तें

[१] स्थायी सम्पत्ति के शुद्ध मूल्य के ५ % राशि तक ऐसी सम्पत्ति की प्रथम वैधानिक प्राधि पर ऋण दिया जा सकेगा।

[२] ऋण अधिकतम् १० से १२ वर्ष तक के लिए दिया जायगा जिसका भुगतान किश्तों मे होगा। इन किश्तो की राशि एव ऋण की अवधि प्रत्येक उद्योग की योग्यता एव उसकी स्थिति के अनुसार निश्चित होगी।

[३] ब्याज की दर ६ % प्रतिवर्ष होगी।

[४] ऋण के लिए प्रस्तुत आवेदन-पत्रो पर ऋण की स्वीकृत देने के पूर्व निम्न बातों के आधार पर विचार होगा —

(अ) उद्योग की आर्थिक स्थिति,
(ब) प्रतिभूतियों की पर्याप्तता,
(स) लाभार्जन शक्ति,
(द) ब्याज तथा प्रभागो मे मूलधन के भुगतान करने की योग्यता,
(य) तान्त्रिक विशेषज्ञो एव प्रबन्धक व्यक्तियो की योग्यता एव अनुभव,
(र) आधुनीकरण, विस्तार एव विकास योजना की तान्त्रिक सुदृढता,
(ल) सम्पत्ति का स्वत्वाधिकार, तथा
(व) ऋण लेने वाले उद्योग की साख योग्यता।

उत्तर-प्रदेशीय अर्थ-प्रबन्धन निगम

२५ अगस्त १९५४ को उत्तर प्रदेशीय अर्थ-प्रबन्धन निगम की स्थापना हुई है। इसका प्रधान कार्यालय कानपुर मे है। इसकी अधिकृत पूँजी ३ करोड रुपया है। आरम्भ मे केवल ५० लाख रुपये के ५०,००० अशो का निर्गमन किया गया है। इन अशो का क्रय निम्न सस्थाओं के द्वारा इस प्रकार किया गया है —

(१)	राज्य सरकार	३६ %
(२)	अनुसूचित बैंक, बीमा कम्पनी आदि	३९ %
(३)	रिजर्व बैंक	१५ %
(४)	अन्य सस्थाएँ	१० %

उद्देश्य

निगम का मुख्य उद्देश्य लघु तथा माध्यमिक उद्योगो को आर्थिक सहायता देना है।

ऋण देने की शर्ते

यह निगम पजाब राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम की शर्तो के आधार पर बन्ध तथा ऋणपत्र बेचने का अधिकारी है। सचालक मण्डल को यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि किन उद्योगो को सहायता मिलनी चाहिए। सचालक मडल ही ऋण की न्यूनतम तथा अधिकतम मात्रा निर्धारित करेगा। ऋण नवीन तथा पुरानी दोनो ही कम्पनियो को दिए जायेगे। निगम द्वारा दिए गए ऋण पर ब्याज ६ % की दर से लिया जायेगा और निश्चित समय पर ऋण की किश्तो तथा ब्याज के भुगतान करने पर १२ % की छूट दी जायगी।

प्रबन्ध

नियम का प्रबन्ध एक सचालक सभा के द्वारा होगा। इसका प्रथम प्रबन्ध सचालक रिज़र्व बैंक की राय के अनुसार नियुक्त किया जायगा। निगम की कार्यक्षमता बढाने के लिए परामर्शदाता समितियाँ (Advisory Committees) नियुक्त की जायेगी।

राज्य निगमों की कठिनाइयाँ

निगम को पिछले वर्षों मे कुछ कठिनाइयो का सामना करना पडा है जिनका विवेचन इस प्रकार है .—

[१] भाग लेने वाली कम्पनियो की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाना बहुत कठिन होता है, क्योंकि ये कम्पनियाँ सर्वमान्य सिद्धान्तो के आधार पर अपना लेखा नही बनाती है। पिछले पांच या छ वर्षो के अप्रमाणित तथा अन-अकेक्षित (Non-Audited) खातो का विश्लेषण करना है।

[२] भाग लेने वाली कम्पनियाँ अधिकतर अपनी उत्पादन शक्ति, वास्तविक उत्पादन, तथा अनुमानित उत्पादन वृद्धि के सम्बन्ध मे पर्याप्त सूचना नही देती है। अत निगम ऐसी कम्पनियो को ऋण देने मे सकोच करता है।

[३] बहुत सी एकल स्वामित्वधारी तथा साझेदारी के व्यवसाय ऋण लेने के लिए पर्याप्त प्रतिभूति नही दे सके क्योंकि उनके स्वामित्व तथा स्थायी सम्पत्ति के मूल्याकन मे गडबडी होती थी।

[४] छोटे व्यवसायो की सफलता अधिकतर उनके स्वामियो के व्यक्तित्व पर आधारित होती है। यदि उनके स्वामियो मे परिवर्तन हो जाता है तो व्यवसाय की सफलता भी सन्देह मे पड जाती है। निगम को ऋण देते समय इस बात का ध्यान रखना पडता है।

[५] ऋण लेने वाली कम्पनियाँ निगम की सीमाओ व नाजुक परिस्थिति को नही समझती और वे अपने हित की पूर्ति के लिए जोर देती हैं। वास्तव मे देखा जाय तो मार्गेज बैंकिंग (Mortgage Banking) मे बहुत ही सावधानी व देख-रेख की जरूरत पडती है।

[६] केन्द्रीय सरकार तथा राज्य सरकारो द्वारा ग्रामीण उद्योग की उन्नति के लिए जो उत्तरोत्तर बल दिया जा रहा है वह भी किसी सीमा तक इन निगमो के क्षेत्र को सीमित करता है। सरकार की इस नीति के कारण निगम लघु स्तर के उद्योगो को अधिक सहायता नही दे पाते है। उदाहरणार्थ सरकार ने ग्रामीण तेल पेरने के कोल्हुओ को विकसित करने के उद्देश्य से लघु स्तर की आयल मिलो पर प्रतिबन्ध लगा दिया है।

[७] निगम के सामने ऋण लेने वाली कम्पनियो की वास्तविक स्थिति

का ज्ञान प्राप्त करना भी एक समस्या है। इस कार्य के लिए तात्रिक कुशल व्यक्ति चाहिए जिनका नितान्त अभाव है।

राज्य अर्थ-प्रबन्धन निगम (सशोधन) अधिनियम सन् १९५६

उपरोक्त कठिनाइयो के कारण राज्य निगमो को अधिक सफलता नही मिल रही थी। इन कठिनाइयो को दूर करने के उद्देश्य से सरकार ने अधिनियम मे सशोधन किया और ३० अगस्त १९५६ को राज्य अर्थ प्रबन्धन निगम (सशोधन) अधिनियम पास हो गया। इसके निम्न उद्देश्य थे —

[१] पिछले वर्षो मे अनुभव की गई कठिनाइयो को दूर करना।

[२] जो राज्य वित्तीय निगम की स्थापना करने मे असमर्थ है उनके हित के लिए सयुक्त अर्थ प्रबन्धन निगम को स्थापना करना।

[३] जिन लघु तथा कुटीर उद्योगो के पास प्रत्याभूति (Guarantee) देने के लिए उचित प्रतिभूतियाँ नही है उनको राज्य, सरकार, अनुसूचित बैंक अथवा सहकारी बैंक की प्रत्याभूति पर ऋण देना।

रिजर्व बैंक आफ इण्डिया एक्ट, १९३४ को ३० अप्रैल १९६० मे सशोधन किया गया है। इस सशोधन के अनुसार रिजर्व बैंक, स्टेट फाइनान्स कारपरेशन को केन्द्रीय सरकार अथवा राज्य सरकारो की प्रतिभूति (Security) पर ऋण अथवा अग्रिम १८ मास तक की अवधि के लिए दे सकती है। स्वीकृत की गई ऋण अथवा अग्रिम की कुल धनराशि किसी भी समय निगम की चुकता पूंजी के ६० % से अधिक नही होगी।*

औद्योगिक साख एव विनियोग निगम

Industrial Credit & Investment Corporation of India Ltd.

निजी क्षेत्र के उद्योगो को विशेष रूप से प्रोत्साहित करने के लिए 'औद्योगिक साख एव विनियोग निगम' की स्थापना ५ जनवरी १९५५ को की गई है। यह निगम विशुद्ध रूप मे निजी व्यक्तियो के स्वामित्व व प्रबन्ध मे है। यह निजी क्षेत्र के उद्योगो की आर्थिक सहायता, उनको ऋण देकर, ऋण की गारन्टी देकर तथा अशो का अभिगोपन करके करता है।

---

* Reserve Bank of India Bulletian, June 1960 P 822

१९५३ में भारत सरकार तथा विश्व बैंक द्वारा नियुक्त तीन व्यक्तियों के मण्डल (Three Men Mission) ने इङ्गलैंड के 'औद्योगिक तथा व्यापारिक वित्त निगम' (I. & C Corporation) के आधार पर उपरोक्त निगम को स्थापित करने का निश्चय किया था क्योंकि भारतीय औद्योगिक अर्थ-प्रबन्धन निगम (I. F C.) अर्ध सरकारी होने के कारण उद्योगों की दीर्घकालीन आवश्यकताओं की पूर्ति इतनी कुशलता से न कर सका जितना इसे करना चाहिये था। फरवरी १९५४ में विश्व बैंक का एक प्रतिनिधि तथा अमेरिका के वित्त निगमों के दो प्रतिनिधि भारत में आये। निगम की स्थापना के ध्येय से भारतीय सरकार के प्रतिनिधियों तथा बम्बई, मद्रास, कलकत्ता तथा दिल्ली के उद्योगपतियों की सलाह से 'स्टीयरिंग कमेटी' (Steering Committee) नियुक्त की गई। इस समिति में ५ सदस्य थे जिनमें से २ सदस्य संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U. S A.) तथा संयुक्त राज्य (U. K), विदेशी विनियोक्ताओं तथा विश्व बैंक की सहायता प्राप्त करने के लिए गए। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप निगम का रजिस्ट्रेशन जनवरी १९५५ में भारतीय प्रमण्डल अधिनियम (Indian Companies Act) के अन्तर्गत हुआ। इसका प्रमुख कार्यालय बम्बई में है।

पूँजी का ढाँचा

निगम की अधिकृत पूँजी २५ करोड रुपये है जो सौ-सौ रुपये के ५ लाख साधारण अंशों तथा सौ-सौ रुपये के २० लाख अवर्गीय अंशों (Unclassified Shares) में विभाजित है। निगम की चुकता पूँजी ५ करोड रुपये है जो सौ-सौ रुपये वाले ५ लाख साधारण अंशों में विभाजित है। अंशों का निर्गमन सम मूल्य (Par-value) पर किया गया है और उसके धारियों को प्रति अंश पर एक मत (वोट) देने का अधिकार है। निर्गमित पूँजी का क्रय विभिन्न संस्थाओं के द्वारा इस प्रकार किया गया है —

(१) भारतीय बैंक, बीमा कम्पनियाँ तथा विनियोक्ता वर्ग आदि	३½ करोड रु०
(२) ब्रिटिश ईस्टर्न एक्सचेंज बैंक तथा अन्य औद्योगिक संगठन आदि	१ करोड रु०
(३) अमरीकी विनियोक्ता-गण	५० लाख रु०
योग	५ करोड रुपये

अमेरिकन विनियोक्तागणो मे 'रौकफैलर ब्रदर्स' 'वेस्टिंग हाउस इलेक्ट्रीकल इन्टरनेशनल कम्पनी' तथा 'मेसर्स आलिन मैथीसन केमिकल कारपोरेशन' सम्मिलित है।

भारत सरकार ने निगम को ७½ करोड रुपये का ऋण बिना ब्याज के दिया है जिसका भुगतान १५ वार्षिक किस्तो मे ऋण देने की तिथि के १५ वर्ष पश्चात् होगा। विश्व बैंक (I B R D) ने भी निगम को समय समय पर विविध मुद्राओ मे १० मि० डालर के बराबर ऋण देना स्वीकार किया है। ऋण के मूलधन ब्याज तथा अन्य व्ययों की गारन्टी भारतीय सरकार ने मार्च १९५५ मे दी है। ऋण की अवधि ५ वर्ष तथा ब्याज की दर ४॥% है। जीवन बीमा के राष्ट्रीयकृत हो जाने के कारण भारतीय सरकार के स्वामित्व व अधिकार में पूंजी का लगभग १८% भाग आ गया है। परन्तु सरकार इसका दुरुपयोग नही करना चाहती है।

उद्देश्य (Objects)

निगम की स्थापना भारतीय निजी क्षेत्र के उद्योगो को सहायता पहुँचाने के उद्देश्य से हुई है जो निम्न प्रकार से दी जायगी —

[१] निजी उद्योग के निर्माण, विस्तार तथा आधुनिकता मे सहायता देना।

[२] ऐसे उद्योगो के आन्तरिक तथा वाह्य निजी पूंजी के विनियोग तथा सहभागिता को प्रोत्साहित करना तथा बढावा देना।

[३] औद्योगिक विनियोगो मे निजी स्वामित्व को प्रोत्साहित करना तथा विनियोग बाजार के क्षत्र को विस्तृत करना।

उपरोक्त उद्देश्यो की पूर्ति के हेतु सहायता निम्न रूप मे दी जायगी —

(अ) उद्योगो को दीर्घकालीन या मध्यकालीन ऋण देकर अथवा उनके सामान्य अशो (Equity Shares) का क्रय करके,

(ब) अशो एव प्रतिभूतियो (Securities) के नवीन निर्गमन को प्रोत्सासित करके अथवा उनका अभिगोपन करके,

(स) अन्य व्यक्तिगत विनियोग स्रोतो के प्राप्त ऋणो की गारन्टी देकर,

(द) चक्रित विनियोगो (Revolving-Investments) द्वारा पुन विनियोग के लिए पूंजी उपलब्ध करके, तथा

(य) भारतीय उद्योगों को प्रबन्धकीय, तान्त्रिक तथा प्रशासकीय सलाह देकर और उन्हे प्रबन्धकीय, तान्त्रिक एवं प्रशासकीय सेवाएँ (Services) प्राप्त करने मे सहायता देकर।

निगम द्वारा अतिरिक्त पूंजी प्राप्त करने के साधन

निगम के पार्षद अन्तर्नियम के क्लाज़ १० के अनुसार निगम अवर्गीय अंशों को साधारण सभा की स्वीकृति से अथवा सचालक गणो द्वारा साधारण सभा म स्वीकृत नियमों के अनुसार निर्गमित कर सकता है।

निगम बाहर मे ऋण ले सकता है यदि उधार लिया हुआ धन निम्नराशि के तिगुन से अधिक नहीं हो —

[१] वास्तविक पूंजी (Unimpaired Capital),

[२] भारतीय सरकार से लिया गया अदत्त अग्रिम (Outstanding Advance), तथा

[३] निगम की अतिरेक राशि (Surplus) तथा सचित कोष।

निगम का प्रबन्ध

औद्योगिक साख एव विनियोग निगम (I. C. I C.) का प्रबन्ध एक सचालक समिति के हाथ मे होगा जिसमे ११ सदस्य होंगे। इनमें ७ भारतीय, २ ब्रिटिश, एक अमरीकी और एक वाणिज्य एव उद्योग मन्त्रालय की ओर से होगा। प्रारम्भिक सचालकगण 'स्टीयरिंग समिति' के ही सदस्य है। इस निगम के जनरल मैनेजर 'बैंक आव इगलैंड' के मुख्य कोषाध्यक्ष श्री पी० एस० बीले (Mr P S. Beale) है। इन महोदय की नियुक्ति का अनुमोदन भारतीय, ब्रिटिश तथा अमरीकी सभी विनियोक्ताओ ने किया है। निगम के चेयरमैन डाक्टर रामास्वामी मुदालियर तथा सदस्य सर्व श्री ए० डी० श्रॉफ, घनश्यामदास बिड़ला, कस्तूरभाई, लालभाई आदि हैं।

निगम के प्रति भारतीय सरकार के अधिकार

निगम तथा भारतीय सरकार के मध्य हुए समझौते के अनुसार सरकार को निम्न अधिकार प्राप्त है —

[१] सरकार निगम की समाप्ति के लिए आवेदन पत्र दे सकती है यदि वह (निगम) अपना पुनर्भुगतान करने मे असमर्थ हो जाता है अथवा उसकी पूँजी एक निश्चित मात्रा से कम हो जाती है।

[२] सरकार निगम की संचालक सभा में उस समय तक के लिए संचालक नियुक्त कर सकती है जब तक सरकार द्वारा निगम को दिये गये ऋण का पूर्ण भुगतान नहीं हो जाता है।

[३] सरकार निगम के व्यक्तिगत लाभ को रोकने के लिए उचित कार्यवाही कर सकती है।

निगम की क्रियाओं का ब्यौरा

यद्यपि औद्योगिक साख एवं विनियोग निगम की स्थापना ५ जनवरी सन् १९५५ को ही हो गई थी परन्तु इसने अपना कार्य १ मार्च सन् १९५५ से प्रारम्भ किया। निगम के प्रारम्भ सन् १९५५ से लेकर सन् १९५९ के अन्त तक ५९ कम्पनियों के लिए स्वीकृत की गई वित्तीय सहायता २०·४० करोड़ रुपए थी। सन् १९५८, सन् १९५७ और सन् १९५६ के अन्त तक यही सहायता क्रमश १३ ३७ करोड़ रुपए, ११·६५ करोड़ रुपये तथा ६·०१ करोड़ रुपए थी और कम्पनियों की संख्या क्रमश ४४, २८ तथा ११ थी।

सन् १९५९ के अन्त तक स्वीकृत किए गए २०·४० करोड़ रुपए में से १०·२४ करोड़ रुपए (लगभग ५० %) ऋण और गारन्टी के रूप में थे। ८·३० करोड़ रुपए साधारण तथा पूर्वाधिकारी अंशों के अभिगोपन (Under Writing) कार्य के लिए थे। शेष १·८६ करोड़ रुपये साधारण तथा पूर्वाधिकारी अंशों का क्रय करके दिए गए।

निगम ने अपनी क्रियाओं में और अधिक प्रसार किया है और पहली बार सन् १९५८ में विदेशी मुद्रा में ऋणों को बाँटा है। सन् १९५९ के अन्त तक स्वीकृत किए गए ऋणों में से ६·७४ करोड़ रुपए (कुल ऋण का ६६ %) विदेशी मुद्रा में तथा ३·५५ करोड़ रुपए (कुल का ३४ %) के ऋण देशी मुद्रा में दिए गए।

कारपोरेशन की कुल आय १९५९ में ५७ लाख रुपए थी। यही आय सन् १९५८, १९५७ और १९५६ में क्रमश ५७ लाख, ५४ लाख और ४७ लाख रुपए थी। संस्थापन तथा अन्य व्यय (७·२९ लाख रुपए) तथा करों के लिए प्रावधान (२२·४३ लाख रुपए) करने के पश्चात् कारपोरेशन को २८·३३ लाख रुपए का शुद्ध लाभ (Net Profit) हुआ जो कि पिछले वर्ष (२५·२२ लाख रुपए) की अपेक्षा में ३·५१ लाख रुपए अधिक था।*

* Reserve Bank of India Bulletin, April 1960.

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम
(National Industrial Development Corporation)

राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (N. I. D. C.) की स्थापना २० अक्तूबर १९५४ को १ करोड रुपये की चुकता पूँजी (जो कि पूर्णतया भारत सरकार के द्वारा दी गई है) से की गई है। यह निगम एक राजकीय सस्था है और इसका पूर्ण स्वामित्व और नियन्त्रण सरकार के हाथ मे है। देश मे शीघ्रातिशीघ्र औद्योगीकरण करने के उद्देश्य की पूर्ति ही इस निगम की स्थापना का मुख्य कारण है। उपभोक्ता उद्योगों के क्षेत्र मे निजी साहस (Private Enterprize) थोडी-सी ही वाह्य सहायता से सम्पूर्ण देश की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है। परन्तु जहाँ तक आधारभूत उद्योगों (Basic Industries) तथा मुख्य उद्योगो (Key Industries) की स्थापना एव विकास का प्रश्न है निजी क्षेत्र के बस की बात नही। इसके लिए सरकार को स्वय प्रबन्ध करना पडेगा।

इस निगम की स्थापना की बात सर्वप्रथम तत्कालीन व्यापार एव उद्योग मत्री श्री टी० टी० कृष्णामाचारी ने सोची थी और अक्तूबर १९५३ मे योजना आयोग के डिप्टी चेयरमैन श्री वी० टी० कृष्णामाचारी ने राष्ट्रीय विकास समिति (National Development Council) की बैठक मे घोषणा की कि पचवर्षीय योजना के एक अंग के रूप मे एक औद्योगिक विकास निगम की स्थापना की जायगी। इस निगम का मुख्य उद्देश्य अन्य निगमो की भाति उद्योगों का अर्थ-प्रबन्धन करके, उनके विकास एव स्थापना के साधनो को जुटाना होगा। निजी साहस को यद्यपि ऐसा करने मे अधिक सफलता मिलने को आशा नही है परन्तु वह अपने विनियोगो, अनुभव एव योग्यता (Experience and Knowledge) के द्वारा सहायता पहुँचा सकता है। यह निगम अपने उद्देश्य की पूर्ति मे निजी साहस के सहयोग को सहर्ष स्वीकार करेगा और उसका सदुपयोग करेगा।

पूँजी एवं आर्थिक साधन

विकास निगम की स्थापना के पूर्व उसकी जश पूँजी १५० करोड रुपया रखने का विचार था परन्तु अब इसकी स्थापना केवल १ करोड रुपये की पूँजी तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राप्त ऋणो के साथ की गई है। निगम को अपने आर्थिक साधन बढ़ाने के लिए अशो एव ऋण पत्रो के निर्गमन करने

का अधिकार है। यह केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों, बैंको, कम्पनियों तथा व्यक्तियो से अनुदान (Grants), ऋण (Loans), अग्रिम (Advances) या निक्षेप (Deposits) स्वीकार कर सकता है।

निगम की वित्तीय आवश्यकताओ की पूर्ति सरकार दो प्रकार से करेगी—

(१) औद्योगिक परियोजनाओं (Industrial Projects) के अध्ययन, अनुसधान तथा औद्योगिक निर्माण के निर्णय तथा आवश्यक तान्त्रिक एव प्रबन्धकीय कर्मचारियो के दल (A Çorps of Technical and Managerial Staff) को तैयार करने के लिये वार्षिक अनुदान (Grants) देकर, तथा

(२) प्रस्तावित प्ररियोजनाओ (Projects) के निर्माण के समय आवश्यक ऋण देकर।

उद्देश्य

विकास निगम मुख्यतया एक सरकारी सस्था है जिसका उद्देश्य उद्योगो की स्थापना एव विकास करना है, न कि लाभोपार्जन करना। यह न केवल सार्वजनिक क्षेत्र (Public Sector) का ही विस्तार करेगा, बल्कि निजी क्षेत्र को भी प्रोत्साहित करेगा। द्वितीय पचवर्षीय योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिये इस निगम की पूर्व-स्थापना परमावश्यक समझी गई थी, क्योंकि द्वितीय पचवर्षीय योजना मे देश की सुरक्षा एव उन्नति हेतु देश के शीघ्रातिशीघ्र औद्योगीकरण पर विशेष जोर दिया गया है जो कि औद्योगिक विकास निगम जैसी दीर्घकालीन साख सस्था की स्थापना के बिना सम्भव नही था। इस निगम को स्थापित करने का दूसरा कारण यह था कि इससे राष्ट्रीय सरकार द्वारा घोषित मिश्रित आर्थिक नीति (Mixed-Economy) की पूर्ति होती थी। सरकार नवीन उद्योगों का निर्माण करके निजी व्यक्तियो को बेच देगी उस धन से फिर नवीन उद्योगों का निर्माण करेगी।

अपने इन उद्देश्यो की पूर्ति निगम निम्न सुविधाएँ प्रदान करके करेगा —

[१] उद्योगो को आवश्यक मशीनरी तथा प्लान्ट प्रदान करना तथा आधारभूत उद्योगो का प्रवर्तन एव निर्माण करना।

[२] देश के औद्योगिक विकास मे सहायक वर्तमान निजी उद्योगो को तान्त्रिक एव इन्जीनियरिंग सेवाएँ प्रदान करना तथा यदि आवश्यक हो तो पूंजी देना।

[३] निजी साहस (Private Enterprize) को सरकार द्वारा स्वीकृत /

औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक तात्रिक, इन्जीनियरिंग, आर्थिक अथवा अन्य सुविधाएं प्रदान करना।

[४] प्रस्तावित औद्योगिक योजनाओं की पूर्ति के लिए आवश्यक अध्ययन करना, उनको तात्रिक, इन्जीनियरिंग, आर्थिक अथवा अन्य सुविधाएँ प्रदान करना।

इस उद्देश्य से निगम के बोर्ड ने २३ अक्तूबर १९५४ को हुई अपनी पहली बैठक में उद्योगों की अस्थायी (Provisional) सूची तैयार की, जिसका अध्ययन करके निगम को यह ज्ञात हो जाय कि नवीन औद्योगिक विकास किस सीमा तक आवश्यक है और वर्तमान उद्योगों को किस सीमा तक बढ़ाना चाहिए। निगम के बोर्ड ने इस बात को स्वीकार किया कि देश के शीघ्र औद्योगीकरण के लिए सुव्यवस्थित तात्रिक सहायता के प्रावधान (Provision) की आवश्यकता है। अतः उसमें योग्य सलाह देने वाले इन्जीनियरों की संस्था (Competent Firm of Consulting Engineers) स्थापित करने की आवश्यकता पर जोर दिया।

चुने हुए उद्योग जिनकी अस्थायी सूची तैयार की गई है, इस प्रकार है —

[१] मिश्र लौह मैंगनीज और फैरोक्रोम
[२] अल्मानियम
[३] ताबा जस्ता तथा अलौह धातुएँ
[४] डीजल इंजिन, इंजिन और जेनरेटर
[५] भारी रसायन
[६] खाद और उवरक
[७] कोयला और कोलतार
[८] मेथानोल एवं फार्मेल्डीहाइड
[९] कारबन ब्लैक
[१०] कागज अखबारी कागज आदि बनाने के लिए लकड़ी की लुग्दी
[११] कृत्रिम दवाइयाँ, विटामिन्स एवं हारमोन्स
[१२] एक्सरे तथा डाक्टरी सामान आदि
[१३] हार्डबोर्ड, कन्सूलेशन बोर्ड आदि
[१४] कुछ उद्योगों जैसे जूट, कपास, वस्त्र, चीनी, कागज, सीमेंट रासायनिक, छपाई, खान, आदि के लिए आवश्यक मशीनरी तथा सामग्री का निर्माण करना।

आर्थिक सहायता देने के प्ररूप

विकास निगम किसी भी प्रकार के औद्योगिक व्यवसाय को आर्थिक *सहायता* दे सकता है, *चाहे वह सरकार के नियन्त्रण अथवा स्वामित्व म हो,* वैधानिक सस्था (Statutory Body) हो, कम्पनी हो, फर्म हो या एकाकी व्यवसाय हो। उद्योगों को सहायता पूंजी, साख, मशीनरी, साजसज्जा (Equipment) या अन्य किसी भी रूप मे दी जा सकती है। निगम उद्योगो को आर्थिक सहायता विभिन्न रूपों में दे सकता है। उदाहरणार्थ यह उद्योगो को ऋण व अग्रिम (Loans and Advances) स्वीकार कर सकता है, उनके अशो व ऋण–पत्रो का क्रय व अभिगोपन कर सकता है तथा उनके ऋणो और अग्रिम पर गारण्टी दे सकता है।

निगम के अधिकार

विकास निगम को कुछ अधिकार प्रदान किये गये है जिससे वह अपने सम्बन्धित उद्योगो पर नियन्त्रण रख सके। वह किसी भी उद्योग मे अपने सचालक नियुक्त करके उसका प्रबन्ध, नियन्त्रण तथा निरीक्षण कर सकता है। वह किसी भी सार्थ मे साझेदार या अन्य किसी भागी के रूप मे सम्मिलित रूप से कार्य कर सकता है। वह किसी ऐसी सार्थ का प्रवर्तन तथा निर्माण भी कर सकता है जिसका उद्देश्य अन्य सार्थो को स्थापित करना अथवा उनका सचालन करना होता है।

प्रबन्ध (Management)

विकास निगम का प्रबन्ध एक सचालक समिति (Board of Directors) के द्वारा होता है। इस समिति मे कम से कम १५ सदस्य और अधिक से अधिक २५ सदस्य हो सकते हैं। ये सदस्य उद्योगपति, वैज्ञानिक तथा इन्जीनियर्स होते हैं जो कि भारत सरकार द्वारा मनोनीत (Nominate) किये जाते हैं। इस प्रकार निगम का सचालन सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के सम्मिश्रण से होता है। वतमान सचालन समिति के २० सदस्य है जिनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार ने इस प्रकार की है —*

* Modern Review, November, 1954.

उद्योगपति	१०
अधिकारी (Officials)	५
इन्जीनियर्स	४
वाणिज्य एव उद्योग मन्त्री (चेयरमैन)	१
	२०

निगम की क्रियाएँ

औद्योगिक विकास निगम की सचालक सभा की प्रथम बैठक सितम्बर १९५५ मे हुई। इस बैठक मे कुछ औद्योगिक विकास की योजनाएँ स्वीकृत की गईं तथा उन योजनाओ का पर्यवेक्षण भी प्रारम्भ कर दिया गया। निगम ने भारतीय जूट उद्योग के पुनर्स्थापन तथा आधुनीकरण के लिए आर्थिक सहायता प्रदान करने के लिए आवश्यक साधन जुटाने का निश्चय भी कर लिया। इसने एक समिति, जिसके सदस्य अधिकतर उद्योगो से सम्बन्धित थे, की स्थापना की और निश्चय किया कि इस समिति की सिफारिशो के आधार पर स्वीकृत मिलो को केवल ४॥ % ब्याज पर दीर्घकालीन ऋण दिया जायगा।

जूट उद्योग की सात मिलो को आधुनीकरण के लिए राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम ने १·३६ करोड रुपए का ऋण दे दिया है और ८ अन्य मिलो के लिए १·५८ रुपये का ऋण निगम के विचाराधीन है। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि उपरोक्त ऋणो के द्वारा तथा जूट उद्योग के आन्तरिक साधना के द्वारा सम्पूर्ण जूट उद्योग की लगभग आधी पुरानी मशीनो का आधुनीकरण हो जायगा।*

निगम ने कुछ अन्य उद्योगो की स्थापना करने का भी निश्चय किया है। ये उद्योग स्टील फाउण्ड्रीज फोर्जेज, प्रिंटिंग मशीनरी, एयर कम्प्रेसर्स (Air Compressors), कागज की लुग्दी, कार्बन इत्यादि है।

निगम के सचालको ने २३ मार्च १९५६ को दिल्ली मे हुई बैठक मे सरकार के सम्मुख कुछ महत्वपूर्ण सुझाव रखे। इन सुझावो मे से एक सुझाव 'सिन्थेटिक रबड प्लान्ट, (Synthetic Rubber Plant) के सम्बन्ध मे भी था।

---

* *Indian Finance*, August 2, 1958, p. 175.

निगम ने भारतीय सरकार के सामने तीन योजनाओं के पर्यवेक्षण कराने का सुझाव रखा। ये योजनाएँ निम्न चीज़ों के निर्माण से सम्बन्धित थीं :—

(अ) औद्योगिक मशीनरी तथा प्लान्ट;
(ब) एल्यूमिनियम, तथा
(स) एलीमेन्टल फास्फोरस (Elemental Phosphorus)

निगम ने यह भी निश्चय किया है कि 'स्ट्रक्चरल-कम-मशीनशाप' (Structural Cum-Machineshop) भिलाई में तथा 'स्ट्रक्चरल शाप' दुर्गापुर में स्थापित किए जायेंगे। निगम ने सूती वस्त्र उद्योग के पुनर्स्थापन तथा आधुनीकरण करने के सम्बन्ध में आर्थिक सहायता की समस्या पर विचार किया। सचालक सभा की एक समिति वस्त्र उद्योग से प्राप्त ऋण आवेदन पत्रों पर विचार करने के लिए स्थापित की गई। यह उपसमिति 'टेक्सटाइल कमिश्नर' के कार्यालय के पर्यवेक्षण दल की सहायता से कार्य करेगी।

द्वितीय पचवर्षीय योजना में कार्य-क्रम

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निगम की क्रियाओं के लिए ५५ करोड़ रुपये की धनराशि का प्रावधान किया गया है। इस धनराशि का एक भाग (लगभग २० या २५ करोड़ रु०) सूती वस्त्र उद्योग तथा जूट उद्योग के आधुनीकरण की योजनाओं को सफल बनाने में खर्च किया जायगा। शेष धनराशि नवीन आधारभूत तथा मुख्य उद्योगों के निर्माण तथा प्रवर्तन में खर्च की जायगी।

राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम

(National Small Industries Corporation Private Ltd.)

भारतीय सरकार ने फरवरी सन् १९५५ में लघु उद्योगों की उन्नति, सरक्षण, आर्थिक तथा अन्य सहायता के लिए 'राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम' की स्थापना की है। यह निगम केवल उन्हीं उद्योगों को आर्थिक सहायता देगा जिसमें ५० से कम व्यक्ति काम करते हों और शक्ति (Power) का प्रयोग होता हो और शक्ति का प्रयोग न होने पर १०० व्यक्ति कार्य करते हों। इन उद्योगों की पूँजी ५ लाख रुपये से अधिक न होनी चाहिए। निगम की स्थापना लघु उद्योगों पर अन्तर्राष्ट्रीय विशेषज्ञों के दल 'फोर्ड फाउन्डेशन' की सिफारिश पर हुई है।

निगम की पूँजी

निगम की स्थापना २० लाख रुपये की अधिकृत पूँजी से निजी सीमित कम्पनी के रूप में हुई है। इसे केन्द्रीय सरकार से आवश्यकतानुसार अतिरिक्त आर्थिक सहायता मिलती रहेगी। निगम का मुख्य कार्यालय दिल्ली में है।

निगम के उद्देश्य

(१) केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के समय समय पर निकलने वाले सप्लाई सम्बन्धी टेन्डरों को दिलाना।

(२) ऐसे उद्योगों को आर्थिक, तान्त्रिक तथा शिल्पक सहायता पहुँचाना जिससे दिए गए आदेश निश्चित प्रमापित (Standard) तथा नमूने (Specification) के अनुसार हों।

(३) लघु तथा बडे पैमाने के उद्योगों में सामञ्जस्य लाना, जिससे लघु उद्योग बडे पैमाने के उद्योगों के सहायक व पूरक के रूप में कार्य कर सकें और उनकी आपसी प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जावे।

निगम की क्रियाएँ

निगम ने राज्य सरकारों की सिफारिश पर 'डाइरेक्टर-जनरल आव सप्लाइज एण्ड डिस्पोज़ल्स' की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए अपने द्वारा रजिस्टर्ड लघु उद्योगों को आदेश दिए हैं। प्रारम्भ में २०० वस्तुओं से अधिक के आदेश कुटीर तथा उद्योगों के लिए सुरक्षित (Reserve) किए गए थे। १९५५-५६ में निगम ने लघु उद्योगों के लिए ४,६८,५९५) रु० के आदेश प्राप्त किए। इन आदेशों की पूर्ति मई १९५६ में प्रारम्भ होनी थी।

निगम ने तीन 'चल विक्रय गाड़ियाँ' (Mobile Sales Vans) दिल्ली क्षेत्र की ३०० वस्तुओं का क्रय करने के लिए चालू कर दी हैं। इसके अतिरिक्त आगरा के लघु उद्योगों द्वारा निर्मित जूतों का विक्रय करने के लिए आगरा में एक थोक की दुकान (Whole-sale Depot) खोली गई है। अलीगढ़ के तालों तथा खुर्जा के बर्तनों को बेचने के उद्देश्य से एक दूसरी दुकान खोलने के लिए प्रयत्न किए जा रहे हैं।

निगम ने सीमित आर्थिक साधनों वाले उद्योगों को मशीन तथा साज-सज्जा (Equipment) खरीदने में सहायता देने के उद्देश्य से मशीन इत्यादि को क्रयावक्रय (Hire-Purchase) पद्धति पर सप्लाई करने की योजना लागू कर दी है।

निगम की क्रियाओ को और विस्तृत करने के लिए चार और शाखाएँ, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास और दिल्ली मे खोली जायँगी। सब राज्यो मे कार्यक्रम प्रसारित करने के उद्देश्य से 'उद्योग सेवा सस्थाओ' की सख्या ४ से बढाकर २० कर दी जावेगी।

प्रथम पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत कुटीर एव लघु उद्योगो पर कुल व्यय इस प्रकार किया गया है —

सन् १९५१–५६

हाथ कर्घा	११·१ करोड रुपये
खादी	७·४ ,, ,,
ग्राम उद्योग	४·१ ,, ,,
लघु उद्योग	५·३ ,, ,,
हस्त शिल्प	१·० ,, ,,
सिल्क एव सेरीकल्चर	१·३ ,, ,,
योग	३०·२ करोड रुपये

द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत लघु उद्योगो के विकास के लिए २०० करोड रुपए की व्यवस्था की गई है। इसका आवटन विभिन्न उद्योगो मे इस प्रकार होगा —

(१) हाथ कर्घा	५९·५ करोड रुपये
(२) खादी	१६ ७ ,, ,,
(३) ग्राम उद्योग	३८ ८ ,, ,,
(४) दस्तकारियाँ	९·० ,, ,,
(५) लघु उद्योग	५५·० ,, ,,
(६) अन्य उद्योग	६·० ,, ,
(७) सामान्य योजनाएँ, प्रशासन, शोध आदि	१५·० ,, ,,
	२०० ० करोड रुपये

तृतीय पचवर्षीय योजना मे ६०० करोड रुपये कुटीर, लघु एव मध्यम वर्ग के उद्योगो के विकास के हेतु आवटित किए गए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम

(International Finance Corporation)

निजी व्यवसाय (Private Enterprize) को विशेष रूप से आर्थिक सहायता प्रदान करने के उद्देश्य से जुलाई सन् १९५६ मे अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I. F C.) की स्थापना की गई। यह सार्वजनिक अन्तर्राष्ट्रीय सगठन है और इसे अनेक देश की सरकारो का सहयोग प्राप्त है। इसका सम्बन्ध विश्व बैंक (I. B R. D) से होते हुए भी इसका वैधानिक अस्तित्व पृथक है। इस निगम के सदस्य केवल वे ही देश हो सकते है जो विश्व बैंक के सदस्य है। इस समय तक ३२ देश इसके सदस्य हो चुके हैं।

पूंजी

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I. F. C.) की अधिकृत पूंजी १०० मिलियन डालर है, जिसमे १० अगस्त १९५६ तक ७८·४ मिलियन डालर पूंजी ३२ सदस्य देशो द्वारा क्रय की जा चुकी है। भारतवर्ष ने ४·४३ मिलियन डालर पूंजी का क्रय किया है और क्रय करने वाले बड़े देशो मे इसका चौथा स्थान है।

प्रमुख देशो द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I. F. C.) द्वारा क्रय की गई पूंजी का ब्यौरा निम्न तालिका मे दिया गया है —

देशो का नाम	धन राशि (हजार डालरो मे)
सयुक्त राज्य अमेरिका (U.S A)	३५,१६८
इगलैंड	१४,४००
फ्रास	५,८१५
भारतवर्ष	४,४३०
जर्मनी	३,६५५
कनाडा	३,६००
जापान	२,७६८
आस्ट्रेलिया	२,२१५
पाकिस्तान	१,१०८
स्वीडन	१,१०८

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I F. C.) को अपने अंशो (Shares) एवं स्कन्धो (Stocks) को बेच कर आर्थिक साधन बढाने का अधिकार है परन्तु प्रारम्भिक वर्षो मे उसका (I. F C) ऐसा करने का विचार नही है। अत उसके विनियोग करने के आर्थिक साधन इस समय केवल चुकता पूँजी तक ही सीमित हैं।

निगम के उद्देश्य (Objectives of Corporation)

निगम का उद्देश्य अपने सदस्य देशो की आर्थिक उन्नति, उत्पादनशील निजी व्यवसायो को बढावा देकर करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति वह (I. F C.) निम्न प्रकार से करेगा —

(१) जहाँ निजी पूँजी पर्याप्त मात्रा मे उपलब्ध न हो या उचित शर्तो (Terms) पर प्राप्त न हो रही हो, उस अवस्था मे यह निगम निजी व्यवसायो मे स्वय विनियोग करके,

(२) विनियोग सम्बन्धी सुअवसरो (Opportunities), निजी पूँजी (देशी तथा विदेशी) तथा कुशल प्रबन्ध को एकत्रित करके यह निगम निकास गृह (Clearing House) की तरह कार्य करके, तथा

(३) देशी तथा विदेशी निजी पूँजी के उत्पादनशील विनियोग को प्रोत्साहित करके।

निगम का प्रबन्ध

अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I. F. C) के सभी देश सदस्य हो सकते हैं जो विश्व बैंक (I. B. R. D) के सदस्य है। निगम के डाइरेक्टर विश्व बैंक के एक्जीक्यूटिव डाइरेक्टर, जो कम से कम एक ऐसी सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं, जो अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (I F C) के सदस्य हैं, निगम के डाइरेक्टर के रूप मे कार्य करेंगे। विश्व बैंक का अध्यक्ष (President) निगम (I F. C.) की सचालक सभा (Board of Directors) का (Ex-Officio) चेयरमैन होता है।

निगम का अध्यक्ष भी होता है जिसकी नियुक्ति चेयरमैन की सिफारिश पर सचालक सभा द्वारा की जाती है।

विनियोग प्रस्ताव की योग्यता

(१) निगम केवल उन विनियोग प्रस्तावो पर विचार करेगा जिनका उद्देश्य उत्पादनशील निजी व्यवसायो की स्थापना, विस्तार एव उन्नति करना

है और जो उस देश की, जिसमें निजी व्यवसाय स्थापित है, आर्थिक उन्नति मे सहायता करेंगे।

(२) निगम केवल उन्ही व्यवसायो को सहायता प्रदान करेगा जो कि सदस्य देशो अथवा सदस्य देशो के आश्रित प्रदेशो (Territories) मे स्थित होगे। प्रारम्भिक वर्षो मे निगम केवल उन्ही सदस्य देशो अथवा उनके आश्रित उपनिवेशो मे विनियोग करना चाहता है जो आर्थिक दृष्टिकोण से कम विकसित है।

(३) निगम आर्थिक सहायता निजी विनियोक्ताओ के साथ दिया करेगा अर्थात् निगम भी उसी समय आर्थिक सहायता प्रदान करेगा जबकि निजी पूँजी का विनियोग हो रहा हो। निगम को पूर्णतया यह विश्वास हो जाना चाहिये कि नवीन व्यवसाय मे निजी विनियोक्तागण अपने आर्थिक साधनो का विनियोग अधिक से अधिक कर रहे है और शेष धनराशि अन्य निजी साधनो मे उपलब्ध नही हो रही है उस अवस्था मे निगम स्वयं विनियोग करेगा।

(४) निगम अपनी क्रियाओ के प्रारम्भिक वर्षो में ऐसे विनियोग प्रस्तावो पर विचार करेगा जहाँ —

(अ) किसी भी व्यवसाय मे नवीन विनियोग कम से कम ५ लाख डालर (अमेरिकन) या उसके बराबर हो, तथा

(ब) निगम मे माँगी हुई सहायता कम से कम १ लाख डालर (अमेरिकन) या उसके बराबर हो।

निगम ने अभी तक किसी एक विनियोग की अधिकतम सीमा निर्धारित नही की है। उसकी साधारण नीति कुछ विशालकाय व्यवसायो मे अधिक मात्रा के विनियोग न करके अधिक से अधिक व्यवसायो मे कम मात्रा वाले विनियोग करना है।

(५) औद्योगिक, कृषि सम्बन्धी, आर्थिक, व्यापारी तथा अन्य निजी व्यवसाय निगम (I. F. C) से आर्थिक सहायता पाने के योग्य हैं, यदि वे प्रकृति मे उत्पादनशील हैं। परन्तु निगम अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्षो मे केवल उन उद्योगो मे विनियोग करेगा जो विशिष्ट रूप मे औद्योगिक है। यह गृह-निर्माण, चिकित्सालयो, शिक्षालयो, या इसी प्रकार के अन्य व्यवसायो जो सामाजिक प्रकृति के हैं, तथा सार्वजनिक हित कार्यो जैसे विद्युत शक्ति, यातायात, सिंचाई, पुनर्निर्माण इत्यादि जोकि विश्व बैंक (I. B R. D.) मे

आर्थिक सहायता पाने के अधिकारी है, मे विनियोग नही करेगा। यह ऐसी क्रियाओ मे भी भाग नही लेगा जिनका उद्देश्य पुनर्भुगतान (Refunding) या पुन अर्थ-प्रबन्ध (Re-fanancing) है।

(६) निगम (I F. C.) केवल निजी व्यवसायो को ही आर्थिक सहायता देगा। यह ऐसे व्यवसायो मे विनियोग नही करेगा जो किसी सरकार (Government) के स्वामित्व मे है या सरकार द्वारा चालित (Operated) या प्रबन्धित (Managed) है।

आर्थिक सहायता प्रदान करने के प्ररूप व विधियाँ

निगम (I F C.) किसी भी रूप मे, जिसे वह उचित समझे विनियोग कर सकता है, परन्तु वह अशो व स्कन्धो (Stocks) के रूप मे विनियोग प्रत्यक्ष रूप से नही कर सकता है। इस अपवाद (Exception) के कारण निगम के विनियोग ऋण (Loans) के रूप मे ही सकते है परन्तु इन ऋणो के अन्तर्गत लौकिक स्थायी ब्याज वाले ऋण (Conventional Fixed Interest Loans) नही आते है। चूँकि निगम अपने विनियोगो को बेचकर निरन्तर अपने धन (Funds) को एक–दूसरे को हस्तान्तरित करने का विचार रखता है, अत वह प्रत्येक विनियोग के समय इस बात का ध्यान विशेष रूप से रखता है कि केवल उन्ही प्रतिभूतियो (Securities) का क्रय किया जाय जो निजी विनियोक्ताओ को अत्यधिक प्रिय हो।

ब्याज की दर

निगम (I. F. C) अपने विनियोगो (Investments) के लिए किसी सामान्य (Uniform) ब्याज की दर का पालन नही करता है। ब्याज की दर प्रत्येक विनियोग की अवस्था मे, जोखिम की मात्रा, लाभो मे भाग लेने के अधिकार, विनियोग का परिवर्तन (Conversion) कराने के अधिकार तथा अन्य सम्बन्धित परिस्थितियो के आधार पर निर्धारित की जाती है।

विनियोगों की अवधि तथा भुगतान विधि

निगम (I F. C.) द्वारा दिये ऋणो की अवधि ५ वर्ष से १५ वर्ष तक होती है। ऋणो के भुगतान (Amortisation) तथा निश्चित तिथि से पूर्व भुगतान (Pre-payment) की विधि निगम (I F. C.) द्वारा प्रत्येक दशा मे उसकी परिस्थितियो के अनुसार निश्चित की जाती है।

प्रतिभूति (Security)

निगम ऋणों को प्रतिभूति के आधार पर या बिना प्रतिभूति के स्वीकार कर सकता है। यदि प्रतिभूति ली जाती है तो उसके प्ररूप (Form) का निर्धारण, ऋण लेने वाले व्यवसाय (Enterprise) की स्थिति, विनियोग करने की शर्तों तथा उस देश के नियमो (Laws) के आधार पर किया जाता है।

ऋण देने की शर्तें

निगम किसी व्यवसाय की स्वीकृत धनराशि को तो एक मुठ (Lump-Sum) मे या निश्चित किश्तो (Instalments) मे दे सकता है। व्यवसाय को निगम द्वारा स्वीकृत धनराशि का प्रयोग व्यवसाय सम्बन्धी किसी भी कार्य के लिए, स्वतन्त्रतापूर्वक करने का पूर्ण अधिकार होता है।

विनियोग की जाने वाली चलन मुद्रा

प्रारम्भिक काल मे निगम (I. F. C.) केवल अपनी चुकता पूँजी मे से ही ऋण या आर्थिक सहायता प्रदान करेगा। निगम की पूँजी अमेरिकन डालरो मे है। अत ऋण भी केवल अमेरिकन डालरो मे ही दिये जावेंगे। निगम (I. F C) का ऐसा विचार है कि इस मुद्रा (U S Dollars) से सभी सदस्य देशो की आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। परन्तु यदि किसी सदस्य देश के द्वारा आर्थिक सहायता अमेरिकन डालरो के अतिरिक्त अन्य किसी मुद्रा मे माँगी जाती है तो निगम (I F. C.) उसी मुद्रा मे आर्थिक सहायता प्रदान करने की कोशिश करेगा, यदि उसे ऐसा करने मे कोई विशेष हानि नही उठानी पडती है।

निगम के अधिकार

(१) निगम (I. F C.) ऋण लेने वाले व्यवसाय (Enterprise) के प्रबन्ध (Management) का निरीक्षण कर सकता है। साधारण रूप से निगम यह आशा करता है कि व्यवसाय (Enterprise) अपने व्यापार को सुचारु रूप से चलाने के लिए कुशल एव योग्य प्रबन्धको को नियुक्त करेगा। कुछ विशेष परिस्थितियो मे निगम व्यवसाय (Enterprise) की प्रबन्ध सम्बन्धी सहायता प्रत्यक्ष रूप मे प्रदान कर सकता है। यदि व्यवसाय (Enterprise) अपने प्रबन्ध मे कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन करने जा रहा है तो उसे इस सम्बन्ध मे निगम का परामर्श लेना होगा। विशेष परिस्थितियो मे निगम (I. F. C.)

को व्यवसाय (Enterprise की सचालक सभा मे सचालक नियुक्त करने का अधिकार भी है।

(२) निगम को व्यवसाय द्वारा क्रय किये गये पूँजीगत सामान (Capital Goods) तथा अन्य सेवाओ के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करने का अधिकार है। ऐसा निगम इसलिए करता है जिससे अपने दिये गये धन के सदुपयोग के सम्बन्ध मे विश्वास बना रहे।

(३) निगम ऋण लेने वाले व्यवसाय (Enterprise) को उसकी लेखा पुस्तको का अकेक्षण, स्वतन्त्र पब्लिक एकाउन्टेन्ट से कराने के लिए आदेश दे सकता है, तथा व्यवसाय की लेखा पुस्तको का निरीक्षण अपने प्रतिनिधियो द्वारा करा सकता है। इसके अतिरिक्त वह (निगम) व्यवसाय से उसके आर्थिक चिट्ठे (B/S) तथा हानि एव लाभ खाते (P & L A/c) की प्रतिलिपि एव अन्य सामयिक रिपोर्ट माँग सकता है।

(४) निगम (I. F. C) अपने प्रतिनिधियो द्वारा व्यवसाय (Enterprise) के प्लान्ट, कारखाने तथा अन्य भवनो का निरीक्षण करा सकता है।

निगम का सरकार से सम्बन्ध

निगम (I. F C.) अपने विनियोगो के पुनर्भुगतान के सम्बन्ध मे किसी भी सरकार की गारन्टी नही चाहता है और ऋण देते समय भी, यदि कोई वैधानिक प्रतिबन्ध न हो तो सरकार की अनुमति भी नही लेता है। निगम उस देश के व्यवसायो (Enterprise) को जहाँ की सरकार को कोई आपत्ति है, उन्हे ऋण नही देगा।

पुन अर्थ-प्रबन्धन निगम
(Refinancing Corporation)

५ जून १९५८ को पुन अर्थ-प्रबन्धन (Refinancing Corporation) की स्थापना औद्योगिक व्यवसायो को मध्यकालीन साख सुविधाएँ प्रदान करने के उद्देश्य से की गई है। यह निगम एक स्वतन्त्र अर्ध-सरकारी सस्था (Autonomous Semi-Government Agency) है और निजी उद्योगपतियो को तीन से सात वर्ष के लिए ऋण देती है। इसका मुख्य उद्देश्य बैंको के रुपया उधार देने के साधनो मे वृद्धि करना है जिससे वे निजी क्षेत्र मे मध्यवर्ग की औद्योगिक इकाइयो को ऋण देने की सुविधा दे सकें। अर्थात् यह निगम इन

उद्योगो को प्रत्यक्ष रूप से उधार नही देगा परन्तु बैंको को उधार देने मे सहायता पहुँचायेगा। सदस्य बैंक मध्यवर्गीय औद्योगिक इकाइयो को अधिक से अधिक ५० लाख रुपया तक तीन मे सात वर्ष की अवधि के लिए ही उधार दे सकते है। इस निगम से केवल ऐसी ही औद्योगिक सस्थाएँ ऋण प्राप्त कर सकती है जिनकी चुकता और सचित पूँजी २॥ करोड से अधिक न हो। ऋण प्रथम उत्पादन वृद्धि के लिए ऐसे ही उद्योगो को मिलेगा जो द्वितीय योजना तथा उसके बाद की योजनाओ मे सम्मिलित होंगे।

पूँजी का ढाँचा

निगम की अधिकृत पूँजी २५ करोड रुपये तथा निर्गमित पूँजी १२॥ करोड रुपये है। निर्गमित पूँजी १२५० अश-पत्रो (प्रति अश १ लाख रुपया) मे विभाजित है जिसम से १० % आवेदन पत्र और १० % आवटन पर देना आवश्यक है। इस पूँजी का क्रय निम्न सस्थाओ द्वारा किया गया है :—

(१) रिज़र्व बैंक ऑव इडिया	५·० करोड रुपये
(२) स्टेट बैंक ऑव इडिया	२·५ " "
(३) राज्य जीवन बीमा निगम (L I C of India)	२ ५ " "
(४) अन्य बैंक	२·५ " "
योग	१२·५ करोड रुपये

अन्य बैंको के अन्तर्गत सेन्ट्रल बैंक आव इण्डिया, पजाब नेशनल बैंक लिमिटड, बैंक आव बडौदा, नेशनल बैंक आव इण्डिया, युनाइटेड कामर्शियल बैंक, लायड्स बैंक, इलाहाबाद बैंक, चार्टर्ड बैंक, इण्डियन बैंक, युनाइटड बैंक, मरकेन्टाइल बैंक आव इण्डिया, डैना (Dena Bank), तथा स्टेट बैंक ऑव हैदराबाद सम्मिलित है।

अगस्त १९५६ मे भारतवर्ष तथा अमेरिका के बीच 'भारत अमरीकी कृषि' सम्बन्धी वस्तुओ का समझौता (India-U S Agricultural Commodities Agreement) हुआ था जिसके अनुसार भारतवर्ष को अपने निजी व्यवसाय वाली सस्थाओ को पुन उधार (Re-lending) देने के लिए ५५ मि० डालर या ३६ करोड रुपये का कोष रखा गया था। यह रकम इस निगम को दे दी गई है। २९ जुलाई १९५८ को भारतीय वित्त मत्रालय के सयुक्त मन्त्री (Joint Secretary) एन० सी० सैन गुप्ता तथा अमेरिका के टैक्नीकल

कोआपरेशन मिशन (T. C. M) के सचालक श्री हावर्ड होस्टन (Howard Houston) के मध्य हुए समझौते के अनुसार यह ५५ मिलियन डालर का ऋण अमेरिका को भारतवर्ष भारतीय मुद्रा (रुपये) मे ३० वर्ष के अन्दर ब्याज सहित वापस कर देगा।*

भारत सरकार समय समय पर निगम को ब्याज पर ऋण देकर सहायता करेगी और उस कोष मे से उचित समय पर ऋण के पुनर्भुगतान का प्रबन्ध करेगी। इस प्रकार से प्रारम्भ मे निगम के पास कुल ३८·५ करोड रुपये (१२·५ करोड रु० + २६ करोड रु०) की पूंजी होगी जिसमे से १५ अनुसूचित बैंको मे से प्रत्येक का कोटा (Quota) निश्चित होगा और उसी सीमा के अन्तर्गत निगम से उस बैंक को पुन अर्थ प्रबन्ध की सुविधाएँ मिलेंगी।

निगम का प्रबन्ध

पुन अर्थ प्रबन्धन निगम का प्रबन्ध एक सचालक समिति के द्वारा होगा। इस समिति के सात सदस्य होगे, जिसमे रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का गवर्नर उसका चेयरमैन होगा। शेष छ सदस्य इस प्रकार होंगे —

(१) रिजर्व बैंक आफ इण्डिया का डिप्टी गवर्नर

(२) स्टेट बैंक आफ इण्डिया का चेयरमैन

(३) जीवन बीमा निगम (L I C) का चेयरमैन

(४) अन्य बैंकों के तीन प्रतिनिधि।

पुन अर्थ प्रबन्धन निगम (Refinance Corpn) पूर्व स्थापित औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (Industrial Credit and Investment Corporation) की क्रियाओ मे सहायता पहुँचाता है। वास्तव मे आधारभूत तथा मध्यवर्गीय उद्योगो को अपनी जीर्ण मशीनो तथा साज सज्जाओ (Equipments) के परिवर्तन के लिए तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों के लिए धन की आवश्यकता होती थी जिसकी पूर्ति अब पुन अर्थ प्रबन्धन निगम से होने लगेगी। इस प्रकार इस निगम का औद्योगिक क्षेत्र मे विशेष महत्व है।

निगम की क्रियाओ का ब्यौरा

पुन अर्थ प्रबन्धन निगम (Refinance Corporation) ने सितम्बर १९५८ से आवेदन पत्रो को प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया है। निगम के वर्तमान वित्तीय साधन ७·५० करोड रुपये है, जिसमे २·५० करोड रुपये की

* *American Reporter*, August 13, 1958.

चुकता पूंजी तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा स्वीकृत ५ करोड रुपये का ऋण सम्मिलित है।

कारपोरेशन के प्रारम्भ (जून १९५८) से लेकर दिसम्बर १९५९ के अंत तक कारपोरेशन के पास २० प्रार्थना पत्र ४.२१ करोड रुपये के ऋण के लिए आए। इनमे से १९ प्रार्थना-पत्र ४.०३ करोड रुपये के ऋण के लिए स्वीकृत किए गए। जिन उद्योगों को ऋण स्वीकृत किए गए वे क्रमश: फैरोमैंग्नीज, सूती वस्त्र उद्योग, इलेक्ट्रिकल तथा मैकेनिकल इंजीनियरिंग, तेजाब तथा उर्वरक, चीनी, सीमेंट तथा भारी रसायन आदि है।

कारपोरेशन ने सदस्य बैंको को दिए गए ऋणों पर पिछले वर्ष की भांति ब्याज की दर ५% ही ली। सरकार द्वारा २६ करोड रुपए के स्वीकृत ऋण मे से पिछले साल केवल ५ करोड रुपए ही निकाले गए, इस वर्ष कुछ भी नही निकाला गया।

१९५९ मे कारपोरेशन की आय २९.५७ लाख रुपए थी। जबकि पिछले वर्ष यह आय केवल १४.०९ लाख रुपए थी। सब खर्चों को निकालने के बाद शुद्ध लाभ २०.०२ लाख रुपए का हुआ।

आलोचना

कारपोरेशन के चेयरमैन के अनुसार पुनर्अर्थ-प्रबन्धन निगम का क्षेत्र औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन कारपोरेशन (I.F.C.) तथा औद्योगिक साख तथा विनियोग कारपोरेशन (I.C.I.C.) की अपेक्षा बहुत संकुचित है। यह कारपोरेशन केवल मध्यकालीन ऋण अर्थात ३ वर्ष से ७ वर्ष के लिए दे सकता है। अत इस कारपोरेशन की सुविधाएँ केवल उन कारपोरेशनों के लिए उपयुक्त है जो ७ वर्ष के अन्दर ऋण का पुनर्भुगतान कर सकें।

सुझाव

कारपोरेशन के सचालको ने, कारपोरेशन की नियाओं के क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए निम्न सुझाव दिए है —

(१) अधिक से अधिक बैंको को चाहे वे कारपोरेशन के सदस्य हो अथवा नही पुनर्अर्थप्रबन्धन की सुविधाएँ प्रदान करना।

(२) उन सब उद्योगों को जो कि विकास योजनाओं के अन्तर्गत आते हैं, सुविधाएँ प्रदान करना।

(३) कारपोरेशन द्वारा लिए गए ऋण और इस ऋण को पुन देने पर ब्याज की दर मे अन्तर कम से कम १½ % का हो, इस प्रतिबन्ध को दूर करना।

उक्त सुझाव केन्द्रीय सरकार तथा भारत स्थित सयुक्त राष्ट्र प्राविधिक सहयोग आन्दोलन (U. S Technical Co-operation Mission) के विचाराधीन है।

विदेशी मुद्रा की कठिनाइयो को दूर करने के लिए कारपोरेशन ने अन्तर्राष्ट्रीय वित्त कारपोरेशन, वाशिंगटन तथा कामनवेल्थ डेवलपमेंट फाइनेन्स कम्पनी लन्दन से समझौते किए हैं। इसी प्रकार के समझौते औद्योगिक साख तथा विनियोग के साथ भी किए गए है।

अध्याय १०

विदेशी पूँजी
(Foreign Capital)

एक अविकसित अथवा अर्धविकसित राष्ट्र जिसका जीवन निम्न हो और जहाँ कृषिक अर्थ-व्यवस्था के साथ औद्योगीकरण बहुत कम हुआ हो, उसे अपनी विकास योजनाओ को कार्य रूप मे परिणित करने के लिय विपुल धन-राशि की आवश्यकता होती है। इस विपुल धनराशि की पूर्ति दो साधनो—आन्तरिक तथा वाह्य—के द्वारा ही हो सकती है। परन्तु इन राष्ट्रो की आर्थिक स्थिति इतनी दयनीय होती है कि वे अपने साधारण दैनिक जीवन की आवश्यकताओ की भी पूर्ति भली प्रकार नही कर पाते बचत (Savings) की तो कहे कौन। निस्सदेह ऐसे राष्ट्रो को अपने विकासार्थ विदेशी पूंजी का आश्रय लेना होता है। वर्तमान सुविकसित एव पूर्ण उन्नत राष्ट्रो म स अधिकाश ने अपने प्रारम्भिक औद्योगिक विकास के लिए विदेशी पूजी का सहारा लिया था।

इगलैण्ड अमरिका जर्मनी तथा फ्रांस इत्यादि देशो की वर्तमान सर्वाङ्गीण उन्नति का श्रेय विदेशी पूजी को ही है। उदाहरणार्थ १८७४ से १८९७ के बीच म अमेरिका मे ऋण इतने अधिक हो गए थे कि चालू वित्तीय साधन, उन ऋणों पर अर्जित ब्याज एव लाभाश देने के लिए भी अपर्याप्त थे। ब्याज एव लाभाश को चुकाने के लिए अमेरिका को विदशो से पुन ऋण लेना पडा। १९०० से १९१३ और १९२० से १९२९ तक कनाडा को भी ऐसा ही अनुभव करना पडा। इन देशो के सफल अनुभव के आधार पर यह सवमान्य धारणा बन गई है कि अविकसित तथा अर्ध विकसित क्षेत्रो के आर्थिक विकास के लिए विदेशी पूजी, साहस तथा चातुर्य (Skill) आवश्यक है। अत यदि आज भारतवर्ष भी अपनी पचवर्षीय योजनाओ के सफल सचालन क लिए विदेशी सहायता को याचना करता है, तो कोई लज्जा अथवा आश्चय की बात नही है, यह तो भारत की प्रगति का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

भारत में विदेशी पूंजी का संक्षिप्त इतिहास

आज से लगभग ४५० वर्ष पहले भारत में पुर्तगालियों ने सर्वप्रथम विदेशी पूँजी का विनियोजन किया था। उन्होंने अपनी पूँजी से कालीकट मे फैक्ट्री स्थापित की थी। तत्पश्चात फ्रैन्च, ब्रिटिश तथा डच कम्पनियो ने अपनी पूजी भारत मे लगाई। समय-समय पर भारत मे लगाई गई पूँजी को हम तीन वर्गो मे वर्गित कर सकते है —

(१) व्यापारिक पूँजी—अठारहवी शताब्दी के अन्त तक भारत मे विनियोजित विदेशी पूँजी मूलत व्यापारिक पूँजी थी अर्थात् ब्रिटिश व्यापारियो ने भारतीय उद्योगो को इस कारण आर्थिक सहायता दी ताकि उन उद्योगो मे उत्पादित माल को वे यूरोप मे ले जाकर बेच सके और लाभ कमा सकें। इगलैंड मे औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् इस नीति मे परिवर्तन हो गया और अब ब्रिटिश व्यापारियो ने भारत से कच्चे माल का निर्यात और इगलैंड से पक्के माल का आयात आरम्भ कर दिया। तब से आज तक ब्रिटिश व्यापारियों ने अपनी पूँजी का एक बडा भाग इन्ही व्यापारिक कार्यो मे लगाया है।

(२) औद्योगिक पूँजी—ब्रिटिश सरकार की अहस्तक्षेप की नीति (Laissez faire) के कारण १९वी शताब्दी के अन्त से भारत मे शनै. शनै काफी बडी मात्रा मे विदेशी पूँजी का विनियोजन देश के उद्योग-धन्धो की स्थापना मे हुआ है। इस प्रकार के विनियोजन को कई बातो ने बहुत प्रोत्साहन दिया है जैसे देश मे शान्ति व सुरक्षा, कच्ची सामग्री को ले जाने और विदेशो से पक्के माल को ले जाने मे जो यातायात-व्यय होता है उसमे बचत, यदि अमुक उद्योग भारत मे ही स्थापित किए जायें, देश मे आर्थिक विकास की भारी सम्भावना और पूँजी के विनियोग के नए-नए अवसर (रेल, सडक, नहर आदि में पूँजी का विनियोग), भारतीय पूँजी का शर्मीलापन तथा देश-वासियो मे औद्योगिक साहस का अभाव आदि। इस प्रकार की पूँजी का देश मे *१९वी शताब्दी मे बहुत आयात हुआ और २०वी शताब्दी मे आज तक इस* पूँजी का आयात हो रहा है।

(३) ऋण पूँजी— देश मे औद्योगिक पूँजी के साथ ही साथ थोटी-बहुत मात्रा मे ऋण पूँजी का भी आयात हुआ है। इस प्रकार की पूँजी का महत्व हाल ही मे कुछ वर्षो से बढा है। ऋण-पूँजी वह पूँजी है जो भारत मे

केवल व्याज कमाने के लालच से आती है। विदेशी ऋणदाता का स्वार्थ केवल अपना मूलधन तथा इस व्याज पर कमाने तक सीमित रहता है। आज भारत में ऋण-पूंजी की मात्रा अपेक्षाकृत बहुत कम है।*

भारत में विदेशी पूँजी पर नियन्त्रण

भारतवर्ष में औद्योगीकरण का इतिहास अभी बिल्कुल ताजा है। जो कुछ भी उद्योग-धंधे आज दृष्टिगोचर होते है, उनमे अधिकाश का विकास विदेशी पूजी की सहायता से हुआ है। खान, चाय, बागान, रेल, नहर, जहाजरानी आदि की उन्नति ब्रिटेन और कुछ अन्य देशो की पूंजी की सक्रिय सहायता से हुई है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक सरकार ने विदेशी पूँजी के दोषो की गम्भीरता पर तनिक भी ध्यान नही दिया और वह अहस्तक्षेप की नीति को अपनाती रही। यही नही उसने सदा विदेशी पूँजीपतियो को अनेक प्रकार से सहायता प्रदान की। इससे देश मे औद्योगीकरण की प्रगति तो अवश्य हुई परन्तु यह सम्पूर्ण औद्योगीकरण असतुलित और अनियमित रहा। लौह एव स्पात उद्योग को छोडकर कोई भी आधारभूत (Basic) उद्योग की स्थापना नहीं हुई। यही कारण है कि द्वितीय महायुद्ध काल मे औद्योगिक विकास के लिए प्राप्त स्वर्णिम अवसर का हम तनिक भी लाभ न उठा सके।

यद्यपि समय-समय पर विद्वानो ने तथा कुछ समितियो ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया, परन्तु सरकार ने कभी भी उनकी बातो को नहीं माना और इस ओर पूर्णतया तटस्थ रही जिससे देश को आर्थिक एव राजनैतिक दोनो ही क्षेत्रों मे काफी हानि हुई।

सर्वप्रथम १९२३ मे राज्यकोषीय आयोग (Fiscal Commission) ने इगित किया कि कुछ व्यक्तियो ने अपनी साक्षी (गवाही) मे विदेशी पूँजी के प्रति अनिच्छा प्रकट की है और वे विदेशी पूँजी के आयात के पक्ष मे उसी समय थे जबकि उस पर पर्याप्त नियन्त्रण लगाएँ। आयोग के कुछ सदस्यो ने अपने 'असहमति के कथन' (Minute of Dissent) मे विदेशी पूँजी के आयात के सम्बन्ध मे तीन शर्ते रखी (१) ऐसी कम्पनियो का निर्माण एव पजीयन (रजिस्ट्रेशन) रुपये की पूजी मे भारत मे हुआ हो, (२) कम्पनी की

---

*मुद्रा, बैंकिंग तथा विदेशी विनिमय, आनन्दस्वरूप गर्ग, पृष्ठ सख्या ६२५-२६

सचालक सभा मे भारतीय सचालक भी उचित अनुपात मे हो, तथा (३) भारतीय नौसिखियो (Apprentices) के लिए प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था हो। इस पर भी आयोग ने विदेशी पूँजी के आयात के लिए सुझाव दे दिया।

उपरोक्त नियन्त्रणो को १९०५ मे 'विदेशी पूँजी समिति' (External Capital Committee) ने भी दुहराया और विदेशी पूँजी को तीन भागो मे विभाजित किया। परन्तु यह समिति भी अपने विचार विदेशी पूँजी के विरुद्ध प्रकट न कर सकी, क्योकि इसकी स्थापना ब्रिटिश सरकार द्वारा हुई थी और विदेशी पूँजी मे सबसे बडा हित ब्रिटिश लोगो का ही था। यह होते हुए भी सरकार ने समिति के सुझावो को स्वीकार नही किया और विदेशी पूँजी का प्रश्न पूर्ववत् बना रहा।

१९४७ मे 'सलाहकारी आयोजन मडल' (Advisory Planning Board) ने विदेशी पूजी के आयात की स्वीकृति इस शर्त पर दी–यदि विदेशी पूँजी पर भारतीयो का पर्याप्त नियत्रण हो।

१९४८ मे 'राष्ट्रीय आयोजन समिति' (N. P. C) ने औद्योगिक वित्त के सम्बन्ध मे दी गई अपनी रिपोर्ट मे विदेशी पूजी के आयात की आज्ञा कुछ सुनिश्चित शर्तो के अन्तगत दी है, जिनसे देश का आयोजित विकास बिना विदेशी पूजीपतियो की अनुकम्पा के हो सके।

हमारी राष्ट्रीय सरकार ने अपने १९४८ के औद्योगिक नीति के प्रस्ताव मे विदेशी पूँजी की महत्ता को देश के प्रगतिशील औद्योगीकरण के लिए स्वीकार किया है। प्रस्ताव मे कहा गया है कि विदेशी पूँजी के प्रति सरकार की नीति यह होगी कि ऐसे उद्योगो के अधिकॉश स्वामित्व तथा प्रबन्ध भारतीय उद्योगपतियो के हाथ मे होना चाहिये। उनमे भारतियो को उत्तरदायित्वपूर्ण पद देना चाहिये। जिन कामो के लिये योग्य व्यक्ति प्राप्त न हो सके उनके लिये विदेशी विशेषज्ञ रखे जा सकते है, परन्तु भारतीयों को उचित शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिए जिससे वे उनके स्थान को ग्रहण कर सकें।

राज्यकोषीय आयोग (Fiscal Commission) (१९४९-५०) ने भी देश की घरेलू बचतो तथा न्यूनतम पूँजी की आवश्यकताओ के अन्तर (Gap) को पूरा करने के लिए विदेशी पूँजी की आवश्यकता पर जोर दिया।

इस प्रकार सरकार ने विदेशी पूंजी विनियोग के लिए कुछ शर्तें लगा दी थी, जिन्हे विदेशियो ने अनुचित नियन्त्रण की सज्ञा प्रदान की थी। नियन्त्रण और राष्ट्रीयकरण के भय ने विदेशियो को बडा भयभीत कर दिया। परिणामस्वरूप कुछ काल के लिये विदेशी पूँजी का विनियोग एक प्रकार से रुक ही गया था। इन मिथ्या विचारो को दूर करने के लिए प्रधान मन्त्री नेहरू को अप्रैल १९४९ मे कुछ आश्वासन देने पडे जैसे कि--

(१) भारत सरकार भारतीय और विदेशी उद्योगो के बीच किसी प्रकार का भेद भाव न करेगी।

(२) विदेशी विनिमय की स्थिति देखते हुए विदेशियो को पूजी के वापस करने और लाभो के हस्तातरित करने की पूर्ण सुविधाएँ प्रदान की जायँगी।

(३) भारत सरकार का राष्ट्रीयकरण करने का अभी कोई इरादा नही है, किन्तु जब कभी राष्ट्रीयकरण किया जायगा, उसके लिए उचित मुआवजा दिया जायगा।

इन आश्वासनो ने विदेशी पूंजी के विनियोग-कर्त्ताओ के विश्वास को पुन जमने मे काफी योग दिया क्योकि १९४८ मे प्राप्त २८७ ७ करोड रुपये की विदेशी पूंजी १९५५ के अन्त तक बढकर ४८७ ७ करोड रुपये हो गई।

योजना आयोग ने अपनी प्रथम पचवर्षीय योजना की रिपोर्ट मे बतलाया है कि देश के द्रुतगामी औद्योगीकरण के लिए, वर्तमान परिस्थितियो मे विदेशी पूंजी एक महत्वपूर्ण पार्ट अदा कर सकती है। प्रथम योजना काल मे भारत को ३०६ करोड रुपये की विदेशी पूंजी मिली है। इसमे विदेशी सहायता के रूप मे प्राप्त राशि भी सम्मिलित है। इस पूंजी का प्रमुख भाग अमेरिका से प्राप्त हुआ है। इस देश से २३८ करोड रुपये की पूंजी मिली है जिसमें से १०९.६ करोड रुपये का ऋण और शेष सहायता के रूप में प्राप्त हुआ है। सन् १९५५-५६ तक इस कुल सहायता मे से २०४ करोड रुपये तो व्यय किये जा चुके हैं और शेष रकम को द्वितीय पचवर्षीय योजना मे व्यय किया जायगा। इसका विस्तार मे अध्ययन अगले पृष्ठो मे किया गया है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना मे प्रथम योजना को अपेक्षा मे विदेशी पूंजी को अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। प्रारम्भ मे विदेशी सहायता की राशि ८०० करोड रुपये निश्चित की गई थी, परन्तु शीघ्र ही इसे १२०० करोड रुपये करनी पड़ी थी। एक अनुमान के अनुसार निजी और सार्वजनिक

दोनों क्षेत्रों को मिलाकर द्वितीय योजना काल मे कुल मिलाकर २१५० करोड रुपये की विदेशी विनियम की आवश्यक्ता होगी। इस महत्वपूर्ण स्थित को ध्यान में रखकर सरकार ने न केवल पुराने आश्वासनो मे श्रद्धा उत्पन्न करने की चेष्टा की है, वरन् उसने अनेक नई सुविधाये देने का भी निश्चय किया है। उदाहरण के लिए विदेशियों को आयकर (Income Tax) के बारे मे निम्नलिखित विशेष छूटें उप्लब्ध है—

(१) एक औद्योगिक इकाई को उस ब्याज पर आयकर नही देना पडता है जो ब्याज उसे विदेशी सस्था से प्राप्त ऋण पर देना है।

(२) एक औद्योगिक इकाई को उस ऋण पर ब्याज नही देना पडता जो उसने मशीन एव सयन्त्र प्राप्त करने के लिये विदेशो से प्राप्त किया है।

(३) एक विदेशी विशेषज्ञ को ३६५ दिन तक अपनी भारतीय आय पर कर नही देना पडता, यदि विशेषज्ञ किसी भारतीय औद्योगिक इकाई मे काम करता है। यह छूट तीन वर्ष की हो जाती है यदि नौकरी अनुबन्ध के पहले ही उसकी नियुक्ति की अनुमति भारत सरकार से ले ली जाय।

(४) सरकार ने दोहरे कर (Double Taxation) की कठिनाई को दूर करने के लिए अभी हाल मे अमेरिका, जर्मनी, और स्वीडेन से समझौता किया है तथा अन्य देशो से भी इसी प्रकार के समझौते करने का प्रयास कर रही है।

वर्तमान स्थिति

वर्तमान समय मे कुल विदेशी पूँजी का शुद्ध विनियोग ६४८ करोड रुपये का है जो कि १९५५ की अपेक्षा १७० करोड रुपये अधिक है। विभिन्न तिथियो मे विदेशी विनियोग की स्थिति इस प्रकार थी .—

भारत की विनियोजन स्थिति का सम्पूर्ण चित्र*

(करोड रु० मे)

वर्ष	देनदारियाँ (Liabilities)			परिसपदें (Assets)			अन्तिम स्थिति (Final Position)		
	गैर सरकारी (बैंकों के अलावा)	बैंकिंग	सरकारी	गैर सरकारी (बैंकों के अलावा)	बैंकिंग	सरकारी	गैर सरकारी (बैंकों के अलावा)	बैंकिंग	सरकारी
१९५५	४७०	५७	२०१	—	५५	११७१	–४७०	–२	९७०
१९५६	५०७	६१	२२५	—	५२	९५६	–५०७	–९	७३१
१९५७	५५६	४८	४५१	—	६२	७२६	–५५६	१४	२७५
१९५८	५९०†	५२	६५२	—	५४	५९२	–५९०†	२	–६०

• १९५६ मे भारत की अन्तर्राष्ट्रीय महाजन की स्थिति मे काफी कमी आ गई थी। १९५७ तथा १९५८ मे कमी की यह प्रवृत्ति जारी रही। यह कमी इतनी तेजी से हुई कि १९५७ के अन्त मे भारत महाजन के स्थान पर २६७ करोड रुपये का देनदार बन गया। यह देनदारी १९५८ के अन्त तक बढ कर ६४८ करोड रुपये हो गई। यह परिवर्तन मुख्यत सरकारी क्षेत्र की गतिविधियो का सूचक है। इस क्षेत्र मे १९५५ मे १९५८ तक के तीन वर्षों म नाटकीय परिवर्तन हुआ। १९५५ के अन्त मे सरकार ९७० करोड रुपये की लेनदार थी लेकिन १९५८ के अन्त म वह ६० करोड रुपये की देनदार बन गई।

---

* उद्योग व्यापार पत्रिका, सितम्बर १९५९, पृष्ठ १९२

† अस्थायी अनुमान।

प्रथम व द्वितीय पचवर्षीय योजनाओ मे विदेशी सहायता

सहायता का विवरण (Details of Assistance)	प्रथम योजना से पूर्व अधिकृत (Authorised) सहायता	प्रथम योजना काल मे अधिकृत सहायता	प्रथम योजना के अन्त तक सहायता का उपयोग	द्वितीय योजना काल मे उपयोग के लिए शेष राशि	१९५५ से ३१९५९ तक अधिकृत	द्वितीय योजना काल मे उपयोग के लिए उपलब्ध कुल सहायता	सितम्बर ५९ के अन्त तक सहायता का उपयोग	उपयोग के लिए शेष उपलब्ध सहायता
(अ) विदेशी मुद्रा मे देय ऋण तथा साख (Loans & Credits to be repaid in Foreign Currency)								
(१) अतर्राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण व विकासाथ बैंक (I B R D)	२७ ००	३० ६१	३३ ८३	२३ ८३	१८३ ७६	२०७ ६२	१०९ ५६	९८ ०६
(२) विदेशी सरकारो से ऋण (Loans from Foreign Govts)	—	१५३ ३८	९० ३१	६३ ०७	२५५ ७०	३१८ ७७	८३ ३८	२३५ ३९
(३) अय ऋण (Other Loans)	—	—	—	—	९२ ०९	९२ ०९	५ ३३	८६ ७६
कुल (अ)	२७ ००	१८४ ०७	१२४ १४	८६ ९०	५३१ ५५	६१८ ४८	१९९ २७	४२० २१
(ब) रुपये की मुद्रा मे देय ऋण (Loans & Credits to be repaid in Rupee Currency)	—	३९ २८	—	३९ २८	११५ ४८	१५४ ७६	३५ ४२	११९ ३४
(स) पी० एल० ४८० सहायता (P L 480 Assistance)	—	—	—	—	२७० ६७	२७० ६७	१६० ०९	११० ५८
(द) अनुदान (Grants)	—	१५४ ३४	८७ १९	६७ १८	१०० ५९	१६७ ७४	८४ ७५	८२ ९९
सकल योग (Grand Total)	२७ ००	३७७ ६९	२११ ३३	१९३ ३६	१०१८ २९	१२११ ६५	४७८ ५३	७३३ १२

Source The EASTERN ECONOMIST (Budget Number) 1959 60 pp 519 20

१९५९-६० मे भारत को विदेशी ऋण और ब्याज के रूप मे २४·७१ करोड रुपया चुकाना है। इसमे से ९·५७ करोड मूलधन और १५·१४ करोड रुपया ब्याज होगा। विदेशी मुद्रा को वापस करने की यह भीड १९६१-६२ मे अत्यधिक हो जावेगी, जबकि मूलधन तथा ब्याज मिल कर कुल ११४·२४ करोड रुपया चुकाना होगा। १९६०-६१, १९६२-६३ और १९६३-६४ मे हमे क्रमश ८५·७३ करोड रुपया, ७१·५६ करोड रुपया और ७४·६२ करोड रुपया चुकाना पडेगा। अभी मार्च १९५९ मे पाँच राष्ट्रो—अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन, कनाडा, पश्चिमी जर्मनी और जापान ने सम्मिलित रूप से १९५९ मे ३०० मिलियन डालर अर्थात् १५० करोड रुपये ऋण देने का बचन दिया है, जिसमे भुगतान के भार मे इतनी ही अतिरिक्त वृद्धि हो जायगी।

विदेशी सरकारो से सहायता*

(करोड रुपये मे)

	द्वितीय योजना मे उपयोग करने के लिए उपलब्ध कुल धनराशि	१-४-५६ से ३०-९-५८ तक अनुमानित उपयोग	उपयोग के लिए उपलब्ध शेष धनराशि
(१) रूस से भिलाई इस्पात सयन्त्र के लिए ऋण	६३·०७	३४·४४	२८·६३
(२) रूस से औद्योगिक विकास के लिए ऋण	५९·५०	०·११	५९·३९
(३) सयुक्त राज्य (U.K.) से दुर्गापुर इस्पात सयन्त्र के लिए ऋण	२०·००	८·००	१२·००
(४) सयुक्त राज्य से पूंजीगत वस्तुओ के आयात के लिए ऋण	३८·१०	—	३८·१०
(५) प० जर्मनी से रूरकेला इस्पात सयन्त्र के लिए ऋण	७४·८३	२९·३१	४५·५२
(६) प० जर्मनी से पूंजीगत वस्तुओ के आयात के लिए ऋण	१९·९४	—	१९·९४
(७) जापान से येन (Yen) ऋण	२३·८१	—	२३·८१
(८) जापान से 'आइरन ओर प्रोजेक्ट' के लिए ऋण	३·८१	—	३·८१
(९) कनाडा का गेहू ऋण (Canadian Wheat Loan)	१५·७१	११·५२	४·१९
कुल योग	३१८·७७	८३·३८	२३५·३९

* *The Eastern Economist*, Budget Number 1959-60, p. 519

भारत को विदेशी सहायता
(करोड़ रुपयों में)
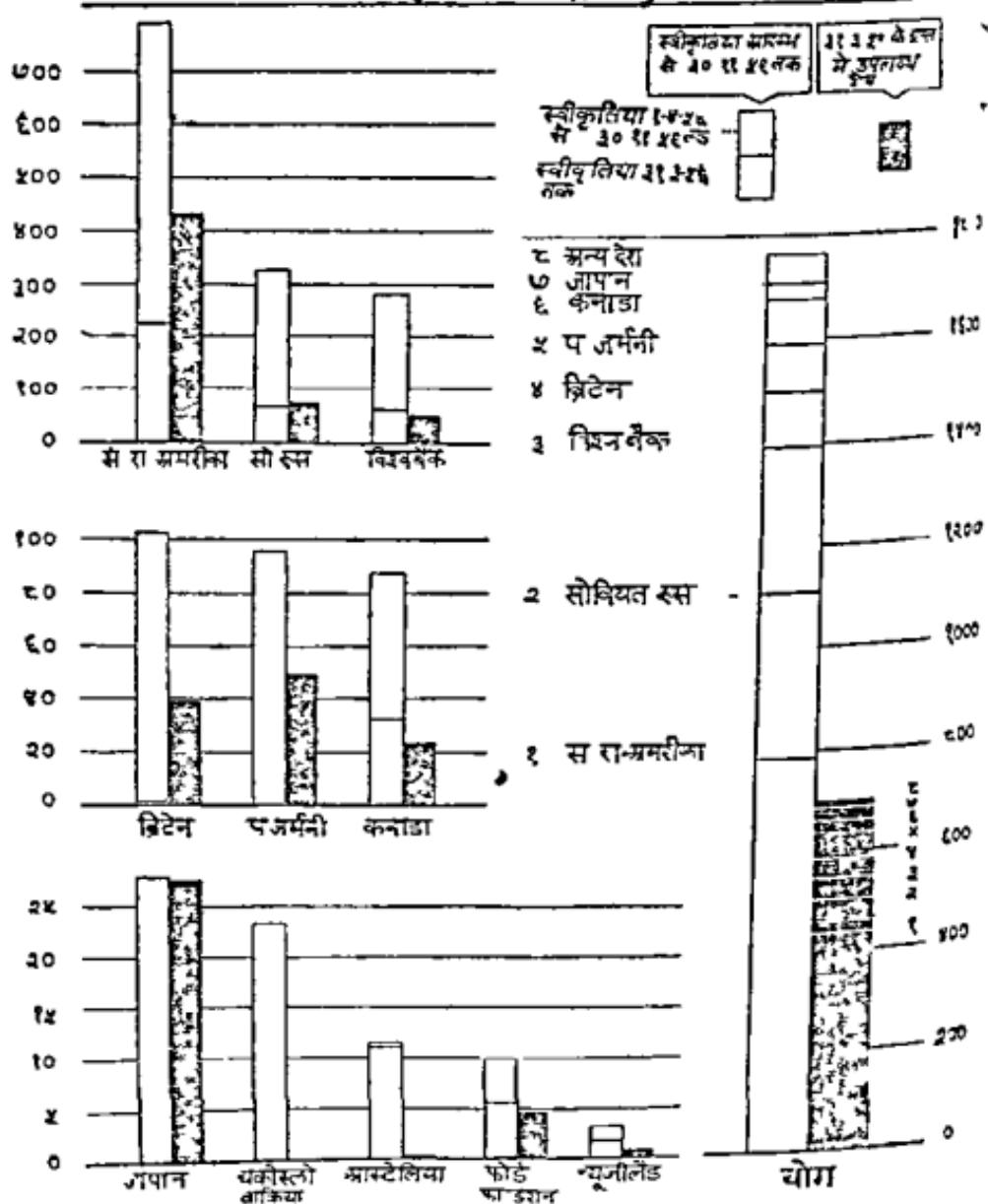
अन्य ऋणो के सम्बन्ध मे हम देखते हैं कि द्वितीय योजना मे उपलब्ध कुल ऋणो, १२११ ६५ करोड रुपये मे से ३० सितम्बर १९५८ तक केवल ४७९·५३ करोड रुपये का उपयोग किया गया, दूसरे शब्दो मे ७३२ १२ करोड रुपये अब भी उपयोग के लिए उपलब्ध हैं।

उपसंहार

हमारे देश मे विदेशी पूँजी के उपयोग के सम्बन्ध मे काफी वाद-विवाद रहा है। परन्तु सरकार ने देश के आर्थिक विकास के लिए विदेशी पूंजी के सहयोग को अनिवार्य माना है, अत आज भारत मे विदेशी पूंजी का अधिकाधिक स्वागत किया जा रहा है। निजी क्षेत्र के साथ-साथ सरकार भी अनेक उपायो से विदेशी पूँजी को आकर्षित करने मे सलग्न है। यह सब कुछ होते हुए भी विदेशी पूंजी उस मात्रा में काफी नही आ रही है, जितनी कि हमे आवश्यकता है। विदेशी पूँजी को और अधिक आकर्षित करने के लिए उचित वातावरण उत्पन्न करना होगा परन्तु हमे यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि ऋण (विदेशी पूंजी) लेते समय आनन्द अवश्य होता है, परन्तु भुगतान के समय देश की अर्थ-व्यवस्था पर भारी आघात पहुँचता है। वर्तमान परिस्थिति मे एक विवेकपूर्ण योजना की आवश्यकता है क्योकि विदेशी कर्ज से राष्ट्र-निर्माण करने का रास्ता भले ही सरल हो, पर उसका परिणाम किसी भी हालत मे कल्याणकारी साबित नही हो सकता।

भारत मे विदेशी पूंजी के लिए सुविधाएँ

भारत और अमेरिका की सरकारो के बीच हुए एक समझौते से अनुसार भारतीय पूंजी-नियोजन केन्द्र की स्थापना हुई। अमरीकी प्राविधिक सहयोग मिशन इस केन्द्र को ५९,१०,००० रु० की सहायता देगा। इसमे से ३४ लाख रु० (७ लाख १३ हजार डालर) विदेशी मुद्रा के रूप मे प्राप्त होंगे। २५ लाख रु० भारत मे अमरीकी कृषि फसलो की बिक्री से प्राप्त हुई राशि मे से दिये जायँगे।

इस केन्द्र की स्थापना का उद्देश्य निजी विदेशी पूंजी को भारत मे लगाने के लिए प्रोत्साहन देना है। केन्द्र मुख्य-मुख्य निम्नलिखित काम करेगा —

(१) भारत मे विदेशी पूंजी सम्बन्धी कानूनो और नियमो तथा औद्योगिक और बैंक व्यवस्था सम्बन्धी जानकारी देना,

(२) विदेशी पूजी कहाँ लगाई जा सकती है, इसके बारे मे सर्वे करेगा;

(३) विदेशी पूजी लगाने वालो का सहयोग प्राप्त करने के सम्बन्ध मे भारतीय व्यवसाइयो को सलाह देगा, और

(४) भारत मे पूजी लगाने के इच्छुक विदेशियो को सहायता देना।

पिछले दिनो अमेरिका के राष्ट्रपति श्री आइसनहावर जब भारत आये, तब उनके साथ एक अमरीकी पत्रकार भी थे। उन्होने यहाँ का तटस्थ अध्ययन किया और यहाँ की पचवर्षीय योजनाएँ कितनी कमजोर बुनियाद पर खडी हैं, इसका उन्होने विश्लेषण किया। इस पत्रकार की दृष्टि को यदि हम ध्यान से समझने की कोशिश करें, तो काफी बातें हमारे ध्यान मे आयेगी।

भारत को अपने स्थानीय साधनो के भरोसे पर ही अपनी योजनाएँ *बनानी चाहिए और पूजी-निर्माण के बुनियादी मार्ग का अवलम्ब* लेना चाहिए।

भारत मे केवल दो ही तरीको से विशाल पूजी खडी की जा सकती है, खेती और ग्रामोद्योग। पर आज की निर्माण योजनाओं मे इन दानो की ओर जितना चाहिए, उतना ध्यान नही दिया गया है।

आज हमारे बजट का अधिकांश हिस्सा सेना, सामरिक तैयारी, बडे कारखाने आदि पर ही खर्च हो जाता है?

विदेशी कर्ज की क्या स्थिति है, उस पर अमरीकी पत्रकार के शब्दो के साथ हम विचार करें।

"हिन्दुस्तान को दूसरी पचवर्षीय योजना के लिए विदेशी महायता व कर्ज की काफी सुइयाँ (इन्जेक्शन) लेनी पडी है। १९५८ के अन्त तक तो यह सख्या २५ अरब रुपये तक पहुँच गयी थी। ३१ मार्च, १९६१ तक प्राप्त सहायता पाँच सालो मे ३४ अरब रुपये तक पहुँच जाती है। इसके अलावा १९६१-६२ की शुरुआत की स्थिति को हिन्दुस्तान ने सोचा तक नही है, जिसमे इसको फिर से दो अरब रुपया प्रति वर्ष कर्ज लेना होगा।

रिज़र्व बैंक की खोज

अगस्त सन् १९५९ मे रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया ने १००१ चुनी हुई पब्लिक लिमिटेड कम्पनियो के पूँजी प्राप्त करने के साधनो के सम्बन्ध मे विस्तृत आँकडे प्रकाशित किए हैं। रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की यह खोज सन् १९५७ के सम्बन्ध मे है। इससे पूर्व अक्तूबर सन् १९५८ मे रिज़र्व बैंक ऑफ इण्डिया ने १९५५ और १९५६ के सम्बन्ध मे आँकडे प्रकाशित किए थे।

वर्तमान आँकड़ो का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सन् १९५७ मे भारत वर्ष मे उद्योगो के अर्थ-प्रबन्धन मे आन्तरिक साधनो की अपेक्षा बाह्य साधना का अधिक महत्वपूर्ण स्थान रहा। आलोच्य वर्ष मे उद्योगो द्वारा प्राप्त कुल पूँजी का ७२·४% बाह्य साधनो से तथा शेष २७·६% आन्तरिक साधनो से प्राप्त हुआ।

सन् १९५७ मे कुल २३५·२% करोड रुपये की पूँजी प्राप्त हुई थी जिसमे से वाह्य साधनो का अश १७०·२ करोड रुपये था। वाह्य साधनो मे भी बैंको द्वारा प्राप्त ऋण का अश सबसे अधिक था। यह अश ४८·२ करोड रुपये अथवा कुल धन का २०·५% था। बन्धक (Mortgages) द्वारा प्राप्त धन का भी कम महत्व नही था। १९५६ की तुलना मे यह लगभग दुगुना हो गया था। १९५७ मे इस साधन द्वारा ४५·३ करोड रुपये प्राप्त हुए जो कुल धन के १९ २ % के बराबर थे। इस साधन के अन्तर्गत ३३ करोड रुपये के विश्व बैंक से प्राप्त ऋण भी सम्मिलित थे। व्यापारिक तथा अन्य देनदारियाँ ३९·८ करोड रुपये की थीं जो कुल धन के १७ % के बराबर थी।

आन्तरिक साधनो के द्वारा ६४·९ करोड रुपये प्राप्त हुए जो कुल धन के केवल २७·६ % के बराबर थे। इस साधन द्वारा प्राप्त धन की मात्रा इस वर्ष पिछले २ वर्षो की अपेक्षा मे काफी घट गई। १९५५ तथा ५६ मे ७५० कम्पनियो ने इस साधन द्वारा कुल धन का क्रमश ५६ % तथा ३७ % धन प्राप्त किया था। आन्तरिक साधनो के अन्तर्गत ह्रास कोष (Depreciation Reserves) सबसे प्रमुख साधन था। इसके द्वारा ४६·२ करोड रुपये अथवा कुल धन का १९·६ % भाग प्राप्त हुआ जबकि १९५६ मे यह प्रतिशत केवल १५ था। मुक्त-कोषो (Free Reserves) तथा अतिरेक (Surplus) का अश २० करोड रुपया अथवा कुल धन का ८५ % था जोकि १९५६ मे १७·५ % था। इस प्रकार इस वर्ष इस साधन द्वारा प्राप्त धन मे कमी हुई।

१९५६ तथा १९५७ के दोनो वर्षो मे कुल ४९२ करोड रुपये की अर्थ-व्यवस्था हुई जिसमे से वाह्य साधनो का अश ६७ ५ प्रतिशत था। बैंको से प्राप्त ऋण का अशदान भी काफी महत्वपूर्ण था क्योकि यह कुल धन का लगभग २५ % था। इसके पश्चात् व्यापारिक देनदारियो (Trade Dues) तथा बन्धको (Mortgages) का स्थान आता है जिनसे क्रमश १६·९% तथा १३·८%

पूँजी प्राप्त हुई। पूँजी बाजार कोषो का अश १०% था। १९५१ ५५ मे* उद्योगो को कुल धन का ६० % आन्तरिक साधनो से तथा शेष ४० % वाह्य साधन से प्राप्त हुआ।

१९५७ मे पूँजी प्राप्त करने के साधनो का उद्योगवार अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि चीनी तथा कोयला उद्योग को छोड कर शेष सभी उद्योगो मे अधिकाश पूँजी प्राप्त करने के प्रमुख साधन बैंको द्वारा ऋण थे। लौह एव स्पात उद्योग के लिए भी बैंको द्वारा प्रदान किए गए ऋण महत्वपूर्ण थे। सीमेट और कागज उद्योग को भी १९५६ की अपेक्षा इस वर्ष बैंक से ऋण अधिक प्राप्त हुए। इसके विपरीत जूट उद्योग म सन् १९५७ मे बैंक द्वारा प्राप्त ऋण बहुत कम थे।

लौह एव स्पात उद्योग मे वधको द्वारा ऋण महत्वपूर्ण रहे। नवीन पूंजी का निगमन प्राय लौह एव स्पात, सीमेंट, इजीनियरिंग तथा रसायन उद्योगो मे काफी अपनाया गया।

प्रश्न

1. Explain the constitution and working of the Industrial Finance Corporation of India Offer suggestions for its better working (Agra, B. Com, 1960)

2. Discuss briefly the main steps taken by the State to provide credit and financial facilities to the industry in India. (Agra, B. Com, 1958)

3. Examine critically how far the establishment of the Industrial Finance Corporation has helped the growth of large scale industries in the Indian Union. (Agra, B Com, 1957)

4 How many State Finance Corporations have so far been started in India ? Give a brief resume of their working (Agra, B Com, 1956)

5. Give a brief critical review of the working of the Industrial Finance Corporation of India How far has it been successful in its object ? (Agra, B Com, 1954)

---

*५५० कम्पनियो के सम्बन्ध मे।

6. Describe the functions of *(a)* The National Industrial Development Corporation and *(b)* The National Small Industries Corporation

7. Write an essay on 'The International Finance Corporation", and "Refinancing Corporation of India"

8. What is Industrial Credit and Investment Corporation of India ? What part is it expected to play in the provision of industrial finance in India ?

9. How many State Financial Corporations have so far been started in India ? Give a brief resume of their working.

अध्याय ११

कम्पनियों का प्रवर्त्तन

(Promotion of Companies)

प्रवर्त्तन शब्द मे उन सब क्रियाओं का समावेश होता है जो किसी कम्पनी के निर्माण से लेकर उसके पूर्ण सगठन तक की जाती हैं। महोदय गर्सटन बर्ग अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'वित्तीय सगठन एव प्रवन्ध' मे लिखते हैं कि "प्रवर्त्तन का आशय व्यवसायिक सुअवसरो की खोज तथा उसके उपरान्त लाभ के उद्देश्य से पूँजी सम्पत्ति तथा प्रबन्ध कला के किसी व्यापारिक सार्थ मे सगठित करने से है।* किसी वर्तमान स्थिति कम्पनी की प्रतिभूतियों का विक्रय सुगमता से तभी किया जा सकता है जब विनियोजक (Investors) उस प्रमण्डल की स्थिति के बारे मे पूर्ण ज्ञान रखता है या प्राप्त कर सकता है परन्तु नवनिर्मित प्रमण्डलों के अशो का विक्रय उतनी सुगमता से नही हो सकता क्योकि क्रेता उसकी स्थिति व भावी सफलता के बारे मे अनभिज्ञ होता है। क्रेता या विनियोक्ता को नवीन प्रमण्डल के उद्देश्य, व्यवसाय की प्रकृति, भावी सफलता व सगठन के बारे मे विश्वास दिलाकर अशो का क्रय करने के लिए तैयार करना होता है। इस प्रकार के कार्यों को करने के लिए एक कुशल, प्रवीण व अभ्यस्त व्यक्ति की खोज करनी होती है। ऐसे व्यक्ति को प्रवर्तक (Promotor) कहते हैं। श्री सी० जे० कॉक्बर्न के शब्दो मे "प्रवर्तक किसी निश्चित उद्देश्य के आधार पर कम्पनी का निर्माण करता है और उसे

---

* "Promotion" may be defined as the discovery of business opportunities, and the subsequent organisation of funds, property and managerial ability into a business concern for the purpose of making profits therefrom "

Gerstenberg : *"Financial Organisation and Management"* *Chapter 1.*

चलाने के लिए तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए आवश्यक उपचार करता है"* आरथर एस० डॅविग के अनुसार 'प्रवर्तक वह व्यक्ति है जो लाभ प्रदान करने योग्य व्यवसाय के विचार को कार्यरूप मे परिणित करने की सम्भावना को जानता है, उससे सम्बन्धित विभिन्न व्यक्तियो को एकत्रित करता है तथा अन्त मे नवीन व्यवसाय को जन्म देने के लिए विभिन्न आवश्यक साधनो की देख-रेख करता है।"†

प्रवर्तक के कार्य (Functions of a Promoter)

श्री एन० एम० बुकॅनन (N. S Buchanan) के अनुसार 'प्रवर्तन के निश्चित कार्यों का ज्ञान जिससे उसे परिभाषित किया जा सके, बिलकुल स्पष्ट नही है, विशेषतया वैधानिक दृष्टिकोण से। परन्तु साधारण रूप से उसकी प्रमुख क्रियाएँ पूंजी के लाभप्रद विनियोग के हेतु सुअवसरो की खोज करना तथा उन्हे ऐसे व्यक्तियो से बतलाना है जिसके पास विनियोग करने के लिए पर्याप्त धन है अथवा जिसे वे अन्य व्यक्तियो से प्राप्त कर सकते है।' इस प्रकार प्रवर्तक के दो प्रमुख कार्य होते है —

(१) किसी आर्थिक याजना के सम्बन्ध मे विचार करना, तथा

(२) इस विचार को मूर्तवत करने के लिए आवश्यक साधनो का जुटाना।

डा० होगलैंड (Dr. Hoagland) ने प्रवर्तक की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि 'एक सफल प्रवर्तक धन का निर्माता तथा आर्थिक भविष्यवक्ता होता है क्योंकि वह अदृश्य वस्तु के बारे मे कल्पना कर लेता है तथा जनता को वस्तुएँ उपलब्ध कराने के लिए व्यवसायिक सार्थों का निर्माण करता है।'‡ नि सदेह प्रवर्तक सफल व्यवसायिक सार्थो का निर्माण करके सार्वजनिक

---

*A Promoter is "one who undertakes to form a company with reference to a given object and to set it going and who takes the necessary steps to accomplish that purpose"
—*C F Cockburn.*

†"A promoter is the person conscious of the possibility of transforming an idea into a business capable of yielding a profit, who brings together the various persons concerned and who finally superintendents the various steps necessary to bring the new business into existence" —*Arthur S Dewing.*

‡Dr. Hoagland call's a successful promoter as "a creater of wealth and an economic prophet, because he is able to visualize what does not exist and to organise business enterprises to make the products available to the public."

सेवा करता है। वह सस्ती वस्तुओं और सेवाओं को उपलब्ध करके समाज के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने मे सहायक होता है। वह मानवीय तथा भौतिक साधनो का विदोहन करके प्रति व्यक्ति आय को बढाता है तथा अधिक से अधिक लोगो को रोजगार दिलाता है। विकसित राष्ट्रो मे प्रवर्तक बडे-बडे व्यवसायो मे मिश्रण (Mergers) तथा सघनन (Consolidations) भी कराते है जिससे उत्पादन क्रियाओ मे विशिष्टीकरण तथा सार्थो मे आपसी अस्वस्थ प्रतियोगिता का अन्त हो जाता है।

उदाहरण

प्रवर्तक का कार्य कोई आसान कार्य नही है। उसे अनेक असुविधाओ व कठिनाइयो का सामना करना पडता है। यदि वह अपने प्रयत्नो मे असफल हो जाता है तो उसे काफी हानि उठानी पडती है इस सम्बन्ध मे अपने देश के प्रवर्तक श्री जमशेद जी नौसेरवाँ जी टाटा, जिन्होने जगत विख्यात टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (जमशेदपुर) की स्थापना की थी, के प्रयत्नो का उल्लेख करना असगत न होगा। श्री जे० एन० टाटा ने सर्वप्रथम १८८२ मे उस समय के 'चान्दा' नामक जिले की लौह खानो (Iron Deposits) का विदोहन करने का विचार किया था। उस समय खानो के विदोहन के सम्बन्ध मे भारतीय अधिनियम (Indian Regulations) बहुत ही प्रतिकूल थे जिनका सुधार १८८९ मे लॉर्ड कर्जन के द्वारा किया गया। १८९० मे टाटा इगलैंड गए और वहाँ पर भारत सचिव (सेक्रेटरी ऑव स्टेट फॉर इन्डिया) तथा 'इन्डिया हाउस' के अन्य पदाधिकारियो को समझा बुझा कर प्रस्तावित योजना को कार्यान्वित करने के लिए सहमत किया। इससे उन्ह सरकार से अनुमति-पत्र (लाइसेन्स) तथा अन्य प्रकार की सुविधाएँ सरलता से प्राप्त हो गई। अनुमति-पत्र (लाइसेन्स) प्राप्त करने के बाद टाटा इगलैंड, जर्मनी तथा अमेरिका गए। वहाँ पर उन्होने लौह एव स्पात के निर्माण क्षेत्र का निरीक्षण विशेषरूप से किया तथा तान्त्रिक विशेषज्ञो से अपनी योजना के सम्बन्ध मे परामर्श किया। कुछ खानो के विशेषज्ञो को वे अपने साथ भारत ले आए। बाद मे चान्दा जिले की योजना छोड दी गई।

१९०३ मे मेसर्स टाटा एण्ड सन्स कम्पनी ने साक्ची (Sakchi) की खानो का विदोहन करने का निर्णय किया। इस समय तक प्रारम्भिक कार्यो पर ३०,००० पौड खर्च हो चुके थे। निर्माणशाला की स्थापना के स्थान (Site) को चुनने के लिए भारतीय सरकार के 'ज्योलोजिकल सर्वे' (Geological

Survey) विभाग के अवकाश प्राप्त पदाधिकारी श्री पी० एन० बोस से परामर्श लिया गया और अन्त में साक्ची को ही चुना गया, क्योंकि यहाँ पर उत्तम प्रकार का कच्चा लोहा (Ore) तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त थीं। यातायात की सुविधाओं के सम्बन्ध में सरकार से बड़ी रेलवे लाइन बनाने के लिये अनुरोध किया गया। सरकार ने रेलवे लाइन बनाने के अतिरिक्त कम भाडा (Freight) भी लेने का वचन दिया और दस वर्ष तक २०,००० टन स्पात (Steel) प्रति वर्ष आयात मूल्य (Imported Price) पर क्रय करने का समझौता किया।

१९०६ में श्री जे० एन० टाटा के सुपुत्र श्री दोराब जी टाटा लन्दन के मुद्रा बाजार से पूंजी प्राप्त करने के उद्देश्य से इंगलैंड गए। परन्तु विभिन्न असुविधाओं के कारण यह सम्भव न हो सका और ऐसा प्रतीत होता था कि सम्पूर्ण योजना स्वप्न मात्र ही रह जायगी। परन्तु १९०७ में स्वदेशी आंदोलन के प्रारम्भ हो जाने ने टाटा को एक सुअवसर प्राप्त हुआ। उन्होंने भारतीय जनता से धन प्रदान करने के लिये अपील की और इसमें वे सफल भी हुए। प्रविवरण (Prospectus) प्रकाशित करने की तिथि (२७ अगस्त, १९०७) से तीन सप्ताह के अन्दर ही ८००० भारतीयों ने १,६३,००० पौंड के अंश खरीदे। बाद में कार्यशील पूंजी प्राप्त करने के लिए जब ऋण पत्रों का निर्गमन किया गया तो सम्पूर्ण ४,००,००० पौंड की निगमित राशि ग्वालियर के महाराजा सिन्धिया ने खरीद ली। इस प्रकार श्री जे० एन० टाटा द्वारा कल्पित योजना सफल हो सकी और १९११ से 'टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी साक्ची (जमशेदपुर) लौह एवं स्पात का उत्पादन करने लगी।

इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि प्रवर्त्तक का कार्य कितना कठिन, कष्टप्रद, जोखिम तथा अनिश्चित होता है। उसे पर्याप्त पूर्व ज्ञान (Foresight), पूंजी तथा शक्ति (Energy) की आवश्यकता होती है। संक्षेप में उसके प्रवर्त्तन सम्बन्धी कार्यों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है —

(१) व्यावसायिक सुअवसरों की खोज (Discovery of business Opportunities),

(२) विभिन्न व्यावसायिक तत्वों का समन्वय (Assembly or Co-ordination of various Business Elements), तथा

(३) पूंजी की व्यवस्था (Provision of finance)

व्यावसायिक सुअवसरों की खोज

व्यावसायिक सुअवसरो की खोज से तात्पर्य प्रवर्त्तको द्वारा किसी व्यवसाय को स्थापित करने की बात सोचना है। प्रवर्तक ही सर्वप्रथम यह सोचते हैं कि कौन सा व्यवसाय कहाँ पर और किस समय स्थापित करना चाहिए। यह कोई जरूरी नही है कि प्रवर्त्तक ही व्यवसाय के निर्माण सम्बन्धी आधारभूत विचार (Basic Idea) की खोज करें, वे उसे कार्यान्वित करने के लिए केवल व्यापारिक सम्भावनाओ (Commercial Possibilities) को सोचते है।

इस प्रकार के विचार को जन्म देने वाले तीन कारण हो सकते हैं —

(१) किसी नवीन कम्पनी को प्रारम्भ करने का विचार,

(२) *किसी पूर्व स्थापित कम्पनी के विस्तार का विचार, तथा*

(३) वर्तमान कम्पनियों को सयोजित करने का विचार।

(१) नवीन कम्पनी को प्रारम्भ करने का विचार—यदि किसी नवीन कम्पनी को प्रारम्भ करने का विचार है तो इस सम्बन्ध मे प्रवर्तक को धन का विनियोग करने से पूर्व खूब जाँच पडताल कर लेनी चाहिए। क्योंकि शुरु शुरु म इस प्रकार के विचार बहुत ही भले व आकर्षक प्रतीत होते हैं। अत इस सम्बन्ध मे पूर्ण विवेक व सावधानी की आवश्यकता है।

प्रवर्त्तक को सम्भावित नवीन व्यवसाय का विश्लेषण तीन दृष्टिकोणो से करना चाहिये —

(अ) पूँजी लागत का अनुमान

(ब) सम्भावित कुल आय का अनुमान, तथा

(स) व्यावसायिक खर्चों का अनुमान।

दूसरे शब्दो मे प्रवर्त्तक को यह अनुमान लगाना चाहिए कि, क्या सम्भावित व्यवसाय (Projected enterprise) की आय मे से व्यावसायिक खर्चों (Operating Costs) को चुकाया जा सकता है, विनियोजित पूँजी पर ब्याज *दिया जा सकता है और अन्त मे स्वामित्वधारियों को* उनके जोखिमों (Risks) तथा सेवाओं के बदले म कुछ लाभाश दिया जा सकता है अथवा नहीं ?

(२) पूर्व स्थापित कम्पनी के विस्तार का विचार—पूर्व स्थापित कम्पनियो के विस्तार के सम्बन्ध मे प्रवर्त्तक को पूर्ण तथा विवेचनात्मक अध्ययन करना चाहिये। कम्पनी का विस्तार सामयिक (Seasonal) माँग

अथवा स्थायी माँग के कारण हो रहा है, इस पर भी ध्यान देना चाहिये। विस्तार के सम्बन्ध मे किस पकार की पूँजी दीर्घकालीन या अल्प कालीन की आवश्यकता होगी, यह भी विचारणीय प्रश्न है। पूँजी की पूर्ति आन्तरिक अर्थ-प्रबन्धन से या प्रतिभूतियो (Securities) का निर्गमन करके की जावेगी। प्रवर्त्तक को अल्पकालीन या सामयिक माग को वृद्धि की पूर्ति दीर्घकालीन अर्थ प्रबन्धन से न करने देनी चाहिए।

(३) वर्तमान कम्पनियों को सयोजित करने का विचार—आज के युग मे आपसी प्रतिस्पर्धा को दूर करने के लिये, बडे पैमाने के उत्पादन का लाभ उठाने के लिये, व्यावसायिक व्ययो मे मितव्ययता लाने के लिए तथा आर्थिक सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से विभिन्न कम्पनियो का सयोजन या सघनन (Consolidation) कर दिया जाता है। सयोजन या सघनन की अवस्था मे अनेक कठिनाइयों का सामना करना होता है प्रवर्तक को सयोजित कम्पनियो को होने वाले लाभों, उनकी वास्तविक व अवास्तविक (Tangible and Intangible) सम्पत्ति तथा सम्भावित कठिनाइयो का सत्यापन (Verification) कर लेना चाहिए।

व्यावसायिक तत्वों का समन्वय

किसी व्यवसाय के स्थापित करने के विचार की खोज कर लेने पर तथा उसके मूर्तिवान करने की सम्भावना को परख कर लेने के पश्चात् प्रवर्त्तन विधि मे दूसरा कार्य इन विचारो को इस प्रकार समन्वित करना होता है जिससे वह चालू व्यवसाय (Going Concern) के रूप मे दृष्टिगोचर होने लगे। इस कार्य के अन्तर्गत अनेक क्रियाएँ आती हैं जैसे व्यवसाय की स्थापना के स्थान (Site) को चुनना, उसे नकद या 'पट्टा' (Lease) पर खरीदना, प्लाट के निर्माण की व्यवस्था करना तथा साज-सज्जा (Equipment) खरीदना पेटेन्ट्स प्राप्त करना तथा तात्रिक विशेषज्ञो की खोज करना आदि। सक्षेप मे इसके अन्तर्गत मौलिक विचार (Original idea), सम्पत्ति तथा प्रबन्धकीय योग्यता का समन्वय करना होता है।

इस सम्बन्ध म निम्न बातों पर ध्यान देना चाहिए —*

(१) औद्योगिक इकाई का आकार (The size of the industrial unit)—जहा तक हो सके स्थापित की जाने वाली इकाई का आकार

**Principles and Problems of Industrial Organisation* : Ghosh and Om Prakash, pp. 82-83

सर्वोत्तम (Optimum) होना चाहिए। परन्तु ऐसे व्यवसायो को जिनकी सफलता सदेहजनक है अथवा जो बडे पैमाने पर स्थापित ही नही किए जा सकते, प्रारम्भ म छोटे पैमाने पर ही स्थापित किए जाते हैं।

(२) स्थापना सम्बन्धी विचार (Locational Pattern)--औद्योगिक इकाई को किसी स्थान पर स्थापित करने से पूर्व, उसके लिए आवश्यक कच्चे माल की उपलब्धता, शक्ति, श्रमिको का प्रदाय (Supply) तथा अन्य आवश्यक बातो पर विचार कर लेना चाहिए। प्राचीन काल मे व्यवसाय अधिकतर उन्ही स्थानो पर स्थापित किए जाते थे जो 'ऐतिहासिक महत्व' के होते थे। परन्तु आजकल ऐतिहासिक महत्व के स्थानो को अधिक प्रधानता न देकर उपरोक्त तत्वो पर ध्यान दिया जाता है।

(३) अचल सम्पत्ति (Fixed Capital Assets)— औद्योगिक इकाई के आकार तथा आवश्यकता के अनुसार उसका भवन, मशीनरी तथा अन्य पूंजीगत सम्पत्ति का नियोजन करना चाहिए। आधुनिक मशीन युग म आधुनिकतम इजीनियरिंग सुविधाओ का प्रबन्ध बहुत ही मितव्ययता तथा सुगमता से करना चाहिए।

(४) प्रबन्धकीय शासन (Managerial Control) किसी भी व्यवसाय या कम्पनी मे प्रबन्धकीय शासन के सम्बन्ध म स्पष्ट योजना होना चाहिए। यह निश्चित कर लना चाहिए कि कम्पनी का प्रबन्ध अभिकर्ताओ (Managing Agents) के द्वारा होगा अथवा नही। यदि प्रबन्ध अभिकर्ताओ के द्वारा प्रबन्ध होता है तो उस अवस्था म प्रबन्ध अभिकर्ताओ, सचालको तथा अन्य पदाधिकारियो के क्या अधिकार व दायित्व होगे ?

(५) अर्थ-प्रबधन योजना (The Financial Plan)--उपरोक्त बातो को ध्यान म रखते हुए यह निश्चित कर लेना चाहिए कि कितनी पूंजी आवश्यक होगी और उसे किन साधनो के द्वारा प्राप्त किया जा सकेगा। स्थायी पूंजी प्राप्त करने के दो मुख्य साधन है—अशो तथा ऋण पत्रो का निर्गमन करके। किस प्रकार के अशो तथा ऋण पत्रो का निर्गमन किया जावेगा तथा उनका अभिगोपन (Underwriting) कराया जावेगा अथवा नही, इसके बारे मे निर्णय लेना होगा। यदि प्रतिभूतियो (Securities) का अभिगोपन कराना है तो प्रवर्त्तक को विनियोक्ता बैंको (Investment Banks),

'निर्गमक गृहों' (Issue Houses) अथवा 'अभिगोपन कर्त्ता सघों' (Under writing Syndicates) के सम्पर्क मे आना पडता है।

(६) वैधानिक उपचार (Legal Formalities)— रजिस्ट्रेशन समामेलन (Incorporation) तथा प्रविवरण (Prospectus) के निर्गमन के अतिरिक्त व्यवसाय को वास्तविक रूप से प्रारम्भ करने के पूर्व अन्य बहुत सी वैधानिक कार्यवाहियों को करना होता है। बहुत से व्यवसायों के लिए अनुज्ञा पत्र (Licenses) तथा आज्ञा-पत्र (Permit) प्राप्त करने होते हैं।

(७) व्यावसायिक सम्पर्क (Trade Contacts)—व्यवसाय को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कच्चे माल के बेचने वालो, यातयात तथा विपणि सस्थाओ (Transport and marketing Agencies), व्यापारिक पार्षदो इत्यादि से सम्पर्क स्थापित करने होते है। इस प्रकार के सम्पर्क विज्ञापन या पब्लिसिटी के द्वारा सरलता से स्थापित हो सकते है।

पूंजी की व्यवस्था (Provision of Finance)

प्रवर्तन सम्बन्धी तीसरा महत्वपूर्ण कार्य कम्पनी के लिए पर्याप्त पूजी की व्यवस्था करना है। जैसा कि ऊपर इगित किया जा चुका है कि आवश्यक सम्पत्ति इत्यादि के क्रय करने के अतिरिक्त कुछ रोकड भी होनी चाहिए जिससे आकस्मिक खर्चो तथा व्यावसायिक खर्चो की पूर्ति बिना कठिनाई के की जा सके। महोदय डन तथा ब्राडस्ट्रीट (Dun and Bradstreet) द्वारा किए गए तुलनात्मक अध्ययन से ज्ञात होता है कि नवनिर्मित व्यावसायिक कम्पनियो मे से बहुत सी कम्पनियों की असफलता का मुख्य कारण अपर्याप्त कार्यशील पूँजी की व्यवस्था है। अत स्थायी पूँजी के साथ-साथ कार्यशील पूजी का भी समुचित प्रबन्ध करना चाहिए।

सक्षेप मे फील्ड के शब्दो मे प्रवर्त्तन के अन्तर्गत "विपणि, इन्जीनियरिंग, लेखा पालन, आर्थिक तथा वैधानिक पर्यवेक्षण, योजना का सूत्रीकरण तथा योजना को कार्यान्वित करना सम्मिलित होते हैं।"*

---

* "The marketing, engineering, accounting, financial and legal surveys, the formulating of the plan and the putting of the plan into effect are usually referred to as promotion"

"*Corporation Finance*". Field, Chapter I.

प्रवर्त्तको के प्रकार (Types of Promoters)

आज के युग मे प्रवर्त्तक अनेक प्रकार के कार्य करते है और उनका निर्माण भी विभिन्न परिस्थितियो मे हुआ है। अतएव प्रवर्त्तक अनेक नामो से सम्बोधित किए जाते है। सक्षेप मे प्रवर्त्तक निम्न प्रकार के हो सकते है —

(१) आकस्मिक प्रवर्त्तक (Accidental Promoters)
(२) पेशेवर प्रवर्त्तक (Professional Promoters)
(३) इन्जीनियरिंग फर्म या निर्माता (Engineering Firm or Manufacturers)
(४) वित्तीय प्रवर्त्तक (Financial Promoters)
(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ता (Managing Agents)
(६) विशिष्ठ सस्थाएँ (Specialised Institutions)

(१) आकस्मिक प्रवर्त्तक

इस वर्ग के अन्तर्गत छोटे पैमाने पर व्यापार करने वाले बहुत से व्यापारीगण आते हैं जो कि किसी विचार (Idea) मे व्यापारिक सफलता के चिन्ह देखते है। इन लोगो की क्रियाएँ अधिकतर उन क्षेत्रो तक ही सीमित रहती है जहाँ वे रहते है। इस प्रकार यदि वे अपने प्रयास मे असफल भी हो जाते है तो भी कोई विशेष महत्वपूर्ण बात नही समझी जाती है।

(२) पेशेवर प्रवर्त्तक

कुछ अधिकोषण सस्थाएँ तथा बड़े बड़े व्यवसायी लोग सदैव प्रवर्त्तन सम्बन्धी अवसरो (Opportunities) की खोज मे रहते है। वे लोग नवीन कम्पनियो का निर्माण करते है, समामेलन (Incorporation) कराते है तथा पुरानी कम्पनियो का विस्तार करते है। कभी कभी प्रतियोगिता को कम करने के लिए अथवा आर्थिक सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रतियोगी (Competing) या पूरक (Complimentary) कम्पनियो को मिलाकर सयोजन भी करा देते है।

(३) इन्जीनियरिंग फर्म या निर्माता

कभी-कभी इन्जीनियरिंग फर्म या निर्माता कम्पनियाँ नवीन कम्पनियो का प्रवर्त्तन इस उद्देश्य से करने लगती है जिससे उनके द्वारा प्रवर्तित कम्पनियो के चालू होने पर उनके (प्रवर्त्तक कम्पनियो) निर्मित माल की खपत होने

लगेगी। इस प्रकार ऐसे प्रवर्त्तक अपने व्यक्तिगत हित से कम्पनियो का प्रवर्त्तन करते है।

(४) वित्तीय प्रवर्त्तक

विनियोगी वैंको की भाँति वित्तीय सस्थाएँ (Financial Institutions) भी कभी-कभी प्रवर्त्तक का काम करती है। ये सस्थाएँ नवीन कम्पनी की सम्पूर्ण पूँजी को क्रय कर लेती हैं और बाद मे कुछ लाभ लेकर बाजार मे बेच देती है। ऐसी अवस्था मे कम्पनियो का प्रवर्त्तन औद्योगिक या व्यापारिक दृष्टिकोण से न होकर वित्तीय दृष्टिकोण से होता है।

(५) प्रवन्ध-अभिकर्त्ता

प्राय प्रवन्ध अभिकर्त्ता लोग भी प्रवर्त्तकों का काम करते है। इस प्रकार के प्रवर्त्तक भारतवर्ष मे बहुत पाये जाते हैं। व्यावसायिक प्रवर्त्तको (Professional Promoters) तथा इस प्रकार के प्रवर्त्तको मे बहुत कुछ समानता पाई जाती है, क्योंकि दोनो ही प्रकार के प्रवर्त्तक व्यावसायिक अवसरो की खोज मे रहते है। इन प्रवर्त्तको तथा विदेशो के व्यावसायिक प्रवर्त्तको मे अन्तर है। विदेशो मे कम्पनी का प्रवर्त्तन व समामेलन (Incorporation) करने के पश्चात् प्रवर्त्तक का कम्पनी से कोई सम्बन्ध नही रहता है, परन्तु भारतवर्ष मे कम्पनी के समामेलन (Incorporation) के पश्चात् भी प्रवर्त्तक (प्रवन्ध अभिकर्त्ता) का कम्पनी से घनिष्ठ सम्बन्ध रहता है।

(६) विशिष्ठ संस्थाएँ

आधुनिक नियोजित औद्योगिक विकास के विचार ने इस प्रकार की सस्थाओं की वृद्धि को प्रोत्साहित किया है। इगलैंड मे 'ट्रेडिंग एस्टेट्स आव यूनाइटेड किंगडम' तथा भारत मे 'इण्डस्ट्रियल डेवलपमेंट कारपोरेशन आव इण्डिया' ऐसी सस्थाओ के ज्वलत उदाहरण है। इन विशिष्ठ सस्थाओ का कार्य किसी क्षेत्र मे स्थापित की जाने वाली कम्पनी की भावी सफलता का अनुमान लगाना होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वे तांत्रिक विशेषज्ञो से प्रारम्भिक कार्य के बारे में अनुसधान (Investigation) कराते है। यदि विशेषज्ञो की रिपोर्ट सतोषजनक होती है तो वे ऐसी कम्पनियों का प्रवर्त्तन करते है। प्रवर्त्तन करने के पश्चात् वे नवीन कम्पनियो को निजी व्यक्तियो को वेच देते हैं।

प्रवर्त्तक का पारितोषिक
(Remuneration of Promoters)

प्रवर्त्तक का पारितोषिक कई प्रकार से दिया जा सकता है। अधिकतर उसे पारितोषिक नकद (Cash) प्रतिभूतियो, अशो (Shares) अथवा नियोजन (जाब) के रूप मे दिया जा सकता है।

(१) नगद धन (Cash)

प्रवर्त्तक का पारितोषिक नक्द रुपयो (कैश) मे दिया जा सकता है। परन्तु यदि प्रवर्त्तक अपना पारितोषिक कैश मे ही लेने के लिए जोर देता है तो नई कम्पनी के स्वामित्वधारियो के मस्तिष्क मे कम्पनी की सफलता के सम्बन्ध मे सन्देह उत्पन्न हो सकता है। अत जहाँ तक हो सके प्रवर्त्तक को अपना पारितोषिक कैश मे नही लेना चाहिए जिससे स्वामित्वधारियो तथा जनता मे प्रवर्त्तित कम्पनी के बारे मे विश्वास बना रहे। हाँ, जहाँ तक प्रवर्तन व्ययो का सम्बन्ध है वह कैश मे ले सकता है क्योकि ये व्यय उसने अपने पास से किए है।

(२) प्रतिभूतियों के रूप में

प्रवर्त्तक का पारितोषिक प्रतिभूतियो के रूप मे भी दिया जा सकता है। प्रतिभूतियाँ भी अनेक प्रकार की होती हैं। प्रवर्तक को ऋण-पत्रों व पूर्वाधिकार अशो (Preference Shares) को लेने के लिए ही जोर न देना चाहिए क्योकि इससे अन्य लोगो को प्रवर्त्तक की क्रियाओ मे विश्वास नही रहेगा। प्रवर्त्तक को ऐसी प्रतिभूतियाँ (Securities) लेनी चाहिए जो साधारण या सामान्य हो और उन पर लाभाश भी सबसे बाद मे मिलता हो।

(३) अशो के खरीदने की स्वेच्छा (Option to Purchase Shares)

यदि इस विधि से प्रवर्त्तक को पारितोषिक दिया जाता है तो जनता को और भी विश्वास हो जाता है। क्योकि प्रवर्त्तक कम्पनी का प्रवर्तन करके न केवल अपनी ख्याति को ही जोखिम मे डालता है बल्कि अपने पारितोषिक को भी जोखिम मे डालता है। यदि प्रवर्त्तित कम्पनी अभाग्यवश असफल हो जाती है तो प्रवर्त्तक की ख्याति पर धब्बा लगता है और इसके साथ-साथ उसका पारितोषिक भी जो कि अशो के रूप मे था समाप्त हो जाता है।

(४) नियोजन (Job) के रूप में पारितोषिक

प्रवर्त्तक को पारितोषिक उसे प्रवर्तित कम्पनी में नियोजन (Job) प्रदान करके भी दिया जाता है। यह प्रथा भारतवर्ष में अधिक प्रचलित है। यहाँ पर प्रवर्त्तक नई कम्पनियों के प्रबन्ध अभिकर्त्ता के पद पर नियुक्त होने के लिए अधिक जोर देते हैं। यदि वे एक बार किसी कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता नियुक्त कर दिए जाते हैं तो वे उस कम्पनी के जीवनकाल तक अपने पद को बनाए रखने का प्रयत्न करते है। यह प्रथा १९५६ तक बहुत प्रचलित थी। परन्तु नवीन कम्पनी अधिनियम (१९५६) के अन्तर्गत कोई भी प्रबन्ध अभिकर्त्ता १५ वर्ष से अधिक के लिए नियुक्त नही किया जा सकता और उसकी पुनर्नियुक्ति यदि की जाती है, तो वह भी १० वर्ष से अधिक के लिए नहीं हो सकती है।*

भारतवर्ष में प्रवर्त्तन (Promotion in India)

भारत में अधिकांश रूप में कम्पनियों का प्रवर्त्तन करने का कार्य प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा ही सम्पादित किया जाता रहा है। उदाहरणार्थ श्री एम० ए० मुलकी के अनुसार दस औद्योगिक सार्थों में से नौ का निर्माण प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा ही होता है। हमारे देश में व्यावसायिक तथा वित्तीय प्रवर्त्तक नही पाए जाते। इसका तात्पर्य यह नहीं कि यहाँ पर ऐसे व्यक्तियों का अभाव है जो व्यावसायिक तथा वित्तीय प्रवर्त्तकों का कार्य कर सकें। वास्तविकता यह है कि स्वतन्त्र प्रवर्त्तकों को व्यावसायिक दुनियाँ में पदार्पण करने के लिए पूँजीपतियों से अथवा ऐसे व्यक्तियों से जिनके पास पर्याप्त आर्थिक साधन हैं, उत्साह तथा आर्थिक सहायता बिल्कुल नहीं मिलती। दुष्परिणामत स्वतन्त्र प्रवर्त्तकों का उद्गम सार्थों के प्रवर्त्तन जगत् में हो नहीं पाता।

प्रमण्डल अधिनियम कमेटी (१९५२) जो कि "भाभा कमेटी" के नाम से सुप्रसिद्ध है, ने प्रबन्ध अभिकर्त्ता प्रणाली की विकसित रूपरेखा को ध्यान में रखते हुए कहा है कि—"इतिहास भूगोल तथा आर्थिक स्थिति सबने मिल कर एक ऐसी प्रणाली को जन्म दिया है जो अपनी कुछ विशिष्ट विशेषताओं के कारण इस समय भी जीवित है।"†

---

* For detailed discussion see : '*Managing Agents*' Chapter 8.

† 'History, Geography and Economics all combined to create and develop a system which in some of its distinctive features still retains its unique character." *The Company Law Committee* (1952).

"फिसकल कमीशन" (१९४९-५०) ने भी इस प्रणाली की महत्ता स्वीकार करते हुए कहा है कि "उद्योगो की स्थापना के प्रारम्भिक जीवन मे जबकि न तो साहस और न पूंजी ही पर्याप्त थे, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ ने इन दोनो आवश्यकीय तत्वो (Elements) का सार्थो के नव जीवन सचार हेतु समन्वय किया। परिणाम स्वरूप भारतवर्ष मे सूती वस्त्र उद्योग, जूट उद्योग, स्पात उद्योग इत्यादि जैसे सुव्यवस्थित उद्योग, प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के उत्साह एव तीव्र प्रेरणा के सुपरिणाम स्वरूप स्थापित हुए। वास्तव मे यदि प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोगो ने कम्पनियो के प्रवर्त्तन तथा निर्माण मे इतना भाग न लिया होता तो वर्तमान औद्योगिक विकास कदापि सम्भव न हो सकता।

प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की क्रियाओ की तुलना यूरोपियन या अमेरिकन प्रवर्त्तको की क्रियाओ से नही की जा सकती। हाँ इनकी तुलना जर्मनी की "जर्मन क्रेडिट बैंक्स" की प्रारम्भिक क्रियाओ से की जा सकती है। 'जर्मन क्रेडिट बैंक्स' केवल औद्योगिक सार्थों का प्रवर्त्तन ही नही करते अपितु अक्रियाशील पूंजी (Shy Capital) का भी प्रचलन करते रहे हैं।

भारतीय प्रवर्त्तन के दोष

भारतवर्ष मे कम्पनियो के प्रवर्त्तन का कार्य केवल प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के द्वारा किए जाने के कारण इसमे अनेक दोष ऐसे आ गए है जो कि वर्तमान सार्थों की प्रगति मे बाधक के रूप मे नजर आते है—जिनमे से प्रमुख दोषो का उल्लेख निम्न रूप मे किया जा सकता है —

(१) अत्यधिक प्रवर्त्तन व्यय निश्चित करना,
(२) कुछ शक्तिशाली प्रवर्त्तको के हाथ मे आर्थिक सत्ता का केन्द्रित होना,
(३) आधारभूत उद्योगो के प्रवर्त्तन का अभाव तथा
(४) प्रवर्त्तकों द्वारा प्रवर्तित कम्पनियो का शोषण।

(१) अत्यधिक प्रवर्त्तन व्यय

ऐसा कहा गया है कि प्रबन्ध अभिकर्त्ता-गण जो कम्पनियो का प्रवर्त्तन करते है प्रवर्त्तन मे इतना व्यय कर देते हैं जो कि नवीन व्यावसायिक जगत मे आने वाली कम्पनी की लाभ कमाने की शक्ति की तुलना मे कही अधिक होता है। प्रबन्ध अभिकर्त्ता गण अधिकतर नवीन कम्पनी को अपनी सम्पत्ति बेच देते है और उसके मनमाने दाम लेते है। इस प्रकार से नई कम्पनी की पूंजी का एक बहुत बड़ा भाग बेकार सम्पत्ति तथा अवास्तविक

सम्पत्ति (Intangible Assets) के क्रय करने मे फँस जाता है जिनका कम्पनी के आर्थिक कलेवर (Economic Structure) पर गहरा कुप्रभाव पड़ता है।

(२) आर्थिक सत्ता का केन्द्रीयकरण

भारतीय उद्योगों के प्रबन्ध का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि कुछ प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ का समूह ६०० मे अधिक औद्योगिक इकाइयों का नियंत्रण तथा प्रबन्ध करता है। इनमे से २५० से अधिक औद्योगिक इकाइयो के प्रबन्ध पर नियत्रण केवल ९ प्रमुख प्रबध अभिकर्त्ताओ के हाथ मे ही है। इन प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की गणना मे एन्ड्रयू यूल (Andrew Yule), मैक लाऍड (Mc Leods). मार्टिन (Martin), बर्ड (Bird), जारडिन हैन्डर्सन (Jardin Handerson), गिलेन्डर्स (Gillanders), ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन (B. I. C) डन्कन (Duncan), आक्टेवियस स्टील (Octavious Steel) आते है। एन्ड्रयू यूल तथा मैकलायड मिलकर ९० औद्योगिक इकाइयो से अधिक का प्रबन्ध एव नियन्त्रण करते हैं।

भारतीय प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ मे से टाटा, बिरला, डालमिया, सिंघानियाँ, थापर, भदानी, नारग, रुइया, सक्सेरिया तथा पोद्दार प्रसिद्ध हैं। इस समय डालमियाँ के नियत्रण मे ४०, सिन्धानियाँ के नियत्रण म ४२, थापर के नियत्रण मे ३२, बिरला के नियत्रण मे २४ तथा टाटा के नियत्रण मे २९ कम्पनियाँ है। इन आँकडो से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष मे प्रबन्धकीय तथा शासकीय योग्यता की बहुत कमी है। यह हमारे आर्थिक कलेवर मे बहुत बडा दोप है।

(३) आधारभूत उद्योगों के प्रवर्त्तन का अभाव

आर्थिक प्रवर्त्तनो को छोडकर शेप जितने भी प्रवर्त्तन भारतीय तथा विदेशी प्रवध अभिकर्त्ताओं द्वारा किए गए वे सब ऐसे उद्योगो से सम्बन्धित थे जो या तो अपनी निर्मित वस्तुओ का निर्यात करते थे या उपभोग्य पदार्थों का उत्पादन करते थे। इससे हमारे आर्थिक कलेवर मे एक बहुत बडा दोप आ गया। आर्थिक विकास पगु सा (Lopsided) हो गया। दूसरे शब्दो मे मुख्य तथा आधारभूत उद्योगो का प्रवर्त्तन नही किया गया जिससे हमारा आर्थिक विकास उतना न हो सका जितना कि वास्तव मे होना चाहिए।

(४) प्रवर्तित कम्पनियो का शोषण

प्रवर्त्तक लोग जो अधिकाश रूप मे प्रबन्ध अभिकर्ता होते हैं, नव निर्मित

कम्पनियो के प्रवध अभिकर्त्ता भी स्वय बन बैठते है और गुप्त लाभो द्वारा एव अनुचित पारितोषिक द्वारा कम्पनी का शोषण करते है। अधिकतर वे अपने लिए स्थगित अशो (Deffered Shares) को तथा अन्य लाभप्रद पदो को सुरक्षित कर लेते हैं। स्थगित अशो पर मतदान देने का अधिकार अपेक्षाकृत अधिक होता है। इससे उनको कम्पनी की नीति पर नियन्त्रण करने का अधिकार मिल जाता है।

उक्त दोषो को निराकरण करने की सदइच्छा एव औद्योगिक विकास की समुचित व्यवस्था हेतु कम्पनी अधिनियम १९५६ को पास किया गया। ३१ अप्रैल १९५६ की औद्योगिक नीति के अनुसार नवीन उद्योगो को स्थापित करने का दायित्व सरकार का है। सरकार इस नीति का पालन कर रही है। उद्योगो की आर्थिक सहायतार्थ अक्टूबर सन् १९५४ मे 'राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम' (N I D. C) की स्थापना की गई है। यह सस्था पूर्णतया सरकार के स्वामित्व तथा नियन्त्रण मे है। १९५५ मे 'औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम' (I C I C.) की स्थापना भी १७ ५ करोड रुपए की पूंजी से इसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त की गई है। कारपोरेशन ऋण पूंजी प्रदान करने के अतिरिक्त कुछ पूंजी भी प्रदान करता है। कारपोरेशन की पूंजी मे सरकार ने ७ ५ करोड रु० का योगदान देकर उसके कलेवर को मजबूत बनाने की प्रेरणा का परिचय दिया है।

नवीन कम्पनी एक्ट (१९५६) के अन्तर्गत प्रवर्त्तन

भारतीय कम्पनी अधिनियम १९५६ जो १ अप्रैल १९५६ से लागू होता है, प्रवर्त्तको, विनियोक्ताओ तथा प्रबन्धको मे समुचित सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से, कम्पनी के कलेवर तथा प्रबध व्यवस्था मे सुधार करने की चेष्टा करता है। कम्पनी अधिनियम मे सुधार करने का प्रमुख उद्देश्य विनियोक्ताओ को अधिक से अधिक सरक्षण देना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए नवीन अधिनियम प्रास्पेक्ट्स मे अधिक से अधिक सूचना देने व स्पष्टीकरण पर जोर देता है। इस सम्बन्ध मे प्रोस्पेक्ट्स के निर्गमन पर अधिनियम में निम्नांकित प्रतिबन्ध तथा प्रावधान (Provision) किए गए है —

(१) अपर्याप्त पूजी वाली कम्पनियो के प्रवर्त्तन पर प्रतिबध

कम्पनी एक्ट १९१३ के अनुसार कम्पनियो को केवल न्यूनतम अभिदान (Minimum Subscription) तक की राशि एकत्रित करनी होती थी।

कम्पनियों ने इसका अनुचित लाभ उठाया। वे न्यूनतम अभिदान की मात्रा कम से कम निर्धारित करते थे और इस मात्रा तक पूंजी प्राप्त करते ही व्यवसाय प्रारम्भ करने का सार्टीफिकेट (Certificate of Commencement of Business) प्राप्त करने मे सफल हो जाते थे। इस दोष के कारण कम्पनियाँ अधिकतर अल्प पूंजीयत (Under Financed) रह जाती थी। जो कम्पनियाँ प्रारम्भ से ही अल्प पूंजीयत (Under Financed) होती थी वे पूर्ण सफलता नही प्राप्त कर पाती थी और विनियोक्ताओं को हानि होती थी।

नवीन कम्पनी एक्ट (१९५६) के अनुसार यदि अशो का निर्गमन किया गया है, तो सचालको अथवा पार्षद सीमा-नियम (Memorandum of Association) के हस्ताक्षरकर्त्ता (Signatories) द्वारा निर्धारित न्यूनतम राशि का पूर्ण विवरण देना चाहिए। न्यूनतम राशि इतनी अवश्य होनी चाहिए जिससे निम्न व्ययो को पूरा किया जा सके —

(१) क्रय की गई या क्रय की जाने वाली सम्पत्ति का क्रय मूल्य,

(२) प्रारम्भिक व्यय तथा निर्गमित अशो के अभिगोपन का कमीशन (यदि अशो का अभिगोपन कराया गया है),

(३) उपरोक्त व्ययो के सम्बन्ध मे ली गई उधार राशि का पुनर्भुगतान,

(४) कार्यशील पूंजी, तथा

(५) अन्य कोई व्यय।

एक्ट के अनुसार प्रत्येक मद् (Item) पर व्यय की जाने वाली राशि की मात्रा का लिखना भी आवश्यक है। यदि उपरोक्त व्ययो को अशो के निर्गमन के अतिरिक्त अन्य किसी साधन से पूरा किया जा रहा है तो प्रत्येक मद् पर व्यय की जाने वाली राशि तथा उसको प्राप्त करने के साधन का नाम स्पष्ट रूप से लिखना चाहिए।

(२) प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनी की पूंजी

प्राय प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनियो की पूंजी प्रबन्धित कम्पनी की पूंजी से कही कम होती है। इससे कम्पनी के आर्थिक सकट मे फँसने की सम्भावना रहती है। नवीन कम्पनी एक्ट के अनुसार प्रबन्ध अभिकर्त्ता कम्पनी की पूंजी की सूचना प्रास्पक्टस मे देना आवश्यक है।

(३) अशो के निर्गमन के सम्बन्ध मे स्वेच्छाधिकार (Option) तथा पूर्वाधिकार

यह नवीन कम्पनी एक्ट मे एक नया प्रावधान है। इसके अनुसार यदि

किसी व्यक्ति को किसी महत्वपूर्ण अनुबन्ध (Contract) या समझौते के सम्बन्ध मे कोई स्वेच्छाधिकार (Option) या पूर्वाधिकार (Preferencial Right) दिया गया तो उसे प्रोस्पेक्टस में स्पष्ट रूप से व्यक्ति कर देना चाहिए।

(४) कुछ अशों का प्रव्याज पर निर्गमन (Issue of some Shares on Premium)

कुछ कम्पनियाँ अपने अशों का निर्गमन जनता को प्रव्याज (Premium) पर और प्रवर्तकों को सम मूल्य (At-Par) पर अथवा कम प्रव्याज पर करती हैं। इस दोष के निवारणार्थ नवीन एक्ट के अन्तर्गत प्रोस्पेक्टस में इस प्रकार की सूचना देना आवश्यक है। *(Clause 10 of Schedule II of the Indian* Companies Act, 1956).

(५) अशों का अभिगोपन (Underwriting of Shares)

कम्पनी लॉ कमेटी के सम्मुख ऐसे भी कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए गए जिनमे अभिगोपकों ने अपने कर्त्तव्यों का पालन नही किया। दोष को दूर करने के लिए कुछ लोगो ने अभिगोपकों के ऊपर वे ही प्रतिबन्ध लगाने का सुझाव दिया जो 'मिलन कमीशन' ने अपनी रिपोर्ट म व्यक्त किए थे। 'मिलन कमीशन' रिपोर्ट के अनुसार अभिगोपक को अपनी क्षमता के बारे में घोषणा करनी पडती थी और उसकी घोषणा के झूठ साबित होने पर उसके विरुद्ध वैधानिक कार्यवाही की जा सकती थी।

कम्पनी ला कमेटी न इस प्रकार का प्रतिबन्ध उचित न समझा। उसके विचार म ऐसे केसों मे अभिगोपक से इतना अधिक वसूल किया जा सकता है जितने की वास्तविक हानि हुई है

(६) सम्पत्ति का क्रय तथा उसके विक्रेताओ के नाम

कम्पनी एक्ट के क्लाज १२ के अन्तर्गत कम्पनी को, क्रय की जाने वाली सम्पत्ति तथा उसके विक्रेताओ के नाम प्रोस्पेक्टस में देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त कम्पनी के प्रारम्भ करने की तिथि से दो वर्ष पूर्व तक के सम्बन्धित सौदों (Transactions) के बारे में सूचना देना आवश्यक है। इन सौदों के तय करने की तिथि, इनमें हित (Interest) रखने वाले संचालकों या प्रवर्तकों के नाम तथा दी जाने वाली धनराशि की मात्रा का उल्लेख भी प्रोस्पेक्टस में आवश्यक है।

(७) प्रारम्भिक व्यय आदि

क्लॉज १४ के अन्तर्गत वास्तविक या अनुमानित प्रारम्भिक व्ययों, तथा इन व्ययों को करने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में सूचना देनी चाहिए। इसके अतिरिक्त निर्गमन (*Issue*) सम्बन्धी व्ययों के बारे में भी अलग से सूचना देनी चाहिए। इस प्रकार की सूचना पुराने एक्ट के अनुसार आवश्यक नहीं थी।

(८) महत्वपूर्ण अनुबन्ध (Material Contracts)

क्लॉज १६ के अन्तर्गत प्रोस्पेक्टस में महत्वपूर्ण अनुबन्धों, जो प्रबन्ध सचालक, प्रबन्ध अभिकर्त्ता, सचिव (Secretary) तथा कोषाध्यक्ष की नियुक्ति तथा पारितोषिक से सम्बन्धित होते हैं, की तिथि पार्टियों के नाम तथा अनुबन्धों की प्रकृति के बारे में सूचना देना आवश्यक होता है। इसके अतिरिक्त प्रोस्पेक्टस के निर्गमन की तिथि से दो वर्ष पूर्व के अनुबन्धों के बारे में भी सूचना देनी चाहिए। इस प्रकार के प्रावधान का उद्देश्य ही यही है कि जनता प्रोस्पेक्टस को देखते ही समझ जावे कि कौन से अनुबन्ध महत्वपूर्ण हैं।

(९) संचालकों तथा प्रवर्त्तकों का हित

क्लाज १८ के अन्तर्गत प्रत्येक सचालक तथा प्रवर्तक के कम्पनी के प्रवर्त्तन तथा सम्पत्ति के क्रय में, प्रोस्पेक्टस के निर्गमन की तिथि से दो वर्ष पूर्व तक के हित की प्रकृति तथा सीमा के सम्बन्ध में सूचना देना आवश्यक है।

(१०) अंश पूँजी का वर्णन

क्लाज १९ तथा २० के अनुसार अंश पूँजी के सम्बन्ध में पूर्ण विवरण जैसे पूँजी की मात्रा, उसका विभिन्न प्रकार के अंशों में विभाजन, अंशों पर वोट देने का अधिकार, लाभांश व पुनर्भुगतान सम्बन्धी अधिकारों की सूचना देना आवश्यक है। कम्पनी के सदस्यों पर पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association) के अन्तर्गत लगाए गए प्रतिबन्धों की प्रकृति व सीमा का उल्लेख भी करना चाहिए।

(११) सचित कोषों तथा अर्जित लाभों का पूँजीकरण तथा सम्पत्ति का पुनर्मूल्यांकन

क्लाज २२ के अन्तर्गत कम्पनी के सचित कोषों तथा अर्जित लाभों के पूँजीकरण एवं सम्पत्ति के पुनर्मूल्यांकन के सम्बन्ध में सूचना देनी चाहिए।

(१२) अंकेक्षकों, लेखपालों तथा विशेषज्ञों की रिपोर्ट

कम्पनी के लाभ एवं हानि तथा लाभांशों के सम्बन्ध मे पिछले ५ वर्षों की रिपोर्ट देनी चाहिए। पुराने एक्ट के अनुसार यह रिपोर्ट पिछले ३ वर्षों की ही होती थी। इसके साथ-साथ कम्पनी के लाभ हानि खाता बनाने की अन्तिम तिथि के समय देनदारियों तथा लेनदारियों (Assets and Liabilities) की वास्तविक स्थिति के बारे में भी सूचना देनी चाहिए।

इस प्रकार की रिपोर्ट ऐसे व्यक्तियों के द्वारा नहीं होनी चाहिए, जो कम्पनी के प्रवर्तन, निर्माण अथवा प्रबन्ध से किसी प्रकार भी सम्बन्धित रहा हो। (धारा ५७)

यदि कोई व्यक्ति जान बूझ कर जनता को धोखा देने के उद्देश्य से झूठी रिपोर्ट देता है अथवा महत्वपूर्ण बातों को छिपाता है तो उसे ५ वर्ष तक की सजा या १०,००० रु० तक जुर्माना या दोनों भुगतने होते है। कुछ देशों जैसे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका तथा कनाडा मे प्रोस्पेक्टस के निर्गमन के पूर्व उसकी जाँच पडताल उचित अधिकारियों के द्वारा की जाती है। भारतवर्ष में भी इसी प्रकार की व्यवस्था होनी चाहिए।

प्रवर्तन तथा निर्माण (Promotion and Floatation)

किसी नवीन कम्पनी की स्थापना की विधि को इंगित करने के लिए अनेक शब्दों को प्रयुक्त किया जाता है। 'प्रवर्तन' का अर्थ कम्पनी के प्रकाश मे आने के पूर्व के प्रारम्भिक कार्यों जैसे पर्यवेक्षण (Surveys), आवश्यक साधनों की जाच पडताल इत्यादि से लगाया जाता है। इसके विपरीत *'निर्माण' (Floatation) का अर्थ कम्पनी के निर्माण की वास्तविक विधि मे लगाया जाता है। सकुचित दृष्टिकोण से 'निर्माण' का अर्थ केवल पूंजी प्राप्त करने के साधनों से लगाया जाता है। विस्तृत दृष्टिकोण से 'निर्माण' के अन्तर्गत कम्पनी की स्थापना के अतिरिक्त उसके सुव्यवस्थित स्थापन से भी लगाया जाता है जिससे कम्पनी सुचारु रूप से चलने लगे, जैसे पदार्थ पानी के ऊपर उतराता है।*

कम्पनियों का समामेलन
(Incorporation of Companies)

कम्पनी के निर्माण की दूसरी सीढी समामेलन (Incorporation) होती है। 'समामेलन' का क्षेत्र बहुत ही सकुचित होता है। 'समामेलन' से किसी भी

व्यक्ति या वस्तु को वैधानिक अस्तित्व प्राप्त होता है। बिना समामेलन के कोई भी कम्पनी वैधानिक अस्तित्व प्राप्त नहीं कर सकती। ऐसा कहा जाता है कि 'प्रवर्तन कम्पनी को गर्भ का रूप देता है और समामेलन उसको गर्भ से बाहर निकाल कर एक कृत्रिम व्यक्ति का रूप देता है।' कम्पनी को समामेलन सर्टीफिकेट भी उसी समय मिलता है जब कि आवश्यक वैधानिक कार्यवाहियाँ की जा चुकती हैं। इस प्रकार 'समामेलन', 'प्रवर्त्तन' का केवल एक भाग है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि कम्पनी को 'समामेलन सर्टीफिकेट' उसी समय प्राप्त होता है जब कि वैधानिक कार्यवाहियां पूरी हो जाती हैं। इस सम्बन्ध में प्रवर्त्तक कम्पनियों के रजिस्ट्रार (Registrar of J. S Cos') के निम्नलिखित पत्रों को रजिस्ट्रेशन के लिए भेज देता है —

(१) पार्षद सीमा नियम (Memorandum of Association)
(२) पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association)
(३) सचालकों की सूची (List of Directors)
(४) सचालकों की सम्मति (Consent of Directors)
(५) कम्पनी के पजीयत कार्यालय की स्थिति की सूचना (Situation of the Company's Registered Office)
(६) अनुबन्धों की प्रतिलिपि (Copy of Contracts), तथा
(७) साविधिक घोषणा (Statutory Declaration)।

पार्षद-सीमा-नियम (Memorandum of Association)

पार्षद सीमा नियम कम्पनी का महत्वपूर्ण वैधानिक प्रलेख होता है, जिस पर उस कम्पनी का अस्तित्व आधारित रहता है। यह कम्पनी के उद्देश्य, कर्त्तव्य, पूंजी, कार्यक्षेत्र आदि का विवेचन करता है। कोई भी कम्पनी केवल उन्ही कार्यवाहियों को कर सकती है जिनका स्पष्ट उल्लेख पार्षद सीमा नियम में हुआ रहता है। इसकी सीमाओं के बाहर कार्य करने पर वे अवैधानिक हो जाती है। इसीलिए यह कहा जाता है कि पार्षद सीमा नियम कम्पनी का वह आधार है जिस पर कम्पनी का समृद्धि रूपी महल स्थापित किया जाता है। इसे कभी-कभी साझेदारी का वैधानिक सलेख (Statutory Deed of Partner Ship) भी कहा जाता है। पार्षद-सीमा नियम को अत्यन्त सावधानी से तैयार करना चाहिए। कम्पनी के जीवन से पार्षद सीमा नियम का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध रहता है जैसा कि लार्ड कैर्न्स ने 'अशबरी रेलवे कम्पनी बनाम रिचे'

(Ashbury Rail etc. vs. Riche) के केस मे निर्णय दिया है कि "पार्षद-सीमा-नियम कम्पनी का अधिकार-पत्र (Charter) है तथा इसकी शक्ति की सीमा को परिभाषित करता है एव पूंजी को निर्धारित करता है।"* पार्षद सीमा-नियम मे निम्न बातो का होना आवश्यक है :—

(१) प्रमण्डल का नाम, जिसके अन्त मे सीमित (Limited) शब्द हो,
(२) वह राज्य जहा प्रमण्डल का रजिस्टर्ड कार्यालय है,
(३) उद्देश्य।
(४) सदस्यो का दायित्व, तथा
(५) प्रमण्डल की पजीयत पूंजी और उसका अशो मे भाग।

कोई भी पार्षद-सीमा-नियम में हस्ताक्षर करने वाला व्यक्ति कम से कम एक अश का स्वामी होना चाहिए तथा जितने अश उसने लिए हैं उनको अंकित करना आवश्यक है। असीमित दायित्व वाले प्रमण्डल में केवल प्रथम तीन बातें लिखी जायेंगी।

(१) नाम (Name)

कम्पनी का नाम 'Limited' शब्द के साथ लिखा होना चाहिए। कम्पनी नाम के चुनाव मे स्वतन्त्र है, केवल नाम के चुनाव मे दो सावधानिया बरतनी आवश्यक हैं—प्रथम नाम किसी चालू कम्पनी का नही हो, द्वितीय नाम मे Crown, Emperor आदि प्रतिबन्धित शब्द न होना चाहिए।

(२) पजीयत कार्यालय (Registered Office)

प्रत्येक प्रमण्डल का पजीयत कार्यालय होना आवश्यक है। धारा १४६ के अनुसार कम्पनी को अपने केन्द्रीय कार्यालय की स्थापना, कार्य का प्रारम्भ करते ही अथवा २८ दिन के अन्दर कर लेनी चाहिए। इसमे जो भी तिथि पहले हो उसकी सूचना दी जानी चाहिए तथा सम्पूर्ण पत्र व्यवहार उसी नाम पर किया जाना चाहिए। पजीयत कार्यालय के लिए प्रदेश का नाम देना आवश्यक है, इसमे उसी प्रदेश के किसी एक शहर मे पजीयत कार्यालय का ले जाना सुविधाजनक हो जाता है। विदेशी कम्पनियो (Foreign Companies) को भी प्रधान कार्यालय का स्पष्टीकरण करना आवश्यक है।

---

* The memorandum of association of the company is its charter and defines the limitation of its powers and the destination of its capital." —*Lord Cairns in Ashburg Rail vs Riche.*

(३) उद्देश्य वाक्य (Object Clause)

इसका स्मारक-पत्र मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है क्योंकि इस पर प्रमण्डल की शक्ति तथा कार्यशीलता आधारित होती है। जिन उद्देश्यों का वर्णन पार्षद-सीमा-नियम मे है उनके अतिरिक्त कार्य नहीं किया जा सकता। प्रमण्डल की शक्ति के अतिरिक्त कार्य अनाधिकार (*Ultra-Vires*) एव अवैधानिक है क्योकि अशधारी, यह सोचकर कि, उस पार्षद-सीमा-नियम मे उल्लेखनीय उद्देश्य मे ही पूंजी लगाई जायेगी, रुपये का विनियोग करते हैं। अगर उन उद्देश्यों के अतिरिक्त किसी दूसरे कार्य मे पूंजी का प्रयोग किया जाता है तो यह अशधारियो के सद्विश्वास को तोडना होगा। इसलिए प्रवर्त्तको के लिए यह उत्तम होगा कि उद्देश्य लिखते समय ही उनको भी शामिल कर लें। विधानत. कोई भी कार्य उस समय तक नहीं किया जा सकता, जो कि पार्षद-सीमा-नियम के परे है, जब तक कि पार्षद-सीमा-नियम मे परिवर्तन नहीं हो जाता। कभी-कभी उद्देश्य वाक्य मे यह जोड दिया जाता है कि, "ऐसे अन्य व्यवहार जो उपर्युक्त उद्देश्यो से सम्बधित अथवा सहायक हो, अथवा जिनको कम्पनी उपयुक्त समझे, कर सकती है।" किन्तु इस वाक्य के जोड देने से कम्पनी के वैधानिक अधिकारो मे किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध मे न्यायालयों द्वारा कई नियम दिए गए है।

(४) दायित्व वाक्य (Liabilities Clause)

पार्षद-सीमा-नियम मे सीमित कम्पनियों को यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि अशधारियो का दायित्व सीमित है। पार्षद-सीमा-नियम मे उपयुक्त नियम बनाकर सचालन का दायित्व बढाया जा सकता है। लेकिन इसकी सूचना सचालकों को देनी आवश्यक है (३२२ (१))। धारा ३२२ (२) तथा (३) के अनुसार उसकी क्षति पूर्ति के लिए त्रुटिकर्ता उत्तरदायी होगा तथा २००) दण्ड का भागी होगा।

(५) पूंजी वाक्य (Capital Clause)

पार्षद-सीमा-नियम मे अधिकृत तथा पजीयत पूंजी एव अशों की सख्या जिसमे वह विभाजित की गई है, लिखना अत्यन्त आवश्यक है। अन्त मे हस्ताक्षर करने वालो के पूरे-पूरे हस्ताक्षर एव हस्ताक्षरकर्त्ताओं के साक्षी के नाम तथा पते भी देना चाहिए।

पार्षद-सीमा-नियम में परिवर्तन
(Alteration of Memorandum of Association)

अधिनियम की धारा १३ के अनुसार प्रमण्डल अपने पार्षद-सीमा नियम में परिवर्तन कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत ही कर सकता है। इसमें परिवर्तन करने के निम्नलिखित कारण हो सकते हैं —

(१) नाम में परिवर्तन करना हो,

(२) पंजीयत कार्यालय का एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना हो एवं उद्देश्य में परिवर्तन करना हो,

(३) अंश पूंजी में परिवर्तन करना हो, इसमें प्राय निम्न परिवर्तन किए जाते है —

[अ] अंश पूंजी को बढाने के लिए,

[ब] संघनन करके उसे बड़े बड़े अंशो में विभाजित करने के लिए

[स] परिदत्त अंश को तथा स्कन्ध को एक दूसरे में परिवर्तन करने के लिए,

[य] अंशो को समाप्त करने के लिए।

(४) अंश पूँजी का पुनर्संङ्गठन करना हो,

(५) पूंजी को कम करना हो,

(६) संचालको का दायित्व असीमित करना हो,

(७) विशेष अंशधारियों के अधिकारों में परिवर्तन करना हो, तथा

(८) दायित्व सीमित बनाना हो।

(१) नाम वाक्य में परिवर्तन

रजिस्टार की अनुमति से नाम बदला जा सकता है। साधारण मीटिंग में प्रस्ताव पास करके तथा केन्द्रीय सरकार की लिखित अनुमति के उपरान्त भी नाम में परिवर्तन किया जा सकता है। (धारा २१ एवं २२)

(२) पंजीयत कार्यालय में परिवर्तन

यदि प्रमण्डल प्रधान कार्यालय को एक राज्य में दूसरे राज्य में ले जाना चाहता है तो कम्पनी की साधारण सभा में विशेष प्रस्ताव पास कर एवं न्यायालय की लिखित अनुमति लेकर परिवर्तन कर सकता है। किन्तु यदि एक ही राज्य में एक नगर से दूसरे नगर में ले जाना हो तो न्यायालय की

अनुमति की आवश्यकता नही, इसके लिए पत्रो मे विज्ञापन करा देना ही पर्याप्त है । उपर्युक्त दोनो अवस्थाओ मे रजिस्ट्रार को सूचना देना आवश्यक है ।

(३) उद्देश्यों में परिवर्तन

अधिनियम की १७वी धारा के अनुसार विशेष प्रस्ताव एव न्यायालय की लिखित आज्ञा पाकर प्रमण्डल उद्देश्यो मे परिवर्तन कर सकता है। उद्देश्य वाक्य के परिवर्तन के निम्न कारण हो सकते हैं —

[अ] कार्यक्षमता मे वृद्धि अथवा मितव्ययिता लाने के लिए,

[ब] मूल उद्देश्यो को प्राप्त करने तथा उत्तम साधनो के प्रयोग के लिए,

[स] क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए,

[द] उद्योग को सुविधाजनक रूप मे तथा लाभपूर्वक की दृष्टि से चलाने के लिए,

[य] किसी उद्देश्य के त्याग के लिए,

[र] कम्पनियो का एकीकरण एव समापन करने के लिए। विशेष प्रस्ताव एव न्यायालय के आज्ञापत्र को रजिस्ट्रार के कार्यालय मे तीन माह के अन्दर ही प्रस्तुत करना चाहिए। रजिस्ट्रार उसकी रजिस्ट्री करके अपने हस्ताक्षर द्वारा उसको प्रमाणित कर देगा।

(४) दायित्वों मे परिवर्तन

अधिनियम की धारा ३२३ के अनुसार सदस्यो का दायित्व असीमित किया जा सकता है, लेकिन इसके लिए कम्पनी की साधारण सभा मे विशेष प्रस्ताव का पास होना अत्यन्त आवश्यक है। अशधारियो के दायित्व मे परिवर्तन कभी नही किया जा सकता।

(५) पूँजी मे परिवर्तन

पूँजी मे परिवर्तन निम्नलिखित तरीकों से हो सकता है :—

[अ] नये अशो के निर्गमन द्वारा पूँजी मे वृद्धि,

[आ] अश पूँजी को कम करना,

[इ] पूँजी का पुनर्गठन।

अश पूँजी मे परिवर्तन पार्षद अन्तर्नियम के अन्तर्गत ही हो सकता है।

(धारा ९७) तथा पुनर्गठन के लिए विशेष प्रस्ताव की स्वीकृति के बाद न्यायालय के पुष्टीकरण की आवश्यकता हो सकती है। (धारा ३९१)

अश पूंजी घटाने के लिए भी विशेष प्रस्ताव एव न्यायालय की स्वीकृति आवश्यक है, किन्तु उसमे ऋणदाताओ के हित पर कोई बुरा असर न पड़ने पावे।

२—पार्षद अन्तर्नियम (Articles of Association)

ये कम्पनी के अर्थव्यवस्था के लिए विस्तृत नियम हैं। कम्पनी के अन्त-र्नियमों की कानून द्वारा इस प्रकार परिभाषा दी गई है—"कम्पनी के नियम जो पहले बनाये गए हो, या जिनकी कम्पनी कानून के अनुसार समय-समय पर परिवर्तित कर दिया गया हो, वे कम्पनी कानून के 'अन्तर्नियम' कहलायेंगे।" अनुसूची १ की सारिणी (अ) के अनुसार ही कम्पनी के अन्तर्नियम बनाये जा सकते है।

पार्षद अन्तर्नियमो मे कम्पनी के सचालको तथा पदाधिकारियो के वोट देने के अधिकार, कम्पनी को व्यवस्थित एव सचालित करने की विधि तथा स्वरूप तथा अन्तर्नियमो मे परिवर्तन करने के तरीको का समावेश होता है। अन्तर्नियम पार्षद-सीमा नियम के सहायक होते है जो कम्पनी के उद्देश्यो को निर्धारित करते है। इस प्रकार पार्षद सीमा-नियम कम्पनी के कार्यक्षेत्र को निर्धारित करता है, तथा अन्तर्नियम उस क्षेत्र के अन्तर्गत कम्पनी की व्यवस्था करने का ढग इगित करता है। अन्तर्नियम ऐसा कोई भी अधिकार नही दे सकता जो सीमा नियम के परे हो तथा विधान (Statute) के विपरीत हो। इससे स्पष्ट है कि अन्तर्नियम केवल नियम मात्र है जो सीमा नियम मे लिखित उद्देश्यों की पूर्ति की विधि बताते हैं।

कम्पनी अपने अन्तर्नियमो का पजीकरण (Registration) इच्छानुसार करा सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि कम्पनी उचित समझे तो अन्त-र्नियमो का पजीयन करायेगी अन्यथा नही। इसके सम्बन्ध मे कोई वैधानिक प्रतिबन्ध नही है क्योकि वह, कम्पनी अधिनियम की प्रथम सूची मे दी गई तालिका **'A'** जिसमे ९९ आदर्श नियम दिये है, को पूर्णरूप से अपना सकती है और यदि वह उचित समझे तो इन नियमो मे आवश्यकतानुसार परिवर्तन करके उनका पजीयन करा सकती है। अधिकतर कम्पनियाँ अपने निजी अन्तर्नियम बनाती है और उनका पजीयन भी करा लेती हैं। अधिनियम के

अनुसार यदि अन्तर्नियमो का पजीयन नही कराया गया है तो तालिका 'A' लागू होगी और यदि पजीयत करा लिया गया है तो तालिका की वे व्यवस्थाएँ लागू होंगी जो पजीयत कराई गई है। लेकिन प्रत्याभूति (Guarantee) द्वारा सीमित कम्पनी या असीमित कम्पनी या निजी कम्पनी के लिए, अन्तर्नियमो का पजीयन आवश्यक है, क्योंकि इन पर सूची 'अ' लागू नही होती। कम्पनी के अन्तर्नियमो को अनिवार्यत मुद्रित, सदर्भो म विभाजित, क्रमाकित, मुद्राकित (Stamped) तथा सीमा नियमो के हस्ताक्षर कर्त्ताओं द्वारा हस्ताक्षरित होना चाहिए। पार्षद-सीमा नियमो के साथ अन्तर्नियमा को भी रजिस्ट्रार के यहाँ भेजना आवश्यक है।

अन्तर्नियमो म साधारणतया निम्नलिखित बातो का उल्लेख होता है —

(१) कम्पनी अधिनियम की सूची 'A', अन्तर्नियमो मे किस सीमा तक अपनाई जाएगी,
(२) कम्पनी द्वारा व्यक्तियो से किए गए अनुबन्धो का ब्यौरा,
(३) अश पूँजी की कुल राशि तथा उसका विभिन्न प्रकार के अशो म विभाजन,
(४) अशो की आवेदन विधि,
(५) अशो पर की जाने वाली माँग (Calls) की राशि तथा माँग की विधि,
(६) अश प्रमाण पत्र निर्गमन की विधि,
(७) अश हस्तातरण विधि,
(८) अशो की जप्ती (Forfeiture) की विधि,
(९) जप्त किए गए अशो के पुनर्निर्गमन की विधि,
(१०) अश पूँजी के पुनगठन की विधि,
(११) कम्पनी की सभाआ का आयोजन,
(१२) कम्पनी के सदस्यो के अधिकार तथा मताधिकार,
(१३) सचालको की नियुक्ति एव उनके अधिकार,
(१४) प्रबन्ध अभिकर्त्ताआ की नियुक्ति एव उनके अधिकार,
(१५) लाभाश की घोषणा तथा भुगतान विधि,
(१६) कार्यालय के सगठन सम्बन्धी नियम,
(१७) लेखे की पुस्तको को लिखने तथा रखने की विधि,
(१८) अकेक्षको (Auditors) की नियुक्ति एव वेतन,
(१९) सदस्यो को सूचना देने की विधि,

(२०) कम्पनी की सार्व मुद्रा (Common Seal) के उपयोग करने की विधि ।

जो कपनी अन्तर्नियमो का स्पष्ट उल्लेख नही करती उसको १९५६ के अधिनियम के अनुसूची 'A' के अनुसार, जिसमे ९९ नियम दिए गए है, कार्य करना पड़ता है । यदि कोई कम्पनी अनुसूची 'A' के नियमो को नही अपनाती तो धारा २८ के अनुसार जब तक उसके अन्तर्नियमो मे इसका स्पष्ट विवरण न हो, तब तक वे नियम लागू होते हैं ।

कम्पनी के पार्षद सीमा नियम तथा पार्षद अन्तर्नियम सार्वजनिक प्रलेख होते हैं जिनका निरीक्षण किसी भी बाहरी व्यक्ति के द्वारा किया जा सकता है। कोई भी व्यक्ति जो कम्पनी से अनुबन्ध करता है, उसको कंपनी के प्रलेखो के सम्बन्ध मे ज्ञान होना चाहिए ।

पार्षद अन्तर्नियमो मे परिवर्तन
(Alteration in Articles of Association)

पार्षद अन्तर्नियम, कपनी की आन्तरिक व्यवस्था के नियम होने के कारण किसी समय भी परिवर्तन किए जा सकते है और इसके लिए न्यायालय की अनुमति की कोई आवश्यकता नही पडती । परन्तु जो भी परिवर्तन किया जाय वह सदविश्वास (Good Faith) तथा कपनी के हित मे होना चाहिए इसके साथ साथ यह ध्यान रखना चाहिए कि इन परिवर्तनो के परिणामस्वरूप अशधारियो पर कोई अतिरिक्त दायित्व न बढ जाय । इस प्रकार के परिवतनों की प्रतिलिपियाँ प्रसारित कर देनी चाहिए ।

अन्तर्नियमो के परिवर्तन की सीमाएँ

अन्तर्नियमो के परिवर्तन के सम्बन्धमे कुछ सीमाएँ होती हैं जिसका विवेचन इस प्रकार है —

[१] अन्तर्नियमो मे जो भी परिवर्तन हो वह विशेष प्रस्ताव (Special Resolution) के द्वारा ही होना चाहिए ।

[२] अन्तर्नियमो मे परिवर्तन कम्पनी अधिनियम तथा पार्षद-सीमा नियम के अन्तर्गत होना चाहिए ।

[३] अन्तर्नियमो के परिवर्तन से किसी अशधारी के दायित्व पर प्रभाव नही पडना चाहिए ।

[४] ऐसे परिवर्तन जिसमे न्यायालय की आज्ञा लेनी हो उसी समय हो सकते हैं जब न्यायालय की अनुमति प्राप्त कर ली गई हो।

[५] अन्तर्नियमो के परिवर्तन से अल्प सदस्यो (Minority) के हितो मे हानि नहीं होनी चाहिए।

[६] अन्तर्नियमो का परिवर्तन कम्पनी के समस्त सदस्यो तथा अन्य पक्षो के हित मे होना चाहिए।

[७] अन्तर्नियमो के परिवर्तन से बाहरी लोगो के साथ किए गए अनुबन्धो पर कुप्रभाव नहीं पडना चाहिए।

[८] निम्नाकित परिवर्तनो मे केन्द्रीय सरकार की अनुमति आवश्यक है –

(अ) जिस कम्पनी के प्रबन्ध अभिकर्त्ता न हो उसमें किसी प्रबन्ध सचालक की नियुक्ति करना, उसके पारिश्रमिक तथा कार्यकाल की अवधि मे वृद्धि करना,

(ब) सचालको की सख्या बढाना,

(स) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ के अधिकारो तथा कार्यकाल की अवधि बढाना,

(द) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की नियुक्ति तथा उनके पारितोषिक में वृद्धि करना।

अंश पूंजी मे परिवर्तन

अश पूँजी मे परिवर्तन दो प्रकार से हो सकता है :—

[१] अश पूँजी मे वृद्धि करके, तथा

[२] अश पूँजी को कम करके।

जहाँ तक अश पूँजी मे वृद्धि करने का प्रश्न है, कम्पनी अधिनियम की धारा ९४ के अनुसार निम्नलिखित परिवर्तन किए जा सकते है —

[१] नये अशो को निर्गमित करके,

[२] अपनी सम्पूर्ण या कुछ अश पूँजी का मिलान करके,

[३] अशो को स्कध (Stock) मे परिवर्तन करके,

[४] अशो का अविभाजन करके, तथा

[५] न बिके हुए अशो को समाप्त करके।

इस सम्बन्ध मे साधारण सभा द्वारा प्रस्ताव पास करना चाहिए। कभी-कभी विशेष परिस्थिति मे असाधारण प्रस्ताव भी पास किया जा सकता है।

यह सूचना कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास १५ दिन के अन्दर पहुँच जानी चाहिए।

इसके विपरीत जब अश पूंजी कम करनी हो तो अधिनियम की धारा १०० के अनुसार निम्न प्रकार से की जा सकती है —

[१] जो अश पूर्ण-प्रदत्त नही है उनकी अदत्त राशि को समाप्त करके,
[२] पूंजी की मात्रा को कम करके, तथा
[३] अतिरेक पूंजी (Surplus Capital) को अशधारियो मे विभाजित करके, आदि।

इस सम्बन्ध मे जो भी प्रस्ताव पास किया गया हो वह न्यायालय द्वारा स्वीकृत किया जाना चाहिए, तथा कम्पनी के नाम के आगे "और कम की गई" (And Reduced) जोड देना चाहिए और इसको भी कम्पनी के रजिस्ट्रार के कार्यालय मे भेज देना चाहिए।

पार्षद सीमा नियम तथा पार्षद अन्तर्नियम मे अन्तर

(Difference between Memorandum and Articles)

साधारणतया पार्षद सीमा-नियम तथा पार्षद अन्तर्नियम मे लोगो को कोई अन्तर मालूम नही होता परन्तु वास्तविक रूप से इन दोनो मे काफी अन्तर है। पार्षद सीमा-नियम यदि कम्पनी के कार्यो का मानचित्र है, तो अन्तर्नियम उसके अग प्रत्यगो की सूक्ष्माकृति समझी जानी चाहिए। दूसरे शब्दों मे पार्षद सीमा नियम कम्पनी की रूपरेखा बतलाता है और अन्तर्नियम उसके अन्तर्गत विस्तृत नियमो को इगित करता है।

सीमा नियम तथा अन्तर्नियम मे अन्तर

पार्षद सीमा नियम	पार्षद अन्तर्नियम
(१) इस प्रलेख को कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास भेजना अत्यावश्यक है।	(१) इस प्रलेख को रजिस्ट्रार के पास भेजना कोई आवश्यक नही।
(२) इनमे परिवर्तन बहुत ही सीमित रूप से हो सकता है और इसकी स्वीकृति न्यायालय द्वारा होनी चाहिए	(२) इनमे परिवर्तन विशेष प्रस्ताव द्वारा किसी समय भी हो सकता है और न्यायालय की स्वीकृति की कोई आवश्यकता नही पडती।

(३) यह कम्पनी के उद्देश्यो तथा अधिकारो को उल्लेखित करता है।	(३) यह सीमा नियम मे दिए हुए उद्देश्यों तथा अधिकारो को कार्यान्वित करने के लिए नियम तथा उपनियम बनाता है।
(४) यह प्रथम श्रेणी (First order) का तथा अधिक शक्तिशाली एव प्रभावपूर्ण होता है। इसी के आधार पर कम्पनी को समामेलन का प्रमाणपत्र (Certificate of Incorporation) प्राप्त होता है। इसका निर्माण केवल कम्पनी अधिनियम तथा सामान्य सन्नियम के आधार पर होता है।	(४) यह द्वितीय श्रेणी का होता है और इसका निर्माण कपनी अधिनियम तथा पार्षद सीमा नियम के अन्तर्गत होता है।
(५) यह कम्पनी तथा बाहरी लोगो के साथ के सम्बन्धो का स्पष्टीकरण करता है।	(५) यह केवल कपनी के सदस्यो तथा कार्यकर्त्ताओ का विवेचन करता है।
(६) यदि कोई बाहर का व्यक्ति *पार्षद सीमा नियम के विरुद्ध कम्पनी* से किसी प्रकार का सपर्क स्थापित करता है तो उसके लिए कपनी उत्तरदायी नही होगी, और न वह व्यक्ति कपनी के विरुद्ध मुकदमा ही चला सकता है। क्योकि प्रत्येक मनुष्य से आशा की जाती है कि वह कपनी के सीमा नियमों से भिज्ञ होगा।	(६) यद्यपि बाहरी व्यक्तियो को *कपनी के अन्तर्नियम का भी ज्ञान* होना चाहिए, लेकिन इसके भग होने पर उस पर कोई प्रभाव नही पडता। हा यह अवश्य है कि नियमो के भग होने का ज्ञान उसे नही होना चाहिए।

इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कम्पनी का पार्षद-सीमा नियम वह आधारशिला है जिस पर अन्तर्नियमो द्वारा ढाँचा तैयार किया जाता है।

(३) संचालकों की सूची (List of Directors)

रजिस्ट्रार के पास भेजा जाने वाला तृतीय प्रलेख सचालकों की सूची है। धारा २६४ के अनुसार इस प्रलेख मे उन व्यक्तियो के नाम, पते तथा विवरण

देने होते हैं, जो कम्पनी के सचालक बनने के लिए उद्यत हो, तथा जिन्होंने इस सम्बन्ध मे अपनी सम्मति भी दे दी हो।

(४) संचालक की सम्मति (Consent of Directors)

रजिस्ट्रार के पास भेजा जाने वाला प्रलेख 'सचालको की सम्मति' है। इस प्रलेख मे सचालक की लिखित सम्मति, कि वह कम्पनी के सचालक पद पर कार्य करने के लिए राजी है, होती है। (धारा २६४)

इसके अतिरिक्त सचालको को एक ऐसा प्रमाण-पत्र भी भेजना पड़ता है, जिसमे यह स्पष्ट रूप मे लिखा हो कि कम्पनी के अश क्रय करने के लिए यदि उन्होंने कुछ धन उधार लिया है तो वह चुका दिया गया है अथवा उन्होंने उसे *चुकाने का वचन दिया है, अथवा उन्होंने कम्पनी और अपने बीच कोई लिखित* प्रसविदा (Contract) कर लिया हो। यह भी लिखना आवश्यक है कि सचालक पद पर कार्य करने के लिए आवश्यक योग्यता अशो (Qualifying Shares) का पजीयन इनके नाम हो गया है। (धारा २६४)

(५) कम्पनी के पजीयत कार्यालय की स्थिति की सूचना

उपरोक्त प्रलेखो के अतिरिक्त धारा १४६ के अन्तर्गत कम्पनी के पजीयत (Registered) कार्यालय की स्थिति के बारे मे सूचना भी कम्पनीके रजिस्ट्रार के पास भेजनी होती है।

(६) प्रबन्ध-अभिकर्त्ता अथवा सचिव अथवा कोषाध्यक्ष से किए गए अनुबन्ध की प्रति

उपरोक्त प्रलेखो के साथ कम्पनी के रजिस्ट्रार के पास कम्पनी एव प्रबन्ध अभिकर्त्ता अथवा सचिव (Secretary) अथवा कोषाध्यक्ष (Treasurer) के मध्य हुए समझौते की एक प्रति भेज देनी चाहिए। (धारा-३३ सी)

(७) साविधिक घोषणा (Statutory Declaration)

किसी भी वकील, जो कि कम्पनी के निर्माण एव प्रवर्त्तन मे लगा हुआ है अथवा प्रबन्धक सचालक या सचिव (Secretary) जिसका नाम पार्षद अन्तर्नियम (A/S) मे लिखा हुआ है, के द्वारा यह घोषणा कि 'इण्डियन कम्पनीज एक्ट' के अन्तर्गत निहित पजीयन (Registration) के पूर्व की सम्पूर्ण वैधानिक कार्यवाहियाँ हो चुकी है, रजिस्ट्रार के पास भेजनी चाहिए।

रजिस्ट्रार इस सांविधिक घोषणा (Statutory Declaration) को सम्पूर्ण वैधानिक उपचारों (Legal formalities) के पूरा होने की साक्षी के रूप में स्वीकार कर सकता है और सन्तुष्ट होने पर वह अभिस्थापन प्रमाण-पत्र (Certificate of Incorporation) भेज देता है।

नोट—अभिस्थापन के लिए, उपरोक्त प्रलेखों के साथ नियत फीस भी, जो कि कम्पनी की पूंजी के अनुसार होती है, भेज दी जाती है तथा प्रत्येक प्रलेख के साथ ३) रु० प्रति प्रलेख की दर से फाइलिंग फीस भी जमा करनी पड़ती है।

व्यापार का आरम्भ (Commencement of Business)

अभिस्थापन प्रमाण-पत्र, (Certificate of Incorporation) प्राप्त होते ही 'प्राइवेट कम्पनी' अपने व्यवसाय को प्रारम्भ कर सकती है, परन्तु 'पब्लिक लिमिटेड कम्पनी' ऐसा नहीं कर सकती। उसे एक निश्चित राशि (Minimum Subscription) एक निश्चित समय (Within 180 days of the Issue of Prospectus) के अन्दर अंशों का निर्गमन करके प्राप्त करनी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसे एक प्रपत्र जिसे 'प्रविवरण' (Prospectus) कहते हैं, तैयार करना होता है जो कि रजिस्ट्रार के पास भेजना पड़ता है।

प्रविवरण (Prospctus) के निर्गमन का उद्देश्य जनता को इस प्रकार आमन्त्रण देना होता है कि वह अपना धन कम्पनी के अंशों में विनियोग करे। प्रविवरण (Prospectus) के निर्गमन के १८० दिनों के अन्दर अंशों का आवटन (Allotment) हो जाना चाहिए। यदि इस अवधि के अन्दर 'न्यूनतम अभिदान' (Minimum Subscription) राशि के अंश न बिक सके तो जो कुछ भी अंश बिके हैं उन्हें प्रविवरण के निर्गमन की तिथि से १९० दिनों के अन्दर बिना ब्याज के लौटा देना होगा।

रजिस्ट्रार निम्न सूचनाएँ प्राप्त होने पर व्यापार प्रारम्भ करने का प्रमाण-पत्र (Certificate of Commencement) कम्पनी के पास भेज देगा :—

(१) कम से कम न्यूनतम अभिदान (Minimum Subscription) की राशि तक आवटन (Allotment) हो गया है।

(२) प्रत्येक संचालक ने अपने क्रय किए हुए अंशों की प्रार्थना तथा आवटन धन (Application and Allotment Money) उसी अनुपात में दे दिया है जिसमें अन्य अंशधारियों से लिया गया है।

(३) सचिव अथवा किसी एक संचालक के द्वारा उपरोक्त बातों के पूरा होने के सम्बन्ध में प्रमाणित घोषणा।

(४) यदि कम्पनी ने प्रविवरण *(Prospectus)* का निर्गमन किया है तो उसकी एक प्रति और यदि प्रविवरण का निर्गमन नहीं किया है तो 'स्थानापन्न प्रविवरण' (Statement in lieu of Prospectus) रजिस्ट्रार के पास भेजना चाहिए।

प्रविवरण *(Prospectus)*

कम्पनी के निर्माण होने पर जब कोई कम्पनी अपना रजिस्ट्रेशन करा लेती है और उसको अभिस्थापन प्रमाण-पत्र *(Certificate of Incorporation)* प्राप्त हो जाता है, तब कम्पनी के प्रविवरण (Prospectus) के निर्गमन का प्रश्न उठता है। प्रविवरण का निर्गमन उन कम्पनियों के द्वारा भी होता है जो पहले से ही कार्य कर रही हैं अथवा जो प्राइवेट कम्पनी से पब्लिक लिमिटेड में परिणित होना चाहती हैं। इस प्रकार प्रविवरण का निर्गमन तीन अवस्थाओं में होता है —

(१) नवीन कम्पनियों का निर्माण होने पर,

(२) पहले से स्थापित कम्पनियों के किसी निर्णय पर,

(३) प्राइवेट कम्पनी के पब्लिक लिमिटेड कम्पनी में परिणत होने पर।

उपरोक्त तीनों ही अवस्थाओं में कंपनियों को पूँजी की आवश्यकता होती है। इसकी पूर्ति के लिए वे अपने व्यापार की वर्तमान व सम्भावित स्थिति को जनता के सम्मुख रखते हैं। इन सब बातों का समावेश वे अपने प्रविवरण में करते हैं जिससे जनता को कम्पनी के स्थापन तथा उसकी गतिविधि की जानकारी हो जाती है।

प्रविवरण की परिभाषा

कम्पनी एक्ट की धारा २ (३६) में प्रविवरण को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "यह एक विवरण पत्रिका, सूचना, गश्तीपत्र, विज्ञापन या अन्य प्रलेख है जो सर्वसाधारण से किसी निर्गमित संस्था के अंश या ऋण-पत्र लेन या क्रय करने के लिए प्रस्ताव आमन्त्रित करता है।"* दूसरे शब्दों में प्रविवरण

---

* "Any prospectus, notice, circular, adveritsement or other document inviting offers from the public for the subscription or purchase of any shares in or debentures of, a *body* corporate."

कम्पनी के अंश या ऋण-पत्र क्रय करने का एक निमन्त्रण है। परन्तु प्रविवरण के अन्तर्गत निम्न प्रलेखों का समावेश नहीं किया जाता है —

(१) ऐसा कोई भी व्यवसायिक विज्ञापन जिसके देखने से यह ज्ञात हो कि नियमानुसार प्रविवरण तैयार किया जा चुका है और वह रजिस्ट्रार के पास फाइल भी कर दिया गया है।

(२) ऐसा कोई भी गश्तीपत्र (Circular), जिसमें केवल कम्पनी के सदस्यों अथवा अंशधारियों को अंशों या लाभांशों के खरीदने के लिए आमन्त्रित किया हो।

कम्पनी एक्ट की धारा ९२ के अनुसार प्रत्येक प्रविवरण पर तिथि डाली जानी चाहिए। प्रत्येक विवरण की एक प्रति (Copy) जिस पर प्रत्येक सचालक या सम्भावित सचालक के हस्ताक्षर हों, रजिस्ट्रार के पास फाइल करनी चाहिए और प्रविवरण के मुखपृष्ठ पर यह लिखा होना चाहिए कि उसकी एक प्रति रजिस्ट्री के लिए फाइल की जा चुकी है।

प्रविवरण के तैयार करने वालो का कर्तव्य है कि प्रविवरण के द्वारा जनता मे निम्न बातो के सम्बन्ध मे विश्वास उत्पन्न कर दें —

(१) व्यवसाय की सुदृढता,
(२) कम्पनी के प्रबन्धको की ईमानदारी व कुशलता, तथा
(३) कम्पनी पर्याप्त लाभोपार्जन करेगी।

एक अच्छा प्रविवरण वही होता है जो जनता मे विश्वास व आकर्षण पैदा कर दे।

प्रविवरण के उद्देश्य

उपरोक्त परिभाषा का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि किसी प्रविवरण के निर्गमन करने के निम्न उद्देश्य होते है —

(१) सर्व साधारण को कम्पनी की स्थापना के बारे मे सूचित करना,

(२) सम्भावित विनियोगको (Investors) को कम्पनी मे विनियोग करने के लिए प्रोत्साहित करना तथा ऐसे विनियोजन की सुरक्षा के सम्बन्ध मे विश्वास दिलाना,

(३) उन शर्तो एव आकर्षणो को रिकार्ड के रूप मे सुरक्षित रखना जिनके आधार पर सर्व साधारण को कम्पनी के अंश व ऋण-पत्र खरीदने के लिए आमन्त्रित किया गया है, तथा

(४) इस बात की गारण्टी करना कि प्रविवरण मे किए गए कथन के लिए कम्पनी के संचालक गण उत्तरदायी है।

भारतीय कम्पनीज एक्ट १९५६ की धारा ५६ (१) के अनुसार किसी भी कम्पनी या किसी ऐसे व्यक्ति के द्वारा, जो कि कम्पनी के निर्माण से किसी भी प्रकार सम्बन्धित या हित रखता हो, निर्गमित प्रविवरण मे उन सब बातो का समावेश होना चाहिए, जो एक्ट के अन्त मे दी गई द्वितीय अनुसूची के प्रथम भाग मे उल्लिखित हैं। इसी भाँति पूर्व स्थापित कम्पनी की दशा म प्रविवरण मे वह रिपोर्ट भी देना चाहिए जो द्वितीय अनुसूची के द्वितीय भाग मे दी गई है। उक्त अनुसूची के तृतीय भाग के प्रावधानो का प्रभाव अनुसूची के भाग प्रथम व भाग द्वितीय पर भी होगा। (धारा ५६)

प्रविवरण मे अन्तर्निहित बाते
(Contents of Prospectus)

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है कि प्रविवरण या तो नवीन स्थापित कम्पनिया के द्वारा निगमित किया जा सकता है या पूर्व स्थापित कम्पनियो के द्वारा। दोनो प्रकार की कम्पनियों द्वारा निगमित प्रविवरणो की बाता मे कुछ अन्तर होता है। अत उनका विवेचन भी अलग-अलग करना उचित होगा।

नवीन कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रविवरण

एक नव स्थापित कम्पनी द्वारा निर्गमित प्रविवरण मे निम्न अन्तर्वस्तुओ (Contents) का समावेश होना आवश्यक है —

(१) उद्देश्य

इस शीर्षक के अन्तर्गत कम्पनी के उद्देश्यो की एक सूक्ष्म रूप रेखा रहती है। यह कम्पनी के पार्षद-सीमा-नियम के आधार पर होती है। अर्थात् प्रविवरण म पार्षद-सीमा-नियम के विषयो की सूची, प्रधानत कम्पनी के उद्देश्य, उस पर हस्ताक्षर करने वालो के नाम, पते व विवरण तथा उनके द्वारा क्रय किए गए अशो की सख्या दी जाती है।

यदि प्रविवरण किसी समाचार-पत्र मे प्रकाशित किया जा रहा हो तो उपरोक्त विवरण देने की आवश्यकता नहीं है।

(२) अश पूँजी

(१) प्रवर्त्तको तथा सचालको को दिए जाने वाले अशो की सख्या, तथा

यदि इन व्यक्तियों का कम्पनी में कोई हित है तो उसका स्पष्टीकरण।

(२) विमोचनशील पूर्वाधिकार अंशो (Redeemable Preference Shares) की सख्या तथा तत्सम्बन्धी विवरण।

(३) विभिन्न प्रकार के अंश होने पर उनका विस्तृत विवरण।

(४) सचालन सम्बन्धी, अंशो के हस्तान्तरण सम्बन्धी तथा साधारण सभा के नियमो का विवेचन।

(५) अंशो के आबटन की गति-विधि।

(६) न्यूनतम धनराशि (Minimum Subscription) की मात्रा।

(७) अभिगोपकों के नाम व पते।

(८) ऋण-पत्रो की व्यवस्था।

(३) सचालक गण

(१) कम्पनी के सचालको के नाम, विवरण तथा पते।

(२) सचालकों की अंश योग्यता तथा उनके पारिश्रमिक का स्पष्ट उल्लेख।

(३) कम्पनी द्वारा क्रय की जाने वाली सम्पत्ति में अथवा उसके प्रवर्त्तन कार्य में सचालकों के प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष हित का स्पष्टीकरण।

(४) कम्पनी की व्यवस्था मे सचालकों के अधिकार तथा उन पर अन्त-नियमो द्वारा लगाए गए प्रतिबन्धों का स्पष्टीकरण।

(५) प्रबन्ध-सचालक की नियुक्ति, पारिश्रमिक तथा उसके साथ किए गए, अनुबन्ध (Contract) की तिथि तथा समय इत्यादि का उल्लेख।

(४) प्रबन्ध अभिकर्त्ता

(१) प्रबन्धको तथा प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं के नाम, पते तथा विवरण।

(२) प्रबन्धको तथा प्रबन्ध-अभिकर्त्ताओं के पारिश्रमिक, कर्तव्य तथा अधिकार का उल्लेख।

(३) उनके पारिश्रमिक तथा उनकी नियुक्ति से सम्बन्धित प्रत्येक अनुबन्ध की तिथि तथा पक्षकारो का पूर्ण विवरण।

(४) उनकी कार्य-अवधि तथा उस पर नियन्त्रण।

(५) उनको अंशो या ऋण-पत्रो पर दिए जाने वाले कमीशन तथा छूट का स्पष्ट विवेचन।

(५) सम्पत्ति

(१) कम्पनी के लिए क्रय की गई सम्पत्ति, उसकी मूल्य-राशि तथा ख्याति (Goodwill) के लिए दिए गए मूल्य का विवरण।

(२) यदि क्रय की गई सम्पत्ति कोई उद्योग या व्यवसाय है तो पिछले तीन वर्षों का समस्त आय-व्यय का लेखा तथा उस व्यवसाय की स्थिति विवरण *(Balance Sheet)* जो कि ९० दिन से पूर्व तिथि का न हो, प्रस्तुत करना चाहिए।

(३) *यदि क्रय की गई सपत्ति का स्वामित्व पिछले दो वर्षों* मे अनेक व्यक्तियो के बीच हस्तांतरित हुआ हो तो जो धन खरीदने वाले ने उक्त प्रत्यक हस्तातरण पर दिया हो उसका स्पष्ट विवरण होना चाहिए।

(४) यदि कपनी द्वारा सम्पत्ति का विक्रय किया गया हो तो उसके मूल्य का स्पष्ट उल्लेख।

(६) विक्रेता (Vendors)

(१) विक्रेताओ के नाम व पते।

(२) उनसे क्रय की जाने वाली सपत्ति का मूल्य।

(३) *उनको चुकाने के लिए अशो, ऋण-पत्रो अथवा नकद* (Cash) मे दिए जाने वाले धन का उल्लेख।

(४) ऐस अशो या ऋण-पत्रो की सख्या जिन्ह पूर्णत या अशत शोधित रूप मे लेना चाहते हो।

(७) प्रवर्त्तक (Promoters)

(१) प्रवर्त्तको के अधिकार व कर्त्तव्यो का उल्लेख।

(२) प्रवर्त्तको को दिए जाने वाले पारिश्रमिक का विवरण।

(८) प्रारम्भिक व्यय (Preliminary Expenses)

कपनी को आरम्भ करने के सम्बन्ध मे जो व्यय हो चुका हो अथवा जो धन निश्चित किया गया हो उसका विवरण।

(९) महत्वपूर्ण अनुबन्ध *(Material Contracts)*

महत्वपूर्ण अनुबन्ध वे होते है जो कि अशो के लिए आवेदन-पत्र भेजने अथवा न भेजने के सम्बन्ध मे व्यक्तियो के निर्णय पर प्रभाव डालते हैं।

यह बात दूसरी है कि वे अशो के लिए आवेदन-पत्र भेजें अथवा नहीं।

इस सबन्ध मे प्रत्येक महत्वपूर्ण अनुबन्ध की तिथि उसके पक्षकारो के नाम इत्यादि का उल्लेख होना चाहिए।

(१०) अकेक्षक (Auditors)

कम्पनी के लिए जिन अकेक्षको की नियुक्ति हुई है, उनके नाम, पते तथा शुल्क आदि का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।

उपरोक्त नियमित सूचनाओं के अतिरिक्त यदि कम्पनी चाहे तो अपने प्रविवरण मे अन्य सूचनाएँ भी दे सकती है। ये सूचनाएँ कम्पनी की इच्छा पर आधारित हैं।

पूर्व स्थापित कम्पनियों द्वारा निर्गमित प्रविवरण

यदि कोई कम्पनी पूर्व स्थापित है और अपना व्यवसाय कर रही है और यदि वह किसी कारणवश प्रविवरण का निर्गमन करना चाहती है तो उसे उपरोक्त सूचनाओ के अतिरिक्त कुछ और सूचनाएँ भी देनी होगी। इन सूचनाओ का विवेचन इस प्रकार है —

(१) कम्पनी तथा सहायक कम्पनियों द्वारा पिछले तीन वर्षो म अर्जित लाभ का विवरण।

(२) कम्पनी तथा सहायक कम्पनियो द्वारा पिछले तीन वर्षो म अश-धारियो म वितरित लाभ का विवरण।

(३) गत दो वर्षो मे अशो का आबटन (Allotment) तथा उन पर प्राप्त किया गया समस्त धन।

(४) गत दो वर्षो मे अशो तथा ऋण-पत्रो पर दिया गया कमीशन तथा छूट।

(५) गत दो वर्षो म प्रवर्तको (Promoters) को दी गई या दी जाने वाली धन राशि तथा ऐसे भुगतान के प्रतिफल का उल्लेख।

(६) कम्पनी द्वारा (अ) साधारण व्यवसाय के लिए हुए अनुबन्धो तथा (ब) प्रबन्ध सचालको या प्रबन्ध अभिकर्त्ताओ की नियुक्ति से सम्बन्ध न रखने वाले दो वर्ष से पहले के अनुबन्धो को छोड कर प्रत्येक महत्वपूर्ण अनुबन्धो की तिथि, पक्षकार (Parties) तथा उचित समय एव स्थान जहाँ पर उनका निरीक्षण किया जा सके।

(७) पिछले व्यापार की स्थिति तथा आर्थिक व्यवस्था के लिए अंकेक्षक (Auditor) द्वारा दी गई रिपोर्ट का उल्लेख ।

निजी कम्पनी से सार्वजनिक कम्पनी में परिणत होने पर प्रविवरण का निर्गमन

जब कोई निजी कम्पनी (Private Company) सार्वजनिक (Public Company) मे परिणित होना चाहती है तो उसे कम्पनी एक्ट की धारा १५४ के अनुसार अपने पार्षद अन्तर्नियमा (Articles of Association) म कुछ आवश्यक परिवर्तन करने पडते हैं और रजिस्ट्रार के पास अपना प्रविवरण (Prospectus) या 'प्रविवरण का स्थानापन्न प्रलेख' (Statement in Lieu of Prospectus) फाइल करना पडता है ।

ऐसी कपनियो द्वारा निर्गमित 'प्रविवरण' या 'प्रविवरण का स्थानापन्न प्रलेख' मे उन सभी बाता के सम्बन्ध में सूचना देनी होती है जो किसी नव-निर्मित कपनी के प्रविवरण मे होनी हैं । हाँ, एसी कपनिया को प्रारभिक व्ययो के सबन्ध में सूचना नही देनी होती है ।

विदेशी कम्पनियो द्वारा प्रविवरण का निर्गमन*

भारतवर्ष से बाहर रजिस्टर्ड होने वाली अर्थात् विदेशी कम्पनिया के प्रविवरण के निर्गमन के सम्बन्ध मे समस्त नियम भारतीय कपनी एक्ट की धारा २७७, २७७ अ, २७७-ब, तथा २७७ स म दिए हुए है ।

जब तक कोई व्यक्ति उपर्युक्त धाराओ के द्वारा निर्धारित सूचना का समावेश प्रविवरण म नही करता उस समय तक वह —

(अ) यहाँ किसी भी विदेशी कपनी के प्रविवरण का प्रचार नही कर सकता तथा

(ब) वह ऐसी कपनी के ऋण-पत्रो तथा अशों के लिए आवेदन-पत्र भी किसी व्यक्ति को नही दे सकता है, जब तक कि वह आवेदन-पत्र के साथ अपने प्रविवरण को फाइल कर दे ।

एक विदेशी कपनी को भारत मे अपने प्रविवरण के प्रकाशन मे उस सूचना के अतिरिक्त जो कि उसे उस देश या राज्य के नियमो के अनुसार देनी पडती

Prof * R. R Gupta : *'Business Organisation'* pp 111-112

है जहाँ पर उसका अभिस्थापन हुआ है, निम्नलिखित बातो की पूर्ति और करनी पडती है :—

(१) प्रविवरण के प्रकाशित होने की तिथि तथा इस बात का स्पष्ट उल्लेख कि इसकी एक प्रमाणित प्रतिलिपि भारत मे किसी राज्य के रजिस्ट्रार के पास भेज दी गई है।

(२) निम्नांकित बातों का समावेश अवश्य होना चाहिए .—

(अ) कम्पनी के उद्देश्य,

(ब) कम्पनी के सविधान को स्पष्ट करने वाला प्रलेख,

(स) वह अधिनियम (Law) जिसके अन्तर्गत कम्पनी की सस्थापना हुई है,

(द) भारत मे स्थित उस स्थान का पता जहाँ जाकर उक्त नियम या प्रलेख (Investment of Law) अथवा उसकी प्रतिलिपियो का निरीक्षण किया जा सके.

(य) अभिस्थापन की तिथि तथा देश जहाँ कम्पनी का अभिस्थापन (Incorporation) हुआ है।

(र) भारत मे स्थिति प्रमुख कार्यालय का पता।

(३) यदि प्रविवरण का निर्गमन ऐसी कपनी के द्वारा हो रहा है जो पहले से ही व्यापार कर रही है तो उसे भारतीय कपनी एक्ट की धारा ९३ (IA) के अनुसार भारत मे रजिस्टर्ड कपनियो की भाँति उनके लिए भी अंकेक्षक तथा एकाउन्टेन्ट की रिपोर्ट देना अनिवार्य है।

(४) यदि विदेशी कपनी के सदस्यो का दायित्व सीमित है तो इस तथ्य का उल्लेख प्रविवरण मे स्पष्ट रूप से रहना चाहिए।

(५) भारतवर्ष मे किसी भी ऐसी विदेशी कपनी के अंश अथवा ऋण-पत्र बेचने के लिए किसी भी व्यक्ति को घर-घर नही फिरना चाहिए।

प्रश्न

1. What do you understand by 'promoter'? Explain the rights and duties of a promoter.

2 Explain the procedure of campany formation What *are the formalities that are to be made before the incorporation of a company*

3. Write a note on company prospectus What are the main provisions of a company prospectus ? Discuss

4 *Explain how a company is incorporated ?* What are the general restrictions that have been imposed on Public Limited Companies for the commencement of business? Discuss *its legal provisions.*

5 What is the legal position of prospectus in the formation of company? If prospectus is not issued to the public, how the company can be founded ? Explain the legal provisions

अध्याय १२

प्रतिभूतियों का अभिगोपन

(Underwriting of Securities)

'अभिगोपन' (Underwriting) बीमा सम्बन्धी एक शब्द है। इसका उदगम् आग्ल व्यापारियो की व्यापार करने की पद्धति से हुआ। प्रारम्भ मे आंग्ल व्यापारी लोग इगलैंड की 'टावर स्ट्रीट' (Tower Street) के प्रसिद्ध 'काफी हाउस' (Lloo's Coffee House) मे एकत्रित हुआ करते थे। विदेशो को कारखानो द्वारा निर्मित सामान समुद्र द्वारा भेजा जाता था। परन्तु इस प्रकार समुद्र द्वारा माल भेजना खतरे से खाली न था। अत उनका समुद्री बीमा करना आवश्यक हो गया। परन्तु समुद्री बीमा करना किसी एक व्यक्ति विशेष के वश की बात न थी। अत ये लोग सामूहिक रूप से समुद्री बीमा किया करते थे, और जो लोग इस प्रकार की जुम्मेदारी लेते थे, वे समुद्री बीमा प्रलेख (Marine Insurance Document) के नीचे अपने हस्ताक्षर (Underwrite) कर देते थे। यही प्रथा अशपत्रो व ऋणपत्रो के निर्गमन मे भी प्रचलित हो गई।

'अभिगोपन' की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा गर्सटेन्वर्ग (Gerstenberg) ने अपनी पुस्तक "आर्थिक सगठन तथा प्रबन्ध" मे एक विद्वान न्यायाधीश के शब्दो मे इस प्रकार दी है —

"*अभिगोपन अशों को जनता के सामने रखने के पूर्व किया वह अनुबन्ध* है जिसम समझौते के अनुसार कमीशन के बदले अभिगोपक ऐसे सब अशो को अथवा अश–सख्या को जो जनता द्वारा न लिए जायँ, अपने नाम लेने तथा बँटवारा कराने के लिए समझौता करता है।"*

---

* "An agreement entered into before the shares are brought before the public that in the event of the public not taking up the whole of them or the number mentioned in the agreement, the underwriter will for an agreed commission, take an allotment of such part of the shares as the public has not applied for." **Gerstenburg**

Financial Organisation and Management P. 387.

इंगलैंड में अभिगोपन

इंगलैंड को छोड़कर लगभग अन्य सभी योरोपीय देशो मे बैंको के द्वारा ही नवीन उद्योगो का प्रवर्त्तन तथा दीर्घकालीन अर्थ प्रबन्धन हुआ करता था। अन्य देशो की अपेक्षा इगलैंड मे औद्योगिक क्रियाएँ लगभग आधी शताब्दी पूर्व ही प्रारम्भ हो गई थी और औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व व्यापारिक क्रान्ति अपना सिक्का जमा चुकी थी। प्रारम्भ मे औद्योगिक प्रतिस्थापन लघु होते थे और इनका अर्थ प्रबन्धन परिवार के आधार (Family basis) पर और बाद मे अतिरेक लाभ मे से हो जाया करता था। मजदूरी, किराया तथा अन्य व्यापारिक खर्चे कम होने के कारण लाभ की मात्रा भी अधिक होती थी जिसमे से पूँजी प्राप्त की जा सकती थी। इस प्रकार औद्योगिक अर्थ प्रबन्धन स्वत ही हो जाया करता था और किसी विशिष्ट अर्थ प्रबन्धन सस्था की आवश्यकता ही नही थी। इसके अतिरिक्त यह काल स्वतत्र व्यापार (Laissez-faire) तथा आत्म-निर्भरता (Self-help) होने के कारण ये लोग मध्यस्थो तथा बैंको से ऋण लेना उचित भी नही समझते थे क्योकि इन सस्थाओ से ऋण लेने पर उनके व्यापारिक कार्यो मे हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण करने का भय था, जो इनके सिद्धान्त के विरुद्ध था।

यह क्रिया उन्नीसवी शताब्दी के अन्त तक चलती रही। उन्नीसवी शताब्दी के अन्त मे परिस्थितियो मे परिवर्तन हो जाने के कारण इस पद्धति मे भी परिवर्तन हो गया। उद्योग-धधे अन्तर्राष्ट्रीय तथा बड़े पैमाने पर चलाए जाने लगे। इन विशाल उद्योग-धधो का अर्थ प्रबन्धन पहले की भाति नही किया जा सकता था। अब अर्थ प्रबन्धन मे मध्यस्थो के महत्व तथा अशो को जनता के सामने रखने की आवश्यकता का अनुभव भी किया जाने लगा था। परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इस समय तक अभिगोपन तथा अभिगोपन कमीशन देना दोनो ही अवैध (Illegal) थे। इस दोष का निवारण आग्ल कम्पनी अधिनियम १९०० के द्वारा हो गया और अभिगोपन की प्रथा का प्रादुर्भाव हुआ। इगलैंड मे अभिगोपन अधिकतर जमा बैंको (*Deposit* Banks), निकास गृहो (Issue houses) इत्यादि के द्वारा होता था। परन्तु इस समय तक इगलैंड मे सगठित पूँजी बाजार का अभाव था।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् अनेक नवीन निर्गमन गृह (Issue houses) स्थापित हुए। उद्योग-धधो की पूँजी की आवश्यकता दिन प्रतिदिन बढती जाती थी परन्तु पूँजी प्राप्त करने के साधन सीमित थे। अत. निकास गृहो

की सख्या दिन प्रति दिन बढती जाती थी, यद्यपि इनके साधन बहुत ही सीमित थे। इनका मुख्य ध्येय लाभ कमाना था। फलस्वरूप केवल तीन चार वर्षों (१९२९ से १९३०) तक ब्रिटिश विनियोक्ताओ को करोडो पौंड की हानि उठानी पडी। निवास गृह के दोष को दूर करने के लिए 'मैकमिलन समिति' (Macmillan Committee, 1931) ने सुझाव दिया कि अन्य देशो की भांति इगलैंड मे भी यह कार्य बैंको की देख रेख मे होना चाहिए। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि, 'बैंकर्स इन्डस्ट्रियल डेवलपमेंट कम्पनी' जिसकी स्थापना बैंक आफ इगलैंड के द्वारा १९३० मे हुई थी, के निरीक्षण मे सब निवास गृहो को यह कार्य करना चाहिए।

द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् दो विशिष्ट निगमो (Corporations) की स्थापना की गई। प्रथम, औद्योगिक तथा व्यापारिक अर्थ प्रबन्धन निगम' (Industrial and Commercial Finance Corporation) की स्थापना २० जुलाई १९५४ मे हुई। इसकी पूंजी १ करोड ५० लाख पौड थी जिसको बैंक आफ इगलैंड तथा अन्य सयुक्त स्कन्ध कम्पनियो ने क्रय किया था। दूसरी सस्था 'फाइनेन्स कारपोरेशन फार इन्डस्ट्री लिमिटेड' (Finance Corporation for Industry Ltd) थी, जिसकी अधिकृत पूंजी २ करोड ५० लाख पौड थी और जिसको बीमा कम्पनियो, प्रन्यासो (Trusts), बैंक आफ इगलैंड ने क्रमश ४०%, ३०% तथा ३०% के अनुपात मे क्रय किया था। इसके अतिरिक्त इस निगम की उधार लेने की शक्ति अधिकृत पूंजी की चौगुनी है।

जर्मनी मे अभिगोपन (Under-writing in Germany)

जर्मनी मे औद्योगिक उन्नति अन्य देशो की तुलना मे देर से प्रारम्भ हुई। १९वी शताब्दी के अन्त मे जर्मनी के उत्साही शासको ने जर्मनी के औद्योगिक विकास की बात सोची। पूंजी की बढती हुई माग को साख बैंको द्वारा पूरा किया गया। *यह साख बैंक उधार लेने वाली कम्पनी की आर्थिक* स्थिति का अच्छी तरह से अध्ययन करने के पश्चात धन उधार देते हैं। इस पद्धति से जनता मे विश्वास बना रहता है तथा कम्पनी के असफल होने की सम्भावना भी कम रहती है। कभी कभी साख बैंक ऋणी कम्पनी की क्रियाओ पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से भी उसकी सचालक सभा मे अपने व्यक्तियो को सचालक पद पर नियुक्त कर देते है।

जर्मनी कम्पनी अधिनियम के अनुसार कम्पनियों का प्रवर्तन दो प्रकार से हो सकता है —क्रमबद्ध (Successive) तथा एक ही साथ (Simultaneous)। प्रथम प्रकार के प्रवर्तन मे प्रवर्तकगण प्रत्यक्ष रूप से जनता से कम्पनी की पूँजी क्रय करने के लिए अपील करते है। अत यह पद्धति अधिक प्रचलित नही है। द्वितीय प्रकार के प्रवर्तन मे प्रवर्त्तक गण साख बैंक के ही एक अग होते है, जो कि कम्पनी की सम्पूर्ण पूँजी को खरीद लेते है और बाद मे धीरे धीरे जनता मे बेच देते है।

बहुत से बैंक आपस मे मिल कर एक सघ बनाते है जिसे Syndicate या Konsortium कहते हैं। यह सघ कम्पनी के निर्गमन की पूरी-पूरी जिम्मेदारी लेते हैं। परन्तु ऐसा वे उसी अवस्था मे करते हैं जब वे ऋणी कम्पनी की स्थिति का अध्ययन भली भाँति कर लेते है और आवश्यकता समझने पर अन्य प्रकार का नियन्त्रण रखने का अनुबन्ध भी कर लेते है। जर्मनी मे अभिगोपन की प्रणाली Konsortium के रूप मे पूर्णतया विकसित है और इसका एक मात्र श्रेय वहाँ की सरकार को है। श्रॉफ समिति ने भारत मे इसी प्रकार के सघ (Konsortium) स्थापित करने की सिफारिश अपनी रिपोर्ट मे जोरदार शब्दों मे की है।

अमेरिका मे अभिगोपन (Underwriting in U. S. A.)

सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे नवीन पूँजी का एक बहुत बडा भाग कम्पनियों को विनियोक्ता बैंको (Investment Bankers) के द्वारा प्राप्त होता है। विनियोक्ता बैंको के कार्यों म से अभिगोपन एक प्रमुख कार्य है। विनियोक्ता बैंक, श्री होगलैंड (Hoagland) के शब्दो मे "व्यापारी-गण होते हैं जिनके व्यापार का स्टाक, स्कन्ध (Stocks) तथा बंध (Bonds) होता है। वे निकास निगमो से प्रतिभूतियाँ खरीद लेते हैं और उन्हे प्रतिभूतियों के व्यापारियो को थोक मे, तथा व्यक्तियो एव सस्थागत् विनियोक्ताओं को फुटकर में बेच देते है।"* इस प्रकार विनियोक्ता बैंक्स प्रतिभूतियो के क्रय विक्रय मे मध्यस्थो का कार्य करते हैं।

---

*They are merchandisers whose stock in trade are stocks and bonds. They buy securities from issuing corporations and sell them at whole-sale to security dealers, and at retail to individual and institutional investors.

Hoagland, *Corporation Finance* P. 374.

१८६० से पूर्व स० रा० अमेरिका मे विनियोक्ता बैंकर्स बहुत कम होते थे। परन्तु गृह युद्ध (Civil War) की आर्थिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए वहाँ की सरकार ने प्रतिभूतियो का निर्गमन जनता में किया। यह कार्य फिलाडेलफिया (Philadelphia) के प्रसिद्ध बैंकर श्री जे कुक (Jay Cooke) को सौपा गया जिन्होंने विक्रेताओ के द्वारा सम्पूर्ण स० रा० अमेरिका तथा यूरोप मे सरकारी प्रतिभूतियो का विक्रय किया, और लगभग ३०० करोड डालर के बध बिक गए। गृह युद्ध के पश्चात् जे कुक तथा अन्य बध गृहो ने रेलो के लिए इस पद्धति से धन एकत्रित किया।

१९ वी शताब्दी के अन्त से प्रथम महायुद्ध तक अमेरिका मे इस पद्धति के कारण खूब औद्योगिक विकास हुआ। परन्तु १९२९ की सर्व-व्यापी मदी (Depression) के कारण विनियोक्ता बैंकिंग (Investment banking) पर बडा बुरा प्रभाव पडा। इसके पश्चात् १९३६ मे अमेरिका की योजनात्मक ढग पर उन्नति करने के लिए न्यू डील (New Deal) नामक एक योजना बनाई गई। इस योजना की प्रगति के साथ-साथ विनियोग बैंकिंग का भी पुनर्विकास हुआ। १९३३ के फैडरल सिक्यूरिटीज एक्ट (Federal Securities Act) के अनुसार नवीन प्रतिभूतियो का निर्माण वैध हो गया तथा इस अधिनियम के अनुसार व्यापारिक एवम् बैंकिंग क्रियाएँ अलग कर दी गई।

विनियोग बैंकर्स तीन प्रकार के होते है। प्रथम, थोक विनियोग बैंकर्स द्वितीय, फुटकर विनियोग बैंकर्स तथा तृतीय, मिश्रित बैंकर्स अर्थात् वे जो थोक व फुटकर बैंकर्स के कार्य करते है। अमेरिका के थोक विनियोग बैंकर्स में कुह्न, (Kunh), लायड एण्ड कपनी (Llod & Co.), मौरगन स्टेनले एण्ड क० (Morgan Stanley & Co.) तथा डिलन रीड एण्ड कपनी (Dillon Read & Co.) प्रमुख हैं। कुछ विनियोग बैंकर्स केवल एक ही प्रकार की प्रतिभूतियो मे व्यापार करते हैं और वे उन्ही प्रतिभूतियो के व्यापारियो के नाम से प्रसिद्ध होते है जैसे 'बध गृह' (Bond houses) 'सार्वजनिक हितकारी विशेषज्ञ' (Public utility specialists) तथा 'स्पात विशेषज्ञ' (Steel Specialists) इत्यादि। पिछले कुछ वर्षो से इस पद्धति मे परिवर्तन आ गया है। प्रतिभूतियो का प्रत्यक्ष निर्गमन होने लगा है। अत विनियोग गृह अधिकतर मध्यस्थो की भाँति कार्य करने लगे है। 'नेशनल एसोसियेशन आव सिक्यूरिटी डीलर्स (National Association of Security

Dealers) प्रतिभूतियो क अभिगोपन तथा प्रत्यक्ष विक्रय दोना काय करता है ।

भारतवर्ष मे अभिगोपन

अभिगोपन शब्द का प्रयाग सव प्रथम भारताय कम्पनो अधिनियम १९३६ म किया गया है । अधिनियम की धारा ९३ (१) क अनुसार सचालक गणो का यह कतव्य है कि व अभिगोपको क साधनो क बारे मे अपना विचार प्रकट कर । परन्तु इस अधिनियम के पूव भी अभिगापन पर कोई प्रतिबन्ध न था । भारतीय कपनी अधिनियम १९१३ की धारा १०५ क अनुसार किसी भी व्यक्ति को कमीशन दिया जा सकता था यदि वह कम्पनी की पूजी का क्रय करता था या क्रय करने का अनुबन्ध करता था । परन्तु एसा उसी समय हो सकता था जब निम्न तीन शर्तो की पूर्ति हो जावे —

(१) यदि पापद अन्तर्नियमो (Articles of Assoc ation) म ऐसा करने की अनुमति हो

(२) कमीशन का मात्रा स्वीकृति मात्रा या दर से अधिक न हो तथा

(३) इस बात का उल्लेख प्रविवरण (Prospectus) मे किया गया हो ।

भारत म अभिगोपन अधिक प्रचलित नही है इसक निम्न कारण है —

(१) औद्योगीकरण देर से प्रारम्भ होना

शताब्दियो तक विदेशियों क अधिकार म रहने क कारण भारत औद्योगिक उन्नति की कोई स्वतन्त्र योजना न बना सका । विदेशियो की यह नीति थी कि भारतवष उनक देश द्वारा निर्मित माल क लिए एक बाजार बना रहे । अत वे भारतवष क औद्योगीकरण की ओर बिल्कुल ही उदासीन थ । फलस्वरूप प्रतिभूतिया क अभिगोपन की आवश्यकता अधिक प्रतीत नही हुई ।

(२) भारतीय विनियोक्ताओ की विचित्र प्रवृत्ति

भारतीय विनियोक्तागण अपन धन का विनियाग औद्योगिक प्रतिभूतिया म न करके कृषि उद्योग भूमि तथा जेवरात इत्यादि म लगात है । कुछ लोग अपन धन का गाड (Hoard कर रखते है जिससे वह उनक पास सदैव सुरक्षित बना रह । अत भारतीय पूजी को अक्रियाशील Shy) कहते है जिससे पूजी बाजार भी अविकसित रहता है ।

(३) भारतीय बैंकों का अँग्रेजी ढंग पर निर्माण

भारतीय बैंकों का निर्माण इंगलैंड की बैंकों के आधार पर है अतः वे औद्योगिक कंपनियों को दीर्घकालीन ऋण नहीं देते हैं। परन्तु जर्मनी में ऐसी बात नहीं है। वहाँ पर अनेक बैंक मिल कर एक संघ बनाते हैं जिसे 'Konsortium' कहते हैं और वे सामूहिक रूप से औद्योगिक कंपनियों को दीर्घकालीन ऋण देते हैं। भारतवर्ष में प्रथम महायुद्ध के पश्चात् कुछ औद्योगिक बैंक स्थापित हुए थे परन्तु धीरे-धीरे वे सब समाप्त हो गए।

(४) विशेष संस्थाओं का अभाव

अन्य देशों में औद्योगिक प्रतिभूतियों के अभिगोपन के लिए विशेष संस्थाएँ हैं जैसे अमरिका में 'विनियोग बैंकर्स (Investment Bankers) इंगलैंड में 'निकास गृह' (Issue Houses) तथा जर्मनी में कान्सोर्टियम (Konsortiums) इत्यादि। स्वतन्त्रता प्राप्त करने के पश्चात् कुछ विशेष संस्थाएँ सरकार तथा जनता द्वारा स्थापित की गई हैं जो आवश्यकता को देखते हुए बहुत कम है। ये संस्थाएँ हैं औद्योगिक वित्त निगम (Industrial Finance Corporation), राज्य वित्त निगम (State Financial Corporations), राष्ट्रीय औद्योगिक विकास निगम (National Industrial Development Corporation), औद्योगिक साख तथा विनियोग निगम (*Industrial* Credit & Investment Corporation) तथा अन्तर्राष्ट्रीय वित्त निगम (International Finance Corporation)। इन निगमों को औद्योगिक प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों का अभिगोपन करने की आज्ञा है परन्तु अभी तक इन्होंने कोई उल्लेखनीय कार्य नहीं किया है।

(५) प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं की अनिच्छा

औद्योगिक प्रमण्डल अधिकतर प्रबन्ध अभिकर्ताओं के नियन्त्रण में है। भारतीय प्रबन्ध अभिकर्तागण अपनी नियन्त्रित कम्पनियों की प्रतिभूतियों का अभिगोपन कराना अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध समझते हैं। दूसरे उन्हें भय रहता है कि स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था होने पर कम्पनी उनके नियन्त्रण से निकल न जाय। अतः वे अभिगोपन प्रणाली को कभी भी उत्साहित नहीं करते।

भारत में अभिगोपन संस्थाएँ
(Underwriting Agencies in India)

सन् १९३० के बाद कुछ अभिगोपन संस्थाओं की स्थापना हुई। इन

संस्थाओं में से कुछ तो संयुक्त स्कंध प्रमण्डल, बीमा प्रमण्डल तथा साथ (Firms) के रूप में स्थापित हुई। विभिन्न प्रकार की अभिगोपक संस्थाओं का विवेचन इस प्रकार है —

(१) संयुक्त स्कंध विनियोग कम्पनी

सर्व प्रथम १९३७ में टाटा संस्थान ने वैज्ञानिक ढंग पर अभिगोपन करने के लिए 'इन्वेस्टमैंट कारपोरेशन आव इण्डिया लिमिटेड' की स्थापना की। इसने अनेक कम्पनियों की प्रतिभूतियों का अभिगोपन किया, इनमें से प्रमुख कम्पनियाँ 'राजा टैक्सटाइल्स लिमिटेड' (१९३८), 'टाटा केमीकल्स लिमिटेड' (१९३९) 'नेशनल स्टूडियोज़ लिमिटेड (१९३९), 'श्री जगदीश मिल्स लिमिटेड' (१९४१) तथा विम्को लिमिटेड (WIMCO Ltd.) इत्यादि है। दूसरी विनियोग कम्पनी कलकत्ते की हिन्दुस्तान इन्वैस्टमेंट कारपोरेशन लि०' है। इसका निर्माण ५० लाख रु० से हुआ था और इसने 'टैक्सटाइल मशीनरी कारपोरेशन लिमिटेड' (१९३९) के ७ लाख रु० के मूल्य के पूर्वाधिकार अंशों का अभिगोपन किया।

(२) स्कंध आढतियों की अभिगोपन सार्थ (Underwriting Firms of Stock Brokers)

संयुक्त स्कंध विनियोग प्रमण्डलों के अतिरिक्त कुछ साझेदारी सार्थ भी हैं जो अभिगोपन का कार्य करती है जैसे कलकत्ते में मैसर्स प्लेस, सिड्न्स तथा गफ, (M/s Place, Siddons and Gough) मैसर्स रीड वार्ड एण्ड कम्पनी, (M/s Reed Ward & Co.) मैसर्स नारायण दास खन्डेलवाल एण्ड कम्पनी (M/s Narayan Das Khandelwal & Co.), बम्बई में मैसर्स बाटली वाला एण्ड करानी (M/s Bathwala & Karani) तथा मैसर्स जीवतलाल पुरतापशी (M/s Jivat Lal Purtapashi) तथा मद्रास में मैसर्स कोठरी एण्ड सन्स (M/s Kothari & Sons) मैसर्स दलाल एण्ड कम्पनी (M/s Dalal & Co.) मैसर्स राइट एण्ड कम्पनी (M/s Wright & Co.) तथा मैसर्स न्यूटन एण्ड कम्पनी M/s Newton & Co.)।

(३) भारतीय व्यापारिक बैंक

भारतवर्ष में व्यापारिक बैंक, औद्योगिक कम्पनियों को दीर्घकालीन ऋण देने में प्रारम्भ से ही उदासीन रही है। इस अभाव को दूर करने के लिए प्रथम महायुद्ध के पश्चात् औद्योगिक बैंकों को स्थापित करने के लिए कुछ

प्रयत्न किए गए। इन प्रयत्नों के फलस्वरूप कुछ औद्योगिक बैंक स्थापित भी किए गए परन्तु धीरे-धीरे ये भी समाप्त हो गए। १९१७—१९२९ के बीच लगभग १२ बैंक स्थापित किए गए जो कुछ समय में ही अनुभव के अभाव तथा सीमित साधन होने के कारण स्वयम् ही बन्द हो गए। ये बैंक निम्न-लिखित थे —

बैंक का नाम	स्थापना का वर्ष	चुकता पूंजी लाख रु०
१—दी टाटा इण्डस्ट्रियल बैंक	१९१७	२२५
२—दी इण्डस्ट्रियल बैंक ऑफ वैस्टर्न इण्डिया	१९१९	३९
३—दी कलकत्ता इण्डस्ट्रियल बैंक	१९१९	७९
४—दी सेन्ट्रल ट्रावनकोर इण्डट्रियल बैंक	१९१९	—
५—दी इण्डियन इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२०	३
६—दी मैसूर इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२०	६
७—दी गुण्डलपैट इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२०	—
८—दी कारनानी इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२१	६०
९—दी सिमला इण्डस्ट्रियल एण्ड बैंकिंग क०	१९२१	३
१०—दी रैंयकुट इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२२	२
११—दी लक्ष्मी इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२३	१
१२—दी साउथ मलाबार इण्डस्ट्रियल बैंक	१९२९	—

इन औद्योगिक बैंकों की असफलता के पश्चात् व्यापारिक बैंकों ने औद्योगिक कम्पनियों को दीर्घकालीन ऋण न देना अपना सिद्धान्त बना लिया है। श्राफ कमेटी ने भारत में अभिगोपन का कार्य करने के लिए जर्मनी की 'कन्सोरटियम' (Konsortiums) के आधार पर बैंकों तथा बीमा कम्पनियों द्वारा 'कन्सोरटियम' बनाने का सुझाव दिया है। इस समिति के सुझावों पर विचार करने के लिए रिजर्व बैंक आफ इण्डिया ने जुलाई १९४७ में श्री एस० के० हन्डू, जो इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया के प्रबन्ध सचालक थे, की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त कर दी है। हन्डू समिति में अपनी रिपोर्ट, जो अक्टूबर १९५४ में प्रस्तुत की गई, में बताया है कि 'कन्सोरटियम' स्थापित करने में दो बाधाएँ है। प्रथम, तो भारतीय बैंकों के पास आर्थिक

साधन सीमित है और द्वितीय, इनकी स्थापना से स्कंध अढतियों (Stock brokers) के समाप्त हो जाने की सम्भावना है।

जहाँ तक सीमित साधनों को विस्तृत करने का सम्बन्ध है यह कहा जा सकता है कि बैंकों को अपने साधन जनता से ऋण लेकर पर्याप्त कर लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त रिजर्व बैंक ऑव इण्डिया को चाहिए कि बैंको को दीर्घकालीन ऋण दिया करे। जहाँ तक स्कंध आढतियों के समाप्त हो जाने का प्रश्न है, यह एक व्यर्थ का भय है। क्योंकि 'कन्सोरटियम' को नवीन पूंजी के निर्गमन के लिए स्कंध आढतियों की सहायता लेनी ही होगी। अतः 'कन्सोरटियम' की स्थापना शीघ्रातिशीघ्र होनी चाहिए परन्तु इसका प्रबन्ध वैज्ञानिक ढग पर अनुभवी तथा कुशल शासकों के द्वारा होना चाहिए।

(४) बीमा कम्पनियाँ

बीमा कम्पनियाँ लन्दन पूंजी बाजार में बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखती है परन्तु भारतीय पूंजी बाजार में इनका अधिक महत्व नहीं है। अभी तक बीमा कम्पनियों पर वैधानिक प्रतिबन्ध होने के कारण वे अपने धन का विनियोग औद्योगिक प्रतिभूतियों में नहीं कर सकती थी। श्रॉफ समिति ने 'कन्सोरटियम' में बीमा कम्पनियों को सम्मिलित करने का सुझाव दिया है। बीमा अधिनियम की धारा २७ अ में सशोधन हो जाने से बीमा कम्पनियाँ अब अपने धन का विनियोग औद्योगिक प्रतिभूतियों में कर सकती है। परन्तु जीवन बीमा कम्पनियों के राष्ट्रीयकृत हो जाने के कारण बीमा कम्पनियों का अभिगोपन के रूप में कार्य करने का महत्व कम हो जाने की सम्भावना है।

(५) विनियोग प्रन्यास (Investment Trusts)

पिछले कुछ वर्षों से भारतवर्ष में विनियोग प्रन्यास भी स्थापित किए गए है। १९३५ में प्रेमचन्द रामचन्द एण्ड सन्स ने बम्बई में औद्योगिक विनियोग प्रन्यास (Industrial Investment Trust) का निर्माण किया। १९३६ में कलकत्ता में दो विनियोग प्रन्यास 'न्यू इण्डिया इन्वैस्टमैंट कारपोरेशन लिमिटेड' तथा 'बर्डस् इन्वैस्टमैंट लिमिटेड', स्थापित किए गए। १९४२ में नवीन कम्पनियों के प्रवर्त्तन के अभिगोपन के उद्देश्य से 'इन्वैस्टमैंट कारपोरेशन लिमिटेड' की स्थापना की गई। इसी प्रकार १९४३ तथा १९४६ में क्रमश. 'देवकरन नान जी इन्वैस्टमैंट कम्पनी लिमिटेड' तथा 'इन्वैस्टमट ट्रस्ट ऑव इण्डिया' स्थापित किए गए।

इन विनियोग प्रन्यासों का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ये प्रन्यास प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं द्वारा संचालित होते हैं और केवल उन्हीं कम्पनियों की प्रतिभूतियों का अभिगोपन करते हैं जो कि प्रबन्ध अभिकर्त्ताओं के नियन्त्रण में होती हैं।

(६) प्रबन्ध अभिकर्त्ता (Managing Agents)

पहले जब कि भारतवर्ष में अभिगोपन करने वाली कोई संस्था न थी, प्रबन्ध अभिकर्त्ता लोग परोक्ष रूप में अपनी नियन्त्रित कम्पनी की प्रतिभूतियों का अभिगोपन करते थे। न केवल वे स्वयं ही प्रतिभूतियों का क्रय करते थे वरन् अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से भी इन प्रतिभूतियों का क्रय कराते थे। प्रबन्ध अभिकर्त्तागण प्रतिभूतियों का अभिगोपन बड़ी कुशलता से करते थे क्योंकि इनका सम्बन्ध स्कंध अढ़तियों, (Stock brokers), बैंकों, बीमा कम्पनियों, विनियोग प्रन्यासों इत्यादि से बड़ा घनिष्ट होता है।

(७) विशिष्ट कारपोरेशन (Specialized Corporations)

हाल ही में सरकार द्वारा स्थापित 'औद्योगिक वित्त निगम' तथा राज्य वित्त निगम (State Financial Corporations) औद्योगिक प्रमण्डलों की प्रतिभूतियों का अभिगोपन कर सकते हैं। परन्तु इनकी क्रियाओं का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि अभी तक इन्होंने अपने इस कार्य (अभिगोपन) को नहीं किया है।

(८) निर्गमन गृह (Issue Houses)

अभिगोपन के लिए भारतवर्ष में कोई भी निकास गृह नहीं है। कुछ लोगों ने इंगलैंड के निकास गृहों के आधार पर भारतवर्ष में भी निकास गृहों की स्थापना के लिए सुझाव दिया है। यदि देश की बड़ी-बड़ी बैंकें इसकी सदस्य हो जायें तो सफलता की आशा की जा सकती है।

उपरोक्त अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में अभिगोपन अब भी अविकसित अवस्था में है। अतः द्रुतगामी औद्योगीकरण के लिए समुचित अभिगोपन प्रणाली की परम आवश्यकता है। इसके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि अभिगोपन के समझौतों में जो दोष हैं उन्हें दूर किया जाय। बड़े हर्ष का विषय है कि भारतीय प्रमण्डल अधिनियम, १९५६ की द्वितीय सूची के क्लाज १३ के अनुसार कम्पनियों को अपने प्रविवरण (Prospectus)

में यह स्पष्ट शब्दों में लिखना आवश्यक है कि पिछले दो वर्षों में कितना अभिगोपन कमीशन दिया गया है अथवा देना है।

प्रश्न

1. Discuss in detail the functions and necessity of underwriters in raising finance. (Agra, B. Com. 1955)
2. Give a detailed description of under-writing procedure in India with reference to other countries.

अध्याय १३

भारतवर्ष में औद्योगिक श्रम

(Industrial Labour in India)

किसी भी समाज के सदस्यो के स्वास्थ्य, सम्पत्ति और समृद्धि का आधार उसका श्रम है। यही मानव-जीवन की आर्थिक क्रियाओ का मूल, प्रारम्भिक तत्व और पूंजी का जन्मदाता है। इसीलिए अनेक बार पूंजी को पूंजीभूत या सचित श्रम कहा गया है। निस्सन्देह उत्पादन मे भूमि के अतिरिक्त, श्रम का केन्द्रीय स्थान है। उत्पादन के अन्य साधनो—भूमि और पूंजी—की तुलना मे, श्रम और उनमे कुछ मौलिक अन्तर है। श्रम उत्पादन का एक सजीव साधन है। उसका सम्बन्ध मानव से है, अत उसमे मानवीय सुख दुख और नैतिक तत्वो का समावेश स्वाभाविक है। मानव जाति आज जितनी भी प्रगति कर सकी है उसका रहस्य उसके पीछे अन्तर्हित अध्यवसाय और श्रम मे दिया हुआ है।

आज भारतवर्ष शताब्दियो तक की शृखलाएँ तोड कर प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहा है। देश की आर्थिक-प्रगति की गति, जो कि राजनैतिक परतन्त्रता व उत्पीडन के कारण मन्द पड गई थी, आज दासत्व के बन्धन कट जाने पर पुन समय की गति के साथ प्रभावित होने लगी है। तीव्र गति से बढती हुई इस भारतीय अर्थ व्यवस्था म औद्योगिक श्रम का महत्व भी निरतर बढता जा रहा है। यह बिल्कुल सत्य है कि किसी भी देश के आर्थिक जीवन की आधार शिला उसका औद्योगिक श्रम है। यह तथ्य भारतवर्ष के लिए और भी सत्य प्रतीत होता है, क्योकि समय मे दुरुह एव दीर्घतम मार्ग पर युग-युगो से चला आने वाला भारत आज अपनी आर्थिक-मोक्ष के द्वार पर खडा हुआ भावी प्रकाश के दर्शन कर रहा है। दूसरे शब्दो मे भारत इस समय अपने औद्योगीकरण के लिए पूर्ण साहस एव जागरूकता से प्रयत्नशील है।

भारतवर्ष द्वितीय पचवर्षीय योजना, जिसमे देश के औद्योगिक विकास

को प्रमुख स्थान दिया गया है, की सफल सम्पन्नता के लिए पहले से ही प्रयत्नशील है। परन्तु औद्योगीकरण की कोई भी योजना चाहे वह कितनी ही महत्वाकांक्षी एवं सुनियोजित क्यों न हो, बिना औद्योगिक श्रम की सहायता एवं सहयोग के उसका सफल होना सम्भव नहीं। इस कटु सत्य को महानता को स्वीकार करते हुए द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं में श्रमिकों के कल्याण एवं उनकी दशा में समुचित सुधार की ओर पर्याप्त ध्यान दिया गया है। श्रम एवं श्रम कल्याण से सम्बन्धित परियोजना पर द्वितीय योजना में २९ करोड़ रुपये की राशि का प्रावधान किया गया है, जिसमें से केन्द्रीय स्तर पर १८ करोड़ रुपये और राज्यकीय स्तर (State level) पर ११ करोड़ रुपये का प्रबन्ध किया गया है। इस सम्बन्ध में प्रमुख योजनाएँ निम्न हैं —

(१) बढ़ती हुई कुशल श्रम (Efficient labour) की माँग की पूर्ति के लिए समुचित प्रशिक्षण सुविधाओं का प्रबन्ध करना,

(२) 'रोजगार सेवा संगठन' (Employment Service Organisation) की क्रियाओं का विस्तार करना तथा नवीन रोजगार के दफ्तरों की स्थापना करना,

(३) औद्योगिक श्रमिकों के लिए आवास (Housing) की व्यवस्था करना, तथा

(४) औद्योगिक केन्द्रों की गन्दी बस्तियों का उन्मूलन करना।

भारत में औद्योगिक श्रमिकों की वर्तमान स्थिति

सम्पत्ति तथा गृह विहीन एवं मजदूरी पर ही निर्भर रहने वाले एक विशेष श्रमिक या मजदूर वर्ग का श्रीगणेश भारतवर्ष में १९ वीं शताब्दी के मध्य में हुआ जब सरकार ने अकाल निवारण के लिए बड़ी-बड़ी नहरों, रेलों तथा सड़कों का सार्वजनिक कार्य विभाग (Public Works Department) द्वारा निर्माण करना प्रारम्भ किया। इसके बाद खानों, चाय, नील, कहवा, रबर आदि के बागानों तथा १९वीं सदी के उत्तरार्ध में जूट तथा सूती कपड़े की मिलों के खुलने पर गाँव के कारीगरों तथा किसानों की एक बड़ी संख्या अपनी दरिद्रता, बेकारी तथा ऋणग्रस्तता के कारण नगरों की ओर रोजगार के लिए आकर्षित हुई और एक पृथक् विशेष श्रमिक वर्ग का प्रादुर्भाव हुआ।

संगठित तथा बड़े पैमाने के उद्योगों के धीरे-धीरे विकसित होने पर

औद्योगिक श्रमिकों की संख्या भी धीरे-धीरे बढ़ने लगी और आज भारत में औद्योगिक श्रमिकों की संख्या ६७ लाख से भी अधिक है जो अधिकतर मिलों या कारखानों, खानों, बागानों, रेलों, जहाजों, बन्दरगाहों, डाक एवं तार विभाग तथा ट्रामवेज में काम करते हैं। इसका स्पष्टीकरण निम्न तालिका से होता है —*

कारखाने (Factories) (१९५७)	३०,८७,८६४
खानें (Mines) (१९५६)	६,२८,५८७
बागान (Plantations)	१२,२८,०००
रेल्वेज (Railways) (१९५७-५८)	११,११,०२६
डाक एवं तार (Posts & Telegraphs)	२,४३,०००
ट्रामवेज (Tramways)	१,७१,०००
मुख्य बन्दरगाह (Major Ports)	५,७०,०००

केन्द्रीय सरकार के संस्थानों (Establishments) में नियुक्त कर्मचारियों की संख्या रेल्वे कर्मचारियों के अतिरिक्त मार्च १९५८ में ६,९४,५०२ थी। इसमें से प्रशासकीय (Administrative) कर्मचारियों की संख्या ६९,६३२ क्लेरीकल कर्मचारियों की संख्या २,३३,६८९, कुशल एवं अर्ध कुशल कर्मचारियों की संख्या १,५०,५८६ तथा अकुशल कर्मचारियों की संख्या २,४० ५९५ थी।

मजदूरों की एक बड़ी संख्या अनियन्त्रित उद्योगों में भी लगी हुई है। लगभग ५ हजार बीडी बनाने, १·४ लाख अभ्रक-उद्योग, ३०,००० चमड़ा उद्योग, ७ हजार कालीन बुनने, ७०,००० चटाई और रस्सियाँ बनाने तथा १०,००० चूडी बनाने में लगे हुए हैं। इस प्रकार के कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों की संख्या का अनुमान लगभग १० लाख है।

तान्त्रिक एवं वैज्ञानिक विकास तथा आधुनिक औद्योगिक उत्पादन की विधि अत्यन्त जटिल हो गई है। आधुनिक कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों में जिन दो गुणों की आवश्यकता होती है, वे हैं उनकी कार्य-क्षमता (Efficiency) एवं प्रशिक्षण (Training)। राष्ट्र की अर्थ-व्यवस्था में एक प्रशिक्षित दक्ष एवं कुशल श्रमिक राष्ट्र की बहुमूल्य निधि है। भारतवर्ष में द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित औद्योगिक विकास की विभिन्न

* Facts About India, *The Publications Divisions*, p 157.

योजनाओ की सफलता एव अधिकाधिक उत्पादन के उद्देश्य की पूर्ति कुशल एव सतुष्ट श्रम-शक्ति से बहुत कुछ सम्बन्धित है। परन्तु दुःख का विषय है कि भारतीय श्रम से सम्बन्धित एक जटिल समस्या उसकी लोक-प्रसिद्ध अक्षमता अथवा अकुशलता है। भारतीय श्रमिक का 'प्रति व्यक्ति घन्टा उत्पादन' (Man-hour-Output) न्यून है और पाश्चात् देशो की तुलना मे तो और भी न्यून है।

अत यह बिल्कुल स्पष्ट है कि भारतवर्ष मे श्रम-प्रदाय का बाहुल्य है जिसके फलस्वरूप उनमे आपस मे तीव्र प्रतियोगिता है। इसके अतिरिक्त उनकी अन्य विशेषताओ जैसे मोलभाव करने की शक्ति के अभाव (Lack of Bargaining power) तथा सगठन के अभाव इत्यादि के कारण मजदूरी की दृष्टि से भारतवर्ष मे श्रम-शक्ति सस्ती है, परन्तु क्षमता (Efficiency) की दृष्टि से यह मँहगी पडती है। किसी औद्योगिक सस्थान के सफल चालन के लिए न केवल श्रम-शक्ति का सस्ता एव विपुलता मे होना ही पर्याप्त है, बल्कि उनका कुशल (Efficient) होना भी आवश्यक है।

औद्योगिक श्रम की मूल विशेषताएँ
(Basic Characteristics of Industrial Labour)

भारतीय औद्योगिक श्रमिक वर्ग के विकास की परिस्थितियो का अवलोकन हम पिछले पृष्ठो मे कर चुके है। आइए अब श्रमिक वर्ग की विशेषताओ के बारे मे भी कुछ जान लिया जाय। भारतीय श्रमिक की कुछ अपनी ही विशेषताएँ है जो उन्हे अन्य देशो के श्रमिको से पृथक करती है। साधारण रूप से श्रमिक वर्ग की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित है —

(१) भ्रमणशील प्रवृत्ति (Migratory Character)

भारतीय श्रमिक वर्ग की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी भ्रमणशील प्रवृत्ति है। उद्योग-धन्धो मे काम करने वाले श्रमिक अधिकतर गावों से आते है। शहरो मे रहते हुए भी वे अपने गाँव के स्वच्छ वातावरण, प्राकृतिक सौंदर्य दृश्यो, सगे सम्बन्धियो तथा मित्रो को भूल नही जाते हैं। अवसर प्राप्त होते ही वे अपने गाँवो को वापस लौट जाते है। शहर का व्यस्त, स्वार्थी एव व्यक्तिवादी वातावरण, आमोद-प्रमोद के साधनो का अभाव उनको आकर्षित करने मे असफल रहता है। इस प्रकार वे भ्रमणशील पक्षी की भाँति गाँव से शहर तथा शहर से गाँव तथा खेती से उद्योग और उद्योग से खेती म वाम

किया करते हैं। इस दोष के कारण औद्योगिक श्रमिकों का एक पृथक वर्ग सगठित नहीं हो सका है।

(२) एकता का अभाव (Lack of Unity)

भारतीय श्रमिक उद्योगों में काम करने के लिए देश के विभिन्न स्थानों एवं क्षेत्रों से आते है। ऐसा शायद ही कोई उद्योग होगा जिसके श्रमिक शहर के पास के स्थानों (Suburbs) से हो आते हों। अधिकतर वे भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से ही काम करने के लिए आते हैं। फलस्वरूप उनकी बोल-चाल, रहन-सहन, रीति-रिवाज, सम्प्रदाय तथा धर्म इत्यादि विभिन्न होते है। उनमें किसी भी प्रकार की समानता नहीं होती और वे एक दूसरे के प्रति सहानुभति, आत्मीयता तथा प्रेम भी नहीं रखते। अत उन लोगों में एकता (Unity) का भी अभाव रहता है।

(३) श्रमिक अनुपस्थितिवाद (Labour Absenteeism)

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है श्रमिकों को अपने निवास स्थानों (ग्रामों) के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है। वे कृषि मौसमों (Agricultural Seasons) में जब कि फसल का काम अधिक होता है तथा विशेष उत्सवों पर मिलों का काम छोड़कर अपने गाँव को चले जाते हैं और जब फसल का काम समाप्त हो जाता है अथवा जब उसके उत्सव त्यौहार आदि हो जाते हैं तब व शहरों को वापस चले आते हैं। इस प्रकार श्रमिक अनुपस्थितिवाद (Labour Absenteeism) अथवा अनियमित उपस्थिति (Irregular Attendance) भारतीय उद्योगों में बहुत प्रचलित है, जिसका औद्योगिक उत्पादकता एवं कार्यक्षमता पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है।

भारतीय उद्योगों में औसत अनुपस्थिति १२ से १८ प्रतिशत तक होती है।

(४) भाग्यवादिता (Fatalistic Nature)

भारतीय श्रमिक जो अधिकतर गाँवों से मिलों में काम करने के लिए आते हैं बड़े भाग्यवादी होते हैं। ये लोग प्रत्येक कार्य की सफलता अथवा असफलता भाग्य की देन समझते हैं। भाग्य पर इन लोगों का इतना विश्वास होता है कि वे कर्म (Duty) करना भी छोड़ देते हैं। अपने कष्टों का निवारण करने के लिए वे कोई प्रयत्न नहीं करते। श्रमिकों के भाग्यवादी होने का सबसे प्रमुख कारण यह है कि उनका अथवा उनके परिवार के सदस्यों का पैतृक उद्योग कृषि है जो कि 'वर्षा का जुआ' (Gamble in rains)

कहा जाता है। अत उनकी मानसिक प्रवृत्ति इसी प्रकार की बन जाती है।

(५) अज्ञानता तथा शिक्षा का अभाव (Ignorance & Illiteracy)

भारतवर्ष मे शिक्षा का नितान्त अभाव है। अधिक से अधिक १६ या १८ प्रतिशत जनता साक्षर है। तान्त्रिक (Technical), यान्त्रिक (Machanical) शिक्षा का तो और भी अभाव है। अत श्रमिक अधिकतर अशिक्षित एव अज्ञानी होते है और वे आधुनिकतम मशीनों का प्रयोग करने मे असफल रहते है।

(६) अक्षमता (Inefficiency)

औद्योगिक मजदूर की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी अक्षमता अथवा अकुशलता है। विदेशी औद्योगिक मजदूरों की तुलना मे तो भारतीय औद्योगिक मजदूर बहुत ही पिछडा हुआ है। 'सर अलेक्जेण्डर मैक रावर्ट' (Sir Alexander Mac Robert ने औद्योगिक कमीशन के सम्मुख अपनी साक्षी मे कहा था कि एक अँग्रेज मजदूर भारतीय मजदूर से चौगुना कुशल होता है। इसी प्रकार सर क्लीमेंट सिम्पसन के अनुसार लकाशायर की सूती मिल मे काम करने वाले २·६७ मजदूरों की योग्यता के बराबर है। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (I L. O.) के द्वारा की गई जांच से इस कथन की पुष्टि नही होती परन्तु फिर भी इसमे सत्यता का अधिक पुट है। इसका विस्तार मे अध्ययन अगले पृष्ठो म किया गया है।

(७) कुशल कारीगरो की कमी

भारतीय श्रमिकों की एक विशेषता यह भी है कि कुशल कारीगर कम पाये जाते है। श्रमिकों की रुचि उद्योगों में कम होने के कारण तथा तान्त्रिक एव यान्त्रिक (Technical and Machanical) शिक्षा का अभाव होने के कारण, कुशल कारीगरो का अभाव होना कोई आश्चर्य की बात नही है। देश का विभाजन हो जाने के कारण भी अधिकाश मुस्लिम कारीगर पाकिस्तान चले गये। कुशल कारीगरों के अभाव को दूर करने के लिए राष्ट्रीय सरकार भारतीयो को विदेशों मे तान्त्रिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज रही है।

(८) निम्न जीवन-स्तर (Low Standard Of Living)

भारतीय श्रमिकों का जीवन-स्तर, विदेशी श्रमिको की तुलना मे बहुत

गिरा हुआ है। वे अपनी अति आवश्यक आवश्यकताओ की पूर्ति भी भली भाँति नही कर पाते हैं। आरामदायक तथा विलासितापूर्ण आवश्यकताओ की पूर्ति तो स्वप्न मात्र है। जीवन-स्तर गिरा होने के कारण श्रमिकों के स्वास्थ्य एव उनकी कार्यक्षमता पर बडा बुरा असर पडता है।

निम्न तालिका जो कि देश के विभिन्न राज्यो (States) की औसत वार्षिक मजदूरी को स्पष्ट करती है, से ज्ञात होता है कि हमारे श्रमिक कितनी कम मजदूरी प्राप्त करते है।

२०० रु० प्रति माह से कम वेतन पाने वाले*

(रेलवे कर्मचारियो के अतिरिक्त)

राज्य (States)	कुल आय	प्रति श्रमिक औसत वार्षिक आय
आन्ध्र	८४,४११	७८६·४
असम	४७,०५०	१,५२५·९
बिहार	१,६५,१४५	१,२३५·६
बम्बई	१०,९९,५०१	१,४१४·८
मध्य प्रदेश	३३,२५६	९८२·४
मद्रास	२,२२,५७६	९५०·१
उडीसा	१४,९२३	९४८·५
पजाब	४८,७८६	९९१·०
उत्तर प्रदेश	२,३२,३४२	१,०१४.१
पश्चिमी बगाल	४,४९,२८१	१,१४१·७
दिल्ली	६७,७६४	१,४६६·९
सब राज्य	२६,६५,०५५	१,२१२·७

यदि हम भारतीय प्रति व्यक्ति आय को अन्य देशो की प्रति व्यक्ति आय से तुलना करें तो ज्ञात होगा कि भारतीय लोगो का स्तर अन्य देशो की अपेक्षा कितना गिरा हुआ है।

* Indian Labour Gazette, July 1958, p. 69

विभिन्न देशों की राष्ट्रीय आय*

देश	राष्ट्रीय आय	प्रति व्यक्ति आय
	करोड रुपये मे	रुपये
(१) सयुक्त राष्ट्र अमेरिका	१,६३,५५४	९,७३१
(२) कनाडा	१०,७८७	६,७४२
(३) सयुक्त राज्य (U. K)	२१,९५३	४,२८७
(४) फ्रास	१७,६४०	४,०४६
(५) भारतवर्ष	११,०१०	२८४

भारतीय श्रमिकों की अकुशलता
(Inefficiency of Indian Labour)

श्रमिको की कुशलता तथा उनके कल्याणकारी कार्यों का किसी भी देश के आर्थिक विकास से बडा घनिष्ठ सम्बन्ध है। अनुकूल परिस्थितियाँ मिलने पर श्रमिक स्वाभाविक रूप से कार्यशील रहता है। उसकी कार्यक्षमता का ह्रास उसी समय होता है जब उसे दुर्दमनीय विषमताओं मे सघर्ष करने को छोड दिया जाता है। दुर्भाग्य से भारतीय श्रमिक की परिस्थितियो की विषमता ने उसे दीर्घकाल से एक दीन व जर्जरित, शोषित व त्रस्त तथा असहाय बना डाला है। आज यद्यपि स्थिति मे सुधार होता जा रहा है, और भारतीय श्रमिक अनुकूल परिस्थितियाँ पाने पर अपनी कार्यक्षमता का परिचय देने लगा है, तथापि विश्व के अन्य औद्योगिक देशो के श्रमिको की अपेक्षा वह अब भी बहुत पिछडा हुआ है।

सर अलेक्जेण्डर मैक राबर्ट ने औद्योगिक कमीशन के सम्मुख अपनी साक्षी (Evidence) देते हुए कहा था कि एक अँग्रेज मजदूर भारतीय मजदूर से चौगुना कुशल होता है। इसी प्रकार सर क्लीमेंट सिम्पसन के अनुसार लका-शायर की सूती मिल मे काम करने वाला एक मजदूर भारतीय २·६७ मजदूरो की योग्यता के बराबर है इस कथन की पुष्टि नहीं होती है परन्तु फिर भी इसमे सत्यता का अधिकाश पुट है।

---

* Commerce, August, 23, 1958.

विभिन्न उद्योगो मे श्रमिको की कुशलता इस प्रकार है :—

सूती वस्त्र उद्योग—१९२६-२७ मे सूती मिल उद्योग के लिए नियुक्त टैरिफ बोर्ड के अनुसार सूती कपडे की मिलों मे काम करने वाला एक श्रमिक जापान मे २४०, योरोप मे ५४० से ६०० तक, अमेरिका मे ११२० तथा भारत मे केवल १८० ही तकुओं (Spindles) की देखभाल करता है। काटन यार्न एसोसियेशन लि० के अनुसार जापान की मिलो मे १८ श्रमिक १००० तकुओ (Spindles) की देखभाल करते हैं, जबकि भारतवर्ष मे उतने ही तकुओं की देख भाल ३० से लेकर ३१ श्रमिक करते हैं।

इस सम्बन्ध मे श्रीयुत एन० एच० टाटा द्वारा दिए गए आंकडे भी महत्व-पूर्ण है। उनके अनुसार भारतवर्ष मे औसतन प्रति १००० तकुओ (Spindles) पर २२ श्रमिक कार्य करते है जबकि अमरिका मे ४.५ श्रमिक और लका-शायर मे ६.७ श्रमिक कार्य करते हैं। यही हाल बिनता (Weaving) के सम्बन्ध मे भी है। बिनता मे एक जुलाहा, योरोप मे ४ से ६ तथा अमेरिका मे ९, पर भारत मे केवल दो करघो (Looms) को ही चलाता है।

उपरोक्त आंकडो एव तथ्यो मे हमे भारतीय श्रमिक की अपेक्षाकृत (Relative) अक्षमता की झलक मिलती है।

परन्तु इस सम्बन्ध मे यह बात जानने योग्य है कि पिछले कुछ वर्षो से कुछ सूती वस्त्र मिलो मे श्रमिको की कुशलता मे पर्याप्त वृद्धि हुई है। सूती वस्त्र उद्योग के एक कार्यवाहक दल (Working Party, 1952) ने देखा कि दिल्ली की एक मिल मे, तथा मद्रास की दो मिलों मे एक जुलाहा (Weaver) क्रमश ४, ६, ८ और अहमदाबाद की एक मिल मे १८ तथा बम्बई की एक मिल म ६ करघो (Looms) पर कार्य करता है।

भारत की कुछ मिलो के श्रमिको की कुशलता अथवा क्षमता मे यह वृद्धि उनमे स्वचालित एव आधुनिक मशीनरी के कारण हुई है, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक जुलाहा अधिक काम कर सकता है। इतनी उन्नति होने पर भी कदा-चित भारतीय श्रमिक सयुक्त राज्य (U K.) जापान और अमेरिका के श्रमिको की तुलना मे कम कुशल है।

जूट उद्योग—'रायल कमीशन' के समक्ष साक्षी देते हुए कहा गया है कि जूट उद्योग मे लगे हुए दो भारतीय श्रमिको का काम डडी या योरोप के किसी अन्य देश का एक श्रमिक कर सकता है।

लोहा एवं स्पात उद्योग—इस उद्योग में भी श्रमिकों की क्षमता अथवा कुशलता की दशा असंतोषजनक है। श्री जे० आर० डी० टाटा के अनुसार १९४९ में लौह एवं स्पात का प्रति श्रमिक उत्पादन प्रति मास केवल ½ टन ही था जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) के लौह एवं स्पात उद्योग में प्रति श्रमिक औसत उत्पादन ५ टन प्रति मास था।

कोयला खनिज उद्योग—भारतीय 'ज्योलाजीकल माइनिंग एण्ड मैटालर्जीकल सोसाइटी' की २८वीं वार्षिक सामान्य सभा में अध्यक्ष महोदय ने इस बात की ओर संकेत किया कि भारतवर्ष में प्रति व्यक्ति पाली (Shift) उत्पादन केवल २·७ टन है, जबकि संयुक्त राज्य (U. K.) में ६·२९, जर्मनी में ८·९९ तथा संयुक्त राज्य अमेरिका (U. S. A.) में २१·६८ टन है। नियोजन आयोग (Planning Commission) ने पता लगाया है कि कोयला खनिज उद्योग में १९४१ में लगे हुए २,१४,२४४ श्रमिकों की संख्या बढ़कर १९५१ में ३,४०,००० हो गई जबकि उसी समय में कोयले के उत्पादन में वृद्धि २५·८९ मिलियन टन से बढ़कर ३४ मिलियन टन ही हुई। इन आँकड़ों के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि जबकि श्रमिकों की संख्या में ५८ % की वृद्धि हुई, उत्पादन में वृद्धि केवल ३२ % ही रही।

इसी प्रकार यदि हम देश के समस्त उद्योगों में लगे हुए श्रमिकों की कार्य-क्षमता एवं उत्पादकता का विश्लेषण कर सकते तो अधिक लाभकारी होता, परन्तु इन उद्योगों से सम्बन्धित विस्तृत एवं आवश्यक आँकड़े उपलब्ध न होने के कारण यह सम्भव नहीं है। तथापि ऐसा अनुमान लगाया गया है कि इन उद्योगों का भी 'प्रति-व्यक्ति-घन्टा' (Per-man-hour) उत्पादन अभी पिछले कुछ वर्षों में काफी गिर गया है और कुछ केसों में तो ३० % से ५० % तक उत्पादकता में अवनति हुई है। इसके विपरीत ब्रिटिश और अमेरिकन श्रमिकों की क्षमता में निरन्तर वृद्धि होती जा रही है।

भारतीय श्रमिकों की अकुशलता के कारण
(Causes For The Inefficiency of Indian Worker)

भारतीय श्रमिकों की अकुशलता का उत्तरदायित्व पूर्णतया केवल श्रमिकों पर ही नहीं है। यथार्थता इस चिन्ताजनक अवस्था के लिए अनेक कारण उत्तरदायी हैं जो कि सामाजिक, राजनैतिक, प्राकृतिक तथा आर्थिक हैं।

सरल अध्ययन के दृष्टिकोण से हम इन समस्त कारणो को तीन भागो मे विभाजित कर सकते है :—

(१) उद्योगो से सम्बन्धित आन्तरिक बाते

(१) कार्य के घन्टे (*Hours of Work*)
(२) कार्य की दशाएँ (Working Conditions)
(३) कच्चा माल एव शक्ति (Raw materials and Power)
(४) विश्राम स्थल (*Rest Houses*)
(५) मशीनो और उपकरणो की प्रकृति (Type of machines and equipment)
(६) निरीक्षण एव प्रबन्ध (Supervision and management)
(७) मजदूरी देने की रीतियाँ (Methods of wage payment)
(८) अवकाश व छुट्टियां (Holidays)
(९) ऋणग्रस्तता (*Indebtedness*)
(१०) रहन सहन का निम्न स्तर (Low standard of living)

२—उद्योगो से सम्बन्धित बाह्य बाते

(१) जलवायु की दशाये (Climatic Conditions)
(२) कल्याणकारी योजनायें (Welfare measures)
(३) आवास एव स्वच्छता (Housing and sanitation)
(४) शिक्षा एव प्रशिक्षण (Education and training)
(५) कारखाने की स्थिति (*Layout of Factories*)
(६) श्रमिक सम्बन्ध (*Personnel management*)
(७) राज्यनीति (State Policy)

३—विविध बाते

(१) पैतृक गुण (*Racial qualities*)
(२) श्रमिको की मनोवृत्ति एव मनोधैर्य (*Attitude and morale of Workers*)

श्रमिको की अकुशलता सम्बन्धी उपरोक्त कारणो मे से कुछ प्रमुख कारणों का विस्तार मे अध्ययन इस प्रकार है —

(१) कार्य करने के दीर्घ घटे (Long Working Hours)

भारतीय कारखानो मे श्रमिको को दिन मे लगातार कई घण्टो तक कार्य

करना पडता है और उन्हे बीच मे कोई अवकाश नही दिया जाता। दुर्भाग्यवश भारतीय उद्योगपतियो का यह विश्वास है कि श्रमिको से जितनी अधिक देर काम लिया जाय, उत्पादन बढ़ता जायगा। भारतीय पूंजीपति के अन्दर अभी उस मानवीय उदारता अथवा आर्थिक वैज्ञानिकता, जिसे महोदय एफ० डब्ल्यू० टेलर ने "मानसिक क्रांति" (Mental Revolution) की सज्ञा दी है, का उदय नहीं हुआ है, जिसके अनुसार वह सोच सके कि स्वस्थ व कार्य मे रुचि रखने वाला श्रमिक अन्तत अधिक उत्पादन करता है। दीर्घ घटों तक कार्य करने वाला श्रमिक स्वाभाविक रूप से थक जाता है और उसके शरीर में शैथिल्य आ जाता है। इसके अतिरिक्त श्रमिको के लिए विश्राम स्थलों (Rest-Houses) की भी कोई व्यवस्था नही होती है। फलस्वरूप श्रमिक जल्दी ही थक जाता है और वह क्षमता अथवा कुशलता से कार्य करने मे असमर्थ रहता है।

(२) कार्य करने की दशाएँ (Working Conditions)

श्रमिक जिन स्थानो मे कार्य करते है, उनकी अवस्था—सफाई, रोशनी, तापक्रम, साफ पानी, शौचालयो एव मूत्रालयों की समुचित व्यवस्था, शिशुगृह इत्यादि की सुविधाएं--बहुत अशो मे श्रमिको के स्वास्थ्य और कार्यक्षमता को प्रभावित करती है। भारतीय कारखानो के अन्तर्गत कार्य का वातावरण तथा कार्य करने की दशाएँ अच्छी और स्वास्थ्यकर नहीं होती और वे श्रमिको की कार्यक्षमता मे किसी प्रकार भी प्रोत्साहनवर्द्धक नहीं होती। लोक प्रसिद्ध कारखानो के अन्तर्गत स्वच्छता तथा चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं, नहाने धोने की सुविधाओं, ठडे पानी की व्यवस्था, शुद्ध वायु तथा प्रकाश इत्यादि के अभाव मे श्रमिको की कार्यक्षमता कम हो जाना स्वाभाविक है।

पिछले पचास वर्षों म इस दृष्टि से कारखानो, खानों, बागानो, बन्दरगाहों, जहाजो इत्यादि मे कार्य करने की दशाओ मे पर्याप्त सुधार हुआ है। इसके लिए अनेक कानून बनाये गये है। परन्तु अब भी उन्नत औद्योगिक राष्ट्रों की तुलना मे हमारे देश मे कार्य करने की दशाएँ बहुत ही पिछडी हुई है। एक तो कानून केवल सगठित उद्योगो पर लागू होते है, दूसरे उनका प्राय पूरी तरह पालन भी नहीं होता।

(३) कच्चा माल एवं यान्त्रिक साजसज्जा (Raw Materials and Mechanical Equipment)

भारतीय कारखानो द्वारा प्रत्येक कच्चे माल की किस्म बहुत ही खराब

होती है। इसके अतिरिक्त यात्रिक साज-सज्जा जिस पर श्रमिक कार्य करता है, अत्यन्त पुरानी, अप्रचलित एव जीर्णशीर्ण होती है। स्वभावत. भारतीय श्रमिक क्षमतापूर्वक कार्य नही कर पाता। अतः इसका दोष श्रमिको पर न मढा जा कर मिल मालिको पर ही मढा जाना चाहिए।

(४) निरीक्षण एवं प्रबन्ध
(Supervision and Managment)

औद्योगिक कार्य-क्षमता बहुत कुछ उद्योगो के निरीक्षक-कर्मचारियो (Supervisory Staff, और वैज्ञानिक प्रबन्ध पर आधारित होती है, जिसका भारतवर्ष मे नितात अभाव है। श्रमिको की कार्यक्षमता निश्चय ही वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्तो, जिनका प्रतिपादन अमेरिकन इन्जीनियर डॉ०एफ० डबलू० टेलर ने १९११ मे किया था, के द्वारा बढाई जा सकती है।

भारतवर्ष मे अभी पिछले कुछ वर्षो से इस ओर ध्यान दिया गया है और श्रमिको को समुचित प्रशिक्षण देने के लिए कुछ महत्वपूर्ण सस्थाएँ भी खोली गई है। जैसे खडगपुर मे डॉ० सर जे० सी० घोष के नेतृत्व मे 'इण्डियन इस्टीच्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी', कलक्ता यूनिवर्सिटी मे प्रो० डी० के० सान्याल के नेतृत्व मे 'स्कूल ऑफ सोसियल वर्क एण्ड बिजनैस मैनेजमेंट' तथा बंगलौर मे प्रो० एम० एस० ठक्कर के नेतृत्व मे इस्टीच्यूट ऑफ मैनेजमेंट' इत्यादि खोले गए है। परन्तु ये सब भारतीय आवश्यकताओ को देखते हुए बहुत कम है।

(५) श्रमिकों की निर्धनता, निम्न जीवन-स्तर एव ऋण-ग्रसिता (Poverty, Low Standard of Living and Indebtedness of Labourers)

भारतीय श्रमिको की आय बहुत कम होती है। अन्य देशो की अपेक्षा तो यह और भी कम है। उदाहरणार्थ भारतवर्ष मे प्रति व्यक्ति आय २८४ रुपये है जबकि सयुक्त राष्ट्र अमेरिका (U. S. A.) मे ९,७३१ रुपये, कनाडा मे ६,७४२ रुपये, सयुक्त राज्य (U. K.) मे ४,२८७ रुपये तथा फ्रास मे ४४०६ रुपये है।*

वार्षिक आय निम्न होने के कारण भारतीय श्रमिको का जीवन-स्तर भी बहुत निम्न है। श्रमिको की आय का एक बहुत बडा भाग (कुल आय का ६० से

*Commerce, August 23, 1958.

७० प्रतिशत तक) केवल भोजन पर ही व्यय हो जाता है और दुर्भाग्यवश उन्हें जो भोजन प्राप्त होता है, वह सामान्यत उनकी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए सर्वथा अपर्याप्त होता है कारखानो मे कठिन एव दीर्घ घन्टो तक निरन्तर कार्य करने के लिए पौष्टिक एव सन्तुलित आहार की अति आवश्यकता है, जोकि उन्हें प्राप्त नहीं हो पाता है। फलस्वरूप वे अकार्यक्षम एव अनेक भयानक बीमारियो के शिकार बने रहते हैं।

यही नही भारतीय श्रमिक के आर्थिक जीवन का एक खेदजनक पहलू उसकी ऋण-ग्रस्तता है। अधिकाश उद्योगो में लगे हुए श्रमिक, प्राय कर्जदार का जीवन यापन करते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि अधिकाश औद्योगिक केन्द्रो म लगभग दो-तिहाई मजदूर कर्ज के बोझ के नीचे दबे हुए हैं, और उनके कर्ज की औसत रकम प्राय उनके तीन महीने के वेतन के बराबर है।

इन सब दोषो की जड एक मात्र निम्न मजदूरी है। मजदूरी की समानता, न्यूनतम वेतन की गारटी और सहकारी ऋण व्यवस्था द्वारा मजदूरो की ऋण-ग्रस्तता का मुकाबिला किया जा सकता है।

(६) जलवायु सम्बन्धी दशाएँ (Climatic Conditions)

भारतीय प्रतिकूल जलवायु भी श्रमिको की अकार्यक्षमता के लिए उत्तरदायी है। गर्म जलवायु म निरन्तर अधिक समय तक कठोर कार्य करना सम्भव नही। हमारे देश की जलवायु तो बहुत ही गर्म है। बगाल तथा तराई के प्रदेशो की जलवायु तो और भी खराब है। विदेशो की जलवायु ठडी होने के कारण वहा के श्रमिक अधिक कुशल हैं।

(७) कल्याणकारी तथा सुरक्षा सुविधाएँ (Welfare and Security Measures)

श्रमिकों के कल्याण कार्यों म वृद्धि और विस्तार करके उनकी कार्यक्षमता और अवस्था म पर्याप्त उन्नति की जा सकती है। परन्तु अभाग्यवश भारतवर्ष मे श्रमिको को प्रदान की जाने वाली कल्याणकारी सुविधाएँ भी अपर्याप्त है, जिनका कुप्रभाव श्रमिको की कुशलता अथवा क्षमता पर भी पडता है। कल्याणकारी कार्यों से श्रमिको का स्वास्थ्य एव शरीर उन्नत होगा और भारतीय विचित्र प्रतिकूल परिस्थितियो के कारण होने वाली थकान तथा नीरसता दूर होगी और श्रमिको की कार्यक्षमता बढेगी।

कल्याणकारी-कार्यों के अतिरिक्त, विभिन्न प्रकार के जोखिमो के विरुद्ध

सुरक्षा भी श्रमिको की अवस्था सुधारने के लिए आवश्यक है। भारत मे सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र और विस्तार भी अभी तक अत्यन्त सीमित है।

(८) आवास की दशाएँ (Housing Conditions)

श्रमिक किस प्रकार के घरो मे रहते है, इसका उनकी कार्य क्षमता, स्वास्थ्य और सदाचार से सीधा सम्बन्ध है। जिन स्थानो मे घरो की कमी होती है अथवा जहाँ गन्दा वातावरण होता है, वहाँ ऊँची मृत्यु-दर तथा व्यभिचार का बाहुल्य होता है। निवास स्थान अथवा आवास की दृष्टि से भारतीय मजदूरो की दशा बहुत ही दयनीय है। अधिकतर श्रमिक ऐसे स्थानो मे रहते है जहाँ पर पशुओ का रखना भी उचित न हो। कानपुर के आहाते, हुगली की बस्तियाँ दक्षिण की चेरियाँ, कोयले की खानो के घोवरे, पत्थर की खानो के पत्ता के झापडे, बम्बई के चॉल (Chawls), बागाना की बस्तियाँ और बैरकें, श्रमिका के रहने योग्य नही कही जा सकती।

अत श्रमिको के कल्याण की किसी भी योजना मे गन्दी मजदूर बस्तियो और उनके स्थान पर, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर निवास स्थानो के निर्माण को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। हमारी राष्ट्रीय सरकार काफी प्रयत्नशील होते हुए भी इस समस्या को पूणतय सुलझा नही सकी है।

(९) शिक्षा एव प्रशिक्षण (Education & Training)

साधारण एव प्राविधिक (Technical) दोनो ही प्रकार की शिक्षा का प्रभाव श्रमिको की कायक्षमता पर पडता है। भारतवर्ष मे अभी तक दोनो ही प्रकार की शिक्षाओ का नितात अभाव है, यद्यपि राष्ट्रीय सरकार इस ओर काफी प्रयत्नशील है। अधिकाश अशिक्षित हाने के कारण भारतीय श्रमिक स्वभावत भाग्यवादी होता है। अपने काय को उचित ढग से, कम से कम समय मे तथा कुशलता से करने के लिए प्राविधिक (Technical) प्रशिक्षण की अति आवश्यकता है। अमेरिका के सुप्रसिद्ध इन्जीनियरा डॉ० एफ०डब्लू० टेलर तथा एफ० बी० गिलब्रैथ ने श्रमिको की काय क्षमता बढाने के लिए, प्राविधिक प्रशिक्षण की ओर बहुत ज़ोर दिया है।

(१०) अन्य कारण (Other Causes)

श्रमिको का उपेक्षित व्यवहार (Indifference), मनोवृत्ति, मनोधैर्य (Morale), नैराश्य एव आशाहीन दृष्टिकोण जोकि उपरोक्त कारण के फल-स्वरूप उत्पन्न हाता है, उनकी अकायक्षमता अथवा अकुशलता के लिए उत्तर-

दायी है। ऐसा श्रमिक जो अनेक चिन्ताओं से ग्रसित हो जीवन से हताश हो चुका हो, उसमे कुशलता की आशा किस प्रकार की जा सकती है।

यही वे परिस्थितिया है जिनके अन्तर्गत बेचारा अर्धनग्न एव अर्ध-उदर-पोषित भारतीय औद्योगिक श्रमिक निर्धनता की जटिल शृखलाओ मे जकडे हुए, अस्वच्छ एव अमानवीय दशाओ मे रहते हुए तथा प्रतिकूल अवस्थाओं मे कार्य करते-करते अपना जीवन समाप्त कर देता है। यही सब कारण उसकी अकुशलता के लिए भी मूल रूप से उत्तरदायी है।

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव में अकुशल है ?

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिक की अकुशलता कुछ विशेष परिस्थितियों के कारण है। यदि इन प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बना दिया जाय तो ये ही श्रमिक किसी भी देश के श्रमिक से मुकाबिला कर सकते हैं। यह कहना कि भारतीय श्रमिका की कार्यक्षमता उनके राष्ट्रीय, जातीय एव पैतृक गुणो के कारण कम है, कुछ असत्य-सा प्रतीत होता है। यदि प्राचीन काल से भारतीय सैनिक अपनी बहादुरी व यश के लिए प्रसिद्ध रहे हैं, तो समझ मे नही आता कि किस प्रकार उन्ही बहादुरो की सन्ताने निर्जीव मशीनो के सामने नत-मस्तक हो गई। वास्तव मे देखा जाय तो भारतीय श्रमिक अन्य किसी भी देश के श्रमिक से कम दक्ष नहीं है। उनकी अक्षमता के लिए अन्य बाते ही जिम्मेदार हैं।

इस कथन की पुष्टि 'श्रम जाँच समिति' (Labour Investigation Committee 1946) जोकि 'रेगे' समिति के नाम से प्रसिद्ध है, के शब्दो मे होती है।*

---

* We have come to the conclusion that the alleged inefficiency of Indian labour is largely a myth Granting more or less identical conditions of work, wages, efficiency of management and of the mechanical equipment of the factory, the efficiency of Indian labour generally is no less than that of workers in most other countries Not only this but whether mechanical equipment or efficiency of management are factors of any importance the skill of the Indian labour has been demonstrated to be even *superior in some cases to that of his prototypes in foreign countries.* —*Rege Committee.*

समिति के अनुसार भारतीय श्रमिक, किसी भी देश के श्रमिक से कम कुशल नही है। यदि उनको वे सब साधन व सुविधाएँ प्राप्त हो जायें जो अन्य देश के श्रमिको को उपलब्ध है तो भारतीय श्रमिक, अन्य देशो के श्रमिको से भी अधिक कुशल हो सकता है। अमेरिकन ग्रेडी मिशन जो भारतवर्ष म १९४२ म युद्ध उत्पादन का निरीक्षण करने के लिए आया था, भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता स काफी प्रभावित था। ग्रेडी मिशन के अध्यक्ष सर टामस हालड न स्वीकार किया है कि भारतीय श्रमिक भी उतने ही कुशल हैं, जितने कि योरोपियन श्रमिक। अभी हाल म जिन उद्योगो मे ये सुविधाएँ श्रमिको को प्रदान की गई है उनकी कार्यक्षमता भी बढ गई है। सरकार द्वारा भारतीय श्रमिको की उत्पादनक्षमता के सम्बन्ध म इस कथन की पुष्टि १९५५ के आँकडो स होती है —*

(१) कोयला खनन उद्योग—१९५१–१९५४ तक के खनिको तथा लदाई करने वालो की उत्पादन–क्षमता म सामान्यत ० ०७६ प्रतिमास की वृद्धि हुई।

(२) कागज उद्योग—१९४८–१९५३ म मजदूर की औसत आय म तो वृद्धि हुई किन्तु उत्पादन–क्षमता म कोई वृद्धि नही हुई।

(३) पटसन वस्त्र उद्योग—१९४८–१९५३ तक के वर्षों म उत्पादन–क्षमता म २ ९ % प्रति वर्ष तथा आय म ३ ७ % प्रति वर्ष की वृद्धि हुई।

(४) सूती वस्त्र उद्योग—१९४८–५३ तक के वर्षों म उत्पादन-क्षमता तथा आय म प्रति वर्ष क्रमश २ २८ प्रतिशत तथा १.१४ प्रतिशत की वृद्धि हुई।

श्रमिको की क्षमता बढाने के लिए सुझाव

उपरोक्त विवेचन स स्पष्ट है कि भारतीय श्रमिको की कार्यक्षमता विशेष परिस्थितियो के कारण है। कुछ भारतीय उद्योगो जैसे 'टाटा आइरन एन्ड स्टील कम्पनी', 'दहली क्लाथ मिल्स' 'बाटा शू कम्पनी' इत्यादि म श्रमिकों को पर्याप्त सुविधाएँ दी जाती है और फलस्वरूप वहाँ के श्रमिको की कार्य-क्षमता किसी भी विदेशी श्रमिक से कम नही है।

* India 1959, p 262.

अत: भारतवर्ष मे श्रमिको की कार्यक्षमता बढाने के लिए उनकी दशा व वातावरण मे सुधार होना चाहिए। जीवन की सुख-सुविधाओं के समुचित प्रबन्ध, कार्य करने के घटों मे कमी तथा मालिको के सहानुभतिपूर्ण व्यवहार से श्रमिको की कुशलता के स्तर मे वृद्धि निश्चित है। श्रमिको की कार्यक्षमता मे वृद्धि निम्न उपायो द्वारा की जा सकती है —

(१) औद्योगिक नगरो मे स्थायी श्रमिक वर्ग

भारतीय श्रमिक की अकुशलता का प्रधान कारण औद्योगिक नगरो मे स्थायी श्रमिक वर्ग समुदाय का अभाव है। स्थायी श्रमिक वर्ग समुदाय को औद्योगिक नगरो मे बनाए रखने के लिये निम्न सुविधाओ को प्रदान करना होगा —

(अ) उचित किराए पर श्रमिक व उसके परिवार के लिए आवास (Housing) की व्यवस्था करना।

(ब) नगरो के जीवन की दशाओ मे सुधार करना।

(स) बेरोजगारी के विरुद्ध प्रावधान।

(द) श्रमिको की बीमारी व असमर्थता के समय पर्याप्त चिकित्सा का प्रबन्ध।

(२) उचित पारिश्रमिक

श्रमिको का वेतन उनके कार्य व कार्य-क्षमता के अनुसार निश्चित कर देना चाहिए। उत्पादन के साथ मँहगाई, भत्ता व बोनस इत्यादि सम्बद्ध कर देना चाहिए। एक निश्चित कार्य को, निश्चित समय म कर लने पर श्रमिक को पूर्व निर्धारित दर से मजदूरी व भत्ता इत्यादि दे देना चाहिए, जिसमे श्रमिको म विश्वास बना रह।

(३) धीरे कार्य करने की प्रवृत्ति के विरुद्ध प्रावधान
(Provision against go-slow Tactics)

यदि श्रमिक जान बूझकर शिथिलता से कार्य करत है अथवा काम से जी चुराते है तो इसको औद्योगिक सघर्ष (Trade dispute) करार देना चाहिए और मालिक को इसका फैसला 'कान्सीलियेशन मशीनरी' मे करवा लेना चाहिए।

(४) श्रमिको के विरुद्ध कार्यवाही

यदि कोई श्रमिक अकुशलता मे कार्य करते हुए पाया जाये अथवा निश्चित

मात्रा मे उत्पादन न कर रहा हो तो मालिक को यह अधिकार होना चाहिए कि वह ऐसे श्रमिक को निकाल सके।

(५) निरन्तर प्रचार

श्रमिको की अकुशलता, उत्तरदायित्वहीनता व अनुशासनहीनता के विरुद्ध सरकार, मालिक तथा श्रमिको के नेताओं को निरन्तर प्रचार (प्रोपेगेण्डा) करते रहना चाहिए।

(६) प्रशिक्षण एव शिक्षण

श्रमिको को प्रशिक्षण एव शिक्षण—साधारण व तान्त्रिक-अनिवार्य रूप से देना चाहिए। श्रमिको को आधुनिकतम मशीनो के प्रयोग के सम्बन्ध मे पर्याप्त प्रशिक्षण देना चाहिए जिससे वह कुशलतापूर्वक कार्य कर सके।

(७) सुव्यवस्थित प्रवन्ध

प्रबन्धको की मनोवृत्ति एव कुशलता श्रमिको की कार्यक्षमता बढाने मे सहायक हो सकती है। जहा तक हो सके 'वैज्ञानिक प्रबन्ध' को अपनाया जाय जिससे प्रबन्धको की मनोवृत्ति श्रमिको की ओर सहानुभूतिपूर्ण हो, और श्रमिको की कार्य करने की दशाओ तथा दैनिक जीवन की दशाओ मे सुधार हो। मालिको को श्रमिको के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध रखने का प्रयत्न करना चाहिए।

(८) श्रमिको की मनोवृत्ति मे परिवर्तन

श्रमिको की दशा मे सुधार विधानो (Legislations) के द्वारा अधिक सम्भव नही है बल्कि एक ऐसे वातावरण के निर्माण की आवश्यकता है जिससे श्रमिक अपने को देश की समृद्धि मे सह–साझेदार (Co-partners) समझने लगें। ऐसा होने पर वे देश की आर्थिक व सामाजिक समृद्धि के लिए तन, मन, धन से कार्य करने लगेगे। सक्षेप मे श्रमिको की कार्यक्षमता बढाने के लिए एक मनोवैज्ञानिक पहुँच की आवश्यकता है।

यह तो सवमान्य है कि हमारे श्रमिक कठिन–से–कठिन परिस्थिति मे भी कार्य कर सकते है और अपने को किसी भी वातावरण के अनुकूल बना सकते हैं। इस कथन की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि पिछले कुछ वर्षो मे जिन उद्योगो मे सुधार कर दिया गया है वहाँ श्रमिको की कुशलता अपेक्षाकृत काफी बढ गई है। बम्बई की कुछ मिलो मे जुलाहे छ छ करघो (Looms)

को चलाने लगे है और प्रति व्यक्ति का औसत उत्पादन लकाशायर के श्रमिक का ८९ % तक अनुकूल वातावरण न होने पर भी हो गया है।

अत श्रम जाँच समिति ने भी कहा था कि "यह विचार करते हुए कि इस देश मे कार्य करने के घन्टे अधिक है, आराम स्थलो (Rest Pauses) का अभाव है, कार्य सिखाने की विधि व प्रशिक्षण का अभाव है, अन्य देशो की तुलना म भोजन व कल्याणकारी सुविधाओ तथा मजदूरी के स्तर मे पर्याप्त कमी है, अत श्रमिको की कही जाने वाली अकुशलता का दोष उनके प्राकृतिक चातुर्य अथवा योग्यता पर नही मढा जा सकता।"*

प्रश्न

1. "It is generally alleged that Indian labour is inefficient in comparison with his counterpart in foreign countries" Do you agree with this statement ? If not, give your own reasons in support of your answer.

---

* Considering that in this country hours of work are longer, rest pauses fewer, facilities for apprentice-ship and training, rare standards of nutrition and welfare amenities for poorer and the level of wages much lower than in other countries, the so-called inefficiency cannot be attributed to any lack of native intelligence or aptitude on the part of the workers"

—*Labour Investigation Committee.*

अध्याय १४

श्रमिक कल्याण

(Labour Welfare)

श्रमिक कल्याण आधुनिक औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) की आधार-शिला है, और इसकी सहायता के बिना एक सुन्दर सामाजिक व्यवस्था का निर्माण भी असम्भव है इसके द्वारा श्रमिकों का जीवन आनन्दमय और औद्योगिक सम्बन्ध सुन्दर हो जाते है।

श्रमिक कल्याण का अर्थ विभिन्न व्यक्तियो द्वारा विभिन्न अर्थो मे लगाया जाता है यद्यपि इसका अर्थ विभिन्न देशो मे एक ही समान है। रायल कमीशन के शब्दो मे "यह एक ऐसा शब्द है जो कि बहुत ही लचीला है। इसका *अर्थ एक देश मे दूसरे देश की तुलना मे उसकी विभिन्न सामाजिक रीतियो,* औद्योगीकरण की स्थिति तथा श्रमिको की शिक्षा सम्बन्धी प्रगति के अनुसार भिन्न-भिन्न लगाया जाता है।"*

इस प्रकार श्रमिक कल्याण को एक निश्चित परिभाषा के अन्दर बाँधना असम्भव नही तो कठिन अवश्य कहा जा सकता है क्योंकि इसका अर्थ बहुत ही लचीला है। फिर भी श्रमिक कल्याण का अर्थ यूनाइटेड स्टेट्स ब्यूरो आफ लेबर स्टैटिस्टिक्स के शब्दो मे "कर्मचारियो के आराम तथा बौद्धिक एव शारीरिक प्रगति के लिए मजदूरी के अतिरिक्त ऐसा कोई भी कार्य किया जाय, जो कि न तो उद्योग के लिए आवश्यक है और न वाँछनीय ही है।"‡

---

* "*It is a term which must necessarily* be elastic bearing a somewhat different interpretation in one country from another, according to the different social customs, the degree of industrialization and the educational development of the workers"

—*Royal Commission*

‡ "Anything for the comfort and improvement, intellectual and social, of the employees, over and above wages paid, which is not a neccessity of the industry nor required"

—*United States Bureau of Labour Statistics.*

बाल्फर समिति के अनुसार "अति विस्तृत रूप मे इसके (श्रमिक कल्याण के) अन्तर्गत श्रमिको के स्वास्थ्य, सुरक्षा, एव आराम सामान्य कल्याण को प्रभावित करने वाली सभी बातो का समावेश होता है और शिक्षा, मनोरजन, बचत योजनाओ तथा स्वास्थ्यप्रद गृहो इत्यादि का प्रावधान होता है।*

श्रम जांच समिति (१९४५) ने अपनी प्रमुख रिपोर्ट म श्रमिक कल्याण को इस प्रकार परिभाषित किया है "श्रमिको के बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक तथा आर्थिक कल्याण के लिए किया गया कोई भी कार्य, जो वैधानिक कानून तथा मालिको एव श्रमिको के मध्य हुए अनुबन्धित लाभो के अतिरिक्त हो, चाहे वह मालिको, सरकार अथवा अन्य सस्थाओ के द्वारा किया गया हो, श्रमिक कल्याण कहलाता है।"‡

उपरोक्त परिभाषाओ से स्पष्ट है कि अपनी फैक्टरियो के अन्दर तथा बाहर श्रम तथा रोजगार की सर्वोत्तम दशाओ की व्यवस्था करने के लिए मालिकों (Employers) के स्वत किए गए प्रयत्न श्रमिक कल्याण को निर्देशित करते है। इनमे उन सब प्रयासो का समावेश होता है जिनका उद्देश्य श्रमिक के स्वास्थ्य एव बल मे सुधार, उसकी सुरक्षा, उसकी मानसिक तथा नैतिक उन्नति, उसका साधारण कल्याण और उसकी औद्योगिक क्षमता मे वृद्धि होती है। इन कार्यो का सगठन मालिक द्वारा, अथवा सरकार द्वारा, अथवा स्वय श्रमिको द्वारा प्रारम्भ व सगठित किया जा सकता है।

श्रमिक कल्याण के दो पक्ष या पहलू होते हैं —

(१) मानवीय (Humanitarian), तथा

(२) आर्थिक (Economic)।

---

* "In its widest sense it comprises all matters affecting the health, safety, comfort and general welfare of the workmen, and includes provision for education, recreation, thrift schemes, convalescent homes." —*Balfour Committee.*

‡ "Anything done for the intellectual, physical, moral and economic betterment of the workers, whether by employers, by Government or by other agencies, over and above what is laid down by law or what is normally expected as part of the contractual benefits for which the workers may have bargained"

—*Labour Investigation Committee (1945)*

मानवीय पक्ष—यदि श्रमिक कल्याणकारी कार्य मालिको (Employers) के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों अथवा सस्थाओ द्वारा किया जाता है तो इसका ध्येय मानवता तथा दयालुता से प्रेरित लोक सेवा होता है। ऐसे कार्य भारतवर्ष मे 'भारत सेवक समिति' (Servants of India Society), 'नवयुवक त्रिस्तानी सघ' (Y. M. C. A), 'बम्बई सामाजिक सेवा सघ' (The Bombay Social Service League), 'सेवा सदन' इत्यादि सामाजिक सस्थाएँ करती है।

आर्थिक पक्ष—यदि श्रमिक कल्याणकारी कार्य मालिको या सेवायोजको (Employers) द्वारा किया जाता है तो उसका ध्येय अधिकाशत आर्थिक तथा उपयोगिता की प्राप्ति होता है। यह 'क्षमता कार्य' होता है जो श्रमिक की शारीरिक योग्यता तथा क्षमता को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। अज्ञानी तथा अशिक्षित श्रमिको मे इससे उत्तरदायित्व तथा प्रतिष्ठा की भावना उत्पन्न होती है और वे अच्छे नागरिक बनते है।

श्रमिक कल्याण के ढंग

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है श्रमिक कल्याण कार्यों को दो वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है —

(१) अभ्यान्तरिक या कारखानो के अन्दर कार्य (Intra-mural)
(२) वाह्य या कारखानो के बाहर कार्य (Extra mural)

अभ्यान्तरिक कार्य (Intra-mural)

इसके अन्तर्गत निम्न कार्य आते है :—

[क] वैज्ञानिक भरती पद्धति (Scientific method of recruitment)
[ख] स्वच्छता, प्रकाश एव वायु (Sanitation, light & ventilation)
[ग] औद्योगिक प्रशिक्षण (Industrial training)
[घ] दुर्घटनाओ की रोकथाम (Prevention of accidents)

वाह्य कार्य (Extra-mural)

इसके अन्तर्गत निम्न आयोजन किए जाते है :—
[क] श्रमिको के लिए सामान्य शिक्षण,
[ख] श्रमिको के लिए आवास व्यवस्था,
[ग] श्रमिको के लिए चिकित्सा,

[घ] श्रमिको के लिए भोजन सम्बन्धी व्यवस्था;
[ङ] श्रमिको के लिए मानसिक मनोरंजन की व्यवस्था, तथा
[च] श्रमिको के लिए प्रॉविडेण्ट फन्ड की व्यवस्था।

श्रम कल्याण का उदय

औद्योगिक क्रान्ति, जिसका जन्म सर्वप्रथम अठारहवी शताब्दी मे इगलैंड मे हुआ, ने समाज को दो वर्गो — सेवा-योजक और सेवायुक्त (Employer and Employed) मे विभक्त कर दिया। इन दोनो के बीच की खाई दिन प्रतिदिन बढती ही चली गई। सेवायोजक अपने स्वार्थ को सर्वोपरि महत्ता देते थे, परिणामस्वरूप सेवायुक्त' अर्थात् श्रमिका मे असन्तोष की भावना फैल गई। श्रमिक अपनी दशा के प्रति उदासीन थे और सेवायोजको की नीति अदूरदर्शितापूर्ण थी।

प्रथम महायुद्ध द्वारा उपस्थित क्रान्तिकारी परिस्थितियो ने श्रमिको की समस्या को और भी जटिल बना दिया। प्रत्येक विवेकशील व्यक्ति यह सोचने लगा कि श्रमिको की दुर्दशा को सुधारना समाज का कर्तव्य है। यही नही कुछ साहसी सामाजिक व्यक्तियो ने तो श्रमिको की दशा सुधारने का बीडा उठाया। धीरे-धीरे समस्त जनता को सहानुभूति श्रमिक वर्ग के साथ हो गई। फलस्वरूप सेवायोजको' को भी विवश होकर श्रमिको के लिए कुछ कल्याणकारी कार्य करने पडे।

इस प्रकार 'श्रम कल्याण कार्य' की भावना की जागृति प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से होती है।

परन्तु यहाँ पर यह इगित कर देना कि 'श्रमिक कल्याण' की भावना भारतवर्ष के लिए कोई नवीन वस्तु नही है, अनुपयुक्त न होगा। प्राचीन भारत मे राज्य (State) कल्याणकारी राज्य (Welfare State) होते थे और निर्धन, अयोग्य एव असहाय लोगो की सहायतार्थ आवश्यक कार्यो को करते थे। ऋगवेद मे लिखा हुआ है कि सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना राज्य (State) का कर्तव्य होता था। निर्धन असहाय, वृद्ध और विशेषरूप से सैनिकों एव श्रमिकों, जिनकी मृत्यु अपने कार्य स्थल पर कार्य करते हुए हो गई हो, के परिवार की देख-रेख का उत्तरदायित्व राज्य पर होता था।*

---

*ऋग्वेद १/११६/१६

महाभारत के 'शातिपर्व' मे भी निर्धन, असहाय, वृद्ध एव विधवा स्त्रियो की सुरक्षा एव जीवन निर्वाह के सम्बन्ध मे इगित किया गया है।

श्रम कल्याणकारी कार्यो की महत्ता

ऐसे समय मे जब श्रमिक स्वय कारीगर, निरीक्षक (Foreman) पूंजीपति, व्यापारी तथा सभी कुछ था, कल्याणकारी कार्यो की कोई महत्ता न थी। परन्तु आज जबकि श्रमिक केवल मजदूरी कमाने वाले (Wage-earner) के रूप मे रह गया है और उसका सेवायोजक उत्पादन के औजारो, कच्चे माल तथा निर्मित वस्तुओं का स्वामी बन गया है, 'श्रम कल्याण' का प्रश्न बहुत ही महत्वपूर्ण एव आवश्यक हो गया है।

श्रम कल्याण की महत्ता उसके निम्न लाभो से और भी बढ जाती है —

(१) श्रम और पूँजी के सम्बन्धो को सुन्दर बनाना

श्रम और पूंजी औद्योगिक मशीनरी के दो पहियो के समान है। उद्योग की सफलता के लिए दोनो मे सामजस्य एव सरलता (Smoothness) होना आवश्यक है। श्रम कल्याणकारी कार्य श्रमिको को सदैव सतुष्ट रखेंगे और उनके अन्दर सहकारिता एव उत्तरदायित्व की भावना को जागृत करेंगे, जिसके फलस्वरूप औद्योगिक मशीनरी निर्बाध रूप से सरलतापूर्वक चलती रहेगी।

(२) उचित सामाजिक व्यवस्था

आजकल प्रत्येक प्रगतिशील राष्ट्र समाजवाद की ओर अग्रसर हो रहा है। भारतवर्ष ने भी समाजवादी ढग की रचना करने का दृढ निश्चय कर लिया है। यह सब उसी समय सम्भव है जबकि राष्ट्र की आय का लगभग समान वितरण हो और जनता मे सतोष और सतुष्टि की भावना का सचार हो। अत उद्योगपतियो को अपना स्वार्थपूर्ण सकुचित दृष्टिकोण त्यागकर सार्वजनिक कल्याण का विस्तृत दृष्टिकोण अपनाना होगा। दूसरे शब्दो मे उद्योगपतियो को श्रम-कल्याणकारी कार्यों को करना होगा जिससे देश का सामाजिक और आर्थिक कल्याण हो सके।

(३) स्थायी सतुष्टि तथा कुशल श्रमशक्ति

औद्योगिक नगरो मे स्थायी, सन्तुष्ट तथा कुशल श्रम-शक्ति बनाए रखने के लिए श्रमिको की दैनिक जीवन सम्बन्धी तथा कारखानो के भीतर कार्य करने की दशाओ मे सुधार करना होगा। बिना इनमे सुधार किए, जैसा कि

अन्यत्र कहा जा चुका है, श्रमिको की कार्यक्षमता नही बढ सकती। भारतीय औद्योगिक श्रमिको की क्षमता तो और भी कम है। अत: श्रम-कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था अति आवश्यक है।

(४) उत्पादकता में वृद्धि

देश की सम्पन्नता एव समृद्धि उसके उद्योगो की उत्पादकता (Productivity) पर निर्भर होती है। उद्योगों की उत्पादकता श्रमिकों के सहयोग एव कार्यक्षमता पर आश्रित होती है। श्रमिक उसी समय पूर्ण सहयोग एव सद्भावना से कार्य करेंगे जब वे समझ लेंगे कि उद्योगपति और सरकार दोनों ही उसके दैनिक एव भावी जीवन को उन्नत बनाने मे क्रियाशील हैं।

(५) श्रमिकों की बौद्धिक एवं नैतिक अभिवृद्धि

यह औद्योगीकरण से होने वाली सामाजिक बुराइयों को कम करके श्रमिको के बौद्धिक एव नैतिक स्वास्थ्य मे अभिवृद्धि करता है।

(६) श्रम कल्याण औद्योगिक प्रशासन के रूप में

प्रगतिशील देशो मे श्रम कल्याण औद्योगिक प्रशासन के एक प्रमुख अग के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है। अब यह उद्योगपतियो की अनुकम्पा, सहृदयता एव दयालुता का प्रमाण नही रहा है, बल्कि उनका उत्तरदायित्व बन गया है। इससे श्रमिको के अन्दर एक नवीन स्वाभिमान की भावना जागृत होती है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भारतवर्ष मे श्रमिको के हेतु कल्याणकारी कार्य की अति आवश्यकता है। इन लाभो से प्रभावित होकर 'टैक्सटाइल लेबर इनक्वायरी कमेटी' ने कहा था कि "कार्यक्षमता का उन्नत स्तर केवल उसी समय हो सकता है जब कि श्रमिक शारीरिक दृष्टि से स्वस्थ तथा मानसिक दृष्टि से सन्तुष्ट हो। इसका तात्पर्य यह है कि केवल वही श्रमिक कुशल हो सकते है जिनके लिए शिक्षा, आवास, भोजन तथा वस्त्रादि का उचित प्रबन्ध हो।"

इस दृष्टि से हमारे देश मे सरकारी एव निजी साहस के द्वारा कुछ सस्थाएँ खोली गई है। उदाहरणार्थ :—

बम्बई विश्वविद्यालय ने श्रम-समस्या एव कल्याण-कार्यों के अध्ययन तथा शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध किया है। श्री टाटा ने 'इन्सटीट्यूट आफ सोशल साइसेज' (Institute of Social Sciences) की स्थापना की है।

अभी हाल मे उत्तर प्रदेश मे लखनऊ तथा आगरा मे क्रमश. 'जे० के० इन्स्टीट्यूट आफ सोशल साइन्सेज'* तथा इन्सटीट्यूट आफ सोशल साइन्सेज की स्थापना की गई है।

भारतवर्ष मे आयोजित श्रम कल्याण कार्य

भारतवर्ष मे अभी तक जितना भी श्रम कल्याण कार्य किया गया है, वह तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है —

(१) वैधानिक—केन्द्रीय एव राज्य सरकारो द्वारा,
(२) स्वेच्छापूर्ण—उद्योगपति अथवा नियोक्तागणो द्वारा, तथा
(३) पारस्परिक श्रमिक सघो द्वारा।

केन्द्रीय सरकार द्वारा कल्याण कार्य

प्रथम महायुद्ध तक श्रमिको की अज्ञानता एव निरक्षरता, स्वार्थी उद्योगपतियों की अनिच्छा, तथा सरकार एव जनता की उदासीनता के कारण कोई भी श्रम कल्याणकारी कार्य नहीं किया गया।

द्वितीय, महायुद्ध मे औद्योगिक श्रमिको की असन्तुष्टि एव कलह के कारण श्रम-कल्याणकारी कार्य की आवश्यकता का अनुभव हुआ। अत. द्वितीय महायुद्ध से केन्द्रीय सरकार इस ओर ध्यान देने लगी। परन्तु स्वतन्त्रता के पूर्व तक विदेशी सरकार ने कोई ठोस कदम नही उठाया केवल हितकारी परामर्शदाता परिषदो इत्यादि की नियुक्ति करती रही।

सन् १९४२ मे सरकार ने एक 'श्रम-हितकारी सलाहकार' और उसकी सहायता के लिए अन्य श्रम-हितकारी कर्मचारी नियुक्त किए गए। सन् १९४४ मे कोयला खानो के श्रमिको के लिए एक हितकारी कोष खोला, जिसके द्वारा श्रमिको के आमोद-प्रमोद, चिकित्सा और शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। सन् १९४६ मे अभ्रक-खान श्रमिक हितकारी कोष एक्ट पास किया गया। १९४७ मे कोयला खान श्रमिक हितकारी कोष एक्ट पास किया गया।

इन एक्ट्स के अन्तर्गत चिकित्सा, शिक्षा तथा आवास सम्बन्धी सुविधाएँ अभ्रक एव कोयला खानो के श्रमिको को प्रदान की जाती है।

---

* J. K. Institute of Sociology and Human Relations.

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात्

स्वतन्त्रता के पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने तीन एक्ट्स पास किए :—

(१) फैक्ट्रीज़ एक्ट १९४८,
(२) प्लान्टेशन लेबर एक्ट, १९५१; तथा
(३) माइन्स एक्ट, १९५२

इन अधिनियमों (एक्ट्स) के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए कैन्टीन, क्रेचेज़ (Creches), आराम स्थलों, नहाने-धोने की सुविधाओं, चिकित्सा तथा श्रम-हितकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई है। सन् १९५४ में स्थायी श्रम-समिति ने श्रम हितकारी कोष की स्थापना पर बल दिया। सरकार ऐसे कोषों की स्थापना के लिए निरन्तर प्रयत्नशील है।

एक 'नेशनल म्यूज़ियम आफ इण्डस्ट्रियल हेल्थ, सेफ्टी एण्ड वेलफेयर' बम्बई के 'सेन्ट्रल लेबर इन्सटीट्यूट' के भाग के रूप में स्थापित किया गया है। यह कार्यवाहक दशाओं (Working Conditions) के प्रमाप (Standards) निश्चित करेगा। इन्स्टीट्यूट के अन्तर्गत इण्डस्ट्रियल हाईजीन लेबोरेटरी, एक ट्रेनिंग सेन्टर तथा एक लाइब्रेरी-कम-इन्फोरमेशन सेन्टर खोले गए हैं।

विभिन्न श्रम कल्याणकारी अधिनियमों (Acts) के अंतर्गत प्रगति

कोयला खान श्रम-कल्याण कोष

इस कोष के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए उत्तम चिकित्सा, शिक्षा और मनोरंजन की सुविधाओं की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त महिला कल्याण और बाल केन्द्रों तथा प्रौढशिक्षा केन्द्रों आदि की भी व्यवस्था है।

इसके अधीन दो केन्द्रीय अस्पतालों, ६ प्रादेशिक अस्पतालों तथा मातृ-शिशु कल्याण केन्द्रों, दो दवाखानों तथा २ टी० बी० क्लिनिक की व्यवस्था है। मलेरिया विरोधी कार्यवाही तथा बी० सी० जी० टीका आन्दोलन भी जारी हैं। इसकी ओर से प्रौढ शिक्षा केन्द्रों तथा नारी-कल्याण केन्द्रों की भी व्यवस्था की जाती है।

एक सहायता-ऋण योजना के अधीन २,०५० मकान बनाये गए तथा ११३ मकानों का निर्माण हो रहा है। कोयला-खान मजदूरों को २८,००० मकान दिए गए तथा ६,६३५ मकानों का निर्माण आरम्भ किया गया।

सन् १९५९ इस कोष मे, १,७६,५५,४८४ रुपये प्राप्त हुए और इस निधि मे से सामान्य कल्याण–कार्यो पर तथा आवास पर १,७०,००,००० रुपये व्यय होने का अनुमान लगाया गया है।*

अभ्रक–खान श्रम–कल्याण कोष

इस कोष के अन्तर्गत अभ्रक–खान–मजदूरो के लिए चिकित्सा, शिक्षा तथा मनोरजन की सुविधाओ की व्यवस्था की जाती है। इस कोष द्वारा करमा (बिहार) मे एक अस्पताल खोला जा चुका है और कालिचेडु (आध्र प्रदेश) तथा तीसरी (बिहार) मे दो अस्पतालो का निर्माण किया जा रहा है। एक अन्य अस्पताल गगानगर (राजस्थान) मे भी खोला जायगा। १९५९–६० मे आध्र प्रदेश, बिहार तथा राजस्थान को क्रमश. ४'० लाख रुपये, १०'४२ लाख रुपये तथा ४'३७ लाख रुपये दिए गए।*

बागान कर्मचारियों का कल्याण

'प्लान्टेशन लेबर एक्ट, १९५१' के अन्तर्गत प्रत्येक बागान (Plantation) को अपने स्थायी श्रमिको को व उनके परिवार को आवास (Housing) सुविधा प्रदान करना तथा चिकित्सालयो व औषधालयो की सुविधाएँ प्रदान करना आवश्यक है। कुछ बागानो ने अपने श्रमिको के बच्चो की प्रारम्भिक शिक्षा के लिए स्कूल भी खोले हैं। कुछ चाय बागानो ने टी बोर्ड की सहायता से मनोरजन के साधनो तथा कुछ महत्वपूर्ण दस्तकारियो जैसे सिलाई, बुनाई, कताई, डलिया बनाने के कार्य इत्यादि के लिए प्रबन्ध किया गया है। काफी तथा रबड बोर्डो ने भी अपने श्रमिको के कल्याण के लिए धन देने का विचार किया है।

बागान श्रमिक अधिनियम १९५१ के बनने पर मालिको ने जिम्मेदारियो से बचने के लिए अपने बागानो को छोटे–छोटे भागो मे विभक्त करना आरम्भ कर दिया है। अत. सरकार अधिनियम मे उचित सशोधन करने का विचार कर रही है। दूसरी पचवर्षीय योजना मे बागान कर्मचारियों को बेहतर और बढी हुई आवास की सुविधाएँ देने पर अधिक जोर दिया गया है। बागान जाँच कमीशन ने अनुमान लगाया है कि चाय उद्योग के कर्मचारियों के लिए लगभग ६० करोड रुपये की आवश्यकता होगी।

---

* India, 1960 p. 385.

औद्योगिक आवास (Industrial Housing)

सितम्बर १९५२ में आरम्भ हुई 'सहायता प्राप्त औद्योगिक आवास योजना' में 'कारखाना अधिनियम, १९४८' द्वारा शासित औद्योगिक मजदूरो और कोयला तथा अभ्रक खानो के मजदूरो को छोडकर 'खान अधिनियम १९५२' के अन्तर्गत आने वाले अन्य खान–मजदूरों के लिए मकानो के निर्माण की व्यवस्था है। इस योजना के अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार राज्य सरकारो को ऋण तथा सहायता देती है।

सन् १९५९ के अन्त तक केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य सरकारों, मालिको तथा मजदूरो की सहकारी समितियों को दी गई आर्थिक सहायता का ब्यौरा निम्न तालिका मे दिया गया है —*

सस्थाएँ	ऋण	सहायता (Subsidy)	योग	स्वीकृत किये गये घरो की सख्या
राज्य सरकारे	१६·७७	१६·०७	३२·८३	९६,८६२
मालिक	१·६२	१·२९	२·९१	१६,७७२
श्रम सहकारी सस्थाएँ	०·४०	०·२०	०·६०	२,४६७
योग	१८·७९	१७·५५	३६·३४	४६,१०१

दिसम्बर, १९५९ के अन्त तक ८५,९८८ मकान बन चुके थे और शेष निर्माणाधीन थे।

बागान–मजदूर आवास–योजना—१९५१ के 'बागान मजदूर अधिनियम' के अनुसार प्रत्येक बागान–मालिक के लिए यह अनिवार्य कर दिया गया है कि वह अपने सभी मजदूरो के लिए आवास की व्यवस्था करे। द्वितीय योजना मे ११,००० मकानो के निर्माण के लिए २ करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है।

सितम्बर १९५८ के अन्त तक लगभग ५·३ लाख रुपये की आर्थिक सहायता ३०० मकानों के बनवाने के लिए राज्य सरकारों तथा स्वीकृत की

---

* India, 1960, p. 386.

गई। इसमे से २० मकान बन भी चुके है। 'इण्डियन प्लान्टर्स एसोसियेशन' की ९२ सदस्य बागानो (Estates) ने स्वीकृत नमूने के ७,२२५ मकानों को बनवा लिया था।

सरकार के उपक्रमों (Undertaking) में श्रम-हितकारी कोप

इन श्रम हितकारी कोपो का निर्माण १९४६ मे ऐच्छिक आधार पर किया गया था। इन कोपो का उद्देश्य रेल्वेज और बन्दरगाहों (Dockyards) के कर्मचारियो को छोडकर अन्य सरकारी उपक्रमो के कल्याण की सुविधाएँ प्रदान करना है। आन्तरिक एव वाह्य खेलों, वाचनालयो एव पुस्तकालयों, रेडियो, शिक्षण तथा मनोरन्जन इत्यादि का प्रावधान भी किया जाता है।

रेल्वेज तथा बन्दरगाहों मे श्रम-कल्याणकारी कार्य

रेल्वेज अपने कर्मचारियो के लिए अस्पतालो व चिकित्सालयो की व्यवस्था करती है। कर्मचारियो की शिक्षा के लिए भी उचित प्रबन्ध किया गया है। बहुत सी रेल्वेज ने आन्तरिक व वाह्य खेलो के लिए सस्थाओ व क्लबो का निर्माण किया है। कुछ रेल्वेज के द्वारा सस्ते गल्ले की दूकानें भी चलाई जाती हैं।

बन्दरगाहो मे भी आधुनिकतम चिकित्सालय हैं। कलकत्ता, विशाखापट्टम तथा कलकत्ता के बन्दरगाहो मे सहकारी समितियाँ भी है।

राज्य सरकारो द्वारा श्रम-कल्याणकारी कार्य

सन् १९३७ तक राज्य सरकारें श्रम कल्याण के लिए केन्द्रीय सरकार पर आश्रित रहा करती थी। सन् १९३७ मे 'प्राविन्शियल आटोनामी' प्राप्त हो जाने से प्रान्त (राज्यो) मे काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल स्थापित हुए। काँग्रेसी मन्त्रियो ने श्रम कल्याण के लिए योजनाएँ बनाई। द्वितीय महायुद्ध काल मे कुछ कल्याणकारी कार्य हुए। स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर इस दिशा मे काफी प्रयत्न किए गए है।

राज्यानुसार इनका विवरण इस प्रकार है —

बम्बई राज्य

सर्व प्रथम बम्बई की सरकार ने १९३९ मे बम्बई राज्य मे आदर्श-केन्द्रो की स्थापना की। उसी वर्ष इस कार्य के लिए स्वीकृति धनराशि १,२०,०००

६० थी जो कालान्तर मे बढती चली गई। सन् १९५३ में बम्बई की सरकार ने इन क्रियाओं को 'बम्बई लेबर वेल्फेयर बोर्ड' को स्थानान्तरित कर दिया। इस समय बोर्ड के अन्तर्गत ५३ श्रम कल्याणकारी केन्द्र हैं।

इन केन्द्रो मे सिनेमा प्रदर्शन, ड्रामा, शारीरिक व्यायाम की सुविधाएँ, शिक्षा तथा प्रशिक्षण, शिशु पालन तथा नर्सरी स्कूल, नशीली वस्तुओं के विरुद्ध आन्दोलन, सिलाई गृह व स्त्रियों के लिए क्लबों इत्यादि का प्रबन्ध है।

राज्य सरकार ने कुछ चुने हुए कर्मचारियों के लिए 'ट्रेड यूनियनिज्म' तथा नागरिकता के प्रशिक्षण के लिए बम्बई, अहमदाबाद तथा शोलापुर मे प्रशिक्षण विद्यालय खोले हैं।

उत्तर-प्रदेश

उत्तर प्रदेश की सरकार ने सर्वप्रथम १९३७ मे लेबर कमिश्नर की अध्यक्षता मे श्रम-विभाग की स्थापना की और कानपुर मे चार श्रम-कल्याणकारी केन्द्रों को औद्योगिक श्रमिको के लाभार्थ सगठित किया। इस समय तक ४७ स्थायी श्रमिक कल्याण केन्द्र, और २ मौसमी श्रमिक कल्याण केन्द्र राज्य के विभिन्न प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों मे स्थापित किए जा चुके हैं।

यह सब केन्द्र चार वर्गों—अ, ब, स, तथा द मे विभक्त किए गये है :—

'अ' वर्ग के केन्द्रो के अन्तर्गत अँग्रेजी ढग के चिकित्सालय, वाचनालय तथा पुस्तकालय, स्त्रियों के लिए व्यवहारिक प्रशिक्षण, घरेलू तथा बाहरी खेल, जिमनेजियम तथा अखाड़े, सगीत तथा रेडियो, प्रसूत तथा शिशु कल्याण की सुविधाएँ प्रदान की जाती है।

'ब' वर्ग के केन्द्रों मे भी उपरोक्त सुविधाएँ प्रदान की जाती है, परन्तु इनमे होम्योपैथिक ढग की चिकित्सा प्रदान की जाती है।

'स' वर्ग के केन्द्रो मे पुस्तकालय एव वाचनालय, घरेलू तथा बाहरी खेल तथा रेडियो सेट प्रदान किये जाते है।

'द' वर्ग के केन्द्रो के अन्तर्गत केवल बाहरी (Out-door) खेलो का प्रबन्ध किया जाता है।

सन् १९५७-५८ मे सरकार ने इन कार्यों के लिए १२·१६ लाख रुपये की व्यवस्था की थी, जबकि १९३७-३८ मे इस काम से लिए केवल १०,००० रुपये रक्खे गये थे। सरकार ने कानपुर मे श्रमिको के लिए तपेदिक (T. B.) के एक अस्पताल की व्यवस्था भी की है।

अन्य राज्यों मे श्रम कल्याण

अन्य राज्यो मे भी अनेक श्रम–कल्याणकारी केन्द्र खोले गये हैं। विभिन्न राज्यो मे (पुनर्सगठन के पूर्व) इन केन्द्रो की सख्या इस प्रकार थी :—

असम	१२	मैसूर	२
बिहार	३	राजस्थान	१२
मध्य प्रदेश	५	सौराष्ट्र	२१
पजाब	७	ट्रावनकोर-कोचीन	३
पश्चिमी बगाल	२६	दिल्ली	१
हैदराबाद	१	त्रिपुरा	२
मध्य भारत	३		

सेवा योजकों (Employers) द्वारा कार्य

अभाग्यवश सेवायोजको अथवा मिल मालिको ने श्रमिक कल्याणकारी कार्य की महत्ता को बहुत देर मे समझा है। वे बहुत समय तक श्रमिक कल्याणकारी कार्य को अनार्थिक विनियोग समझते रहे। परन्तु पिछले २० वर्षो से वे समझने लगे है कि श्रमिको को प्रसन्न रख कर ही उद्योग मे उत्पादन बढाया जा सकता है। अतएव उन्होने गत कुछ वर्षों से श्रम कल्याण के लिए मनोरञ्जन, शिक्षा, 'कैंनेज' भोजनालयो, चिकित्सा तथा गल्ले की सस्ती दुकानो का प्रबन्ध किया है।

उद्योगपतियो मे से कुछ प्रगतिशील उद्योगपतियो जैसे 'इण्डियन जूट मिल्स एसोसियशन', इण्डियन टी एसोसियेशन, टाटा सस्थान, सिघानियाँ–सस्थान इत्यादि ने इस क्षेत्र म कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं।

उद्योगो के अनुसार इनकी क्रियाओ का व्योरा इस प्रकार है —

सूती वस्त्र उद्योग

इस उद्योग के श्रमिको के कल्याण के लिए 'इम्प्रैस ग्रूप आफ मिल्स, नागपुर,' 'देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स, देहली,' 'बिरला काटन मिल्स, देहली,' 'जियाजीराव काटन मिल्स, ग्वालियर,' बकिंघम एण्ड कर्नाटक मिल्स, मद्रास,' बगलौर ऊलन, काटन एण्ड सिल्क मिल्स, तथा मदुरा मिल्स कम्पनी, इत्यादि ने प्रशसनीय कार्य किये हैं। इन मिलो के द्वारा प्रसूतिकागृहो, शिशु–गृहो, घरेलू तथा बाहरी खेलो, सहकारी समितियो, शिक्षण केन्द्रो, प्राविडेन्ट

फण्ड की योजनाओं तथा सस्ते आवासगृहों की सुव्यवस्था की गई है।

लगभग सभी मिलो ने सुयोग्य डाक्टरो सहित औषधालयो का प्रबन्ध किया है।

जूट मिल उद्योग

इस उद्योग के क्षेत्र मे 'जूट मिल्स एसोसियेशन' ने जो कि सेवायोजको (Employers) का एक सगठन है, अपने सदस्य उद्योगो के श्रमिको के लिए प्रत्यक्ष रूप से सुविधाएँ प्रदान की है। इस एसोसिएशन ने पाच श्रम कल्याण-कारी केन्द्रो का सगठन किया है। इन केन्द्रों के द्वारा घरेलू तथा बाहरी खेलों, मनोरञ्जन सम्बन्धी सुविधाओ तथा प्राइमरी स्कूलो का प्रबन्ध किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ केन्द्रों मे स्त्री-श्रम कल्याणकारी सस्था तथा स्त्री क्लबो का सगठन भी किया जाता है।

व्यक्तिगत मिलो ने भी इस सम्बन्ध मे कुछ कार्य किया है। लगभग सभी मिलो मे श्रमिको की चिकित्सा के लिए औषधालय है। कुछ मिलो न प्रसूति-कागृहो तथा जलपान गृहो की व्यवस्था भी की है।

इन्जीनियरिग उद्योग

इस क्षेत्र के उन उद्योगो मे जहाँ एक हजार से अधिक कर्मचारी कार्य करते है, औषधालयो का प्रबन्ध किया गया है। इन उद्योगो मे श्रमिको तथा उनके बच्चो के लिए शिक्षा की व्यवस्था की गई है। लगभग सभी उद्योगो मे जलपान गृह भी है।

'टाटा लौह एव स्पात कम्पनी, जमशेदपुर', मे एक बहुत बडा चिकित्सा-लय है। इसमे ४१६ शय्याओ (Beds) तथा ५१ डाक्टरों का प्रबन्ध है। इसके अतिरिक्त जमशेदपुर मे २ हाई स्कूल, ११ मिडिल स्कूल, १६ प्राइमरी स्कूल तथा कुछ रात्रि पाठशालाओं का भी प्रबन्ध है। यहाँ पर खेल के बडे-बडे मैदान तथा अन्य मनोरञ्जन स्थल भी हैं।

शक्कर उद्योग

लगभग सभी शक्कर मिलो मे औषधालय हैं। अधिकतर मिलों ने श्रमिको के मनोरञ्जन के लिए क्लबो व घरेलू तथा बाहरी खेलो का प्रबन्ध किया है। परन्तु जलपान गृहो एव सहकारी समितियों का प्रबन्ध केवल कुछ मिलो के द्वारा ही किया गया है।

बागान उद्योग (Plantations)

आसाम तथा पश्चिमी बगाल के चाय बागानो मे औषधालयो का प्रबन्ध है। बहुत से बडे बागानो द्वारा श्रमिको के बच्चो की शिक्षा के लिए प्रारम्भिक स्कूल खोले गये हैं। इस उद्योग के श्रमिको के लिए सैंट्रल टी बोर्ड सहायता देता है। काफी तथा रबड के बोर्डों ने भी अपने उद्योगो के श्रमिको के लिए अनुदान देना स्वीकार कर लिया है।

इसके अतिरिक्त कोलार गोल्ड फील्ड की सोना निकालने वाली कम्पनियो ने तथा एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनियो ने भी श्रमिको के कल्याण के लिए महत्वपूर्ण कार्य किये है।

श्रमिक संघों द्वारा कल्याणकारी कार्य

भारतवर्ष मे श्रमिक सघो द्वारा श्रम कल्याणकारी कार्य बहुत सीमित मात्रा मे किये गये है। इसके दो कारण है — एक तो श्रमिक सघ आन्दोलन अभी अपनी शैशव अवस्था मे है और दूसरे इन सघो के पास आर्थिक साधन भी बहुत सीमित हैं।

परन्तु फिर भी कुछ श्रमिक सघो जैसे 'टैक्सटाइल लेबर एसोसियेशन, अहमदाबाद', 'मजदूर सभा, कानपुर', रेलवे मैन्स यूनियन्स' तथा कुछ अन्य सघो ने श्रमिको के कल्याण के लिए बहुत कुछ प्रयत्न किए है। अहमदाबाद का टैक्सटाइल लेबर एसोसिएशन' अपनी कुल आय का ६०% से ७०% तक श्रम-हितकारी कार्यों पर खर्च करता है। कानपुर की मजदूर सभा ने श्रमिको की चिकित्सा के लिए औषधालय तथा वाचनालय एव पुस्तकालय खोले हैं।

रेलवे कर्मचारियो के सघो मे से कुछ सघो ने सहकारी समितियाँ खोली है। इसके अतिरिक्त उन्होने कर्मचारियो की वैधानिक सुरक्षा (Legal defence) मृत्यु, तथा अवकाश लाभ, बेरोजगारी तथा बीमारी लाभ तथा जीवन बीमा इत्यादि का सुप्रबन्ध किया है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समस्या की गम्भीरता एव गुरुता को देखते हुए, श्रमिको के कल्याणार्थ विभिन्न सस्थाओ द्वारा जो कुछ भी किया गया है, वह अपर्याप्त है। वास्तविक दृष्टिकोण से देखा जाय तो ज्ञात होगा कि मालिकों (Employers) ने इस क्षेत्र मे बहुत सीमित कार्य किया है।

आशा की जाती है कि वे भविष्य मे व्यापक दृष्टिकोण अपनाकर अधिक से अधिक प्रबन्ध करके श्रमिको को अत्यधिक सुख सुविधाएँ प्रदान करेंगे।

प्रश्न

1 Define 'Labour Welfare Work' and give a short description of the activities undertaken by various agencies in this connection in India. (Agra B Com 1958)

2. Examine critically the working of the Employees' State Insurance Scheme in India and point out the steps which should be taken to make it more comprehensive, efficient and beneficial (Agra, B Com, 1958)

3. What do you mean by the term 'Social Security'? What steps have been taken in this country to achieve that ideal? (Agra, B Com, 1957)

4. What are the benefits provided for in the Employees' State Insurance Act? Do they fall short of workers' requirements? (Agra, B Com, 1956)

5. What is the aim of social security legislation? How far has it been achieved in India?

6. Discuss in details the working of the Health Insurance Scheme in India (Agra, B Com, 1955)

अध्याय १५

सामाजिक सुरक्षा
(Social Security)

"*एक बरबाद देश की प्रथम आवश्यकता है कि श्रमिक की रक्षा की जाय। यदि वह बच जाय, तो सभी कुछ पुनः प्राप्त किया जा सकता है।*" ये शब्द है रूस के महान क्रान्तिकारी नेता महोदय लेनिन के—जिसने रूस के विकास को नया मोड दिया। अत सोवियत सघ का सविधान (१९३६) ससार का अनुपम सविधान है जिसमे सामाजिक सुरक्षा को नागरिको का आधार भूत अधिकार माना गया है।

सामाजिक सुरक्षा कुछ वर्षों तक केवल नारा (Slogan) मात्र ही था, परन्तु आज ससार के अधिकाश देशो मे यह एक महत्वपूर्ण रचनात्मक कार्य-क्रम हो गया है। पूँजीवादी और समाजवादी दोनो ही प्रकार के राज्य लोक हितकारी राज्य (Welfare State) बनाना चाहते हैं और लोक हितकारी कार्यों मे सामाजिक सुरक्षा को प्रथम स्थान प्राप्त होता है। प्रारम्भ मे सामाजिक सुरक्षा का आयोजन मूलत औद्योगिक श्रमजीवियो के लिये किया जाता था, परन्तु आज प्रत्येक राष्ट्र अपने को लोक हितकारी राज्य (Welfare State) कहलाने के उद्देश्य से सामाजिक सुरक्षा मे केवल श्रमिको को ही नही, वरन् समाज के सभी वर्गों को सम्मिलित करता है, जिससे सम्पूर्ण समाज को लाभ हो सके।

मनुष्य का जीवन अनेक घटनाओ, खतरो एव जोखिमो से परिपूर्ण है जिससे जीवन अत्यन्त नीरस, कष्टप्रद तथा दुष्कर हो जाता है। सामाजिक सुरक्षा का ध्येय ऐसे जोखिमो, खतरो एव घटनाओं के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करना है। इसमे श्रमिको की क्षतिपूर्ति, बीमारी तथा स्वास्थ्य बीमा, बेकारी बीमा तथा वृद्धावस्था—पेन्शन का समावेश होता है। बीमारी, बेकारी, वृद्धावस्था, विधवापन, परिवार के उपार्जक सदस्य की मृत्यु इत्यादि घटनायें उस समय होती हैं जब मनुष्य की आय तो लगभग बन्द हो जाती है परन्तु व्यय

समान रहते हैं या बढ जाते है। ऐसी अवस्था मे इन घटनाओ का उत्तरदायित्व पीडित मनुष्य पर कदापि नही है बल्कि समाज के ऊपर है। अत समाज को ही किसी न किसी प्रकार से इन घटनाओ से पीडित मनुष्य की रक्षा करनी चाहिए। एक प्रगतिशील समाज भी वही है जो अपने सदस्यो को आर्थिक एव सामाजिक सुरक्षा प्रदान करता है।

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ

सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत तीन योजनाये आती है —

(१) सामाजिक सहायता (Social Assistance)
(२) सामाजिक बीमा (Social Insurance)
(३) सहायक कार्य (Ancillary Measures)

(१) सामाजिक सहायता— वह है जिसमे लाभ पाने वाले व्यक्तियो को कुछ भी चन्दा नही देना पडता। सारा खर्च सरकार स्वय अपने पास से करती है, यद्यपि सरकार पर ऐसा करने के लिए कोई उत्तरदायित्व (Obligation) नही होता है। इसके अन्तर्गत निम्न कार्यो का समावेश होता है —

(१) बेकारी सुरक्षा (Unemployment Relief)
(२) डाक्टरी सहायता (Medical Assistance)
(३) अयोग्य एव बूढे व्यक्तियो की सहायता (Maintenance of Invalids and Aged)
(४) सामान्य सहायता (General Assistance)

(२) सामाजिक बीमा—वह है जिसमे लाभ पाने वाले व्यक्तियो को कुछ न कुछ चन्दे के रूप मे देना पडता है। हाँ यह अवश्य है कि अधिकतर होने वाला व्यय सरकार और मालिक (Employers) दोनो करते हैं। दूसरे शब्दो मे 'सामाजिक बीमा' के अन्तर्गत एक 'बीमा कोष' (Insurance Fund) होता है जिसका निर्माण 'त्रिदलीय चन्दे' (Tripartite Contributions) से होता है। त्रिदलीय चन्दा' कर्मचारियो, मालिको व सरकार के द्वारा दिया जाता है। इस प्रकार सामाजिक बीमा कर्मचारी, मालिक और सरकार तीनो का सामूहिक प्रयत्न है।

सामाजिक बीमा के अन्तर्गत निम्न कार्या का समावेश होता है —

(१) स्वास्थ्य बीमा (Health Insurance)

(२) औद्योगिक असमर्थता के विरुद्ध बीमा (Insurance Against Industrial Disability)

(३) बेकारी बीमा (Unemployment Insurance)

(४) प्रसूति बीमा (Maternity Insurance)

(५) वृद्धावस्था पेन्शन, प्रॉवीडेण्ट फण्ड तथा बीमा (Old Age Pensions, Provident Fund and Endowment Insurance)

(६) विधवा एव अनाथो की पेन्शन तथा उत्तर जीवियो का बीमा (Widows' and Orphans' Pensions and Survivors Insurance)

(३) सहायक कार्य (Ancillary Measures)—'सामाजिक बीमा' और सामाजिक सहायता' की परियोजनायें उस समय तक सफल नही हो सकती जब तक कि सहायक क्रियाओ' की सहायता न ली जाय। इन क्रियाओ का उद्देश्य विभिन्न जोखिमो एव घटनाओं (Incidence को कम से कम करना है। *इन क्रियाओ मे निम्नलिखित सम्मिलित हैं* —

(१) प्रशिक्षण एव पुनर्स्थापन (Training and Rehabilitation)

(२) सार्वजनिक निर्माण कार्य एव रोजगारी (Public Works and Employment Exchanges)

(३) पोषाहार तथा आवास सुधार (Nutrition and Housing Reform)

(४) बीमारियों तथा महामारियो की रोकथाम (Prevention of Diseases and Epidemics)

(५) दुर्घटनाओ की रोकथाम (Prevention of Accidents)

(६) राजगार तथा मजदूरी निर्धारण सम्बन्धी विधान (Legislation Regarding Employment and Wage Fixation)

सामाजिक सुरक्षा की परिभाषाएँ

श्री जी० डी० एच० कोल के अनुसार "सामाजिक सुरक्षा का विचार विस्तृत रूप मे यह है कि राज्य (State) अपने सभी नागरिको के लिए न्यूनतम भौतिक कल्याण प्रदान करने का भार लेता है जिससे उनके जीवन की

सभी मुख्य आकस्मिक घटनायें सुरक्षित हो जायें।*

अ तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन ने सामाजिक सुरक्षा की परिभाषा इस प्रकार दी है—'यह वह सुरक्षा है जो समाज किसी उपयुक्त सगठन द्वारा अपने सदस्यो की रक्षा उन जोखिमो के विरुद्ध करता है जिससे वे प्रभावित हो सकते है। ये जोखिम आवश्यक रूप से वे है जिनके विरुद्ध अल्प आय वाले लोग अपनी बुद्धिमत्ता या दूरदर्शिता से व्यवस्था नही कर पाते है।"

सर विलियम बेवरिज ने अपनी सामाजिक सुरक्षा की रिपोर्ट मे सामाजिक सुरक्षा के विस्तृत विस्तार पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि "पुनर्निर्माण के पाँच दैत्यो मे से अभाव (Want) केवल एक दैत्य है और जो कुछ अर्थो मे आसानी से दूर किया जा सकता है। †

सामाजिक सुरक्षा की विशेषताएँ
(Characteristics of Social Security)

सामाजिक सुरक्षा योजना की तीन प्रमुख विशेषतायें होती हैं —

(१) इसके अन्तर्गत कुछ लाभ (Benefits) जैसे चिकित्सा लाभ, बीमारी लाभ इत्यादि तथा 'बलात बेरोजगारी' (Involuntary Unemployment) के हो जाने पर आय की गारण्टी करना।

(२) इसके अन्तर्गत वैधानिक सुरक्षा होनी चाहिए अर्थात् ऐसी योजना को कार्यान्वित करने वाले सगठन के कुछ वैधानिक अधिकार तथा उत्तर-दायित्व होने चाहिए।

(३) योजना को चलाने के लिए समुचित प्रशासन मशीनरी (Administrative Machinery) होनी चाहिए।

---

* The idea of social security, put broadly, is that the State shall make itself responsible for ensuring a minimum standard of material welfare to all its citizens on a basis wide enough to cover all the contingencies of life" —*G D H Cole*

† "Want is only one of the five giants on the road of reconstruction and in some ways the easiest to attack"

—*Sir William Beveridge.*

(३) सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र
(Scope of Social Security)

सामाजिक सुरक्षा का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसके अन्तर्गत 'गर्भ से मरण' तक की घटनाओ के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान की जाती है। गर्भ मे बच्चे को प्रसूति सम्बन्धी सुविधाये और गर्भ के बाहर आने पर उसके पालन-पोषण एव भोजन की सुविधा होनी चाहिए, इसके बाद शिक्षण की सुविधा, फिर काम आदि की। इसमे उस समय की सुरक्षा भी सम्मिलित होती है जबकि मनुष्य काम पर न लगा हो अथवा वह बेरोजगार या विस्थापित हो। इसके अतिरिक्त उचित काम करने की प्रमापित दशाओ की सुरक्षा, वृद्धावस्था मे आय की सुरक्षा, बेरोजगारी के समय आय की सुरक्षा, आमोद प्रमोद की सुरक्षा, आत्मोन्नति की सुरक्षा, चिकित्सा सुरक्षा, घटना, असमर्थता एव मृत्यु हो जाने पर परिवार की सुरक्षा आदि भी इसके अन्तर्गत सम्मिलित है।

भारतवर्ष मे सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता

भारतवर्ष मे सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध मे जितना कहा जाय कम है। भारतवर्ष सम्पूर्ण देश के नागरिको तथा विशेष रूप से औद्योगिक कर्मचारियो के लिए सामाजिक सुरक्षा की महत्ता एव उपयोगिता को अस्वीकार कर ही नही सकता है। और न सामाजिक सुरक्षा के कार्यक्रमों को भारतवर्ष की निर्धनता के आधार पर ठुकराया ही जा सकता है। लार्ड विलियम बेवरिज के शब्दो म "एक दृष्टिकोण से जितने ही आप निर्धन है उतना ही अधिक आपको उसकी (सामाजिक सुरक्षा) आवश्यकता होगी, और अपने स्वास्थ्य को ठीक रखकर आप अपनी कार्यक्षमता को बढाते है।"

भारतवर्ष मे सयुक्त परिवार पद्धति, जाति व्यवस्था द्वारा सहायता तथा जातीय अनुदान के समाप्त हो जाने से सामाजिक सुरक्षा का महत्व और भी बढ जाता है। भारतीय श्रमिको के दयनीय स्वास्थ्य, अज्ञानता, बच्चो एव माताओ की ऊँची जन्म एव मृत्यु दर अपर्याप्त पोषाहार (Mal-nutrition) तथा अनेक बीमारियों एव महामारियो (Epidemics) इत्यादि के कारण सामाजिक सुरक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता हो गई है।

सामाजिक सुरक्षा का विकास

सामाजिक बीमा यो तो बहुत प्राचीन इतिहास रखता है और वह प्रत्येक देश मे किसी न किसी रूप मे विद्यमान था। प्राचीन काल मे राजा महाराजा

लोग अपनी जनता को अकाल, बाढ तथा अन्य दैवी प्रकोपो के समय अनुदान, छूट तथा अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता दिया करते थे। भारतवर्ष में ऋग्वेद तथा महाभारत मे सामाजिक सुरक्षा का प्रमाण मिलता है। किन्तु इस प्रकार की सामाजिक सुरक्षा असमान, अव्यवस्थित, अनिश्चित एवं अपमानजनक थी। दान पाने वाला लज्जा और सकोच का अनुभव करता था। अत सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध मे यह आवश्यक समझा गया कि समाज के द्वारा प्रदान की गई सहायता सम्मानसूचक और विश्वासनीय हो। "बगैर दिए कुछ प्राप्त किया जा रहा है" ऐसा आत्मघाती भाव सहायता पाने वाले के मन मे नहीं आना चाहिए। परन्तु यह सब दान के रूप मे किया जाता था जो कर्मचारियो के स्वाभिमान के विरुद्ध था। परन्तु वर्तमान रूप मे इसका विकास सर्वप्रथम जर्मनी मे १९ वी शताब्दी के उत्तरार्ध मे हुआ जिसमे श्रमिकों के लिए बीमारी, दुर्घटना, बुढापे तथा दुर्बलता इत्यादि के विरुद्ध अनिवार्य बीमा की व्यवस्था की गई। सम्राट विलियम प्रथम (जर्मनी) ने १८८३ मे चिकित्सा हितलाभ, और १८८४ मे श्रमिक क्षतिपूर्ति बीमा का श्रीगणेश किया। जर्मनी के इस कार्य की सफलता देख कर अन्य देशो ने भी इस दिशा की ओर कदम उठाये।

सन् १९२४ मे कुछ फ्रासीसी अर्थशास्त्रियो ने अत्यन्त जोरदार शब्दो मे कहा कि ये योजनाएं मनुष्य के व्यक्तित्व एव उसकी दूरदर्शिता के लिए घातक हैं। अमेरिका मे भी प्रेसीडेन्ट ट्रूमैन के समय सामाजिक सुरक्षा विरोधी प्रचार मे ७० लाख पौंड की रकम बहा दी गई। किन्तु इन विरोधो के बावजूद भी सामाजिक सुरक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय गौरव प्राप्त हो चुका है। **I. L. O.** के प्रयत्न से अनेक ऐसे प्रस्ताव पास किये जा चुके है जिनमे सदस्य देशो को अपने-अपने क्षेत्रों मे सामाजिक सुरक्षा योजनाएं कार्यान्वित करने के आदेश दिए गए है। फलस्वरूप इस प्रकार की योजनाये, डेनमार्क, ग्रेटब्रिटेन, आस्ट्रेलिया तथा रूस आदि देशो मे इसी शताब्दी म विकसित हुई।

ग्रेट ब्रिटेन ने १८९७ मे कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९०९ मे बुढापा पेन्शन अधिनियम, १९११ मे स्वास्थ्यबीमा अधिनियम, १९२० मे बेकारी बीमा अधिनियम, १९२५ मे विधवा-अनाथ सहायता इत्यादि सम्बन्धी अधिनियम बनाये। इसके अतिरिक्त यहाँ पर शिक्षा, अस्पताल, प्रसूति लाभ, तथा बच्चो की समृद्धि के लिए भी सहायता दी जाती है। परन्तु सामाजिक सुरक्षा की ओर सबसे महत्वपूर्ण कदम ग्रेट ब्रिटेन मे द्वितीय विश्व युद्ध के अन्त मे उठाया गया जब ख्यातिपूर्ण सामाजिक बीमा योजना 'बेवरिज योजना'

(Beveridge Plan) के नाम से चालू की गई जिसमे शिशु पालने से लेकर शव सस्कार तक (From Cradle to Grave) की आर्थिक सहायता का सम्पूर्ण जनता के लिए प्रावधान है।

सन् १९४५ मे ग्रेट ब्रिटेन मे लेबर पार्टी (Labour Party) के सत्ता मे आ जाने के कारण अनेक सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी अधिनियम पास किये गये जैसे १९४५ मे 'फेमिली एलाउन्स ऐक्ट', १९४६ मे 'नेशनल इन्श्योरेन्स (इण्डस्ट्रियल इन्जरीज), एक्ट', तथा 'नेशनल इन्श्योरेन्स एक्ट' 'नेशनल हेल्थ सर्विस एक्ट', तथा १९४८ मे 'नेशनल असिस्टेन्स एक्ट' तथा 'चिल्ड्रेन्स एक्ट पास किये गये।

अमेरिका मे यद्यपि सामाजिक सुरक्षा की ओर कदम देर से उठाये गये, परन्तु फिर भी पिछले कुछ वर्षो मे वहाँ की सरकार ने इस दिशा मे महत्वपूर्ण कार्य किये है। सन् १९३५ मे सामाजिक सुरक्षा अधिनियम, १९४४ मे सार्वजनिक स्वास्थ्य सेवा अधिनियम (Public Health Service Act), १९४६ मे रोजगार अधिनियम (Employment Act), १९५० मे 'सामाजिक सुरक्षा सशोधन अधिनियम (Social Security Amendment Act) तथा १९५१ में अनेक सामाजिक सुरक्षा कानून बनाये गये।

रूस मे सामाजिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्यों मे विशेष प्रगति हुई है। रूस की सरकार के द्वारा बकारी की सुरक्षा के अतिरिक्त बहुत–सा धन सामाजिक बीमा योजनाओ पर व्यय किया जाता है। ऐसा अनुमान है कि वहाँ पर प्रतिवर्ष लगभग २१४०० मिलियन रूबल्स (Roubles) इन योजनाओ पर व्यय किया जाता है। वहाँ के प्रत्येक कर्मचारी को सामाजिक बीमा कराना अनिवार्य है। प्रत्येक व्यवसाय को दी जाने वाली मजदूरी तथा वेतन का एक निश्चित प्रतिशत सामाजिक बीमा कोष मे देना नियमत अनिवार्य है। इस कोष का नियन्त्रण श्रमिक सघो द्वारा होता है। 'सोवियत ट्रेड यूनियन्स' की केन्द्रीय समिति सामाजिक सुरक्षा के कार्यों की देखभाल करती है। सामाजिक बीमा कोष का धन अस्थायी असमर्थता (Temporary Disablement), मातृत्व लाभ (Maternity Benefit) वृद्धावस्था लाभ, नि शुल्क चिकित्सा, पौष्टिक भोजन (Dietic Nourishment तथा शारीरिक स्वास्थ्य इत्यादि पर व्यय किया जाता है।

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, स्वीडेन, फ्रान्स, डेन्मार्क, जापान, मिस्र इत्यादि देशो मे भी सामाजिक सुरक्षा की योजनाये चल रही है। विभिन्न देशो की सामाजिक सुरक्षा योजनाओ की वर्तमान स्थिति–ब्यौरा इस प्रकार है।

विभिन्न देशों में सामाजिक सुरक्षा—आय एवं व्यय*

देश	वर्ष	आय	व्यय	शेष (Balance)	राष्ट्रीय करेंसी इकाई (मिलियन में)
[१] भारतवर्ष	१९५३-५४	१०४·४२	१३ ८४	+ ९०·५८	भारतीय रुपये
[२] आस्ट्रेलिया	१९/३-५४	३२९·२	३०४·८	+ २४·३	आस्ट्रेलियन पौन्ड्स(A£)
[३] चीन (तैवान)	१९५४	७१·७	६०·५	+ ११·२	तैवान डॉलर्स (T $)
[४] डेनमार्क	१९५३-५४	२६२३·६	२५८७·४	+ ३६·२	क्राउन्स (Crowns)
[५] फ्रांस	१९५४	२११३७५०	२११५३३०१	— १९५५१	फ्रैंक्स (Francs)
[६] जापान	१९५४-५५	४४१६७९	४१२३१८	+ २९५४१	यैन्स (Yens)
[७] न्यूज़ीलैंड	१९५३-५४	९८·४	९२·३	+ ६·१	पौन्ड्स (£s)
[८] स्वीडन	१९५४	४५०४·५	४४५८·२	+ ४६·३	क्राउन्स (Crowns)
[९] स्विट्जरलैंड	१९५४	२३८०·७	१६७९·८	+ ७००·९	फ्रैंक्स (Francs)
[१०] संयुक्त राज्य (U. K.)	१९५४-५५	१७९३·९	१७१७·९	+ ७६·०	पौन्ड्स (£s)
[११] संयुक्तराज्य अमेरिका (U.S A.)	१९५३-५४	११८४८	१६३२४	+ ३५७३	डॉलर्स ($)
[१२] यूगास्लोविया	१९५४	१४१४०३	१२५९९६	+ १५४०७	दीनार्स (Dinars)

* The Cost of Social Security, I. I. O., Geneva, 1958.

ब्रिटेन की वेवरिज योजना

जैसा कि उपरोक्त बताया जा चुका है कि ब्रिटेन म १९वी शताब्दी मे इस दिशा की ओर कदम उठाये गय। तत्पश्चात् वहाँ पर सामाजिक सुरक्षा की प्रगति बडी तेजी से हुई है। १९१२ मे इगलैंड मे "बेकारी एव स्वास्थ्य बीमा" की एक सुव्यवस्थित योजना बनाई गई। इसके पश्चात् ५ जुलाई १९४२ मे "वैवरिज योजना" नामक एक विस्तृत सुरक्षा योजना कार्यान्वित की गई जिसका अध्ययन हमारे देश के सुरक्षा सम्बन्धी नियमों मे सहायक होगा।

'वैवरिज योजना" तीन वर्गो म विभाजित है —

[१] राष्ट्रीय स्वास्थ्य सवा (National Health Service)

[२] राष्ट्रीय बीमा (National Insurance)

[३] राष्ट्रीय सहायता बोर्ड (National Assistance Board)

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा—इसके अन्तर्गत ब्रिटन मे चिकित्सा सम्बन्धी सेवायें पूर्णत नि शुल्क हैं। एक डाक्टर को २०००) से ४०००) तक मासिक सरकारी भत्ता मिलता है और उनकी देख-रेख मे लगभग ४०० व्यक्ति रहते हैं। आकस्मिक आगन्तुक रोगियो को भी नि शुल्क चिकित्सा प्राप्त होती है।

राष्ट्रीय बीमा—इसके अन्तर्गत मजदूर और मालिक दोनों ही एक कोष को चन्दा देत हैं। यह कोष 'राष्ट्रीय बीमा मत्रालय' द्वारा प्रशासित होता है। साप्ताहिक चन्दा इस प्रकार है —

व्यक्ति	पुरुष	महिलाय
मालिक	५ शि० १ पैं०	४ शि०
मजदूर	४ शि० ४ पैं०	३ शि० ५ पैं०

इस योजना के अन्तर्गत अनेक लाभ प्रदान किये जाते हैं जैसे —

[१] प्रथम सन्तान के पश्चात् प्रत्येक बच्चे को १६ वर्ष की आयु तक ८ शि० सप्ताहिक,

[२] चोट लगन पर ४५ शि० सप्ताहिक,

[३] बेकारी काल मे २६ शि० सप्ताहिक,

[४] रोग काल मे २६ शि० साप्ताहिक,

[५] प्रसूति लाभ—माता को शिशु जन्म के ६ सप्ताह पूर्व से १३ सप्ताह बाद तक ३६ शि० साप्ताहिक;

[६] वैधव्य—विधवा को वैधव्य के १३ सप्ताह पश्चात् भी ३६ शि० साप्ताहिक;

[७] अनाथ बच्चो के पालन पोषण के लिए १२ शि० साप्ताहिक;

[८] वृद्धावस्था पेन्शन—६५ वर्ष की आयु पर पुरुषो को और ६० वर्ष की आयु पर महिलाओ को ३० शि० साप्ताहिक; तथा

[९] अन्त्येष्टि क्रिया व्यय २० पौंड।

इन सेवाओं के अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत सयुक्त राज्य (U. K.) मे कुछ योजनायें भी सम्मिलित कर दी गई है जैसे 'फैमिली एलाउन्स' युद्ध पीडितो को लाभ, सरकारी मिलिटरी तथा सिविलियन कर्मचारियो को लाभ इत्यादि।

योजना की प्रगति—१९५४-५५ मे सयुक्त राज्य की विभिन्न बीमा योजनाओ की प्रगति इस प्रकार थी।*

योजनाये	मिलियन पौड्स मे		
	आय	व्यय	शेष
[१] सामाजिक बीमा तथा सम्मिलित योजनाये (Social Insurance and Assimilated Schemes)	६९७·८	६३५·४	+६२ ४
[२] परिवार भत्ता (Family Allowance)	१११·९	१११·९	—
[३] सार्वजनिक कर्मचारी-सैनिक एव नागरिक (Public Employees-Military & Civilian)	१०२·३	८८·७	+१३·६
[४] सार्वजनिक सहायता तथा सम्मिलित योजनाये (*Public Assistance & Assimilated Schemes*)	२३१·६	२३१·६	—
[५] युद्ध पीडितो को लाभ (Benifits for War Victims)	९२·३	९२·३	—

* The Cost of Social Security, *I. L. O. Geneva 1958.*

इस प्रकार ब्रिटेन प्रति वर्ष अपनी सामाजिक सुरक्षा सेवाओं पर लगभग १६२० मिलियन पौंड्स व्यय करता रहा है जो कि औसतन ३२ पौंड प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति पडता है। "यदि ब्रिटेन जो समाजवादी और न साम्यवादी, बैवरिज योजना सचालित कर सकता है तो कोई कारण नही है कि भारत मे भी राज्य की ओर से ऐसी ही योजना चलाई जाय। †

भारतवर्ष मे सामाजिक सुरक्षा— विभिन्न देशो मे सामाजिक सुरक्षा की प्रगति देखते हुए हमारे देश मे बहुत कम प्रगति हुई है। इसका मुख्य कारण यही था कि भारतवर्ष औद्योगिक प्रगति मे काफी पिछडा हुआ है। वास्तव मे देखा जाय तो हमारे देश मे औद्योगिक प्रगति प्रथम महायुद्ध के पश्चात् हुई। फलस्वरूप सामाजिक सुरक्षा की प्रगति प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात् ही सम्भव हो सकी। परन्तु फिर भी समय-समय पर विभिन्न समितियाँ सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित करती रही। बम्बई-हडताल जाँच समिति (१९२८–२९), शाही आयोग (१९३१), कानपुर श्रम जाँच समिति (१९४०) इत्यादि ने सामाजिक सुरक्षा योजना कार्यान्वित करने की दिशा मे प्रयत्न किए, किन्तु विदेशी शासन की उदासीनता के कारण इस ओर कोई विशेष प्रगति नही हुई।

इस दिशा मे सर्वप्रथम दो महत्वपूर्ण अधिनियम (Acts) 'श्रमिको की क्षतिपूर्ति अधिनियम' (Workmen's Compensation Act) १९२३ मे तथा 'प्रसूति लाभ अधिनियम' (Maternity Benefit Act) कुछ राज्यो मे पास किए गए। 'प्रसूति लाभ अधिनियम सर्वप्रथम बम्बई मे १९२९ मे पास किया गया बाद मे यह अन्य राज्यो मे पास किया गया जैसे १९३७ मे उत्तर प्रदेश मे, १९४४ मे आसाम मे, और १९४५ म बिहार मे। इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा की नीव १९२३ मे रक्खी गई जबकि श्रमिको की क्षतिपूर्ति का अधिनियम पास किया गया।

द्वितीय महायुद्ध तक श्रमिको की क्षतिपूर्ति, प्रसूति लाभ तथा कुछ मालिको की स्वेच्छा पर आधारित बीमारी लाभ योजनाओ के अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा का और कोई स्वरूप भारत मे नही था। पर वास्तव मे इन दोनो मे से एक ने भी सामाजिक बीमा के सिद्धान्त को चालू नही किया था। ये केवल सामाजिक सहायता के उपाय थे जिनके अन्दर इस प्रकार के भुगतानो का

† श्री राधाकमल मुकर्जी।

उत्तरदायित्व एकमात्र मालिकों पर ही था। परन्तु फिर भी भारतवर्ष अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I. L. O.) के आन्दोलनो मे सक्रिय भाग लेता रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की प्रथम सभा जो १९१९ मे हुई थी, से लेकर १९४७ तक ८० सभायें हुईं और ८० प्रस्ताव भी पास हुए। इनमे से भारत ने १५ प्रस्तावों को मान लिया है।

१९४४ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की २६वीं सभा फिलाडेलफिया मे हुई, जिसमे श्रम सघ ने सामाजिक सुरक्षा का एक कार्यक्रम बनाया तथा सब देशो से उसे अपनाने के लिए सिफारिश की। इस योजना के अन्तर्गत निम्न जोखिमो के विरुद्ध प्रावधान (Provision) किया गया था —

(१) बीमारी लाभ (Sickness Benefit)
(२) प्रसूति लाभ (Maternity Benefit)
(३) अयोग्यता लाभ (Invalidity Benefit)
(४) वृद्धावस्था लाभ (Old Age Benefit)
(५) उपार्जक सदस्य की मृत्यु लाभ (Death of Bread-winner Benefit)
(६) बेकारी लाभ (Unemployment Benefit)
(७) आकस्मिक व्यय (Emergency Expenses)
(८) रोजगार सम्बन्धी हानि (Employment Injuries)

भारतवर्ष मे 'शाही श्रम आयोग' (Royal Commission on Labour)—(१९३०–३१) ने तथा १९४०, १९४१ एव १९४२ मे श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन ने कुछ उद्योगो मे अनिवार्य बीमारी योजना का आयोजन किया था।

मार्च सन् १९४३ मे भारतीय श्रम विभाग ने श्रमिकों के हेतु एक अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा योजना बनाने के लिए प्रोफेसर बी० पी० अदारकर को नियुक्त किया। प्रो० अदारकर ने सरकार के आदेश पर औद्योगिक श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य बीमा की व्यापक योजना तैयार की और १५ अगस्त १९४४ को अपनी रिपोर्ट मे कपड़ा, इन्जीनियरिंग, खनिज तथा धातुओ के स्थायी कारखानों मे उसे अनिवार्य रूप से लागू करने की सिफारिश की।

अदारकर योजना की जांच अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सघ (I. L. O.) के दो विशेषज्ञों–श्री मौरीस्टैंक और रघुनायराव—ने १९४५ मे की और उसे स्वी-

कार किया तथा सिफारिश की। उसमे प्रसूतिका सुविधा तथा काम करते समय क्षतिपूर्ति को भी सम्मिलित कर सभी स्थायी कारखानो पर लागू कर दिया जाय।

भारत सरकार के श्रम विभाग की सामाजिक सुरक्षा शाखा ने १९४७ मे तीन योजनाएँ बनाई —

(१) प्रो० अदारकर की स्वास्थ्य बीमा योजना को स्थानापन्न करने के लिए फैक्ट्री श्रमिको के लिए बीमारी दुर्घटना योजना,

(२) प्रसूति की सम्मिलित योजना, तथा

(३) भारतीय एव विदेशी जहाजो पर काम करने वाले भारतीय नाविको के लिए बीमारी, वृद्धावस्था के विरुद्ध बीमा योजना।

६ नवम्बर १९४६ को इन सुझावो के आधार पर एक बिल पेश किया गया। अक्टूबर १९४७ म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की 'एशियन रीजनल कान्फ्रेंस' का अधिवेशन दिल्ली मे हुआ। इसमे भी श्रमिको को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए सिफारिश की गई। तत्कालीन भारत के उद्योग मन्त्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने ३१ अक्टूबर १९४७ को कान्फ्रेंस मे भाषण देते हुए कहा था कि 'फिलाडैलफिया चार्टर' अवश्य पूरा होना चाहिए। उन्होने कहा था कि 'हम उसे (चार्टर को) असफल नही होने देंगे क्योकि उसकी असफलता से सामाजिक प्रगति के विकास सम्बन्धी सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय वास्तविक प्रयत्न समाप्त हो जावेंगे।'' उन्होने यह भी कहा था कि "किसी भी स्थान की निर्धनता कही पर भी समृद्धि नही होने देगी।''

फलस्वरूप विस्तृत स्वास्थ्य बीमा योजना को १९ अप्रैल १९४८ को कर्मचारी राज्य बीमा योजना अधिनियम के रूप मे ससद् द्वारा स्वीकृत किया गया। इसके पश्चात् सन् १९४८ मे 'कोल माइन्स प्रावीडेंट फण्ड एक्ट' पास किया गया, जिसका सशोधन १९५१ मे किया गया।

इस प्रकार सक्षेप मे प्रारम्भ से अब तक इस दिशा मे निम्न अधिनियम पास किये गये है —

(१) श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९२३,
(२) कोयला खान प्रावीडेंट फण्ड तथा बोनस स्कीम अधिनियम, १९४८;
(३) प्रसूत लाभ अधिनियम (राज्यो म),
(४) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम, १९४८,

(५) बागान श्रमिक अधिनियम, १९५१;
(६) कर्मचारी प्राविडेंट फण्ड एक्ट, १९५२, तथा
(७) छटनी और निष्कासन क्षतिपूर्ति अधिनियम।

इन अधिनियमों का विस्तार मे अध्ययन अगले पृष्ठो मे किया गया है।

श्रमिकों की क्षतिपूर्ति अधिनियम

'श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९२३' के अन्तर्गत बडी बडी मिलो मे काम करने वाले श्रमिको को काम के समय मे लगने वाली चोट तथा बीमारी के फलस्वरूप होने वाली मृत्यु के सम्बन्ध मे क्षतिपूर्ति की अदायगी की व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम के अन्तर्गत ४००) मासिक तक की आय वाले कर्मचारी आते है। यह अधिनियम आज जम्मू और काश्मीर को छोड कर सारे भारतवर्ष मे लागू है। परन्तु जहाँ पर कर्मचारी राज्य बीमा योजना आरम्भ हो गई है, वहाँ यह अधिनियम लागू नही होता।

इस प्रकार के अधिनियम की माँग सर्वप्रथम सन् १८४४ मे बम्बई मे हुई थी। फलत. कुछ प्रगतिशील मालिको ने क्षतिपूर्ति की योजनाओं को चालू भी किया था। सन् १८८५ के घातक दुर्घटनाओ के अधिनियम के अनुसार ऐसी दुर्घटनाएँ हो जाने पर मालिको पर मुकदमा चलाया जा सकता था। परन्तु यह कभी लागू न हो सका। मजदूरों की अज्ञानता तथा अनुभवहीनता पर इन दुर्घटनाओं के उत्तरदायित्व को मढ कर मालिक अपने दायित्व को टालने का उपाय कर लेता था। इस दोष को दूर करने के लिए सरकार ने १९२३ मे एक प्रशस्त क्षतिपूर्ति अधिनियम को बनाया, जो १ जुलाई १९२४ से लागू हुआ। इस अधिनियम को और अधिक प्रशस्त बनाने के लिए सरकार ने इसमे १९५९ मे पुन सशोधन किया है। सशोधित अधिनियम (१९५९) का विवेचन भी यहाँ पर किया गया है।

श्रमिको की क्षतिपूर्ति (सशोधन) अधिनियम, १९५९

केन्द्रीय सरकार की एक अधिसूचना के अनुसार मजदूरो का मुआवजा (सशोधन) अधिनियम, १९५९, १ जून से लागू कर दिया गया है।

पहले मुआवजा देने के लिए वयस्को और नाबालिगो मे भी भेद किया जाता था, वह इस अधिनियम मे समाप्त कर दिया गया है। आजकल अस्थायी रूप से अशक्त मजदूरों को ७ दिन के प्रतीक्षा समय मे मुआवजा नही दिया जाता। अब वह समय घटा कर ३ दिन कर दिया गया।

अगर मुआवजा देने में एक महीने से ज्यादा की देर हो तो मजदूरों के मुआवजा कमिश्नर यह निर्देश दे सकते हैं कि बकाया मुआवजे पर ६ प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से ब्याज सहित रकम चुकायी जाय। अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि यदि मजदूर चाहें तो वे फैक्ट्रियों अथवा कारखानों के इन्सपेक्टर को अपनी ओर से मुकदमा लड़ने के लिए कह सकते हैं। अगर मुआवजा देने के सम्बन्ध में कोई मुकदमा चल रहा है, और इस बीच या मुआवजा देने से पहले कोई मालिक अपनी पूंजी किसी और को दे देता है तो मुआवजा की राशि उस पूंजी में से ही काट ली जावेगी।

मुआवजा देने के लिए चोटों और बीमारियों की जो सूची बनी हुई है, उसे भी इस अधिनियम में और बढ़ा दिया गया है।

बीमारी एवं स्वास्थ्य बीमा
(Sickness & Health Insurance)

बीमारी एव स्वास्थ्य बीमा के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने विशेष रूप से दो कन्वेंशन और एक सिफारिश स्वीकार की है। इनमें से भारत ने किसी भी कन्वेंशन पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। वास्तव में 'कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १९४८' ही इस दिशा में यहाँ पहला प्रयत्न है।

१९२७ के प्रथम कन्वेंशन ने बीमारी की समस्या को पहली बार उग्र रूप में हमारे सम्मुख पश किया था। तब से लेकर अभी तक इस सम्बन्ध में हमारे देश में निरन्तर चर्चा होती रही है, परन्तु दुर्भाग्यवश इस ओर हमारी कोई ठोस प्राप्ति न हो सकी। बम्बई, पूना, मद्रास इत्यादि में राज्य सरकारों ने इस ओर कुछ प्रयास किए हैं, परन्तु उन्हें इसमें सफलता न मिल सकी। सन् १९३१ में शाही श्रम आयोग ने जोरदार शब्दों में सिफारिश की थी कि देश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रों में बीमारी बीमा के अभाव में श्रमिकों की कठिनाइयों की शीघ्रातिशीघ्र जांच होनी चाहिए तथा उसके लिए एक योजना बनानी चाहिए, परन्तु प्रान्तीय (प्रदेशीय) सरकारों की उदासीनता के कारण भारत सरकार इस ओर कुछ भी न कर सकी।

जैसा कि अन्यत्र कहा जा चुका है सन् १९४३ में भारत सरकार ने श्री बी०पी०आदारकर को भारत के लिए स्वास्थ्य योजना तैयार करने का काम सौंपा। १९४४ में उन्होंने 'औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य बीमा पर एक रिपोर्ट' प्रस्तुत की। १९४४ दिल्ली श्रम-सम्मेलन और १९४५ में स्थायी श्रम समिति द्वारा इस पर विचार हुआ। अन्त में १९४८ में 'कर्मचारी राज्य

बीमा योजना' मे स्वीकृत योजना को अपनाया गया। इस 'योजना' मे, वास्तव मे देखा जाय तो, सम्पूर्ण सरक्षित जोखिमो मे से बीमारी ही प्रमुख है।

मातृत्व-लाभ-अधिनियम

हमारे देश मे मातृत्व लाभ की अदायगी के विषय मे १९२४ तक कोई व्यवस्था न थी। यद्यपि देश मे बच्चो तथा माताओं की मृत्यु-दर काफी ऊँची थी। १९१९ मे अन्तर्राष्ट्रीय-श्रम-सगठन के ड्राफ्ट कन्वेंशन के अपनाए जाने पर इसकी महत्ता समझी गई। सन् १९२४ म श्री एन० एम० जोशी ने विधान सभा मे शिशु जन्म के कुछ समय पूर्व तथा बाद कारखानो व खानो मे स्त्रियो के रोजगार को रोकने के लिए, मातृत्व लाभ की अदायगी की व्यवस्था के लिए तथा शिशु जन्म से छ सप्ताह पूर्व व बाद मे उन्हे अवकाश देने के लिए एक बिल प्रस्तुत किया। इस बिल मे यह सुझाव रखा गया था कि प्रान्तीय (राज्य) सरकारो को चाहिए कि मालिको से चन्दा द्वारा मातृत्व लाभ देने के लिए एक मातृत्व लाभ कोष (Fund) का निर्माण करें। परन्तु अभाग्यवश उक्त बिल विधान सभा ने रद्द कर दिया।

बहुत काल तक इस ओर कोई ध्यान न दिया गया। अन्त मे व्यक्तिगत राज्य सरकारो ने ही इस दिशा मे कुछ कदम उठाए। सर्वप्रथम १९२९ मे बम्बई मे मातृत्व लाभ अधिनियम पास हुआ तथा १९३४ मे इसमे सशोधन हुआ। बम्बई का अनुकरण करके मध्य प्रदेश ने १९३० मे मद्रास ने १९३४ मे, उत्तर प्रदेश ने १९३८ मे, बगाल ने १९३८ मे, पजाब ने १९४३ मे असम ने १९४४ मे और बिहार ने १९४५ मे उक्त अधिनियम को अपनाया तथा पास किया।

इस अधिनियम के अन्तर्गत कारखानो मे काम करने वाली स्त्रियो को उनके शिशु-जनन के कुछ सप्ताह पूर्व तथा कुछ सप्ताह पश्चात् तक अवकाश मिल जाता है और इस अवकाश के समय उनको लगभग आधा वेतन भी मिलता है। साथ ही साथ चिकित्सा सम्बन्धी सुविधा भी उनको प्रदान की जाती है। सन् १९४१ मे केन्द्रीय सरकार ने खानो मे काम करने वाली स्त्रियो के लिए भी इसी प्रकार का नियम बना दिया है। मातृत्व लाभ के भुगतान का नियमन ३ केन्द्रीय अधिनियमो के अनुसार होता है।

यू० पी० मातृत्व-लाभ अधिनियम १९१८—इसकी प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं :—

(१) अधिनियम का क्षेत्र—यह अधिनियम उन सब कारखानों मे, *जिनमें कि १० या उससे अधिक श्रमिक काम करते है, लागू होता है।*

(२) योग्यता काल—मातृत्व छुट्टी से छः महीने पहले इसका योग्यता काल है।

(३) काम से अनिवार्य मुक्ति—प्रसव के चार सप्ताह पहले और चार सप्ताह बाद छुट्टी लेना अनिवार्य है।

(४) गर्भवती स्त्री को प्राप्त नकद लाभ की दर— आठ आने प्रतिदिन अथवा औसत दैनिक आय से जो भी राशि अधिक हो, वह गर्भवती स्त्री को अवकाश काल मे प्राप्त होती है।

(५) अतिरिक्त लाभ

(अ) प्रसव काल मे यदि माता डाक्टरी सहायता का उपभोग करे तो ५ रुपये के बोनस देने की व्यवस्था,

(ब) शिशुगृह चालू करने पर वहाँ स्त्री परिचायिका की नियुक्ति, बच्चे वाली स्त्रियो के लिए अतिरिक्त आराम के लिए लघु अवकाश और स्वास्थ्य-निरीक्षको की नियुक्ति,

(स) गर्भपात की दशा में गर्भपात के दिन से सवेतन तीन सप्ताह की छुट्टी, और

(द) मालिक द्वारा मातृत्व लाभ से बचने के लिए स्त्री—मजदूर के निकाले जाने *की दशा मे १०० रुपये अथवा उसकी औसत आय से १८० गुना रकम मे* से, जो भी अधिक हो, देने की भी अतिरिक्त व्यवस्था है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना
(Employees State Insurance Scheme)

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की दो महत्वपूर्ण घटनाओ ने सामाजिक सुरक्षा की समस्या को सम्मुख लाने मे विशेष योग दिया। प्रथम घटना १९४७ के अन्त मे होने वाली प्रारम्भिक 'एशियन प्रादेशिक श्रम सम्मेलन' द्वारा सामाजिक सुरक्षा के सम्बन्ध में एक विस्तृत प्रस्ताव का स्वीकार किया जाना तथा द्वितीय भारतीय ससद द्वारा 'कर्मचारी राज्य बीमा योजना' को अधि-नियम के रूप मे *१९ अगस्त १९४८ को पास किया जाना।* यह योजना

सम्पूर्ण एशिया मे सामाजिक सुरक्षा की दिशा मे प्रथम महत्वपूर्ण प्रयास है, जिसके अनुसार भारतीय श्रम कानून के क्षेत्र मे एक नय अध्याय का प्रारम्भ होता है। ६ अक्टूबर १९४८ को 'कर्मचारी राज्य बीमा निगम' (E. S I. Corporation) का उद्घाटन आदरणीय चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के कर-कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ।

प्रारम्भ मे इस योजना के कुछ स्थायी फैक्टरियो मे लागू करने का विचार किया गया जिसके अन्तर्गत २५ लाख श्रमिक आते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश मालिको तथा श्रमिको के विरोध के कारण यह योजना अगले तीन वर्ष तक चुने हुए औद्योगिक केन्द्रो मे भी लागू न की जा सकी। इतनी बडी योजना को सारे देश मे एकदम चालू करना उचित न था, अत इसको केवल औद्योगिक केन्द्र कानपुर तथा दिल्ली मे ही प्रारम्भ किया गया और २४ फरवरी १९५२ को कानपुर मे इसका उद्घाटन भारत के प्रधान मन्त्री श्री नेहरू के कर-कमलो द्वारा सम्पन्न हुआ।

यह विधान सब स्थायी सरकारी तथा गैर सरकारी फैक्टरियों पर लागू होता है जिसमे बिजली द्वारा उत्पादन कार्य होता है, तथा जिनमे २० या उससे अधिक व्यक्ति काम करते है और जो ४००) प्रति मास या इससे कम पाने वाले है चाहे वे क्लर्क हो या श्रमिक। ठेके पर काम करने वाले श्रमिक भी यदि वे ठेकेदार की दुकान पर या उसके निरीक्षण मे कार्य करते हो, इसमे शामिल किये जा सकते है तथा सरकार इसे सामयिक उद्योगो और अन्य वर्ग के श्रमिको पर भी लागू कर सकती है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना का प्रबन्ध

कर्मचारी राज्य बीमा योजना का शासन प्रबन्ध करने के लिए तीन सस्थाओ की स्थापना की गई है —

(१) कर्मचारी राज्य बीमा निगम (E. S I. Corporation)
(२) निगम की स्थायी समिति (Standing Committee of The Corporation)
(३) चिकित्सा लाभ परिषद (Medical Benifit Council)

कर्मचारी राज्य बीमा निगम

इसके अन्तर्गत ३१ सदस्य होते है जो कि केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो,

मालिको, कर्मचारियो, डाक्टरो तथा ससद (Parliament) के सदस्य होते हैं। इनका निर्वाचन इस प्रकार होना है —

(१)	केन्द्रीय सरकार के प्रतिनिधि (इसमे चेयरमैन तथा वाइस चेयरमैन क्रमश श्रम मन्त्री तथा स्वास्थ्य-मन्त्री होते है)	७
(२)	'अ' राज्यो के प्रतिनिधि	९
(३)	'स' राज्यो के प्रतिनिधि	१
(४)	कर्मचारियो के प्रतिनिधि	५
(५)	मालिको के प्रतिनिधि	५
(६)	डाक्टरो के प्रतिनिधि	२
(७)	केन्द्रीय विधान सभा के प्रतिनिधि	२
	कुल	३१

कारपोरेशन की स्थायी समिति

यह कारपोरेशन के साधारण प्रशासन तथा निर्देशन का कार्यभार सभालती है। इसके अन्तर्गत १३ सदस्य होते हैं जिनका निर्वाचन कारपोरेशन के सदस्यो मे से होता है। प्रशासन सम्बन्धी दायित्व वास्तव मे कारपोरेशन के प्रमुख सचालक (Director General) पर होता है। प्रमुख सचालक की सहायता के लिए मुख्य अधिकारी (Principal officer) होते हैं।

चिकित्सा लाभ परिषद

इसमे २९ सदस्य होते है जो चिकित्सा सम्बन्धी विषयो पर कारपोरेशन को सलाह देते हैं।

योजना को समुचित ढग से चलाने के लिए पाँच क्षेत्रीय कार्यालय (Regional Offices) कानपुर, दिल्ली, बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता मे स्थापित किये गये हैं। इन कार्यालयो का दायित्व है कि वे अपने-अपने क्षेत्र मे योजना को सफलतापूर्वक चलावें। प्रत्येक स्थान पर सहयोग प्राप्त करने के लिए क्षेत्रीय बोर्ड (Regional Board) तथा स्थानीय समितियाँ (Local Committees) भी स्थापित की गई है जिनमे श्रमिको, मालिको, राज्य सरकारो तथा कारपोरेशन के प्रतिनिधि होते हैं।

श्रमिको के झगडो का फैसला करने के लिए अधिनियम (Act) मे राज्य सरकारो को अपने राज्यो मे कर्मचारी बीमा न्यायालयो की स्थापना करने का अधिकार दिया गया है।

वित्तीय साधन (Financial Resources)

योजना को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक धन का प्रबन्ध मालिकों तथा कर्मचारियों द्वारा अशदानों, सरकार द्वारा अनुदानों तथा स्थानीय सरकारों, व्यक्तियों व सस्थाओ से प्राप्त दानों, चन्दो या अन्य आर्थिक सहायताओं से किया जाता है। केवल उन्हीं क्षेत्रों के कर्मचारी जहाँ योजना चालू की गई है और जिन्होंने बीमा करा लिया है, योजना के लिए कोष मे अशदान देते हैं। कारपोरेशन के शासकीय व्यय के $\frac{2}{3}$ भाग के बराबर धन राशि केन्द्रीय सरकार प्रथम ५ वर्षों तक वार्षिक अनुदान के रूप मे देगी। राज्य सरकारें भी श्रमिकों के स्वास्थ्य के लिए दवाइयों के खर्च तथा बीमारों की देख भाल की व्यवस्था के लिए आवश्यक आर्थिक सहायता देगी जो लागत का $\frac{1}{3}$ भाग होगी।

मालिकों तथा कर्मचारियों को नीचे लिखी तालिका के अनुसार, साप्ताहिक अशदान देना होता है। मालिक कर्मचारियों का अशदान उनके वेतन से काट लेते है।

कर्मचारियो का वर्ग	कर्मचारियो का अशदान	मालिको का अशदान	कुल अनदान
	रु० न०पै०	रु० न०पै०	रु०न०पै०
[१] ५) से कम औसत दैनिक वेतन वाले कर्मचारी		०·४४	०·४४
[२] १) से १॥) के बीच दैनिक वेतन वाले कर्मचारी	०·१२	०·४४	०·५६
[३] १॥) से २) के बीच दैनिक वेतन वाले कर्मचारी	०·२५	०·५०	०·७५
[४] २) से ३) के बीच दैनिक वेतन वाले कर्मचारी	०·३७	०·७६	१·१३
[५] ३) तथा ४) के बीच दैनिक वेतन वाले कर्मचारी	०·५०	१·००	१·५०
[६] ४) तथा ६) के बीच दैनिक वेतन वाले कर्मचारी	०·६९	१·३७	२·०६
[७] ६) तथा ८) के बीच दैनिक वेतन वाले कर्मचारी	०·९४	१·८७	२·८१
[८] ८) तथा अधिक दैनिक वेतन पाने वाले कर्मचारी	१·२५	२·५०	३·७५

सर्वप्रथम यह योजना प्रयोगात्मक रूप (Experimental Basis) मे दिल्ली और कानपुर मे चालू होने वाली थी। पर मालिको (Employers) ने विरोध किया कि केवल उन्ही को अशदान देना होगा, जबकि अन्य क्षेत्रो के नियोक्तागण उससे मुक्त रहेगे। इससे उनको हानि होगी। अत १९५१ मे इस विधान मे सशोधन हुआ और देश भर के सब मालिको मे अँशदान लेना तय पाया गया। यह निश्चय हुआ कि कानपुर और दिल्ली के मालिकगण (Employers) अपनी कुल मजदूरी बिल का $1\frac{1}{4}$ % तथा अन्य स्थानो के मालिकगण $\frac{3}{4}$ % देंगे।

योजना के अन्तर्गत लाभ

इस योजना के अन्तर्गत जैसा अन्यत्र बताया जा चुका है, श्रमिको को पाँच प्रकार के लाभ प्राप्त हैं, और ये लाभ हैं—

(१) चिकित्सा लाभ (Medical Benefit)
(२) बीमारी लाभ (Sickness Benefit)
(३) प्रसूति लाभ (Maternity Benefit)
(४) अयोग्यता लाभ (Disablement Benefit)
(५) आश्रितो का लाभ (Dependents Benefit)

(१) चिकित्सा लाभ—बीमा कराए हुए कर्मचारी को ही चिकित्सा लाभ प्राप्त है, पर ऐसे व्यक्तियो के कुटुम्ब लिए भी, जब कारपोरेशन तथा राज्य सरकार इस योग्य हो इस लाभ की व्यवस्था की जा सकती है। इस चिकित्सा लाभ मे औषधियो, अस्पताल मे भरती तथा देखभाल तथा घर पर डाक्टर की सेवाओ की सहायता बीमार कर्मचारी या जच्चा को मुफ्त दी जाती है।

दिल्ली तथा कानपुर मे पूरे समय के लिए डाक्टरो की सेवायें अस्पतालो मे उपलब्ध है तथा आवश्यकता पडने पर घर पर भी वे जाते है। औषधियाँ भी दी जाती हैं। दूर स्थित स्थानो के लिए गतिशील चिकित्सालयो का भी मुफ्त प्रबन्ध है। इस लाभ को पाने के लिए कर्मचारी को ६ मास तक अशदान देना होता है। तभी अगले ६ मासो मे उसे लाभ मिलता है। कर्मचारी के अश दान की न्यूनतम सख्या १२ होनी चाहिए।

(२) बीमारी लाभ—बीमा कराए हुए कर्मचारी को बीमारी मे लगातार ३६५ दिनो की अवधि मे अधिकतम ८ सप्ताह तक नगद बीमारी लाभ

मिल सकता है। लाभ दर उसकी औसत मजदूरी के ७/१२ भाग के लगभग होता है। ६ मास तक इसके लिए भी न्यूनतम अंशदान आवश्यक है। दशा सुधरने पर कारपोरेशन को लाभ की अवधि बढ़ाने का अधिकार है।

(३) प्रसूति लाभ—स्त्री कर्मचारियों को १२ सप्ताह के लिए नगद प्रसूति लाभ १२ आने प्रतिदिन की दर से या बीमारी लाभ की दर से दोनों मे जो भी अधिक हो, दिया जाता है। बच्चा होने के ६ सप्ताह से अधिक पहले यह चालू नही किया जा सकता है। इसके लिए भी न्यूनतम अंशदान की संख्या १२ निश्चित की गई है।

(४) अयोग्यता लाभ:—काम करने के समय मे चोट लग जाने के कारण अयोग्यता के लिए बीमा कराये हुए कर्मचारियों को आर्थिक सहायता मिलती है। अस्थायी अयोग्यता के लिए अयोग्यता की अवधि तक एक वर्ष पूर्व की औसत मजदूरी के लगभग आधे तक नगद सहायता मिलती है।

इसे पूर्ण दर कहते है। स्थायी अयोग्यता के लिए, 'कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम' (Workers Compensation Act) मे दी जाने वाली एक-मुश्त (Lump-sum) रकम के बजाय, कर्मचारी को जीवन भर पेंशन मिलती है। जो उसके उपार्जन शक्ति मे हानि के अनुपात के अनुसार होती है।*

(५) आश्रितों का लाभ—बीमा कराए हुए कर्मचारी की मृत्यु होने पर उसके आश्रितो मे निम्न प्रकार से लाभ की राशि का वितरण किया जाता है :—

(अ) कर्मचारी की विधवा को उसके जीवन भर, या दूसरी शादी के समय तक पूर्ण दर के ३/५ भाग के बराबर रकम दी जाती है। और यदि दो या उससे अधिक विधवाएँ हो तो इस रकम को उनमे बराबर—बराबर बांट दिया जाता है।

(ब) प्रत्येक असल (Real) या दत्तक (Adopted) पुत्र को पूर्ण दर के २/५ भाग के बराबर की रकम उसकी १५ वर्ष की आयु तक या उसकी शिक्षा जारी रहने पर १८ वर्ष की आयु तक दी जाती है।

(स) प्रत्येक असल अविवाहित पुत्री को पूर्ण दर के २/५ भाग के बराबर

---

*साप्ताहिक मजदूरी के ७/१२ की दर से।

रकम उसकी १५ वर्ष की आयु तक या उसकी शादी तक (दोनों में से जो पहले हो) या यदि उसकी शिक्षा जारी हो तो १८ वर्ष की आयु तक दी जाती है।

यदि किसी समय यह लाभ पूर्ण दर से अधिक होगा तो आश्रितो में से प्रत्येक का भाग अनुपातिक अंश में बदल दिया जायगा, जिससे देय उनकी पूरी रकम दर पर अयोग्यता लाभ की रकम से अधिक न होगी। यदि इन आश्रितो में से किसी का पता न चले तो आश्रितों का लाभ माता-पिता या पितामह-पितामही को उनके जीवन भर, तथा अन्य आश्रितों को सीमित काल तक दिया जा सकता है। पर भुगतान की दर 'कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालय' द्वारा निर्धारित होगी। तत्सम्बन्धी झगडो के निवटारे के लिए कर्मचारी राज्य बीमा न्यायालयों तथा विशिष्ट ट्रिब्यूनलों (Special Tribunals) की स्थापना का भी विधान मे आयोजन है। दिल्ली तथा कानपुर मे ऐसे न्यायालयों की स्थापना हो चुकी है।

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की क्रियाओं का विवरण

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि इस योजना को कार्यान्वित करने के *लिए सर्वप्रथम कानपुर व दिल्ली मे लागू किया गया था।* इसका उद्‌घाटन समारोह देश के प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू के कर-कमलों द्वारा २४ फरवरी १९५२ को कानपुर मे सम्पन्न हुआ। उस समय इस योजना से लाभान्वित होने वाले कर्मचारियो की सख्या कानपुर और दिल्ली में क्रमश ८०,००० और ४०,००० थी। शनै शनै यह योजना देश के अनेक क्षेत्रों में लागू कर दी गई है और ऐसा अनुमान है कि द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्त तक यह योजना देश के उन सब क्षेत्रो मे लागू हो जायगी जहाँ पर औद्योगिक श्रमिकों की सख्या १५० से अधिक है। डाक्टरो को प्रति व्यक्ति के अनुसार फीस देने का समझौता हो जाने के कारण अहमदाबाद मे भी योजना शुरू कर दी गई है। यहाँ योजना शुरू करने से डेढ लाख कर्मचारियों तथा लगभग ४½ लाख परिवारो को लाभ पहुँचेगा।

आरम्भ से लेकर अब तक इस योजना की प्रगति इस प्रकार है :—

कर्मचारी राज्य बीमा योजना की प्रगति

राज्य	क्षेत्र	चालू होने की तिथि
दिल्ली	दिल्ली राज्य	२४- २-५२
पंजाब	पंजाब क्षेत्र—अमृतसर, लुधियाना, अम्बाला, जालन्धर, अब्दुल्लापुर, जगाधरी तथा बटाला	१७- ५-५३
उत्तर प्रदेश	कानपुर	२४- २-५२
	आगरा, लखनऊ तथा सहारनपुर	१५- १-५६
मध्य प्रदेश	ग्वालियर, इन्दौर, उज्जैन, रतलाम तथा	२३- [illegible]-५५
	बरहनपुर	२- ९-५६
राजस्थान	जैपुर, जोधपुर, बीकानेर, लखेरी पाली (मारवाड) तथा मलिवारा	२-१२-५६
बम्बई	विशाल बम्बई (Greater Bombay)	३-१०-५४
	नागपुर	१२- ७-५४
	अकोला तथा हिंगनघाट	२३- ५-५६
पश्चिमी बंगाल	कलकत्ता शहर तथा हावडा जिला	१४- ८-५६
आन्ध्र	हैदराबाद, सिकन्दराबाद	१- ५-५५
	विजयवाडा, विशाखापट्टनम, चित्तोवल्ला, गुन्टूर, नैलोयली, मंगलगिरी तथा इलरू	९-१०-५५
मद्रास	कोयम्बटूर	२३- १-५५
	मद्रास शहर	२०-११-५५
	मदुराई, अम्बासामुद्रम तथा तूतीकोरन	२७-१०-५६
केरल	एलीपी, क्विलन, त्रिचूर, इर्नाकुलम, अलवायी	१६- ९-५६
मैसूर	बंगलौर	२६- ७-५८

कर्मचारी बीमा योजना की १९५८–५९ की रिपोर्ट

कर्मचारी राज्य बीमा निगम की १९५८–५९ की रिपोर्ट के अनुसार इस योजना के अन्तर्गत कर्मचारियों को मिलने वाली चिकित्सा सुविधाएँ इस वर्ष से उनके परिवारों को भी मिलनी शुरू हो गयी। सबसे पहले ये निर्णय मैसूर राज्य ने किये। उसके बाद अन्य राज्यों ने भी उसका अनुसरण किया और इस तरह इस वर्ष आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, मैसूर, पंजाब और राजस्थान, इन सात राज्यों में २ लाख २६ हजार परिवारों को चिकित्सा

सुविधाएँ दी जाने लगी । इस निर्णय से कर्मचारियो के अतिरिक्त जिन लोगो को लाभ पहुँचा, उनकी सख्या ६ लाख ३३ हजार है ।

इस वर्ष (१९५८–५९) ७८,००० अतिरिक्त कर्मचारियो को योजना मे शामिल किया गया और इस तरह वर्ष के अन्त तक योजना से लाभ उठाने वाले कुल कर्मचारियों की सख्या लगभग १४ लाख ४३ हजार तक पहुँच गई। इस वर्ष १२ राज्यों तथा केन्द्र-शासित क्षेत्र दिल्ली के ७९ केन्द्रो मे योजना चल रही थी, जबकि पिछले वर्ष के अन्त तक दिल्ली तथा १० राज्यो मे योजना के कुल ६० केन्द्र थे ।

१९५८–५९ के अन्त मे कर्मचारियों तथा मालिकों द्वारा दिए गए चन्दे की धनराशि क्रमश ३·८१ करोड रुपए तथा २·९० करोड रुपए थी । लगभग २·४५ करोड रुपए बीमित (Insured) व्यक्तियो को लाभ के रूप मे प्रदान किए गए । इस धनराशि मे से १·८५ करोड रुपए बीमारी हित लाभ, १०·२६ लाख रुपए प्रसूति लाभ, ४०·७१ लाख रुपए, अयोग्यता लाभ, तथा ९·३२ लाख रुपए आश्रित-लाभ के रूप मे दिए गए । योजना के अन्तर्गत डाक्टरी सहायता (Medical Care) का आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, मैसूर, पजाब, राजस्थान, उत्तर प्रदेश तथा दिल्ली के बीमित व्यक्तियो के ४·१० लाख परिवारो तक किया गया ।*

भविष्य के लिए प्रावधान कोष

(Provident Fund Scheme)

कर्मचारियों को वृद्धावस्था मे जब वे अवकाश ग्रहण करते है सुख-सुविधा पहुँचाने के लिए सरकार का ध्यान इस दिशा मे कुछ प्रावधान करने के लिए आकर्षित किया गया । सरकार ने इस चीज की आवश्यकता को अनुभव किया और सर्वप्रथम सन् १९४८ मे 'कोल माइन्स प्राविडेन्ट फण्ड एक्ट' पास किया । इस एक्ट के अनुसार बगाल और बिहार के श्रमिको को मई १९४७ से तथा उडीसा और मध्य प्रदेश के श्रमिको को अक्टूबर १९४७ से लाभ प्राप्त होने लगा । यही योजना बाद मे असम, विध्य प्रदेश, हैदराबाद तथा राजस्थान मे लागू कर दी गई ।

'कोल माइन्स प्राविडेन्ट फण्ड' योजना की सफलता को देखकर अन्य

* India 1960, p 384.

उद्योगों मे श्रमिकों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से मार्च १९५२ में 'एम्प्लाईज़ प्रावीडेन्ट फण्ड एक्ट' पास किया गया। इस 'एक्ट' के अनुसार यह योजना १ नवम्बर १९५२ से छः उद्योगों—सीमेंट, सिगरेट, इन्जीनियरिंग, लौह एवं स्पात, कागज तथा वस्त्र—मे लागू की गई है। यह योजना उन कारखानो मे लागू होगी, जहाँ ५० या ५० से अधिक श्रमिक कार्य करते हो तथा इन कारखानो का निर्माण हुए ३ वर्ष से अधिक हो गए हों। मई १९५८ तक इस एक्ट के अन्तर्गत केवल निजी उद्योग ही आते थे।

श्रमिकों को प्रावीडेन्ट फड उनकी १ वर्ष की नौकरी पूरी होते ही कटने लगता है। इस योजना मे लाभ केवल वे ही श्रमिक उठा सकते है, जिनकी आधारभूत (Basic) आय ३००) माह से अधिक न हो। नियोक्ता अपना व श्रमिकों का चन्दा जमा करते है। श्रमिक तथा नियोक्ता श्रमिकों के वेतन का पृथक-पृथक ६¼ % देते हैं। यदि श्रमिक चाहे तो अपने वेतन का ६¼ % भी जमा कर सक सकते है। श्रमिक को मालिक द्वारा जमा किए गए भाग का आधा तथा २० वर्ष बाद पूरा भाग लेने का अधिकार है।

योजना का प्रबन्ध

इस योजना का प्रबन्ध केन्द्रीय प्रन्यासी मण्डल द्वारा होता है। इस मण्डल मे केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों के प्रतिनिधि होते है। योजना को कार्यान्वित करने के लिए २० क्षेत्रीय कार्यालय खोले गए हैं। प्रत्येक क्षेत्र का एक क्षेत्रीय कमिश्नर होता है। यह कमिश्नर केन्द्रीय प्रावीडेन्ट कमिश्नर के अधीन होता है। क्षेत्रीय कमिश्नर की सहायता के लिए निरीक्षक तथा अन्य कर्मचारी होते है।

प्राविडेन्ट फण्ड्स (एमेडमेट) एक्ट १९५८

प्रावीडेन्ट फण्ड एक्ट १९५२ प्रारम्भ मे केवल ६ अनुसूचित उद्योगों मे ही लागू होता था। मई १९५८ मे इस एक्ट मे संशोधन हो जाने के कारण यह एक्ट १८ मई १९५८ से सरकार के स्वामित्व वाले अथवा किसी स्थानीय सरकार (Local Authority) के स्वामित्व वाले अनुसूचित उद्योगों पर भी लागू हो गया है, यदि इन उद्योगो मे ५० या ५० से अधिक श्रमिक कार्य करते हो तथा इन उद्योगो की स्थापना हुए ३ वर्ष से अधिक हो गए हो। इसके अतिरिक्त यह एक्ट समाचार-पत्रीय संस्थानों (News Paper Establish-

ments) मे भी, जहाँ कि २० या २० से अधिक लोग काम करते हो, पर भी लागू कर दिया गया है।

सितम्बर १९५९ के अन्त मे यह योजना ७,५०२ कारखानो मे चालू थी। इन कारखानो मे लगे हुए कर्मचारियो की सख्या ३१·७१ लाख तथा चन्दा देने वाले कर्मचारियो की सख्या लगभग २५·२५ लाख थी। प्राविडेन्ट फण्ड चन्दे की कुल रकम १५१·८ करोड रुपए थी।

सशोधित योजना के अनुसार श्रमिक अब अपने वेतन का ८½ % तक जमा कर सकते हैं, यद्यपि मालिको का चन्दा ६¼ % ही रहेगा। विस्तार का क्रम बराबर जारी है। कालान्तर मे बडे प्रतिष्ठानो मे भी इसको लागू किया जायगा। शीघ्र ही इसके अन्तर्गत व्यावसायिक सघ जैसे कार्यालय, बैंक, बीमा कम्पनी, सिनेमा, होटल तथा बडी-बडी दूकानें सभी आ जायेंगे।

कोयला खान मजदूरों को प्रावीडेन्ट फण्ड लाभ

कोयला खान मजदूरो की प्रावीडेन्ट फण्ड योजना की रिपोर्ट मे बताया गया है कि १९५७-५८ मे आसाम, प० बगाल, बिहार, मध्य प्रदेश, उडीसा, बम्बई, आन्ध्र प्रदेश और राजस्थान के ३ लाख ४२ हजार कोयला खान मजदूरो को इस योजना से लाभ पहुँचा है।

१९५७-५८ मे कोयला खान प्रावीडेन्ट फण्ड मे ३ करोड ४० लाख रुपये से भी अधिक जमा हुआ। अक्टूबर १९५८ के अन्त तक फण्ड की कुल सम्पत्तियाँ (Assets) लगभग १७ करोड रुपए की थी।*

१९५७-५८ मे अवकाश प्राप्त करने वाले मजदूरो को तथा मजदूरो के नामजदो को फण्ड मे से २० लाख ४० हजार रुपए दिया गया।

उपसहार

उपरोक्त विवेचन मे स्पष्ट ह कि हमारी राष्ट्रीय सरकार सामाजिक सुरक्षा को देश मे शीघ्रातिशीघ्र लाने का प्रयत्न कर रही है। सरकार का यह भगीरथ प्रयत्न वास्तव मे सराहनीय है क्योकि एशिया मे भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ कि सर्वप्रथम इतने वृहत् स्तर पर इस ओर कार्य किया गया है। अनुभवहीनता तथा असहकारिता के कारण इस योजना को पूर्ण सफलता

---

* India 1960, p. 384.

से कार्यान्वित करने में अनेक अड़चनों का सामना करना पड़ रहा है और योजना में वास्तव में कुछ दोष भी आ गए हैं। जितने लाभ प्रदान किए जाते हैं वे देश की आवश्यकताओं के अनुपात में बहुत कम हैं। परन्तु इससे हम लोगों को अधीर एवं असन्तुष्ट नहीं होना चाहिए बल्कि योजना को सफल बनाने के लिए यथासम्भव योग-दान देना चाहिए। भूतपूर्व श्रम-मन्त्री श्री खन्डू भाई देसाई (बम्बई) ने एक बार ७ अक्टूबर १९५४ को अपने भाषण में कहा था कि, "सामाजिक सुरक्षा का पथ लम्बा और दुरूह हो सकता है किन्तु आर्थिक एवं सामाजिक संघर्षों को रोकने और एक सन्तुष्ट एवं सम्पन्न राज्य की स्थापना के लिए यही एक पथ है।" वास्तव में यह कथन किन्हीं अंशों में सत्य प्रतीत होता है।

अध्याय १६

औद्योगिक संघर्ष तथा औद्योगिक संघर्ष विधान
(Industrial Disputes & Industrial Disputes Legislation)

प्रस्तावना

सफल आयोजित औद्योगीकरण के लिए पूंजी तथा श्रम के मध्य शान्तिमय सम्बन्ध अत्यन्त आवश्यक एव महत्वपूर्ण होता है। औद्योगिक सघर्ष उद्योगपतियो तथा श्रमिको का पारस्परिक सम्बन्ध विरोध के रूप मे छिन्न-भिन्न कर डालता है। दोनो वर्गों को काफी आर्थिक हानि उठाना पडती है। यही नहीं सघर्ष का प्रभाव सरकार, जनता तथा औद्योगिक व्यवस्था सभी पर पडता है। राष्ट्रीय आय घटती है। आर्थिक प्रगति मे बाधाएँ भैरव-रूप मे उत्पन्न होती है। जनता आवश्यकीय सामग्री की अनुपस्थिति मे अनेक प्रकार की असुविधाएँ सहन करती है।

साधारण औद्योगिक प्रगति के दिनो मे अधिक लाभाश तथा भत्ते, बोनस आदि के रूप मे श्रमिक तथा उद्योगपति दोनो वर्गों को लाभ होने से विरोधाभास होने के कम अवसर होते हैं। परन्तु तेजी या मन्दी की परिस्थिति मे परिवर्तन होने के फलस्वरूप, झगडे उत्पन्न होने लगते है जिसका दुष्परिणाम केवल दोनो वर्ग को ही नही अपितु सारे देश को भोगना पडता है। अत औद्योगिक उन्नति के निमित्त इन झगडो का निपटारा मिल मालिको, श्रमिको एव सरकार के त्रिदलीय सहयोग द्वारा करना नितात आवश्यक हो जाता है।

औद्योगिक सघर्ष के कारण

आधुनिक फैक्ट्री प्रणाली तथा श्रमिको के बीच व्यक्तित्वहीन सम्बन्ध होता है। श्रमिको का सम्बन्ध प्रत्यक्ष रूप से फैक्ट्री से होता है। फैक्ट्री या कारोबारी सस्था का व्यक्तित्व कृत्रिम होता है। फलस्वरूप मानवीय सम्पर्क अथवा स्पर्श के अभाव से गलतफहमी व आपसी विरोधाभास उत्पन्न होता है जिसका अन्त तालाबन्दियो एव हडतालो मे होता है। परिणामस्वरूप सघर्ष को

अग्नि भभक उठती है। इन कारणो के अतिरिक्त अन्य अनेक कारण है जिनका यहाँ विषद रूप मे वर्णन करना अप्रासगिक न होगा।

(१) मजदूरी

मजदूरी श्रमिक के लिए प्रेरणा की वस्तु होती है। इसी के द्वारा उसके रहन-सहन का स्तर निर्धारित होता है। परन्तु दुःख का विषय है कि भारत मे पारिश्रमिक या मजदूरी निर्धारित करने का कोई समुचित आधार नही है। आपसी समझौते इसे निर्धारित करते हैं। यही कारण है कि तनिक भी असावधानी के फलस्वरूप विरोधाभास की अग्नि प्रज्वलित हो जाती है। औद्योगिक सघर्ष का इतिहास इस बात को प्रमाणित करता है कि करीब ५८% झगडे इसी पारिश्रमिक एव बोनस को लेकर हुए हैं। वर्तमान समय मे उन्नतिशील सभ्यता के अनुसार रहन-सहन के दर्जे मे प्रगति की तुलना मे कम मजदूरी का मिलना सघर्ष का प्रमुख कारण हो गया है।

(२) श्रमिको एवं उद्योगपतियो के आपसी सम्बन्ध

श्रमिको का प्रत्यक्ष सम्बन्ध कृत्रिम व्यक्तित्व वाली कारोबारी सस्था से होता है। अप्रत्यक्ष सम्बन्ध उद्योगपतियो या सस्था को सचालित करने वाले प्रबन्धक से होता है। परिणामत: मानवीय सम्पर्क अथवा स्पर्श के अभाव मे सघर्ष उठ खड़े होते है। श्रमिको को अनेक प्रकार से तग करना, श्रमिक सघो मे भाग लेने वालो को अलग कर देना तथा जॉबर्स की बेईमानी व भ्रष्टाचार इत्यादि कुछ ऐसे कारण है जो सम्पूर्ण औद्योगिक झगडो के लगभग २०% झगडो के लिए उत्तरदायी है।

(३) कार्य करने के अधिक घंटे तथा तत्सम्बन्धी अन्य दशाएँ

काम करने के अधिक घण्टे, दोषपूर्ण रहने की व्यवस्था तथा दोषपूर्ण यन्त्र इत्यादि के कारण भी झगडे उत्पन्न हो जाते है। परन्तु इस प्रकार के झगडे अपेक्षाकृत कम होते है।

(४) बोनस, भत्ते, मजदूरी इत्यादि के लिए माँग करना

श्रमिक प्रगतिशील औद्योगिक दुनियाँ के साथ अपने अधिकारो को समझने लगे है तथा तत्सम्बन्धी श्रमिक सघ आन्दोलन का भी अभ्युदय हो गया है। ये श्रमिक सघ अपनी मजदूरी, बोनस तथा भत्ते के लिए एक प्रकार से उद्योग-पतियो या प्रबन्धको को चुनौती देने लगे है परिणामत. सघर्ष का भी क्षेत्र विस्तृत होता जा रहा है।

(५) सेवा से अलग हुए श्रमिक के प्रति सहानुभूति

जब कोई श्रमिक प्रबन्धक द्वारा निकाल दिया जाता है तो उस दशा में श्रमिक उसके प्रति सहानुभूति रखने के कारण कार्य करना बन्द कर देते हैं तथा हड़ताल, नाराबाजी इत्यादि का सहारा उस समय तक लेते हैं जब तक कि वह निरापराध निष्कासित श्रमिक नौकरी नहीं पा जाता।

(६) असंतोषजनक भावना के कारण

कम अवकाश या विश्राम के कम अवसर मिलने के कारण श्रमिकों में असंतोषजनक भावना उत्पन्न हो जाती है। इस असंतोष की भावना को उद्योगपतियों के अनेक निन्दनीय व्यवहार जैसे महीने में केवल दो हफ्ते ही कार्य देना, श्रमिकों की नौकरी में अस्थिरता बनाये रखना इत्यादि, और अधिक बना देते हैं। परिणामत: संघर्ष असंतोष के कारण हो जाया करते हैं।

(७) शिक्षा का अभाव

भारतीय श्रमिक अधिकतर अशिक्षित एवं अनभिज्ञ होते हैं। वे अपनी अच्छाई, बुराई को स्वयं नहीं सोच सकते। वे दूसरों के द्वारा बतलाए हुए मार्ग को ही अपना लेते हैं। उनकी इस दशा का अनुचित लाभ उठाते हुए कुछ स्वार्थी व्यक्तियों ने उनमें कटुता व वैमनस्य की भावनाएँ जागृत कर दी हैं। इससे औद्योगिक संघर्ष को बढ़ावा मिलता है।

(८) नियोक्ताओं व श्रमिकों के व्यक्तिगत सम्पर्क का अभाव

नियोक्ताओं (Employers) और श्रमिकों के मध्य आपसी मतभेद को दूर करने का प्रत्यक्ष सम्पर्क न होने के कारण भी औद्योगिक अशांति हो जाती है। कभी कभी तो बहुत साधारण सी बात ही सम्पूर्ण झगड़े का मुख्य कारण बन जाती है। उदाहरणार्थ २ मार्च १९५० को हावड़ा की 'फोर्ट ग्लोस्टर जूट मिल्स' के ८००० श्रमिकों ने होली त्यौहार पर एक दिन की छुट्टी न मिलने पर हड़ताल कर दी और यह हड़ताल इतनी गम्भीर हो गई कि पुलिस को गोली चलानी पड़ी और मिल के प्रबन्धकों को तालाबन्दी (Lock-out) करनी पड़ी जो कि २५ अप्रैल को समाप्त की गई। इसके परिणाम स्वरूप ३ लाख कार्य दिनों (Man-days) की हानि हुई।

(९) विवेकीकरण की योजना

(Scheme of Rationalization)

भारतीय श्रमिक, विवेकीकरण की योजना का विरोध उसके कुप्रभावों से

बचने के लिए करते रहे हैं। विवेकीकरण का पहला प्रभाव श्रमिको की छटनी (Retrenchment) के रूप मे होता है ऐसा उनका विश्वास है। अत वे प्रारम्भ मे ही विवेकीकरण की योजना का विरोध करते रहे हैं। उदाहरणार्थ १९२९ में बम्बई के नियोक्ताओ (Employers) के विवेकीकरण अपनाने के विचार के विरुद्ध वस्त्र उद्योग के कर्मचारियों ने आम हडताल (General Strike) घोषित कर दी थी। इसी प्रकार जमशेदपुर के लौह एव स्पात उद्योग मे ५ माह तक इस सम्बन्ध मे हडताल रही जिससे २५ लाख कार्य-दिनो (Man-days) की हानि हुई। बम्बई की हडताल के फलस्वरूप सरकार को एक समिति (फॉसैट समिति) बम्बई हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस सर चार्ल्स फासैट की अध्यक्षता मे नियुक्त करनी पडी थी। अभी हाल मे ही अप्रैल मई १९५५ मे कानपुर की सूती वस्त्र मिलो मे विवेकीकरण की योजना लागू करने पर ४६००० श्रमिको ने अनिश्चित हडताल कर दी। यह हडताल ८० दिन से अधिक चलती रही। इससे बडी आर्थिक हानि हुई।

(१०) अनार्थिक कारण

उपरोक्त कारणो के अतिरिक्त कुछ ऐसे भी कारण होते हैं, जिनका आर्थिक दृष्टिकोण से कोई महत्व नहीं होता है। उदाहरणार्थ किसी राजनैतिक नेता का आगमन, किसी देश-भक्त की वर्षगाँठ मनाना इत्यादि। ऐसे अवसरो पर यदि प्रबन्धक लोग श्रमिको के विरुद्ध कुछ कार्यवाही करते हैं तो समस्या सुलझने के बजाय और उलझ जाती है। कभी-कभी स्वार्थी नेताओ द्वारा दिए गए वचनों की पूर्ति न होने पर भी हडताल इत्यादि हो जाती हैं। स्वतन्त्रता प्राप्त होने के पूर्व कांग्रेसी नेताओं ने श्रमिको की विविध समस्याओ को सुलझाने व उन्हे अनेक प्रकार की सुख सुविधाएँ प्रदान करने का वचन दिया था। परन्तु स्वतन्त्रता प्राप्त होने पर उनके उन दिए गए वचनो के भूल जाने पर अथवा पूरा न होने पर श्रमिको ने हडतालें करना प्रारम्भ कर दिया। आंकडो को देखने से भी स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक सघर्षों की सख्या १९४७ म सबसे अधिक हो गई थी।

औद्योगिक सघर्ष का इतिहास

विगत कुछ वर्षों से हमारे देश मे औद्योगिक अशान्ति एव झगडे बढ गए हैं। यद्यपि आधुनिक उद्योग जब गत शताब्दी के उत्तरार्द्ध म प्रारम्भ हुए तो उस समय महायुद्ध के पूर्व स्वस्थ वातावरण होने पर भी औद्योगिक सघर्ष का

कोई महत्व नहीं था। श्रमिक असगठित एव मौन था। परिणामत प्रत्येक झगडो मे उद्योगपतियो को लाभ होते थे। सरकार तथा तत्सम्बन्धी शासन विभाग सदैव श्रमिको के विरुद्ध उद्योगपतियो का पक्ष लेता था। श्रमिक वर्ग अपने अधिकार को अभी तक नहीं समझ पाये थे। वे अपने हडताल रूपी अस्त्र से पूर्णतया अनभिज्ञ थे।

महायुद्ध मे तथा निकट युद्धोत्तर काल मे औद्योगिक प्रगति मे बडी आशाजनक वृद्धि हुई। श्रमिक अपने वर्ग एव एकता के विषय मे सचेत हुए। अपने दायित्वो एव अधिकारो के हेतु लडने के लिए अपने आपको श्रमिक सघो मे सगठित किया। अत निकट युद्धोत्तर काल मे पारिश्रमिक के प्रश्न पर उद्योगपतियो तथा श्रमिको मे तीव्र मतभेद हुआ।

१९१८–२९—उद्योग मे आँधी के आमो की तरह लाभो तथा मूल्यों मे असाधारण वृद्धि के कारण जीवन की लागत बढ गई थी। पर मजदूरी वृद्धि से अछूती रह गई। १९१८ के इन्फ्लुयेन्जा प्रकोप मे लगभग ८० लाख लोगो की मृत्यु के कारण तथा उद्योगो के विस्तार से श्रमिको की सख्या मे कमी हो जाने से परिस्थिति और भी बिगड गई। अधिक मजदूरियो की माँग को उद्योग-स्वामिया द्वारा ठुकराने पर १९१९–२० मे हडतालो का ताँता लग गया जो १९२१ मे अपनी चरम सीमा पर जा पहुँचा। बम्बई की कपडो की मिलो मे १,५०,००० मजदूरो ने एक बडी हडताल की तथा अहमदाबाद की १९२० और १९२१ ई० की दो हडतालो मे क्रमश ३०,००० तथा ३३,००० श्रमिको ने भाग लिया। १९२०–२१ मे शोलापुर की सूती मिलो के श्रमिको ने और उसके बाद डाकखानो, रेलवे कारखानो तथा ट्राम गाडियो के कर्मचारियो ने हडतालें की। कानपुर के कपडे की मिलो मे भी हडतालें हुई। इनमे से अधिकाश हडतालें थोडी अवधि तक चली तथा श्रमिको की दृष्टि से सफल रहीं।

अस्तु १९१९ तथा १९२१ मे आर्थिक सकट के कारण हडताल–परिस्थिति गम्भीर हो गई थी। किन्तु १९२१ के बाद असहयोग आन्दोलन तथा अतर्राष्ट्रीय श्रम–सघ के प्रभाव से श्रमिक जनता मे जागृति के कारण मजदूरो मे वर्गीय–चेतनता बढी तथा राजनैतिक कारणों से कई झगडे हुए। ये हडतालें लम्बी अवधि की थी तथा कम सफल रही। परन्तु निकट अतीत के वर्षों से देश मे साम्यवाद या कम्युनिज्म की बढती लहर के कारण पूँजी तथा श्रम मे तनातनी और गम्भीर सघर्ष होने लगे हैं तथा हडतालें औद्योगिक जीवन की नियमित विशिष्टता हो गई हैं। अधिकाश दशाओ मे हडतालें निर्माणी प्रकृति के

उद्योगों (सूती, जूट तथा ऊनी मिलों) व रेलो मे हुई हैं। गत वर्षो मे बम्बई तथा कानपुर की सूती मिलों मे हडताले साधारणत लम्बी रही है परिणामत उद्योगपतियो तथा श्रमिको दोनो को भारी हानियाँ सहन करनी पडी है।

धीरे-धीरे सामान्य स्थिति के *पुनर्स्थापन तथा युद्धकालीन ऊँची मजदूरी* दरो के उसके बाद भी बने रहने के कारण हडताल का ज्वर कुछ कम हुआ और १९२२ तक काम के घन्टो मे कमी हुई। पर तेजी के बाद मन्दी मे उद्योगपतियों ने बोनस तथा मँहगाई भत्तों को बन्द करना तथा मजदूरी मे कटौती करना शुरू किया। परिणामत सूती कपडो की मिलो में फिर से हडतालो का तांता लग गया। १९२३ मे मजदूरियो मे १५ % कटौती से अहमदाबाद मे एक बडी हडताल हुई और उससे भी बडी १९२४ मे हुई तथा १९२५ मे अहमदाबाद तथा बम्बई दोनों मे हडताले हुई। बम्बई की १९२४ की हडताल मे सूती मिलो के १,६०,००० श्रमिको ने भाग लिया तथा ७·७५ मि० काम के दिनो की हानि हुई। इसका कारण वार्षिक बोनस की बन्दी थी। उसके बाद १९२५ मे मँहगाई भत्ते मे २० % कटौती के निर्णय के कारण हडतालो मे ११ मि० काम के दिनो की हानि के बाद कटौती बन्द की गई। उसी वर्ष अहमदाबाद मे १२½% की मजदूरियो मे कटौती के कारण दो महीने हडताल रही, जिससे उद्योग को बडी हानि हुई। इसके बाद दो वर्ष अपेक्षाकृत शान्त रही।

१९२८ मे यह शान्ति भग हो गई, जब कई उद्योगो मे व्यापक तथा भीषण हडताल हुई। २१३ औद्योगिक झगडे हुए जिनमे से १११ बम्बई के सूती मिलो तथा ६० बगाल मे हुए, सूती तथा ऊनी उद्योगो मे सबसे अधिक क्षति हुई जिनमे ११० झगडे हुए, पर शेष उद्योगो मे वर्ष मे प्रतिमास औसत १ झगडे का भी नही था। बम्बई की सभी मिलें ६ मास से अधिक बन्द रही, ५,०६,८५० श्रमिको ने भाग लिया तथा ३१⅔ मिलियन काम के दिनो की हानि हुई थी। टाटा मिलो मे जमशेदपुर मे, ईस्ट इण्डिया, साउथ इण्डियन रेलो, एफ० जी० जूट मिलो तथा शोलापुर, नागपुर और कानपुर की मिलो मे भी हडतालें हुई। इस भीषणता तथा व्यापक हडतालो का कारण श्रमिक-सघों मे क्रान्तिकारी उग्र वाम-पक्षियो तथा कम्युनिस्टो का प्रभुत्व बतलाया गया था। पर मन्दी के कारण लाभाशों की कमी होने से मिल मालिको ने छँटनी, वेतन मे कटौती तथा उत्पादन बढाने के नए ढगों को प्रारभ किया था जिससे श्रमिको मे असन्तोष फैला। उनकी मांगो की अवहेलना की गई तथा उनके सघो को

मान्यता नही मिली थी। इससे हड़तालें हुईं और पूँजीवादी ढाँचे को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए मजदूर वर्ग तत्पर हो गया पर इन क्रान्तिकारी तथा उग्र दलो के प्रभाव के कारण १९२८ का संघर्ष १९२९ मे जारी रहा तथा बम्बई की काटन मिलो मे एक आम हड़ताल पुन: शुरु हो गई।

१९२९-३७—भारतीय श्रम आन्दोलन के इतिहास मे १९२९ का वर्ष बडा महत्वपूर्ण था। इस वर्ष मे बम्बई के दगे, कम्युनिस्ट नेताओ की धरपकड, बम्बई हडताल जाँच समिति की रिपोर्ट, शाही श्रम आयोग की नियुक्ति, व्यापारिक झगडा अधिनियम की स्वीकृति, श्रमिको की क्षतिपूर्ति का अधिनियम, बम्बई का प्रसूति लाभो का अधिनियम, जाँच की पियरसन अदालत, दोहाड मे बी० बी० सी० आई० रेलवे मे हडताल तथा समझौता परिषद द्वारा मजदूरो के अधिकारो की मान्यता तथा नागपुर अधिवेशन मे ट्रेड यूनियन काँग्रेस मे फूट और विभाजन इत्यादि घटनाएँ हुई।

१९२९ के बम्बई सूती मिलो मे आम हडताल के बाद अहमदाबाद के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे श्रम सघो की बडी निन्दा हुई। उनकी घृणास्पद हार के कारण श्रम नेताओ मे श्रमिको का विश्वास जाता रहा तथा बनिये अपने कर्जो की अदायगी के तकाजे कर रहे थे। फासेट समिति द्वारा स्वीकृत मजदूरियो के प्रमापीकरण योजनाओं का अस्थायी परित्याग किया गया था क्योंकि कुछ छोटी-छोटी मिलें उसे लागू करने को तैयार नही थी।

१९२९-३३ की आर्थिक मन्दी के कारण पुन मजदूरियो मे कटौतियो के कारण यत्र-तत्र थोडे दिनो की हडतालें हुई। परन्तु प्राथमिक वस्तुओ के मूल्यो में ५% की कमी के कारण जीवन लागत भी कम हो गई थी, फलस्वरूप श्रमिको में शान्ति थी।

१९२९ मे औद्योगिक झगडा विधान बना और तब से १९३७ तक जब कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बने, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सघ के प्रभाव तथा शाही आयोग की सिफारिशो के फलस्वरूप अनेक श्रमोद्धार नियम बनाए गए। बम्बई के बाद मध्य प्रदेश की सरकार ने प्रसूति लाभ अधिनियम १९३० में बनाया, औद्योगिक झगडा विधान मे १९३४ में सशोधन हुए तथा १८६० का मालिको और श्रमिको के नियम को १९३२ में रद्द कर दिया गया। ब्रिटिश ट्रेड एक्ट के आधार पर १९३६ में मजदूरी भुगतान अधिनियम जुर्माना के लिए मजदूरियो से कटौतियो के नियत्रण तथा मजदूरियो के सामयिक भुगतान के लिए पास किया गया।

भारत सरकार ने १९३१ में रेलवे कर्मचारियो की बडी छटनी पर एक जाँच अदालत की नियुक्ति की जिसने सिफारिश की कि छांट गए कर्मचारियो को और उद्योगो मे खपाया जाय, भविष्य में उन्हे पुन नौकरी दी जाय और उनके काम से विलग होने पर उदारतापूर्वक उन्हे पुरस्कार दिया जाय। फूट तथा विघटन होने की प्रवृत्ति ने श्रम-संघ संगठन को और निर्बल कर दिया। तब उग्र वाम-पक्षियो ने इससे अलग होकर अखिल भारतीय लाल श्रम-संघ कांग्रेस (A I R. T. U. C) का निर्माण किया। ४ विलग सम्मेलन बने जिनमें से अधिकाश निरर्थक थे, उनके सदस्यो की संख्या नाममात्र को थी और उनका प्रभाव बहुत कम था।

१९३७-४८—१९३७ मे बम्बई तथा कानपुर मे और १९३८ मे मध्य देश में श्रम जाँच समितियो की नियुक्ति हुई तो भी १९३९ में उस समय तक औद्योगिक झगडो की अधिकतम संख्या रही—१९४० मे मँहगाई भत्तो के लिए माँग के कारण ३२२ झगडे हुए जिनमें ४,५२,५३९ श्रमिको ने भाग लिया था तथा ७५,७७,२८१ काम के दिनो की हानि हुई थी। भारत सुरक्षा नियमो तथा आवश्यक सेवाओ अध्यादेश के अन्तर्गत १९४१-४२ मे केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो को नियोजन की शर्तों तथा मजदूरियो के निर्धारण के लिए व्यवस्था करने के अधिकार दिए गए।

इसके अतिरिक्त हडतालो एव तालाबन्दियो को रोकने, समझौता, तथा अदालती निर्णय द्वारा झगडो के निपटारा करने, तथा आवश्यक सेवाओ मे निर्णय को लागू करने के भी अधिकार उन्हे सौंपे गए। झगडे के समझौते तथा अदालती निर्णय के लिए निवेदन या सुपुर्दगी के दो मास की समाप्ति के बाद तक हडताल करने या तालाबन्दी की मनाही कर दी गई थी। किसी भी उद्योग मे हडताल करने के १४ दिन पूर्व श्रमिको को सूचना देना अनिवार्य कर दिया गया था। ये रोकथाम इसलिए लगाए गए थे कि युद्ध मे विजय के लिए उत्पादन बढ सके।

फिर भी १९४२ मे "भारत छोडो" आन्दोलन के कारण राजनीतिक

अशान्ति तथा मजदूरियो की अपेक्षा उपभोग की वस्तुओ के मूल्य मे अधिक वृद्धि से युद्धकालीन बोनस की माँग पर ६९४ झगडे हुए जिनमे ७,७२,६५३ श्रमिको ने भाग लिया तथा ५७,७९,९६५ काम के दिन नष्ट हुए। बोनस तथा मँहगाई भत्तो की माँगें तत्परता से पूरी कर दी गई तथा मूल्यो मे जीवन लागत मे असाधारण वृद्धि को रोकने के लिए नियत्रणो को लागू किया गया।

इन सब उक्त उपायो से औद्योगिक अशान्ति कम करने के प्रयत्न किए गए। युद्ध समाप्ति के ६ महीने के अन्दर सुरक्षा नियमो का अन्त हो गया। अत १९४६ तथा १९४७ मे पुन झगडो का तांता लग गया। उसके बाद १९४८ मे मजदूरियो मे वृद्धि तथा त्रिदल समझौता, औद्योगिक झगडा अधिनियम तथा कार्यसमितियो आदि के फलस्वरूप स्थिति सुधरी और केवल ८ मिलियन काम के दिनो की हानि हुई जबकि १९४७ मे तालाबन्दियो तथा हडतालो के कारण १६ ५ मिलियन काम के दिनो की हानि हुई थी।

१९४८–५८—सन् १९४८ मे कलकत्ते मे ट्रामगाडियो के कर्मचारियो ने १० दिन के लिए हडताल कर दी। इसी वर्ष कानपुर मे भी भीषण हडतालें हुई। बम्बई मे अगस्त सन् १९५० मे सूती वस्त्र मिलो के २ लाख मजदूरो ने हडताल कर दी, जिससे ६ करोड कार्य–दिनो की हानि हुई। सन् १९५१ मे रेलवे कर्मचारियो ने हडताल की धमकी दी, परन्तु तत्कालीन समाजवादी नेता श्री जयप्रकाशनारायण के सुप्रयत्नो के फलस्वरूप वह टल गई। इसी वर्ष बैंक कर्मचारियो ने सुप्रीम कोर्ट के निर्णय के विरुद्ध एक देश–व्यापी हडताल की।

१९५३ मे कलकत्ते की ट्रामवे हडताल ने बहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया, जिसे शान्त करने के लिए सरकार को विवश होकर गोली भी चलानी पडी। १९५५ मे कानपुर मे विवेकीकरण की योजना लागू होने के विरोध मे वस्त्र उद्योग के ४६,००० श्रमिको ने सूती मिल मजदूर सभा के नेतृत्व मे अनिश्चित हडताल घोषित कर दी जो ८० दिन से अधिक चली। यह हडताल कानपुर के इतिहास मे एक विशेष हडताल थी।

१९४८ से लेकर अप्रैल १९५८ तक हुई हडतालो व उसके फलस्वरूप जो क्षति हुई उसका ब्योरा पृष्ठ ४३७ पर दी गई तालिका से प्राप्त होगा —

औद्योगिक झगड़े (Industrial Disputes)*

वर्ष	झगड़ों की संख्या	भाग लेने वाले श्रमिकों की संख्या	नष्ट होने वाले दिनों की संख्या
१९४८	१,२५९	१०,५९,१२०	७८,३७,१३७
१९४९	९२०	६,८५,४५७	६६,००,५९५
१९५०	८१४	७,१९,८८३	१,२८,०६,७०४
१९५१	१,०७१	६,९१,३२१	३८,१८,९२८
१९५२	९६३	८,०९,२४२	३३,३६,९६१
१९५३	७७२	४,६६,६०७	३३,८२,६०८
१९५४	८४०	४,७७,१३८	३३,७२,६३०
१९५५	१,१६४	५,२७,७६७	५६,९७,८४८
१९५६	१,२०३	७,१५,१३०	६९,९२,०४०
१९५७	१,६३०	८,८९,३७१	६४,२९,३१९
१९५८	१,५२४	९,२९,०००	७७,९८,०००
१९५९ (अक्टूबर)	१,२३६	५,३३,०००	४६,८५,०००

झगड़ों की रोकथाम तथा निपटारा

औद्योगिक झगड़ों को रोकने के लिए पूंजी तथा श्रम दोनों को स्वस्थ पद्धतियों पर संगठनों की स्थापना आवश्यक है। इक्का-दुक्का हड़तालों तथा तालाबन्दियों को पारस्परिक बातचीत, बहस तथा समझौता द्वारा आसानी से रोका जा सकता है। कुछ वर्षों में अहमदाबाद में सूती मिलों के लिए एक स्थायी मध्यस्थता परिषद (Arbitration Board) तथा मिल मालिकों व मजदूरों के प्रतिनिधियों के साथ विलायत की ह्विटले कमेटियों के समान 'कार्य या दूकान समितियों (Work or Shop Committees) की स्थापना की गई है। १९३१ में श्रम आयोग ने झगड़ों के स्वेच्छाचारी तथा अनिवार्य निपटारों के लिए सिफारिश की थी।

* India, 1960, p. 381

अस्तु, औद्योगिक झगडो के निपटारे के तीन ढग हैं —

(अ) मध्यस्थता, जैसा महात्मा गाँधी के परिचालन मे अहमदाबाद मे किया गया था,

(ब) व्हिटले कमेटियो के आधारो पर कार्य या औद्योगिक समितियो द्वारा स्वेच्छापूर्वक समझौता, तथा

(स) श्रम या औद्योगिक न्यायालय द्वारा अनिवार्य समझौता अर्थात् "बलपूर्वक या दमन योग्य हस्तक्षेप का ढग।"

औद्योगिक सघर्ष की रोकथाम तथा समझौते के वैधानिक उपाय

भारत मे औद्योगिक सघर्ष विधान मे औद्योगिक सघर्ष अधिनियम १९२९, १९३४, १९४७ तथा बम्बई के औद्योगिक सघर्ष अधिनियम १९३४, १९३८, १९४७, मध्य प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश के औद्योगिक सघर्ष अधिनियम १९४७ तथा १९२९ के भारतीय अधिनियम के आधार पर इन्दौर बडौदा, कोचीन तथा ट्रावनकोर आदि के अधिनियम समावेश हैं।

ऐतिहासिक सिंहावलोकन

१९२९ के औद्योगिक सघर्ष अधिनियम के पूर्व बगाल के अतिरिक्त औद्योगिक झगडो मे समझौता तथा निपटारा कराने की कोई सरकारी व्यवस्था नही थी। १९३४ तक केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो का इन झगडो के प्रति रुख खली तथा स्वतत्र नीति का था जिसम जब तक शान्ति भग न होती थी तब तक वे हस्तक्षेप नही करते थे। १८६० का नियोजको तथा श्रमिको का झगडा सबधी अधिनियम केवल जन उपयोगी सेवाओ जैसे रेल, नहर आदि के व्यक्तियों पर ही लागू था। किन्तु इसके मृत प्राय पत्र होने के कारण श्रम आयोग की सिफारिशो पर १९३२ मे इसे रद्द कर दिया गया। सर्व प्रथम मद्रास मे एकाकी झगडो के निपटारे के लिए जाँच अदालत की स्थापना हुई और इसके बाद बम्बई मे १९२१ तथा १९२२ मे। सर स्टैनले रीड की अध्यक्षता मे बम्बई औद्योगिक झगडा समिति ने औद्योगिक झगडो के रोकने के उपायो तथा समझौत के लिए औद्योगिक समझौता अदालत की स्थापना की सिफारिश की थी। पर १९१९ के English Industrial Court Act के आधारो पर एक विधेयक तैयार कर भारत सरकार प्रान्तीय सरकारो की राय लेने के लिए उनके पास भेज चुकी थी, इसलिए उसने प्रान्तीय सरकारो को अपने विधेयकों को हटा लेने का आदेश दिया क्योकि वह अखिल भारतीय नियम

इस विषय पर बनाना चाहती थी। श्रमिक चूंकि काफी सगठित नही थे इसलिए प्रान्तीय सरकारो ने केन्द्रीय सरकारो के विधेयक का विरोध किया।

इसके बाद १९२४ मे बम्बई सरकार ने सर नारमन मैकलियाड की अध्यक्षता मे बोनस वितरण जॉच समिति तथा हड़तालो की जॉच के लिए फासेट समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने मध्यस्थता नियमो को लागू करने की सिफारिश की थी, पर श्रमिको मे फूट तथा १९२९ की लम्बी हड़तालो के कारण इन्हे कार्यान्वित नही किया जा सका। इसके अतिरिक्त बम्बई सूती मिल मजदूरो का प्रतिनिधित्व करने वाले कोई मान्यता प्राप्त सघ भी नही थे। इसी बीच मे १९२६ का श्रमिक सघ अधिनियम (Trade Union Act) स्वीकृत हुआ। १९२९ मे सर्व प्रथम व्यापारिक सघर्ष अधिनियम ५ वर्षों के लिए पास हुआ तथा १९३४ मे इसका सशोधन कर इसे स्थायी बना दिया गया। १९३८ मे इसम सशोधन कर समझौता कराने वालो की नियुक्ति तथा कुछ और व्यापारिक झगड़ो तथा कुछ और जन-उपयोगी सेवाओ मे इसे लागू करने की व्यवस्था की गई। इस अधिनियम के प्रावधानो मे भारत सुरक्षा नियमो के नियम ८१ (ए) को भी जोड दिया गया, जिसके द्वारा झगडो को मध्यस्थता के लिए सुपुर्द किया जा सकता था तथा उनमे दिये गए निर्णय को लागू किया जा सकता था। यह बडा उपयोगी सिद्ध हुआ तथा आवश्यक सेवाओ मे से औद्योगिक सघर्ष कम हो गया। यह केवल युद्ध के प्रयत्नो को सफल बनाने के लिए एक स्थायी उपाय था। अत १९४६ मे एक औद्योगिक सघर्ष विधेयक पेश किया गया और १९४७ मे इस अधिनियम बना दिया गया।

अखिल भारतीय अधिनियम

श्रमिक सघर्ष अधिनियम १९२९ के मुख्य प्रावधान निम्नांकित थे —

(१) रेलो तथा अन्य केन्द्रीय उद्योगो या विभागो मे झगड़ा अथवा उसकी सम्भावना पर केन्द्रीय सरकार द्वारा, तथा शेष उद्योगो व विभागो म प्रान्तीय सरकारो द्वारा, हड़ताल की जॉच करने तथा निर्णय देने के लिए एक स्वतन्त्र अध्यक्ष या सदस्य (व्यक्ति) के साथ जॉच की अदालत और झगडे दोनो दलो या एक के निवेदन पर एक स्वतन्त्र अध्यक्ष और दोनो दलो के प्रतिनिधियो के साथ एक समझौता बोर्ड या परिषद की नियुक्ति की जा सकती थी। बोर्ड समझौता कराने वालो की नियुक्ति करता था।

(२) लोक उपयोगी सेवाओ जैसे डाक, तार, टेलीफोन, शक्ति, प्रकाश, पानी सफाई व स्वास्थ्य, रेल तथा जल यातायात के कर्मचारियो को लिखित

१४ दिनो की सूचना दिए बिना हडताल करने की मनाही थी। इस नियम को भग करने पर तथा उक्साने पर जुर्माना तथा सजा का प्रावधान था।

(३) व्यापार या उद्योग के झगडे से असम्बन्धित किसी अन्य बात की सहायता के लिए हडताल या तालाबन्दी अवैधानिक या गैर कानूनी घोषित की गई थी, यदि उससे समाज को भयकर हानि की सम्भावना होती थी। उन पर धन व्यय करना अवैध था तथा उनमे भाग लेने वाले दडनीय थे। ऐसी हडतालो मे सम्मिलित न होने वाले व्यक्तिओ को श्रमिक सघो द्वारा लगाए गए अयोग्यताओ से सुरक्षा का भी प्रावधान था। यह विधान केवल पाँच वर्षो के लिए स्वीकृत किया गया था।

पर इन सस्थाओं के फैसले तथा निर्णय दोनो दलो पर अनिवार्य रूप से लागू नही होते थे और इनके निर्णय शैली व क्रम अनिवार्णयात्मक तथा गरू थे। अत इस विधान मे श्रम आयोग की सिफारिशो को कार्यान्वित करने के लिए १९३२ मे सशोधन किए गए, इसे १९३४ मे स्थायी बना दिया गया तथा १९३८ मे फिर सशोधन हुआ। नए विधान मे अवैध हडतालो की परिभाषा मे परिवर्तन हुआ, जनोपयोगी सेवाओ की सूची मे अभ्यान्तरिक स्टीमर, ट्रामगाडी तथा शक्ति पूर्ति करने वाली सस्थाओ को सम्मिलित किया गया तथा प्रान्तीय सरकारो द्वारा समझौता अफसरो की नियुक्ति की व्यवस्था की गई।

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत सरकार ने अप्रैल १९४७ मे १९३४ के विधान के स्थान पर औद्योगिक सघर्ष विधान बनाया। इस विधान मे दो प्रकार की सस्थाओं की व्यवस्था की गई है —

(१) झगडो को रोकने के लिए उद्योग समिति (Works Committees), तथा

(२) झगडो के निपटारे के लिए औद्योगिक न्यायालय।

जनोपयोगी सेवाओ मे सब झगडो मे समझौता या मेल मिलाप (Conciliation) अनिवार्य है तथा अन्य उद्योगो मे वैकल्पिक। उसके आरम्भ करने के पूर्व ६ हफ्ते के अन्दर एक स्वीकृत रूप मे बिना सूचना दिये किसी जनोपयोगी सेवाओ मे हडताल या तालाबन्दी अधिनियम की २२वी धारा मे अवैध घोषित कर दी गई है। वैसे ही ऐसी सूचना देने के '१४ दिनो के अन्दर' या ऐसी सूचनाएँ दी गई हडताल के दिनाक की समाप्ति के पहले, या समझौता अधिकारी के सामने समझौता की कार्यवाही के काल मे तथा इसी कार्यवाही की समाप्ति के ७ दिन बाद भी हडताल या तालाबन्दी अवैध है। कुछ और

हड़तालो व तालाबन्दियो को अवैध घोषित किया गया है यदि वे :—

(अ) किसी बोर्ड के सामने समझौते की कार्यवाही मे तथा उसकी समाप्ति के ७ दिन बाद;

(ब) किसी अदालत (Tribunal) के सामने कार्यवाही मे तथा उसकी समाप्ति के २ मास बाद, या

(स) समझौता या निर्णय सम्बद्ध किन्ही बातो मे, जिसमे समझौता या निर्णय काम मे लाया जा रहा है, उस काम मे, शुरू किए जाते हैं।

१९२९ के अधिनियम के असमान सहानुभूति मे की गई हडतालो की मनाही इस अधिनियम मे नही की गई थी।

मालिको तथा श्रमिको के बीच मतभेदो को दूर करने तथा अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने के लिए दोनो दलो की समान सख्या मे प्रतिनिधियो के साथ १०० या उससे अधिक श्रमिको को रखने वाले औद्योगिक सस्थानो मे उद्योग या श्रम-समितियो की स्थापना आवश्यक है। जॉच करने तथा झगडो के निपटाने के लिए समझौता अधिकारियो की नियुक्ति होती है। उनके असफल होने पर दोनो दलो के दो या अधिक प्रतिनिधियो तथा एक स्वतन्त्र अध्यक्ष के साथ एक समझौता बोर्ड या परिषद का निर्माण होता है। झगडो की जॉच पडताल तथा रिपोर्ट करने के लिए एक जॉच अदालत की भी नियुक्ति की जा सकती है। अनिवार्य मध्यस्थता के लिए राज्य सरकार किसी झगडे के निपटारे को एक औद्योगिक न्यायालय या ट्रिब्यूनल को सुपुर्द कर सकती है जिसमे हाईकोर्ट या जिलाकोर्ट का एक या अधिक जज या स्वतन्त्र सदस्य हो सकता है। झगडे के निर्णय को लागू करने का भी उसे अधिकार है। जॉच की अदालतो की रिपोर्ट बाध्य नहीं होती, पर उन्हे जनता की सूचना के लिए छपवाना होता है। समझौता अधिकारी या बोर्डों या न्यायालयो के निर्णय सरकार की घोषणा पर बाध्य होते हैं। यदि सरकार झगडे का एक दल होती है और निर्णय से सहमत नही होती तो राज्य की विधान सभा उसकी पुष्टि कर सकती है, या उसका परिवर्तन कर सकती है, या उसे रद्द कर सकती है।

यदि कोई औद्योगिक सघर्ष होता है, या उसके होने का भय होता है, तो उद्योग से सम्बद्ध सरकार उस झगडे को निपटाने के लिए समझौता बोर्ड, या जॉच के लिए जॉच अदालत, निर्णय के लिए ट्रिब्यूनल को सौंप सकती है; पर ऐसा करना दो दशाओ मे अनिवार्य है :—

(१) यदि झगडा किसी जनोपयोगी सेवा से सम्बद्ध है और हडताल की सूचना दी गई है।

(२) जब झगडे के दोनो दलो के अधिकाश सख्या के प्रतिनिधिगण ऐसे झगडे को बोर्ड, अदालत या ट्रिब्यूनल को सुपुर्द करने का निवेदन करते है।

झगडे को बोर्ड या ट्रिब्यूनल को सुपुर्द करने पर उसमे सम्बन्धित हडताल या तालाबन्दी को सरकार खत्म कर सकती है। समझौता अधिकारी को १४ दिन मे तथा समझौता बोर्ड को २ मास मे, अपना कार्य समाप्त करना पडता है। अवैध हडतालो और तालाबन्दियो म भाग लेने वाले तथा उन्हे आर्थिक सहायता देने वाले व्यक्तियो का दण्ड-भागी होना पडता है। जनोपयोगी सेवाओ की परिभाषा व्यापक बना दी गई है। १९२९ के अधिनियम मे उल्लिखित जनोपयोगी सेवाओ के अतिरिक्त उनमे किसी उद्योग का वह भाग, जिस पर उसकी या उसके श्रमिको की सुरक्षा निर्भर करती है तथा यातायात, कोयला, सूती कपडा, लोहा इस्पात, तथा सकटकाल मे खाद्य सम्बन्धी उद्योगो से भी कोई भी उद्योग, जिसे केन्द्रीय या प्रदेशीय सरकार ऐसा घोषित करती है, सम्मिलित है।

औद्योगिक सघर्ष अधिनियम के अनुभव से सरकार को यह स्पष्ट हो गया कि राज्य सरकारो द्वारा नियुक्त ट्रिब्यूनलो से ऐसे उद्योगो के झगडो के निर्णय तथा निपटारे करने मे नियोजको या मालिको को बडी कठिनाइयो का सामना करना पडता है, जिनकी शाखाये एक से अधिक राज्य मे होती हैं। ऐसे झगडो के निर्णयो मे एकरूपता के अभाव मे कर्मचारियों या नौकरो मे असन्तोष पैदा होता है। विशेषत यह अधिकोषण या बैंकिग तथा बीमा कम्पनियो के विषय मे सत्य था।

अत १९४९ म औद्योगिक सघर्ष (बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियो) अध्यादेश या आर्डीनेन्स जारी किया गया, जिससे इन व्यवसायो के झगडो का निपटारा केन्द्रीय सरकार को सौंपा गया, तथा राज्य सरकारो को ऐसी कम्पनियो के झगडो को, जिनकी शाखाएँ या अन्य सस्थायें एक से अधिक राज्य मे थी, निर्णय, जाँच या निपटारे के लिए राज्यकीय न्यायालयो को सौंपने की मनाही कर दी गई, तथा उनमे चालू तजवीजो या कार्यवाहियो को स्थगित कर दिया गया। इस अध्यादेश के अन्तर्गत जून १९४९ मे बैंकिंग कम्पनियों मे औद्योगिक झगडो के निर्णय करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने एक औद्योगिक न्यायालय या ट्रिब्यूनल की स्थापना की। १९५० मे इस अध्यादेश के स्थान

पर एक अधिनियम बना दिया गया है। जून १९४९ में गवर्नर जनरल ने 'औद्योगिक ट्रिब्यूनल बोनस भुगतान (राष्ट्रीय बचत सार्टीफिकेट) अध्यादेश' निकाला जिसके द्वारा मजदूरी भुगतान अधिनियम, या अन्य अधिनियमों के बावजूद भी, औद्योगिक न्यायालय को यह अधिकार दिया गया कि अपने निर्णय के अन्तर्गत देय बोनस की आधी रकम को डाकखाने के राष्ट्रीय बचत सार्टीफिकेटों के रूप में देने के लिए वह निर्देश दे सकता है।

१९५० के अधिनियम में औद्योगिक ट्रिब्यूनलों के निर्णय की अपील के लिए एक अपील न्यायालय की व्यवस्था की गई, जिसका निर्णय अन्तिम होगा। अत भिन्न-भिन्न औद्योगिक न्यायालयों को आदेश देने तथा एक ही नीति बरतने का काम सुलभ हो गया है। इस अधिनियम के अनुसार विचाराधीन झगडों से सम्बद्ध कर्मचारियों तथा श्रमिकों की दशाओं में उद्योग अधिकारी निर्णय न होने तक न कोई परिवर्तन कर सकते हैं और न समझौता अधिकारी की आज्ञा बिना उन्हें निकाल सकते हैं। इसी वर्ष में इस ट्रिब्यूनल के बैंकिंग कम्पनियां सबधी झगडे के निर्णय को सरकार द्वारा मान्यता न देने पर २३ सितम्बर को अखिल भारतीय बैंकिंग हडताल हुई थी तथा श्रम मन्त्री ने इस्तीफा दे दिया था। बैंकों के कर्मचारियों में इससे बडा असन्तोष है।

१९४७ तथा १९५० के अधिनियमों से राष्ट्रीय सरकार सन्तुष्ट नहीं थी, अत उसके स्थान पर एक नया अधिनियम बना कर औद्योगिक झगडों के सुचारु रूप से निपटारे के लिए उसने एक व्यापक औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक १९५० म ससद म पेश किया था। इसके ध्येय निम्नलिखित थे —

(१) औद्योगिक झगडों के लिए अखिल भारतीय नियम बना कर ऐसे नियमों में एकरूपता लाई जावे,

(२) देश के सब औद्योगिक न्यायालयों के निर्णयों की अपील के लिए एक केन्द्रीय अपील न्यायालय कायम किया जाय तथा स्थायी श्रम अदालतों की स्थापना की जावे,

(३) हडतालों या तालाबन्दियों को घोषित करने के पूर्व समझौता तथा पारस्परिक बातचीत और सामूहिक विनिमय से झगडों के निपटारा की व्यवस्था होवे, और

(४) इनके असफल होने पर दोनों दलों को मध्यस्थ का निर्णय मानना पडेगा।

इसमें प्रदेशीय सरकारों को ऐसे न्यायालयों के निर्णयों को परिवर्तित करने

का भी अधिकार दिया गया था, अवैध तालाबन्दी या हड़ताल को उत्तेजित करने वालो को दोषी करार देने तथा दण्ड देने की व्यवस्था थी। ऐसे श्रमिक या कर्मचारी उद्योग अधिकारियो द्वारा दिए गए वेतन, अवकाश, भत्ता या प्रावीडेन्ट फण्ड के भाग को पाने मे वचित होगे तथा अवैध तालाबन्दी पर श्रमिको को दूना वेतन देना पडेगा। यदि श्रम सघ उद्योग अधिकारियो के साथ किए गए समझौते को भग करेंगे तो उनकी मान्यता छीन ली जायगी तथा औद्योगिक न्यायालय के निर्णय को न मानने वाले उद्योगो पर भारत सरकार अपना नियन्त्रण कर लेगी। श्रमिको को हड़ताल का अधिकार होगा, पर अवैध हड़ताल, या अवैध हड़ताल से सहानुभूति करने वाले, या मन्दगति से काम करने वाले श्रमिको को जुर्माना तथा जेल की सजा भुगतनी पडेगी। अवैध तालाबन्दी या अन्य अवैध बात करने वाले उद्योग अधिकारियो को भी जुर्माना व सजा भुगतनी पडेगी। जनोपयोगी सेवाओं का क्षेत्र बहुत विस्तृत कर दिया गया है तथा उसमे हड़ताल की मनाही होगी। विधेयक विधान बनने पर पूर्व के सब औद्योगिक झगडो सम्बन्धी अधिनियमो को प्रतिस्थापित करता, पर पुरानी ससद के विसर्जन पर यह विधेयक भी समाप्त हो गया।

नई ससद के सामन विधेयक पेश करने के पूर्व भारत सरकार ने दोनो दलो से सलाह कर ऐसा एक बिल बनाना अच्छा समझा, जिससे पचवर्षीय योजना काल मे उत्पादन अधिकतम हो सके। अत श्रम तथा उद्योग सस्थाओ को इस विषय पर सरकार ने एक प्रश्नावली भेजी। उनके उत्तरो पर अक्टूबर १९५२ मे भारतीय श्रम सम्मेलन ने विचार कर एक श्रम समिति, सम्मेलन के विभिन्न विचारो के आधार पर सभी पक्षो के लिये मान्य, एक योजना बनाने के लिए बनाई। दिसम्बर १९५२ मे विभिन्न मुद्दाओं के आधार पर भारत सरकार को विधेयक बनाने मे सहायता देन के लिये इस समिति ने एक स्मारक पत्र तैयार किया। फरवरी १९५३ मे प्रदेशीय श्रम मन्त्रियो की दिल्ली मे हुई एक बैठक ने इस पर अधिक जोर दिया कि सामूहिक माँगो को आपस मे तय करने के लिये स्वेच्छापूर्वक समझौते या पच मान कर समझौते की रीति अपनाई जाय, तथा केवल जनोपयोगी सेवाओ से सबद्ध सघर्षो मे ही पचनामा समझौते का सिद्धान्त अनिवार्य हो। पर प्रदेशीय सरकारो को यह अधिकार हो कि वे अन्य सेवाओं मे भी आवश्यक समझ कर इस नियम को लागू कर सकें।

प्रान्तीय अधिनियम

विभिन्न राज्य सरकारो ने भी औद्योगिक झगड़ो के हल करने के प्रयत्न

किये है। १९२९ के अधिनियम की त्रुटियों के कारण बम्बई व्यापारिक संघर्ष अधिनियम १९३४ में पास हुआ। यह सूती मिलों पर लागू था और समझौते की व्यवस्था करने के लिए श्रम अधिकारी की नियुक्ति का इसमें प्रावधान था। श्रम अधिकारी के समझौता कराने में असफल होने पर एक श्रम कमिश्नर की नियुक्ति की जा सकती थी जो मुख्य समझौता कराने वाला होता था। १९३४ में एक श्रम अधिकारी की नियुक्ति हुई तथा मिल मालिक संघ ने भी एक श्रम अधिकारी को कमिश्नर तथा अधिकारी के साथ काम करने के लिए नियुक्त किया। इस अधिनियम से दोनों दलों के सम्बन्ध सुधर गया था।

श्रम आयोग की सिफारिशों पर मद्रास में एक श्रम कमिश्नर नियुक्त किया गया, और पंजाब में उद्योगों के संचालक तथा मध्य प्रदेश में उद्योग-संचालक तथा आँकड़ों के संचालक और डिप्टी कमिश्नरों को समझौता अधिकारियों के अधिकार सौंपे गये। बम्बई के बाद उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार तथा मद्रास में भी श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की गई। तीन साल तक औद्योगिक शान्ति रही, फिर हड़तालों की बाढ़ सी आ गई।

अत. १९३८ में बम्बई औद्योगिक संघर्ष अधिनियम बनाया गया जो प्रान्त के सब सूती मिलों पर, और केवल द्वीप के रेशम मिलों पर लागू किया गया। इसमें समझौता और मध्यस्थता द्वारा शान्तिपूर्ण औद्योगिक सम्बन्धों की वृद्धि की व्यवस्था की गई थी। हड़ताल तालाबन्दी करने के पहले प्रत्येक व्यापारी झगड़े की जाँच आवश्यक थी, तथा समझौता और मध्यस्थता के तरीके के असफल होने पर ही हड़ताल या तालाबन्दी की जा सकती थी। मजदूरियों, काम के घण्टों या नियोजन की शर्तों में परिवर्तन करने के अपने इरादे की सूचना श्रमिकों के प्रतिनिधियों को देना नियोजकों के लिए अनिवार्य था। सब फैसलों और समझौतों की रजिस्ट्री करानी पड़ती थी। समझौता कराने वालों तथा समझौता बोर्ड की नियुक्ति के अतिरिक्त, अध्यक्ष के रूप में एक हाईकोर्ट के जज के साथ एक औद्योगिक अदालत, झगड़े में मध्यस्थता करने के लिए तथा समझौतों व निर्णयों आदि के लिए एक अन्तिम अपील की अदालत के रूप में कार्य कर फैसला देने के लिए स्थापित की जाती थी।

१९३८ के अधिनियम का पुनर्निरीक्षण तथा प्रतिस्थापन बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९४७ द्वारा किया गया और इसमें १९४८ में संशोधन

हुए। इसमें मजदूरी बोर्डों तथा अनिवार्य संयुक्त समितियों की स्थापना की व्यवस्था की गई है। इसमें झगडों की रोक थाम तथा निपटारे के अतिरिक्त कई और बातों की व्यवस्था कर इसे एक प्रगतिशील नियम बनाया गया है। इसमें श्रम नियम संहिता (Labour Codes), अनिवार्य मध्यस्थता, संयुक्त समितियाँ तथा प्रत्येक फैक्ट्री में श्रम की दशाओं का रिकार्ड रखने की व्यवस्था करने की राज्यकीय सरकार के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई है।

त्रिदल सम्मेलन तथा औद्योगिक विराम सन्धि और उसके बाद

श्रम सनियम में एकरूपता लाने के अतिरिक्त भारत सरकार औद्योगिक वातावरण में शान्ति स्थापित करने के लिए द्वितीय विश्वयुद्ध से प्रयत्नशील हो रही है। इस अभिप्राय से १९४०, ४१, ४२ में दिल्ली में श्रममंत्रियों की बैठकें की गईं तथा १९४१ तथा १९४२ में इन सम्मेलनों के पूर्व केन्द्रीय श्रम-मन्त्री तथा मिलमालिकों के बडे बडे संघों तथा अखिल-भारतीय व्यापार संघ कांग्रेस के प्रतिनिधियों की अलग बैठकें हुईं। अगस्त १९४२ में दिल्ली में तीनों दलों के प्रतिनिधियों की खुली बैठक ने श्रम दशाओं से सम्बन्धित सब प्रश्नों पर विचार करने के लिए एक त्रिदल संस्था तथा सरकार, नियोजकों और श्रमिकों के संगठनों द्वारा सुपुर्द श्रम सम्बन्धी सब प्रश्नों पर विचार करने तथा जाँच के लिए एक स्थायी श्रम समिति की स्थापना करने के लिए तय किया। उसके बाद यह तय हुआ कि खुली बैठक केवल साधारण समस्याओं तथा नीति से ही सम्बन्ध रक्खे, एक श्रम हितकारी समिति श्रमहित तथा श्रम सनियमों के शासन से सम्बद्ध हो, तथा स्थायी श्रम समिति केवल सम्मेलन की अभिकर्ता के रूप में कार्य करे। इस निश्चय पर बागानों, सूती, सीमेन्ट, चमडा तथा कोयला उद्योगों के लिए औद्योगिक समितियों की स्थापना की गई।

१९४६ में अन्तरिम सरकार ने श्रम की दशाओं में सुधार के कार्यक्रम का श्रीगणेश करने के पूर्व श्रम मन्त्रियों की एक अलग बैठक बुलाई और उनके श्रम कार्यक्रम पर ब्योरेवार वाद विवाद के बाद एक संयुक्त बैठक तथा एक विशेष सम्मेलन श्रमिकों तथा नियोजकों का १९४६ के अन्त तक तथा पंचवर्षीय कार्यक्रम पर विचार करने के लिए किया गया था।

तत्पश्चात् राष्ट्रीय सरकार ने औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार करने तथा उन्हें एक स्वस्थ तथा स्थाई नींव पर आधारित रखने का बीडा उठाया और इस भावना से प्रेरित होकर दिसम्बर १९४७ में बडे बडे मिल मालिकों तथा

श्रमिकों के नेताओं का सम्मेलन किया। घटते हुए औद्योगिक उत्पादन को बढाने, श्रम के लिए काम की उचित दशाओ तथा मजदूरी आदि, तथा मिल मालिक के लिए उचित लाभ की व्यवस्था करने के लिए १५ दिसम्बर १९४६ को यह सम्मेलन सर्वसम्मति से एक औद्योगिक विराम-सन्धि समझौता पर पहुँचा। तीन वर्ष के लिए इसमे एक "औद्योगिक विराम-सन्धि का प्रस्ताव" स्वीकृत हुआ।

औद्योगिक झगडो के सम्बन्ध मे इस प्रस्ताव मे विचार प्रकट किए गए थे, औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि, जो देश की अर्थ-व्यवस्था के लिए इतनी महत्वपूर्ण और आवश्यक है, श्रम तथा प्रबन्ध मे पूर्णतम सहयोग तथा उनमें स्थायी और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धो के बिना, नही प्राप्त हो सकती। श्रमिको के लिए उचित मजदूरी तथा श्रम की सतोषजनक दशाओ की व्यवस्था नियोजक को अवश्य करना चाहिए। अत्यधिक लाभो का त्याग करना चाहिए। दूसरी ओर श्रमिको को राष्ट्रीय आय की वृद्धि मे अपने अनुदान को आवश्यक कर्त्तव्य समझना चाहिए तथा हडतालों को त्यागना चाहिए।" जनता का रहन-सहन का स्तर तभी ऊँचा उठ सकता है। दोनो दलो को चाहिए कि अपनी समस्याओं पर मिल-जुलकर विचार करें तथा झगडो को सुलझाने के लिए हडताल या तालाबन्दी न करे। पूँजीपतियो को उचित ब्याज तथा श्रमिकों को उचित वेतन और औद्योगिक विकास के लिए उचित कोषो की व्यवस्था होनी चाहिए तथा उसके बाद के शेष धन का दोनों दलो मे वितरण होना चाहिए। उपभोक्ताओ तथा आधारी उत्पादको के हितो के लिए करो द्वारा अधिक लाभ पर रोक लगाई जानी चाहिए।

वैध उपायो द्वारा औद्योगिक झगडो के शान्तिपूर्ण निपटारे, उचित मजदूरियो तथा काल की दशाओ के निर्धारण की उपयुक्त व्यवस्था प्रत्येक औद्योगिक व्यवसाय मे कार्य-समितियो का निर्माण तथा श्रमिको के आवास में सुधार करने के लिए सम्मेलन ने सिफारिश की थी। विराम-सन्धि प्रस्ताव के मूलभूत सिद्धान्तो को भारत सरकार ने ६ अप्रैल १९४८ को घोषित अपनी औद्योगिक नीति प्रस्ताव का प्रधान अग बना लिया तथा सम्मेलन की सिफारिशो को कार्यान्वित करके की घोषणा की।

इस अभिप्राय से मई १९४८ मे श्रम-मन्त्रियो के एक सम्मेलन मे नीचे लिखी बातें तय पाई :—

(अ) सन्धि-विराम व्यवस्था के लिए केन्द्रीय तथा राज्यवीय निदल

सलाहकारी समितियों की स्थापना की जाय;

(ब) उचित मजदूरियों तथा पूंजी पर उचित प्रतिफल या लाभ को निर्धारित करने के लिए विशिष्ट समितियों की स्थापना की जाय;

(स) १० वर्षों में श्रमिकों के लिए १० लाख मकानों को बनाने के लिए एक आवास बोर्ड स्थापित किया जाय।

श्रम सचिवालय द्वारा स्थापित नियोजन विनिमयो (एम्पलायमेण्ट एक्सचेंज) तथा प्रशिक्षण केन्द्रों को स्थायी आधार पर रखा गया। लाभ वितरण पर एक विशिष्ट समिति भी नियुक्त की जाने को थी।

श्रम की समस्याओं पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देने के लिए ६ अगस्त १९४८ को केन्द्रीय सलाहकार परिषद की स्थापना हुई और इसे सहायता देने के लिए प्रत्येक बडे उद्योग के लिए अलग-अलग समितियाँ बनाई गई है। राज्यकीय क्षेत्र में इसी प्रकार प्रत्येक बडे उद्योग के लिए औद्योगिक उप-समितियों के साथ सलाहकार परिषदो की स्थापना की गई है। प्रत्येक बडी औद्योगिक सस्था के लिए श्रमिको तथा नियोजकों के प्रतिनिधियों की कार्य-समितियाँ तथा उत्पादक समितियाँ बनाई गई है। उचित मजदूरियो तथा पूंजी पर उचित ब्याज और सम्बन्धित बातो को निर्धारित करने के लिए टेक्सटाइल्स, कोयला तथा बागानों के लिए त्रिदल औद्योगिक उपसमितियो की स्थापना हुई है। टेक्सटाइल समिति ने अधिक कपडा उत्पादन के क्रमो, तीन पालियों की मान्यता, प्रॉवीडेण्ट फण्ड की एक योजना तथा मजदूरियो के प्रमाणीकरण पर विचार करने का सुझाव रखा है। कोयला समिति ने एक प्रॉवीडेण्ट फण्ड की योजना, उत्पादनो पर बोनस का भुगतान, तथा एक प्रशिक्षण स्कूल की स्थापना का सुझाव रखा है। बागान समिति ने न्यूनतम मजदूरियों के निर्धारण तक अधिक महगाई भत्तो के भुगतान के लिए व्यवस्था की है तथा १२ वर्ष से कम के बच्चो के नियोजन को खत्म कर दिया है। चमडा कमाने, सीमेण्ट तथा पक्के चमडे के उद्योगो के लिए भी त्रिदल औद्योगिक समितियाँ बनी है।

औद्योगिक नीति मे श्रमिको मे उद्योग के लाभ वितरण के लिए उनके उत्पादन की मात्रा को आधार माना गया था। इसके लिए २५ मई १९४८ को लाभ वितरण समिति तथा नवम्बर १९४८ में उचित वेतन समिति नियुक्त की गई। लाभ वितरण समिति, जिसमें श्रमिको, नियोजक सगठनों तथा भारत सरकार के उद्योग और पूर्ति, श्रम, वित्त तथा वाणिज्य मन्त्रालयो के प्रतिनिधि शामिल थे, ने आगे लिखी बातो पर १ सितम्बर १९४८ को अपनी रिपोर्ट

दी :—(१) उद्योग मे लगी पूँजी पर उचित लाभ, (२) उद्योग मे संचालन तथा विस्तार के लिए उचित संचित कोष, (३) ऊपर लिखित (१) व (२) की व्यवस्था के बाद एक फिसलते हुए पैमाने पर गणित तथा साधारणतः उत्पादन के साथ परिवर्तित शेष लाभो मे श्रमिको का भाग।

समिति ने सिफारिश की थी कि घिसावट, कर, प्रबन्ध अभिकर्ता कमीशन तथा साधारण काम के व्ययो को कुल लाभो मे से घटाने के बाद शुद्ध लाभो का १० % संचित कोष मे ले जाया जाय तथा चुकता पूँजी और संचित पर ६% का लाभांश पूँजी पर उचित प्रतिफल होगा। शुद्ध लाभो के अवशेष का ५० . ५० आधार पर हिस्सेदारो तथा श्रमिको मे वितरण कर देना चाहिए। श्रमिको के भाग को पूर्व के १२ मासो में प्रत्येक श्रमिक की बेसिक मजदूरी के आधार पर वितरण करना चाहिए।

समिति ने यह भी सिफारिश की थी कि सर्वप्रथम इस योजना को ५ वर्षो तक सूती मिलो, जूट, इस्पात, सीमेण्ट तथा सिगरेट उद्योगो मे चालू कर देखना चाहिए। इस लाभ वितरण योजना के केन्द्रीय सलाहकार परिषद ने नवम्बर १९४८ मे लखनऊ की अपनी बैठक मे स्वीकार किया था और कार्यान्वित करने के पहले उचित मजदूरियो पर विशिष्ट समिति द्वारा इस पर विचार किया जाने को था।

इसके अतिरिक्त इस परिषद ने उचित मजदूरियो के सिद्धान्तो के निर्धारण तथा उसकी प्राप्ति के उपाय पर भी विचार विमर्श किया, औद्योगिक सम्बन्धो तथा कार्य समितियो के कार्यों का पर्यवक्षण, उत्पादन समितियो के मसविदा विधान तथा विभिन्न उद्योगो के लिए औद्योगिक समितियो की स्थापना पर विचार किया।

इण्डस्ट्रियल-डिस्प्यूट्स (संशोधन) एक्ट सन् १९५६

औद्योगिक झगडो के निवारणार्थ सन् १९४७ के एक्ट के अन्तर्गत औद्योगिक न्यायालयो (Industrial Courts) की स्थापना की गई थी। विभिन्न न्यायालयो ने विभिन्न निर्णय दिए, जिससे अनेक असुविधाएँ व कठिनाइयाँ उत्पन्न हो गई। इस दोष को दूर करने के लिए सन् १९५० मे लेबर एपीलेट ट्रिब्यूनल की स्थापना हुई। श्रमिक संघो द्वारा इसका विरोध हुआ। 'इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस' ने भी इसकी कटु आलोचना की। नियोक्तागण (Employers) भी इसके पक्ष मे नही थे, क्योकि सन्

१९५० के (संशोधन) एक्ट के अनुसार वे श्रमिकों से बदला लेने का कोई कार्य नहीं कर सकते थे। श्रमिकों व नियोक्ताओं के विरोध के कारण ट्रिब्यूनल की दैनिक कार्य विधि में बाधाएँ पड़ने लगीं।

फलस्वरूप जुलाई सन १९५६ के इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स (संशोधन) एक्ट ने लेबर एपीलेट ट्रिब्यूनल को खत्म कर दिया और उसके स्थान पर दो नये न्यायालयों (Courts) की स्थापना की।

इन्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स (संशोधन) ऐक्ट १९५६ की विशेषताएँ

इस एक्ट की निम्नलिखित दो मुख्य विशेषताएँ है —

(१) इस तिथि के बाद से श्रमिक 'लेबर एपीलेट ट्रिब्यूनल' में अपील न कर सकेगा। परन्तु यदि कोई निर्णय अधिकार के अतिरिक्त तथा प्राकृतिक न्याय के विरुद्ध दिया गया है तो श्रमिक सुप्रीम कोर्ट तथा हाईकोर्ट में अपील कर सकता है।

(२) इस एक्ट के अनुसार निम्न तीन न्यायालयों की स्थापना होगी —

(अ) श्रम न्यायालय (Labour Courts)

(ब) औद्योगिक ट्रिब्यूनल (Industrial Tribunals)

(स) राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल (National Tribunals)

(अ) श्रम न्यायालय (Labour Courts)—एक्ट के अन्तर्गत सरकार औद्योगिक झगड़ों के निवारणार्थ एक या अधिक श्रम न्यायालयों की स्थापना कर सकती है। इसमें के एक जज होगा जो भारतवर्ष के किसी न्यायालय में कम से कम ७ वर्ष तक जज रहा हो अथवा किसी राज्य सरकार द्वारा स्थापित श्रम न्यायालय में ५ वर्ष तक सभापति रहा हो। श्रम न्यायालयों में निम्न प्रकार के झगड़े (जो कि एक्ट की तालिका न० २ में दिए हैं) तय किए जावेंगे —

(१) स्थायी आदेशों के आधार पर नियोक्ताओं (Employers) के किसी आदेश की वैधानिकता प्रमाणित करना।

(२) स्थायी आदेशों का प्रयोग तथा उनका स्पष्टीकरण।

(३) श्रमिक को निकालना तथा गलती से निकाले हुए श्रमिक को फिर रखना तथा उनका हर्जाना तय कराना।

(४) किसी प्रचलित (Conventional) रियायत तथा सुविधा को वापिस लेना।

(५) ताले बन्दी (Lock-outs) तथा हड़तालो की वैधानिकता तथा अवैधानिकता प्रमाणित कराना।

(६) तीसरी तालिका के अतिरिक्त अन्य विषय।

यदि किसी झगडे के सम्बन्ध मे श्रमिको की सख्या १०० से कम है तो तीसरी तालिका से सम्बन्धित विषय भी श्रम न्यायालय द्वारा तय होगे।

तीसरी तालिका से सम्बन्धित विषय निम्नलिखित है —

(१) वेतन, जिसमे समय तथा पद्धति सम्मिलित है।

(२) क्षति पूर्ति (Compensation) तथा अन्य भुगतान।

(३) कार्य के घण्टे तथा अवकाश का समय।

(४) सवेतन छुट्टी तथा छुट्टियाँ।

(५) पारितोषिक, लाभ का विभाजन तथा प्राविडेण्ट फण्ड।

(६) स्थायी आदेश के अतिरिक्त पाली (Shift) मे काम कराना।

(७) श्रेणी (Grade) के अनुसार वर्गीकरण।

(८) अनुशासन के नियम।

(९) विवेकीकरण।

(१०) श्रमिको की छँटनी तथा सार्थ की समाप्ति।

(११) अन्य सम्बन्धित विषय।

नोट —झगडो को इस न्यायालय मे भेजने का अधिकार केवल सरकार को होगा। प्रत्येक राज्य सरकार के अलग-अलग श्रम न्यायालय होगे।

(२) औद्योगिक ट्रिब्यूनल (Industrial Tribunals)—इसकी स्थापना सन् १९४७ के एक्ट के अनुसार हुई है। यदि किसी झगडे मे १०० से अधिक श्रमिक सम्मिलित है तो ऐसे तालिका २ एव तालिका ३ के झगडे निर्णय के लिए अब इस ट्रिब्यूनल मे भेजे जा सकेंगे। ट्रिब्यूनल का सभापति केवल वही व्यक्ति हो सकेगा जो किसी हाईकोर्ट का जज हो अथवा रहा हो अथवा कम से कम २ वर्ष तक लेबर एपीलेट ट्रिब्यूनल अथवा अन्य ट्रिब्यूनल का अध्यक्ष रहा हो।

इस समय दो औद्योगिक ट्रिब्यूनल हैं :—एक धनबाद मे और दूसरा नागपुर मे। नागपुर का औद्योगिक ट्रिब्यूनल, श्रम न्यायालय (Labour Court) की भाति भी कार्य करता है। इसके अतिरिक्त दिल्ली मे एक 'एडहॉक इन्डस्ट्रियल ट्रिब्यूनल' है।

(३) राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल (National Tribunal)—तालिका २ व ३ के विषयो की जाँच उसी अवस्था मे करेगा जब कि विषय अनेक राज्यो से अथवा राष्ट्र से महत्व का है। इसका सभापति भी केवल वही व्यक्ति हो सकता है, जोकि औद्योगिक ट्रिब्यूनल का सभापति होने की योग्यता रखता हो।

एक एडहॉक (Ad-hoc) राष्ट्रीय ट्रिब्यूनल लखनऊ मे कार्य कर रहा है।

इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स (सशोधन) एक्ट १९५६ के अनुसार उत्तर-प्रदेशीय सरकार ने इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट १९४७ मे तथा इण्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स (एपीलेट ट्रिब्यूनल) एक्ट १९५० मे उचित सशोधन कर दिए हैं और उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति भी प्राप्त हो गई है।

वर्तमान काल में औद्योगिक शान्ति स्थापित करने के निमित्त सरकार द्वारा किए गए प्रयत्नो का सक्षिप्त विवरण

(१) इण्डस्ट्रियल एम्प्लायमैंट स्टैंडिंग आर्डर्स एक्ट १९४६—इस एक्ट के अन्तर्गत केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो ने ऐसी औद्योगिक सार्थो, जिनमे १०० या अधिक कर्मचारी कार्य करते है, के लिए आदर्श नियम (Model rules) बनाए है। यह नियम पश्चिमी बगाल के ऐसे उद्योगो (Establishments) मे जिनमे ५० या अधिक कर्मचारी कार्य करते है, तथा कुछ दशाओ मे उत्तर प्रदेश के सब औद्योगिक सार्थो मे जिनमे १०० से भी कम कर्मचारी कार्य करते है, लागू कर दिया गया है। असम मे यह नियम ऐसे सब उद्योगो जिनमे १० या अधिक कर्मचारी कार्य करते है लागू होता है, परन्तु असम के इन उद्योगो मे खाने, क्वैरीज़ (Quarries), आयल फील्ड्स तथा रेल्वेज सम्मिलित नही है।

(२) उद्योगो मे अनुशासन—इस सम्बन्ध मे 'इण्डियन लेबर कान्फ्रेंस' तथा 'स्टैंडिग लेबर कमेटी' के परामर्श से अनुशासन कोड तैयार किया गया है। इसका प्रशासन एव निरीक्षण त्रिदलीय समिति (Tripartite Committee) के द्वारा होगा।

(३) वर्क्स कमेटी—इण्डियल डिस्प्यूट्स एक्ट, १९४७—इसके अन्तर्गत अक्टूबर १९५७ तक ७७९ कार्यवाहक समितियाँ (Works Committees) स्थापित हो चुकी थी। विभिन्न राज्यो मे १९५४–५५ मे कार्यवाहक

समितियाँ तथा उत्पादन समितियाँ २०९५ की सख्या मे थी।

(४) त्रिदलीय योजना (Tripartite Machinery)—इसने केन्द्रीय स्तर पर 'इण्डियन लेबर कान्फ्रेंस', 'स्टैंडिंग लेबर कमेटी' तथा 'इण्डस्ट्रियल कमटीज़' तथा कुछ अन्य सम्मिलित हैं। इसके अतिरिक्त इसमे बहुत कुछ सम्बन्धित एक 'लेबर मिनिस्टर्स कान्फ्रेंस' भी है, परन्तु यह त्रिदलीय योजना की प्रकृति की नहीं है। १९५७ मे इन समितियो ने अपनी वार्षिक बैठको मे मजदूरी नीति, उद्योगो म अनुशासन, विवेकीकरण, श्रमिको की शिक्षा तथा श्रमिको के उद्योगो के प्रबन्ध मे भाग लेने (Workers Participation in Management) के सम्बन्ध मे चर्चा की। 'बागानो की औद्योगिक समिति' (Industrial Committee on Plantations) की आठवीं वार्षिक बैठक शिलाग मे २ जनवरी, १९५८ को हुई। लौह एव स्पात तथा केमीकल उद्योगो के लिए भी नई औद्योगिक समितियो को स्थापित करने का निश्चय किया गया है। धातु-खानो तथा कोयला-खानो के लिए भी ऐसी समितिया की स्थापना का प्रश्न विचाराधीन है।

(५) कान्सीलियेशन मशीनरी—केन्द्रीय क्षेत्र के उद्योगो के औद्योगिक सबधो का प्रशासन चीफ लेबर कमिश्नर के द्वारा होता है। चीफ लेबर कमिश्नर की सहायता के लिए एक क्षेत्रीय-सगठन (Regional Organisation) है, जिसम 'रीजनल लेबर कमिश्नर्स', कान्सीलियेशन आफीसर्स' तथा 'लेबर इन्स्पैक्टर्स' सम्मिलित है।

प्रथम पचवर्षीय योजना

इस योजना म प्लानिग कमीशन ने श्रम-नीति, श्रमिक एव नियोक्ताओं के सम्बन्धो का ठीक रखने के लिए त्रिदल सभा का सुझाव दिया था, जिससे सरकार, नियोक्ता एव श्रमिको का प्रतिनिधित्व हो। इसकी स्थापना की जा चुकी है।

द्वितीय पचवर्षीय योजना

इस योजना के अन्तर्गत सरकार ने समाजवादी ढग के समाज (Socialistic Pattern of Society) की रचना का उद्देश्य अपना लेने के कारण श्रम-योजना मे भी कुछ परिवर्तन किए है। उदाहरणार्थ प्लानिग कमीशन ने सन् १९५५ मे Representative Panel on Labour की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक उद्योग में प्रबन्ध परिषद (Council of Management)

की स्थापना का सुझाव दिया है। इसमें श्रमिक एवं नियोक्ताओं का समान प्रतिनिधित्व रहेगा।

प्रश्न

1 Analyse the causes of industrial disputes distinguishing clearly between proximate and remote causes What measures would you recommend (1) for settling disputes and (2) for preventing them ? (Bombay, B Com, 1940)

2 Why is labour legislation considered necessary ? Examine broadly the principal features of such legislation in this country (Bombay, B Com, 1942)

3. Write a lucid note on the activities of the National Government directed towards the improvement of industrial relations in India

4. How would you account for the phenomenal industrial unrest in India after the close of World War II ? What remedial measures would you suggest ?

अध्याय १७

श्रम सन्नियम

(Labour Legislation)

उद्योगों और उनमें काम करने की दशाओं पर पिछली सदी के लगभग अन्त तक राजकीय नियंत्रण नहीं था और फैक्ट्री विधान के अभाव में नियोजक या मिल मालिक मजदूरों का और विशेषत स्त्रियों और बच्चों का, शोषण करने में स्वतन्त्र थे। फैक्टरियों में काम करने के घंटे बड़े लम्बे थे, मजदूरियाँ बहुत कम थीं, फैक्टरियों में काम करने की दशाएँ अमानुषिक तथा असंतोष-जनक थीं, बच्चों के नियोजन की उम्र का कोई नियमन नहीं था, साप्ताहिक या सामयिक छुट्टियाँ नहीं थी और बिना घेरे हुए मशीनों की दुर्घटना या अंग-भंग से फैक्टरी में श्रमिकों के रक्षार्थ कोई प्रबन्ध नहीं था। यद्यपि उद्योगीकरण की दौड़ में भारत ने देर में भाग लिया तो भी भारतीय उद्योगपतियों ने फैक्ट-रियों की बुराइयों को दूर करने के लिए पाश्चात्य देशों के अनुभव से कोई लाभ नहीं उठाया। अभागे मजदूरों के स्वास्थ्य तथा शक्ति पर गंदे अहातों तथा घनी बस्तियों का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा था।

आधुनिक उद्योग-धन्धों की असहनीय बुराइयों से कुछ भारतीय सार्वजनिक कार्यकर्ताओं तथा मानववादियों का हृदय पिघल गया और फैक्टरियों के श्रमिकों को दयनीय अवस्थाओं में सुधार करने के लिए उन्होंने आन्दोलन प्रारम्भ किया। श्रमिकों के प्रति उनकी सहानुभूति जागृति हुई। इसके बाद सूती कपड़े की मिलों के विकास पर लंकाशायर के उद्योगपतियों में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उनका विचार था कि फैक्ट्री विधान के अभाव में भारतीय बाजार में भारतीय उद्योगपतियों को उनके साथ प्रतिस्पर्द्धा में लाभ था। अत. उन्होंने भारतीय सूती मिलों पर फैक्टरी कानून लागू करने के लिए सरकार पर दबाव डाला। अस्तु १८७५ में बम्बई सरकार ने एक फैक्टरी आयोग की नियुक्ति की जिसकी सिफा-रिशों के फलस्वरूप १८८१ में पहला फैक्ट्री एक्ट बना। तो भी महायुद्ध तक

श्रमिक सन्नियम का कोई महत्वपूर्ण स्थान नहीं था। उसके बाद देश के बढ़ते हुए औद्योगीकरण, श्रमिक वर्गों में वर्गीय जागृति की वृद्धि तथा उनको अपनी शक्ति तथा महत्व का ज्ञान, भारत सरकार का अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ तथा उसके प्रस्तावों के प्रति उत्तरदायित्व की स्वीकृति, तथा कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के आगमन के कारण अभी हाल में एक बड़ी संख्या में श्रम सन्नियम बनाए गए हैं।

फैक्टरी अधिनियम (Factory Acts)

१८८१ का अधिनियम

फरवरी सन् १८८१ में प्रथम भारतीय फैक्टरी एक्ट पास हुआ, जिसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं —

(१) यह नियम उन फैक्टरियों पर लागू था जिनमें कम से कम १०० व्यक्ति नौकर थे तथा शक्ति का उपयोग किया जाता था।

(२) इसके अनुसार ७ वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को नौकर नहीं रक्खा जा सकता था, तथा ७ और १२ वर्षों के बच्चों से १ घन्टे प्रतिदिन विश्राम के साथ ९ घन्टे प्रतिदिन से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था। माह में कुल ४ छुट्टियाँ दी जा सकती थीं।

अस्तु इसमें बच्चों की सीमित रक्षा की व्यवस्था थी पर वयस्क (Adult) स्त्री, पुरुषों को कोई लाभ नहीं हुआ।

१८९१ का अधिनियम

स्त्री-श्रमिकों के नियमन के अभाव और बच्चे मजदूरों की रक्षा के लिए एक्ट के अपर्याप्त प्रावधानों के कारण १८८१ के विधान में संशोधन की माँग हुई। उधर लंकाशायर के सूती मिल मालिकों ने और कठिन नियमन के लिए भारत सचिव पर दबाव डाला। बम्बई फैक्टरी आयोग (१८८४) तथा फैक्टरी श्रम आयोग (१८९०) की सिफारिशों पर १८९१ में दूसरा फैक्टरी एक्ट पास हुआ जिसकी मुख्य विशेषताएँ यह थी —

(१) यह एक्ट उन फैक्टरियों पर लागू किया गया जिसमें कम से कम ५० व्यक्ति काम करते थे तथा शक्ति का प्रयोग होता था।

(२) इसके अनुसार ९ साल से कम आयु वाले बच्चों को नौकर नहीं रखा जा सकता था तथा ९ और १४ वर्ष के बीच वाले बच्चों के काम के घन्टे ७ कर दिये गये।

(३) स्त्रियों के लिए प्रतिदिन १॥ घन्टे विश्राम के साथ काम के अधिकतम घन्टे ११ निश्चित किये गये थे तथा ८ बजे रात से लेकर ५ बजे सवेरे तक उनको काम पर नहीं लगाया जा सकता था।

(४) पुरुष मजदूरों के लिए १ साप्ताहिक छुट्टी एव ½ घन्टे अवकाश की व्यवस्था की गई।

इन मुख्य प्रावधानों के अतिरिक्त और अधिक हवादार तथा साफ सुथरी फैक्टरियों की और उनमें भीड रोकने की भी व्यवस्था करनी थी।

१९११ का अधिनियम

फैक्टरियो में बिजली के लग जाने तथा प्लेग के कारण काम के घन्टो में काफी वृद्धि हो गई थी और स्वदेशी आन्दोलन की तेजी ने फैक्टरियो में काम करने की परिस्थितियो को और भी बिगाड दिया। लकाशायर ने फिर दबाव डाला और समाचार पत्रों तथा कुछ प्रगतिशील मिलमालिकों ने काम के घन्टो में कमी तथा काम की दशाओं में सुधार करने की मॉग की। फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने १९०६ में 'फ्रियररिमथ समिति' तथा १९०७ में एक फैक्टरी श्रम आयोग को फैक्टरियों म काम की दशाओं की जॉच करने के लिए नियुक्त किया। इन्होंने १९०८ में अपनी रिपोर्ट में पहले के फैक्ट्री नियमों को रद्द करने की सिफारिश की क्योकि इनका उल्लघन किया गया था।

इनकी सिफारिशों पर १९११ का फैक्टरी विधान स्वीकृत हुआ जिसमे पहली बार वयस्क पुरुषो के काम के घन्टो को निश्चित किया गया। इसकी मुख्य धाराएँ निम्नलिखित ह —

(१) फैक्टरी श्रम आयोग ने पुरुषो के काम के घन्टो मे कमी तथा स्त्रियो के काम के घन्टो को ११ से बढाकर १२ कर देने की सिफारिश की थी, पर स्त्रियों के काम के घन्टे ११ ही रहे, हालाकि अधिकतम स्वीकृत घन्टो तक काम करने वालों के लिए १॥ घन्टे के विश्राम मे कमी कर दी गई थी।

(२) टेक्सटाइल (कपडे बनाने वाली फैक्टरियो) में प्रतिदिन काम के घन्टे पुरुषों के लिए १२ थे।

(३) बच्चों के लिए काम के घन्टे ६ निश्चित किये गये।

(४) यह विधान ४ महीने से कम के लिए काम करने वाले अस्थायी (मौसमी) फैक्टरियो पर भी लागू किया गया।

(५) स्वास्थ्य तथा सुरक्षा के लिए और व्यापक प्रावधानो की व्यवस्था की गई तथा आयु प्रमाण रखना अनिवार्य कर दिया गया।

१९२२ का नियम

१९२० मे बम्बई मिलमालिको के सघ ने वायसरॉय को भारत मे सब कपडा बनाने वाली फैक्टरियो मे काम के घन्टो को १२ की अपेक्षा १० पर ही विधवत् सीमित कर देने के लिए एक 'स्मारक' पेश किया। अत १९११ के विधान को सशोधित किया गया और १९२२ मे एक सगठित फैक्टरी एक्ट स्वीकृत हुआ। इसमे मुख्य बातें निम्नलिखित थी --

(१) यह एक्ट २० व्यक्तियो को नौकर रखने तथा शक्ति प्रयोग करने वाले सब सस्थानो पर लागू किया गया।

(२) १२ वर्ष के नीचे की आयु वाले बच्चों को, और एक दिन मे दो फैक्टरियों में, काम पर लगाने से रोक लगा दी गई।

(३) १२ और १५ वर्ष के बीच वाले बच्चो के लिए ४ घन्टे के काम के बाद १॥ घन्टे के विश्राम के साथ काम के घन्टे ६ निश्चित किये गये।

(४) वयस्को के लिए काम के घन्टे प्रतिदिन ११ तथा ६ दिनो के प्रत्येक सप्ताह के लिए ६० नियत किये गये।

(५) स्त्रियो और बच्चो को ७ बजे शाम से प्रात ५॥ बजे तक काम पर लगाने से मना कर दिया गया।

(६) प्रान्तीय सरकारों को १० व्यक्तियो को काम पर लगाने वाली सस्थाओ पर चाहे वे शक्ति का प्रयोग करती हो या नही, इस नियम को लागू करने, तथा खुली हवा व कृत्रिम उपायो द्वारा ठडक करने के स्तरो या प्रमापो के निश्चित करने का अधिकार भी उनको दिया गया था।

(७) प्रत्येक ६ घन्टे काम के बाद एक घन्टे का विश्राम या ५ घन्टे लगातार काम करने के बाद श्रमिको के अनुरोध पर दो आधे-आधे घन्टे के विश्राम की व्यवस्था की गई।

(८) नियत समय से अधिक काम (Overtime Works) के लिए साधारण मजदूरी की कम से कम १¼ गुनी मजदूरी नियत की गई।

१९२३, १९२६ और १९३१ के सशोधन विधानो द्वारा केवल छोटे सुधार तथा शासन सम्बन्धी परिवर्तन किये गये।

१९३४ का नियम

अब तक के फैक्टरी विधानो की त्रुटियो तथा मजदूर नेताओ और सामाजिक सुधारको द्वारा भारत मे श्रम सन्नियम को प्रगतिशील देशो के स्तर पर लाने के लिए आन्दोलन के कारण १९२९ मे 'भारत मे श्रम पर शाही आयोग' (Royal Commission on Labour in India) की नियुक्ति हुई। फैक्टरियो म नियोजन (नौकरी) तथा काम की दशाओ म सुधार के लिए इस आयोग ने बडी महत्वपूर्ण सिफारिश की जिनमे से अधिकाश को भारत सरकार द्वारा स्वीकृति के फलस्वरूप फैक्टरी विधान को बिल्कुल नये ढग से तैयार कर एक सगठित फैक्टरी एक्ट १९३४ मे स्वीकृत हुआ जो १ जनवरी १९३५ से लागू हुआ। इसकी मुख्य बातें इस प्रकार हैं --

(१) इस विधान ने स्थायी तथा सामयिक फैक्टरियो म विभेद किया।

(२) १५ और १७ वर्षो के बीच आयु के युवको का एक तृतीय वर्ग बनाया गया।

(३) सामयिक फैक्टरियो मे प्रतिदिन काम के ११ घन्टे तथा प्रति सप्ताह ६० घन्टा प्रौढो के लिए ज्यो के त्यो बने रह परन्तु स्थायी फैक्टरियो मे कुछ अपवादो क साथ प्रति दिन १० घन्टे तथा प्रति सप्ताह ५४ घन्ट ही काम करना था।•

(४) १२ तथा १५ वर्षों के बीच की आयु वाले बच्चो के लिये प्रतिदिन केवल ५ ही घन्टे काम करने के थे।

(५) सब फैक्टरियो म स्त्रियो के काम के घन्टो को प्रतिदिन ११ से घटा कर १० कर दिया गया तथा ७ बजे शाम से प्रात ६ बज क बीच मे स्त्रियो तथा बच्चो को काम पर लगाने से रोक लगा दी गई।

(६) *यह विधान सभी उद्योग-धन्धो पर लागू किया गया था जिनम २० से अधिक श्रमिक शक्ति द्वारा काम करते थे।*

१९४८ का फैक्टरी विधान

औद्योगिक श्रम सम्बन्धी नियमो को संशोधित करने तथा उन्ह सगठित करने की दृष्टि से १९४८ का फैक्टरी विधान स्वीकृत हुआ और १ अप्रैल १९४९ से लागू किया गया। इस नये विधान की मुख्य-मुख्य बात निम्न-लिखित है --

(१) क्षेत्र—१० या इससे अधिक श्रमिकों को नियोजित करने वाली, तथा शक्ति के प्रयोग करने वाले सब औद्योगिक संस्थाओं में तथा २० या उससे अधिक श्रमिकों को काम पर लगाने वाले, पर बिजली का उपयोग करने वाले कारखानों पर यह नियम लागू होता है। स्थायी या नित्य चलने वाली फैक्टरियों तथा सामयिक (मौसमी) कारखानों के भेद को इस नियम में खत्म कर दिया गया है तथा भारतीय संघ में संयुक्त होने वाली रियासतों तक इसके क्षेत्र का विस्तार कर दिया गया है।

(२) रजिस्ट्री तथा लाइसेन्स—सब फैक्टरियों को राज्य सरकारों से रजिस्ट्री कराना तथा लाइसेन्स (अनुज्ञा पत्र) लेना अनिवार्य है और इसके लिए उन्हें नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। प्रत्येक फैक्टरी के अधिकारी (मालिक) को उस पर अधिकार करने या उसे प्रयोग में लाने के कम से कम १५ दिन पूर्व फैक्टरी का नाम, मालिक का नाम तथा पता, प्रयोग की शक्ति का ब्योरा इत्यादि लिख कर देना पड़ता है। किसी फैक्टरी के *निर्माण तथा विस्तार के लिए पूर्व स्वीकृति लेना अनिवार्य है।*

(३) स्वास्थ्य सुविधायें—श्रमिकों के स्वास्थ्य के निमित्त प्रत्येक फैक्टरी को साफ-सुथरा रखना होता है। कूड़ा-करकट जमा नहीं होने देना चाहिए। इसके लिए विधान झाड़ू लगाने, धूल साफ करने, सफेदी करने, छून से बचाने इत्यादि, प्रत्यक कमरे में प्रकाश व शुद्ध वायु के लिए रोशनदान और श्रमिकों के आराम की उचित दशाओं के लिए आवश्यक तापक्रम की व्यवस्था का आयोजन करता है। १ अप्रैल १९४९ को स्थित फैक्टरियों में प्रत्येक श्रमिक के काम करने के लिए ३५० घन फीट तथा नई फैक्टरियों में ५०० घन फीट स्थान का होना आवश्यक है। पीने के लिए जल, प्रकाश, सन्डासों, तथा पेशाब घरों व थूकदानों इत्यादि का उचित प्रबन्ध होना चाहिए।

(४) सुरक्षा—श्रमिकों के लिए मशीनों के घेरे या बाड़े, नई मशीनों पर बक्स लगाने तथा भारी वजन व मशीनों के उठाने के लिए क्रेनों, लिफ्टों, हायस्टों इत्यादि की समुचित व प्रचुर व्यवस्था होनी चाहिए। स्त्री तथा बच्चों को खतरनाक मशीनों से दूर रखना चाहिए। आग, भयानक धुआं, विस्फोटक या शीघ्र जलने वाली धूल, गैस इत्यादि के विरुद्ध श्रमिकों की रक्षा के लिए सावधानीपूर्ण उपायों की व्यवस्था करना भी आवश्यक है।

(५) श्रमहितकारी कार्य—श्रमिकों के हितार्थ स्नानगृहों, कपड़े

धोने की सुविधाओ, बैठने के कमरो, प्रथम चिकित्सा के सामानों, विश्राम आश्रमो, कपडे रखने तथा भीगे कपडे सुखाने की सुविधाओ, बाल पोपणशालाओ (Creches) या बच्चो की देख भाल की व्यवस्थाओं का समुचित आयोजन होना चाहिए। ५०० या इससे अधिक श्रमिको से काम कराने वाली प्रत्येक फैक्ट्री को श्रमहितकारी अधिकारियो को नियुक्त करना आवश्यक है तथा २५० से अधिक श्रमिकों से काम कराने वाली फैक्टरियो मे कैन्टीनो या भोजन के कमरों की व्यवस्था करना अनिवार्य है।

(६) काम के घंटे तथा छुट्टियाँ—काम करने के दैनिक घटे ९ तथा साप्ताहिक ४८ तथा अधिकतम फैलाव (Spreadover) १०॥ घटे नियत किये गये है। ५ घटे के अनवरत या लगातार काम करने के बाद प्रत्येक श्रमिक को कम से कम आधे घटे का विश्राम अवश्य देना चाहिए। दैनिक तथा तिमाही नियत समय से अधिक काम की सीमायें निर्धारित कर दी गई है और उसके लिए भुगतान मजदूरियो की साधारण दरो की दुगनी राशि पर निश्चित किया गया है। स्त्रियो तथा बच्चो को ७ बजे शाम के बाद और ६ बजे प्रात के पूर्व काम मे नही लगाया जा सकता, पर राज्य सरकारो को विशेष दशाओ मे इन सीमाओं मे हेर-फेर करने का अधिकार प्राप्त है। सप्ताह मे एक दिन की छुट्टी भी अनिवार्य कर दी गई है। बच्चो के काम के घटे ४॥ से अधिक नही हो सकते। प्रत्येक प्रौढ श्रमिक को पूरे १२ मास अनवरत या लगातार एक फैक्ट्री मे काम करने पर आगामी १२ मासो की अवधि मे मजदूरी तथा महँगाई भत्ता के साथ न्यूनतम (कम मे कम) १० दिन की अवधि तक छुट्टी मिलेगी। इस छुट्टी की अवधि की गणना पहले के १२ महीनो मे उसके द्वारा प्रत्येक २० दिनो के काम करने पर १ दिन की दर पर की जायगी तथा बच्चो को काम के प्रत्येक १५ दिनो के लिए १ दिन की दर पर कम से कम १४ दिनो की छुट्टी मिलेगी।

(७) आयु तथा योग्यता का प्रमाण—१४ वर्षो से कम आयु वाले बच्चो को किसी फैक्टरी मे नौकर नही रखा जा सकता। १४ वर्ष पूरा कर लेने वाले बच्चो तथा १८ वर्षो से कम आयु वाले युवको को १८ वर्ष पूरा कर लेने पर अपनी आयु तथा योग्यता का एक प्रमाणपत्र सिविल सर्जन से लेकर फैक्टरी सचालक को देने पर ही काम मे लगाया जा सकता है। यह प्रमाणपत्र प्रतिवर्ष देना पडता है।

(८) बीमारी की सूचना—अधिनियम की अनुसूची या परिशिष्ट मे उल्लिखित रोगो म किसी एक रोग से ग्रसित होने पर फैक्टरी सचालक को एक विशेष प्रपत्र तथा सीमित समय मे उपयुक्त अधिकारियो को सूचित करना पडता है तथा ऐसे श्रमिक के किसी डाक्टर द्वारा जाँच की लिखित रिपोर्ट फैक्टरी के प्रमुख निरीक्षक को भेजना पडता है।

(९) जुर्माना—ऐक्ट के प्रावधानो को भग करने पर जुर्माना की व्यवस्था की गई है। यदि श्रमिक जानबूझ कर मशीनो को खराब करता है तो उसे कारावास का दण्ड दिया जा सकता है और यदि थूकदानो के अतिरिक्त व अन्य स्थानो मे थूकता है तो उसे जुर्माना देना पडता है।

बागान श्रम नियम (Plantation Labour Laws)

भारत मे सगठित उद्योग का प्रथम स्वरूप बागान था। श्रम की समस्याओ तथा बागान मालिको और श्रमिको के पारस्परिक सम्बन्धो के नियमन के लिए १९०१ मे आसाम श्रम तथा प्रवास नियम पास किया गया था। इसके अनुसार आसाम के चाय बागानो के लिए लाइसेन्सदार ठेकेदारो द्वारा मजदूरो की भरती होती थी। इन ठेको मे दासता निहित रहती थी। अत स्वाभिमानी भारतियो द्वारा इसकी तीव्र आलोचना तथा विरोध हुआ। अस्तु १९०८ तथा १९१५ मे इसमे सशोधन हुआ और लाइसेन्सदार ठेकेदारो द्वारा भरती की पद्धति को रद्द कर दिया गया।

१९१५ के विधान ने कुलीगिरी की प्रथा को खत्म किया पर यह तभी प्रभाव पूर्ण हुआ जब १९२६ और १९२७ मे कामकरो के ठेका भग विधान (Breach of Contract Act) को रद्द कर दिया गया। ठेकेदारो द्वारा भरती के स्थान पर अब श्रम बोर्ड (Labour Board) के अभिकर्ताओ द्वारा भरती होने लगी। केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारो ने बागानो के श्रमिको की दशाओ की पूरी जाँच पडताल १९२६–२८ मे की तथा १९२९ में श्रम पर शाही आयोग ने भी ऐसा ही किया। इस आयोग की सिफारिशो पर भारत सरकार ने १९३२ में 'चाय ज़िला प्रवासी श्रम विधान' पास किया जो १ अक्तूबर १९३३ से लागू किया गया। इसकी प्रमुख बातें निम्न प्रकार हैं —

(१) पहले के बागान विधान का उद्देश्य बागान मालिको के हितो की रक्षा तथा कुलियो की भरती करने में उन्हे अधिकाधिक सहायता देना था पर इस नये विधान का उद्देश्य असम चाय बागानो में प्रवास करने वाले

श्रमिकों की भरती पर नियन्त्रण करना, तथा बागानों तक श्रमिकों के पहुँचने की व्यवस्था में उचित सहायता देना था।

(२) केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण के आधीन प्रान्तीय सरकारों को प्रवासियों के भेजने में सहायता पर, या उनकी भरती तथा भेजने दोनों पर नियन्त्रण करने का अधिकार था। अनुचित रोक थामों से प्रवास को बचाने का भी उद्देश्य था। अधिकृत अभिकर्त्ताओं द्वारा ही निर्देशित मार्गों से असम रास्टों को भेजना था तथा मार्ग में उनके भोजन, विश्राम, दवा, डाक्टरों द्वारा सेवा इत्यादि का पर्याप्त प्रबन्ध करना आवश्यक था।

(३) सोलह वर्ष से कम आयु के लडकों को बिना उनके माता-पिता या संरक्षक के साथ और विवाहित स्त्रियों को बिना उनके पतियों की आज्ञा के असम प्रवास के लिए नहीं भेजा जा सकता था।

(४) प्रत्येक सहायता प्राप्त प्रवासी को प्रथम तीन वर्ष की नौकरी के बाद मालिक के खर्चे पर अथवा पहुँचने के एक वर्ष के अन्दर भी बीमारी के कारण, उसकी शक्ति के अनुकूल काम की अनुपयुक्तता या अन्य पर्याप्त कारणों से नियन्त्रक द्वारा मालिक के पैसों से वापस लौटने का अधिकार था।

खानों में सन्नियम

खानों में काम करने की दशाओं का नियमन करने के लिए भारतीय खानों का पहला विधान १९०१ में बनाया गया, जिसमें काम के घण्टों का नियमन नहीं था, केवल सुरक्षा तथा निरीक्षण के लिए प्रावधान था। वाशिंगटन कान्फ्रेन्स की सिफारिशों के कारण १९२३ में इस विधान का संशोधन किया गया और वह १ जुलाई १९२४ से लागू किया गया। प्रमुख बातें निम्न प्रकार थीं —

(१) इस विधान में पहले काम के घण्टों की सीमा निर्धारित की गई, जो ६ दिन के प्रति सप्ताह में भूमि पर काम करने वालों के लिए ६० घण्टे तथा भूमि के भीतर काम करने वालों के लिए ५४ घण्टे थी।

(२) १३ वर्ष से कम आयु वाले बच्चे को भूमि के भीतर काम पर लगाने से रोक दिया गया।

१९२३ के विधान में भूमि के भीतर औरतों के रोजगार पर कोई रोक-थाम नहीं लगाई गई थी। अतः भूमि के भीतर काम करने वाले श्रमिकों की कुल संख्या की ४५% स्त्रियाँ थीं। लोक समिति के इसके विरुद्ध होने तथा

आन्दोलन के कारण भारतीय सरकार ने १९२३ के एक्ट के अन्तर्गत १९२९ में कुछ नियमों को पास कर भूमि के भीतर कुछ खानों में औरतों को काम पर लगाने की मनाही कर दी थी। पर बंगाल, बिहार और उड़ीसा, मध्यप्रदेश की कोयले की खानों तथा पंजाब की नमक की खानों में औरतों का नियोजन प्रति वर्ष धीरे-धीरे उनकी संख्या में कमी कर, १ जुलाई १९३० से बन्द होने को था। वे भूमि के ऊपर तथा खुले मैदान में खाना में काम कर सकती थीं।

शाही श्रम आयोग की सिफारिशों तथा १९३१ की अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कान्फ्रेन्स द्वारा कायले की खाना म काम के घण्टों पर मसविदा कनवेन्शन (Draft Conventions) की स्वीकृति के फलस्वरूप भारतीय खानों का (संशोधन) विधान १९३५ में पास हुआ, तथा अक्टूबर १९३५ से लागू हुआ। इसकी प्रमुख प्रमुख धाराएँ इस प्रकार थीं —

(१) इसके अनुसार कोई व्यक्ति खानों में सप्ताह में ६ दिन से अधिक काम नहीं कर सकता।

(२) भूमि पर काम करने वाले श्रमिकों को साप्ताहिक ५४ घण्टे या दैनिक १० घण्टे तथा भूमि के भीतर काम करने वालों के लिए दैनिक ९ घण्टे काम के निश्चित हुए, भूमि पर ६ घण्टे काम के बाद १ घण्टे विश्राम के साथ काम के समय का फैलाव १२ घण्टे से अधिक नहीं हो सकता।

(३) १५ वर्ष से कम आयु वाले बच्चों को खानों म नहीं लगाया जा सकता और १७ वर्ष से कम आयु वालों को योग्यता या बिना डाक्टरी प्रमाण-पत्र दिए नहीं काम दिया जा सकता।

१९३६, १९३७, १९४५ के अध्यादेश तथा १९४६ के विधान में इन नियमों में छोट मोट संशोधन किए गए। १९४५ के अध्यादेश द्वारा खानों में शिशु-पालनों की व्यवस्था की गई थी, पर १९४७ में इसे एक्ट की धाराओं में ही सम्मिलित कर दिया गया। १९४६ के विधान में खान के मुँह पर या उसके समीप पुरुषों तथा स्त्रियों के लिए पृथक पृथक बन्द स्नानगृहों की अनिवार्य व्यवस्था का प्रावधान किया गया था। दुर्घटनाओं के कारण शारीरिक चोटें तथा काम से ७ दिन से अधिक के लिए गैरहाजिरी का निर्देशित ढंग में उल्लेख करना अनिवार्य है।

आग बुझाने तथा अन्य रक्षार्थ उपायों की व्यवस्था १९४७ के कोयले की खानों (स्टोविंग) में संशोधन एक्ट द्वारा की गई थी। इसके लिए एक Coal Mines Stowing Fund स्थापित किया गया है।

दी कोल माइन्स प्राविडेण्ट फन्ड एण्ड वोनस एक्ट १९४८

यह कोयले की खानो के श्रमिको को प्राविडेण्ट फण्ड के लाभ की व्यवस्था करता है। इसके लिए खान मालिक श्रमिको के वेसिक वेतन के प्रति रुपये पर एक आना देता है तथा श्रमिक उतना ही अपने वेतन से कटवाता है। इससे इन श्रमिको को वोनस देने की भी एक वोनस योजना शामिल है। एक 'कोल माइन्स लेबर हाउसिंग वोर्ड' भी स्थापित किया गया है जो भारत सरकार की स्वीकृति से श्रमिको के लिए फण्ड मे घर बनाने की योजना बनाता है और उसे कार्यान्वित करता है। १९४९ मे एक सशोधन के द्वारा जनरल फण्ड से श्रमिको के हितकारी कार्य सम्बन्धी अस्पताल या मातृ गृह आदि बनाना भी इस वोर्ड के आधीन कर दिए गए है।

अभ्रक की खानो मे काम करने वाले श्रमिको के हित के लिए 'दि माइका माइन्स लेबर वेलफेयर फण्ड एक्ट' १९४६ के द्वारा एक श्रम हितकारी कोष की स्थापना की गई है जिसे अभ्रक के निर्यातो पर मूल्यानुसार अधिकतम् ६½% का निर्यात कर लगा कर निर्माण किया गया है।

इन अधिनियमो का विस्तारपूर्वक अध्ययन श्रम कल्याण वाले अध्याय मे किया गया है।

पारिश्रमिक (मजदूरी) का भुगतान नियम १९३६

मजदूरो की मजदूरी देने मे देर तथा बडी आनाकानी की जाती थी जिस के कारण उन्हे अनेक बडी-बडी कठिनाइयाँ झेलनी पडती थी तथा अपने खर्चे के लिए उन्हे बडी ऊँची ब्याज की दरो पर उधार ऋण लेना पडता था। मशीनो तथा सामान की क्षति के लिए तथा काम म टूट या गैरहाजिरी और बुरे आचरण के लिए, तथा भरती करने वालो की दस्तूरी के लिए, कटौती और आर्थिक दण्ड देना पडता था। प्रत्येक उद्योग व औद्योगिक केन्द्र मे भुगतान की अवधि भी भिन्न थी। अत मजदूरी भुगतान को नियमित तथा नियन्त्रित करने के लिए भारत सरकार ने १९३६ मे इस विधान को पास किया जो २८ मार्च १९३७ से लागू हुआ।

यह फैक्टरियो तथा रेलो पर प्रारम्भ किया गया था पर प्रान्तीय सरकारो को अधिकृत किया गया था कि वे इसे ट्रामो, मोटर बसो, डाको, व्हाफो तथा जेटियो, स्टीमरो, खानो तथा पत्थर की खानो, तेल के स्रोतो, बागानो, कार-खाना तथा उत्पादन, निर्माण, यातायात व बिक्री सम्बन्धी अन्य सस्थाओ पर

भी लागू कर सकें। औसतन २० या उससे अधिक व्यक्तियों को काम में लगाने वाले रेल के ठेकेदारों, कोयले की खानों, बागानों, मोटर बसों आदि में काम कराने वालों पर भी यह अधिनियम लागू किया गया है। मद्रास, कुर्ग, बिहार, उड़ीसा, पश्चिमी बंगाल, पंजाब, असम, उत्तर प्रदेश, दिल्ली इत्यादि राज्यों में यह अधिनियम लागू है।

२०० रुपया प्रति मास से कम वेतन वालों पर यह लागू होता है और पारिश्रमिक भुगतान की अधिकतम अवधि एक मास निश्चित की गई है। सब वेतन (बोनस इत्यादि जो द्रव्य के रूप में आंके जाते है) नगद रुपयों या नोटों में ही चुकाया जाना चाहिए। १००० से कम मजदूरों वाले कारखानों या संस्थाओं में वेतन अवधि के अन्तिम दिन के बाद ७वें दिन की समाप्ति से पहले तथा १००० से अधिक मजदूर वालों में १० दिन के अन्दर ही मजदूरी का भुगतान हो जाना चाहिए। निकाल दिये गये मजदूरों का वेतन उनके काम से हटाये जाने के २ दिनों के भीतर ही हो जाना चाहिए। विधि-ग्राह्य मुद्रा में दिये जाने वाले वेतन का वितरण छुट्टी के दिन नहीं किया जा सकता है। मकान, बिजली, पानी, औषधि की सुविधायें, भत्ता पेन्शन प्राबीडेन्ट फण्ड में मालिकों का अंशदान वेतन में शामिल नहीं किया जायेगा।

न्यूनतम मजदूरी नियम

श्रमिकों के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाने तथा उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि कर उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रगतिशील देशों में श्रमिकों के एक विशेष न्यूनतम जीवन स्तर के लिए न्यूनतम मजदूरियों के विधान बनाये गये हैं। यद्यपि १९२८ में जेनेवा के ड्राफ्ट कनवेन्शन ने न्यूनतम मजदूरियों के स्तरों को विधान द्वारा निर्धारित करने की व्यवस्था के लिए एक साधन को अपनाने का निश्चय किया था, तथा १९३१ में श्रम पर शाही आयोग ने भी हमारे देश में न्यूनतम मजदूरियों को निर्धारित करने के प्रबन्ध के लिए सिफारिश की थी, फिर भी हमारे देश में औद्योगिक श्रमिकों के लिए एक विधिवत न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था विभाजन तक नहीं की गई।

अतः १९४८ में भारत सरकार ने न्यूनतम मजदूरी विधान बनाकर केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को इस विधान के दो वर्षों के अन्दर ही श्रमिकों की अति दयनीय दशा वाले उद्योगों में मजदूरियों की न्यूनतम दरों को नियत करने के लिए अधिकार दिया। ये उद्योग ऐसे है जहाँ मजदूरों का शोषण होता है,

तथा अधिक काम होता है, वेतन बहुत कम है तथा व्यवसायिक संघ नही है। उदाहरणार्थ, ऊनी दरी तथा शाल के कारखाने, चावल, आटा, तथा दाल की मिले, तम्बाकू बनाने तथा बीडी के कारखाने, तेल मिले, बागाने, सडक या भवन बनाने के कार्य, लाख तथा अभ्रक के कारखाने, चमडा कमाने तथा बनाने के कारखाने, पत्थर तोडने तथा पीसने का काम, नगरपालिकाओ तथा जिला परिषदो की नौकरियाँ तथा कृषि। खेती मे तीन वर्षो मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जाने को थी।

१९५० मे एक सशोधन द्वारा सभी उद्योगो मे न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की अवधि ३ वर्ष की दी गई थी पर कृषि सम्बन्धी देश के विभिन्न प्रदेशो मे भिन्न-भिन्न दशाओ के कारण यह उचित समझा गया कि कृषि मजदूरो की न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के पहले उनमे गाँवो के श्रमिको की स्थिति को पूरी तौर पर जाँच लिया जाय। १९४९ से १९५१ तक यह जाँच पूरी न हो पाई। अत सरकार ने खेती की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की अवधि मार्च १९५३ तक बढा दी थी। यदि किसी उद्योग मे १००० से कम व्यक्ति है तो राज्य सरकार उसमे न्यूनतम मजदूरी निश्चित नही कर सकती।

वास्तविक दरें केन्द्रीय सलाहकार परिषद और राज्य परिषदो द्वारा नियत की जायेगी। इन परिषदो का निर्माण औद्योगिक नीति सम्बन्धी प्रस्ताव के अनुसार किया जायगा। न्यूनतम दर आधार मूलक (वेसिक) दर और जीवन की लागत का भत्ता तथा असुविधाओ का नगद मूल्य अथवा एक सर्व सम्मिलित दर होगी। केन्द्रीय तथा सलाहकार परिषदों और जाँच की समितियो व उप-समितियों ने मालिको और मजदूरो या नियोजको और नियोजितों के समान प्रतिनिधि तथा कुल सदस्यो की सख्या के $\frac{1}{3}$ स्वाधीन व्यक्ति होगे।

कुछ दशाओ के अतिरिक्त निश्चित न्यूनतम मजदूरी नगदी मे ही दी जायगी और जो उद्योगपति इस प्रकार नियत की गई मजदूरी से कम देंगे या विधान की धाराओ के विरुद्ध काम करेंगे वे दड के भागी होंगे।

इस विधान का क्षेत्र बहुत सीमित है क्योंकि बहुत से ऐसे उद्योग-धन्धे जिनमे श्रमिको की सख्या १०० से कम है, वे इसकी धाराओ से मुक्त है, यद्यपि सरकार को अधिकार है कि तीन मास की सूचना पर वह किसी उद्योग को शोषित उद्योगो की सूची मे शामिल कर सकती है।

अत. योजना आयोग ने खेती मे इसे सीमित क्षेत्र तक ही लागू करने का सुझाव दिया है। फिर भी कुछ राज्यों मे इसे कार्यान्वित किया गया है।

बम्बई टेक्सटाइल जाँच समिति ने १९३७ में इस पर जोर दिया था तथा १९३८ में कानपुर श्रम जाँच समिति ने १५) मासिक न्यूनतम मजदूरी की सिफारिश की थी। १९४६–४८ में उत्तर प्रदेशीय श्रम जाँच समिति ने अर्ध कुशल व्यवसायों में ४०), कुशल व्यवसायों में ५०) तथा अति कुशल व्यवसायों में ७५) मासिक अनिवार्य पारिश्रमिक निर्धारित किया था। इस समिति की सिफारिशों के आधार पर उत्तर प्रदेशीय सरकार ने कपड़ा मिलों में श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी तथा मँहगाई निश्चित की थी पर मिल श्रमिकों ने इसका घोर विरोध किया था।

अध्याय १८

श्रम संगठन आन्दोलन
(Trade Union Movement)

श्रम सगठन आन्दोलन के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इनका विकास मनुष्य की आर्थिक क्रियाओं मे जटिलता (Complexity) आ जाने के कारण हुआ है। श्रम सगठनो का निर्माण समाज के व्यक्तियो के समूहो के द्वारा अपने सदस्यो के आर्थिक जीवन को विपरीत समूहो के विभिन्न हितों (Opposing groups with diverse interest) के विरुद्ध, सुखमय बनाने के उद्देश्य से किया जाता है। मशीन युग का प्रादुर्भाव, बडे-बडे कारखानों, शीघ्र तथा उन्नत यातायात तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रादुर्भाव हो जाने के कारण, कर्मचारी, नियोक्ता (Employer) तथा व्यापारी के लिए व्यक्तिगत रूप मे आर्थिक जीवन की समस्याओं का सामना करना बहुत कठिन हो गया। इन समस्याओं का उचित रूप से मुकाबला करने तथा उन्हे सुलझाने के उद्देश्य से उसे ऐसे व्यक्तियों का सयोजन करना पड़ा जिनके सम्मुख इसी प्रकार की समस्याये होती थी। इस उद्देश्य से निर्मित 'सयोजन' को "श्रम सगठन" (Trade Unions) कहते हैं।

श्रम सगठन का अर्थ साधारण रूप मे श्रमिको या कर्मचारियो के पार्षदो (Associations) से लगाया जाता है परन्तु वास्तव में इसके (Trade Union) अन्तर्गत अन्य सभी वर्ग (Classes) के कर्मचारी, मालिकगण (Employer) स्वतन्त्र कारीगर तथा व्यापारीगण भी आते है।

श्रम सगठन की परिभाषा

वेब्स (Webbs) महोदय के अनुसार श्रम सगठन "एक श्रम जीवियो का स्थायी पार्षद (Association) है जो उनके श्रमिक जीवन को क्रियाओं को बनाये रखने तथा सुधारने का उद्देश्य रखता है।"* यह परिभाषा अपूर्ण

* "A continuous association of wage earners for the purpose of maintaining and improving the conditions of their working lives". —*Webbs*

एवम् बहुत पुरानी है। क्योंकि श्रम सगठनो के अन्तर्गत केवल मजदूर (Wage Earners) 'वेतन पाने वाले' (Salary Earners) तथा 'शुल्क पाने वाले' (Fee Earners) ही नहीं आते वल्कि सभी वर्ग के कर्मचारीगण आते हैं। इसके अतिरिक्त इन सगठनो (Unions) का ध्येय केवल कार्य करने की दशाओ को बनाये रखना या सुधारना ही नही वल्कि जीवन को सुखमय बनाने की अन्य क्रियाओ की ओर ध्यान देना भी है।

श्री 'शिवरनिक' (Shivernik) के शब्दो मे श्रम सगठन "एक ऐसा सगठन है जिसका मुख्य ध्येय कर्मचारियों तथा मालिको के आपसी सम्बन्धो का नियमन करना है।"* यह परिभाषा यद्यपि पहली परिभाषा से उत्तम है परन्तु फिर भी पूर्ण रूप से श्रम सगठन के कार्यों का समावेश नही करती है।' राज्य (States) तथा श्रम सगठन के सम्बन्ध भी आधुनिक युग मे महत्वशील होते जा रहे हैं।

तीसरी परिभाषा 'ब्रिटिश ट्रेड यूनियन्स एक्ट १९१३' ने दी है। इसके अनुसार श्रम सगठन 'वे सयोजन है जिनका मुख्य उद्देश्य कर्मचारियो तथा मालिकों या कर्मचारियों और कर्मचारियो तथा मालिको के मध्य सम्बन्धो का नियमन (Regulation) करना, किसी व्यापार या व्यवसाय पर नियन्त्रण सम्बन्धी शर्तें लगाना, तथा सदस्यों के लाभो की व्यवस्था करना है।"† यह परिभाषा उपरोक्त दोनो परिभाषाओ से उन्नत होते हुए भी आधुनिक श्रम सगठनो के सम्पूर्ण कार्यों को दर्शाने मे असफल है। अत श्रम सगठन की आधुनिक परिभाषा इस प्रकार दी जा सकती है —

"एक श्रम सगठन मजदूरी, वेतन तथा शुल्क प्राप्तकर्ताओं का एक स्थाई स्वत (Voluntary) पार्षद (Association) है जिसके उद्देश्य (अ) श्रमिको

---

* "An orgrnisation the chief aim of which is the regulation of mutual relations between the workers and the employers".
—*Shivernik*

† "Those combinations whose principal objectives are the regulation of relations between workmen and masters, or between workman and workman, or between masters and masters, for the imposing of restrictive conditions on the conduct of any trade or business, and also the provision of benefits for members". —*The British Trade Unions Act 1913*

तथा मालिकों के सम्बन्धों को सुदृढ़ रखना, उनको (श्रमिकों) नौकरी तथा अन्य लाभों को दिलाना, (ब) आपनी मामलों मे दोनों समूहों (Groups) तथा राज्य के मध्य सम्बन्धों को नियमित (Regulate) करना, तथा (स) कर्मचारियों को उत्पादनों के लाभ तथा प्रबन्ध मे भाग दिलाना है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि श्रम संगठनों का मुख्य ध्येय श्रमिकों का संगठन कर सामूहिक रूप से सौदा करने तथा रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रयत्न करना है, श्रमिकों और मिल मालिकों मे मेल मिलाप का अच्छा सम्बन्ध उत्पन्न करना और औद्योगिक शान्ति स्थापित करना है, तथा अपने सदस्यों की सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति करना, प्रचार करना, उनके अधिकारों की रक्षा करना, श्रम सम्बन्धी समस्याओं का अध्ययन तथा मजदूरों के नैतिक सुधार करना है। श्रमिक संघ मजदूरों को शिक्षित बनाते हैं। उनमें संगठन तथा अनुशासन की भावना उत्पन्न करते हैं जिससे श्रम नियम बनाने मे सुविधा हो जाती है।

श्रम संगठनों के कार्य तथा उद्देश्य

प्रारम्भ में श्रम संगठनों का निर्माण संरक्षात्मक (Defensive) आधार पर हुआ था। ये संगठन मालिकों द्वारा निर्धारित कठिन कार्य करने की दशाओं, कम मजदूरी, अधिक काम करने के घण्टों इत्यादि के विरुद्ध श्रमिकों की रक्षा करते थे। परन्तु शनैः शनैः उनके कार्यों मे विकास हुआ और आजकल वे राजनैतिक पार्टियों के रूप में आकर देश की बागडोर सम्हालते हैं। उदाहरणार्थ इंगलैंड म १९४५ मे श्री क्लीमेंट एटली (Cleament Att'ee) के नेतृत्व मे लेबर पार्टी ने गवर्नमेन्ट बनाई थी। श्रम संगठन के मुख्य कार्य निम्नलिखित है —

(१) श्रमिको को नौकरी सुरक्षित रहने का विश्वास दिलाना

श्रम संगठनों की स्थापना का प्रमुख उद्देश्य है कि वे अपने सदस्यों को उनकी नौकरी या काम (Employment) सुरक्षित बनी रहने का विश्वास दिलावें। संगठनों का जीवन अस्तित्व (Existence) ही उनके इस उद्देश्य की सफलता पर निर्भर करता है। अपनी मांग को पूरा करने के लिए वे हड़ताल (Strike) वगैरह करते है। यदि वे अपनी इस चाल मे असफल हो जावें तो भविष्य मे कोई भी मजदूर इनका सदस्य नहीं बनेगा। क्रॉफ्ट यूनियन्स, (Craft Unions), जनरल यूनियन्स (General Unions) तथा वाद म इण्डस्ट्रियल यूनियन्स सभी इस समस्या पर ध्यान देते हैं।

(२) सदस्यो को उचित वेतन दिलाना तथा उसकी वृद्धि करना

श्रम सगठनो का द्वितीय प्रमुख उद्देश्य यह है कि वे अपने सदस्यो के वेतन को दिलावें, उसमे वृद्धि करें तथा उसको बनाए रखें। श्रम सगठन इस उद्देश्य की पूर्ति व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से करते है। व्यक्तिगत रूप से, तात्पर्य है जब श्रमिक और मालिक के बीच उनकी मजदूरी, कार्य करने की शर्तें तथा अन्य सम्बन्धित कार्यों के बारे मे सीधा समझौता हो जाता है। इसके विपरीत यदि यह सम्भव नही होता है तो सभी सदस्य अपने सगठन (Union) की अध्यक्षता मे सामूहिक रूप से समझौता करने के लिए अपने मालिक को विवश कर देते हैं। ऐसा अधिकतर वे हडतालो के माध्यम से करते है।

(३) सदस्यो की कार्यक्षमता को बढाना

श्रम सगठनो का तृतीय उद्देश्य अपने सदस्यो की काम करने की दशाओ मे सुधार करके उनकी कार्य-क्षमता मे वृद्धि करना है। कार्य करने की दशाओं म सुधार से तात्पर्य कार्य करने के घटो (Working hours) को कम कराना, कारखाने के अन्दर सफाई इत्यादि कराना, मशीनो से होने वाली दुर्घटनाओं के विरुद्ध सुरक्षात्मक कार्य कराना तथा सवेतन छुट्टियाँ दिलाने का प्रयास करना आदि से है।

(४) सदस्यो को वैधानिक कार्यवाही करने के लिए आर्थिक सहायता देना।

(५) सदस्यो की सामाजिक, आर्थिक, मानसिक एव शारीरिक उन्नति करना।

(६) सदस्यो के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिए उनके हेतु चिकित्सा व शिक्षा सम्बन्धी, वाचनालय तथा आमोद-प्रमोद की सुविधाओ का प्रबन्ध करना।

(७) सदस्यो मे एकता की भावना का निर्माण करना।

(८) सदस्यो मे मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना।

(९) सदस्यो एव मालिको के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखना जिससे आपसी कलह कम से कम हो।

(१०) ऐसे सदस्यों की सहायता करना जो अपनी जीविका को बीमारी, दुर्घटना, वृद्धावस्था तथा अन्य किसी कारण से खो देते है।

श्रमिक सगठन के लाभ

(१) एकता की भावना जागृत हो जाती हे

श्रमिक सगठन से श्रमिको के हृदय मे एकता की भावना का उदय होता है। वे सब कार्यो को सामूहिक रूप से करने के लिए उद्यत होते हैं, इससे उनकी सौदा करने की शक्ति (Power of Bargaining) बढ जाती हे। फलस्वरुप मिल मालिक लोग उनका शोषण भी नही कर पाते है।

(२) श्रमिकों का जीवन स्तर ऊँचा हो जाता है

श्रमिक सघ अपने सदस्यों की आर्थिक, सामाजिक, मानसिक एव शारीरिक अवस्था की उन्नति करने की चेष्टा करते है। इमसे श्रमिको के रहन-सहन का स्तर ऊँचा होता है।

(३) श्रमिकों की नैतिक उन्नति होती है

श्रमिक सघ, सदस्यो को प्रौढ शिक्षा तथा अन्य प्रकार की शिक्षा दिला कर उनकी मानसिक बृद्धि का विकास करते है। इनके अतिरिक्त वे उनको सगठित होने की एव अनुशासन म रहने की शिक्षा देते है। इस प्रकार श्रमिको को नैतिक उन्नति होती है।

(४) देश के औद्योगिक उत्पादन को हानि नही होती हे

श्रमिक सघ श्रमिक वर्ग व पूंजी वर्ग के आपसी झगडो या मतभेदों को शान्तिपूर्ण तरीकों से तय करने की चेष्टा करते है। इसस उत्पादन कार्य सुचारु रूप से चलता रहता है और देश के औद्योगिक उत्पादन को हानि नहीं होती है।

(५) श्रमिकों का मानसिक विकास होता है

श्रमिक सघ अपने सदस्यो को चिकित्सा, मनोरजन तथा अन्य सामाजिक सुविधाएं प्रदान करते हैं, जिसमे श्रमिकों को मानसिक सतुष्टि प्राप्त होती है। दैनिक आवश्यक्ताओ से निश्चिन्त होने पर ही कोई व्यक्ति

अन्य बातों को सोच सकता है। इस प्रकार श्रमिकों के मानसिक दृष्टिकोण विकसित होते है।

(६) राजनैतिक प्रभुत्व

श्रमिक सघ अधिक शक्तिशाली होने पर देश की राजनीति मे भी भाग लेने लगते है। इनके प्रतिनिधि लोक सभा तथा केन्द्रीय सभा मे भी भेजे जाते है। उदाहरणार्थ 'जूट मिल एसोसियेशन' के दो सदस्य बगाल की धारा सभा मे भेजे जाते है तथा 'रेलवे फ्रेट एडवाइजरी कमेटी' मे भी इसके सदस्य लिए जाते हैं। यही नहीं कुछ देशा मे तो श्रमिक सघो ने देश की शासन डोर को भी सभाला है। १९४५ मे इगलैड मे श्री क्लीमेंट एटली (Cleament Attlee) के नेतृत्व मे 'लेबर पार्टी' ने गवर्नमेंट बनाई थी। 'लेबर पार्टी' इगलैंड की 'ब्रिटिश ट्रेड यूनियन् कांग्रेस' की एक राजनैतिक शाखा है।

इसी प्रकार अमेरिका मे 'अमेरिकन फेडरेशन ऑव लेबर' तथा फ्रास मे 'फ्रेंच कॉन्फडेरेशन ऑव ट्रेड यूनियन्स ऑव फ्रास' अपने देशो तथा अन्य देशो मे भी काफी प्रभुत्व रखते हैं। अफ्रीका मे श्रमिक सघ जातीय भेदभाव (Racial discrimination) नीति का बड़े जोरों से विरोध कर रहा है और विदेशी राज्य के विरुद्ध आन्दोलन भी कर रहा है।

श्रमिक सघो से हानियाँ

(१) व्यक्तिगत हितो की स्वार्थपूर्ति

कभी कभी श्रमिक सघो के नेतागण अपने व्यक्तिगत हितो की स्वार्थपूर्ति के निमित्त अथवा अपने को जनता मे प्रभावशाली बनाने के विचार से श्रमिको को हड़ताल इत्यादि करने के लिए विवश कर देते है। कभी कभी बहुत ही साधारण मतभेद होने पर वे श्रमिको को अनिश्चित काल के लिए हड़ताल करने को बहका देते है। इससे श्रमिको, उद्योगपतियों तथा राज्य (State) तीनो की हानि होती है। श्रमिको की मजदूरी, उद्योगपतियो को लाभ तथा राज्य को राष्ट्रीय उत्पादन कम हो जाने की हानि हो जाती है।

(२) समाज को हानि

राष्ट्रीय उत्पादन कम हो जाने से वस्तुओ के मूल्य बढ जाते है। फलस्वरूप उपभोक्तागण अधिक वस्तुओ का उपभोग नही कर पाते हैं, और उनके रहन-सहन का स्तर गिर जाता है।

(३) साम्यवाद एवं समाजवाद को बढ़ावा देना

श्रमिक सघो से साम्यवाद एव समाजवाद को पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है। इसका सर्वोत्तम उदाहरण हमे रूस मे प्राप्त होता है।

(४) औद्योगिक अशान्ति

स्वार्थी श्रमिक सघ के नेतागण कभी-कभी भोले भाले अपढ श्रमिको को झूठी आशायें दिखाकर तथा झूठे सुनहले स्वप्न दिखाकर अपनी ओर आकर्षित करके सघ बनाते हैं, उनसे चन्दा वसूल करते ह और बाद मे गायब हो जाते या अपने वायदो को भूल जाते है। इससे श्रमिक वर्ग में अशाति एव गड़बडी फैल जाती है जिससे औद्योगिक कलह को बढ़ावा मिलता है।

(५) श्रमिक संगठनों के अस्तित्व को हानि

श्रमिक सगठनो के विभिन्न नेताओ मे आपस मे पद लोलुपता के लिए भी झगडे हुआ करते है। इससे श्रमिक सगठन के आन्दोलन को जडे कमजोर होती है तथा श्रमिक वर्ग का अहित होता है। इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण 'ओ० टी० रेल्वेज यूनियन *(O. T. Railways Union)* गोरखपुर है। इस *'यूनियन'* की कार्यकारिणी सभा (Executive Committee) के निर्माण के सम्बन्ध म नेताओ मे झगडा हुआ और यह झगडा दो वर्ष तक चलता रहा। इस बीच *'यूनियन' की क्रियाएँ स्थगित रही तथा मुकदमे बाजी मे तमाम धन नष्ट हुआ।* अन्त मे *'यूनियन'* का रजिस्ट्रेशन सरकार द्वारा वापस ले लिया गया।

(६) प्रशासन मे असुविधा

कभी कभी श्रमिक सगठनो के नेताओ के मतभेद के कारण सरकार की श्रम सम्बन्धी योजनाएँ असफल रह जाती हैं। 'इन्डस्ट्रियल डिस्प्यूट्स एक्ट' (Industrial Disputes Act) के विधान के अनुसार उत्तर प्रदेश की सरकार ने 'कार्य समितियो' (Works Committees) की स्थापना की, जिसम नियोक्ताओ (Employers) तथा श्रमिको के प्रतिनिधि बराबर बराबर सख्या मे होते थे। ये प्रतिनिधि आपस मे मिलकर औद्योगिक झगडो का निपटारा कर लिया करते थे। परन्तु कुछ समय बाद ही श्रमिक सघो के नेताओ मे प्रतिनिधि बनने के पीछे झगडा हुआ। 'समिति' राजनीतिक युद्ध क्षेत्र (Arena) बन गई। परिणाम स्वरूप १९५० मे श्रमिको तथा उद्योगो के हित मे 'कार्य समिति' सरकार द्वारा समाप्त कर दी गई।

तेजी से मूल्यों तथा जीवन की लागत में वृद्धि तथा उद्योगपतियो को भारी भारी लाभ हुए, पर श्रमिकों की आय में काफी वृद्धि नहीं हुई। इसके कारण १९१८–२२ में मजदूरी बढ़ाने के लिए कई हड़तालें हुई। अतः विभिन्न औद्योगिक केन्द्रो म एक बड़ी सख्या म श्रम या व्यापार सघो का निर्माण हुआ। देश मे आम आर्थिक सकट, कांग्रेस का असहयोग तथा औद्योगिक श्रम सगठन के कारण अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों मे मनोनीत प्रतिनिधियों को चुनकर भेजने के लिए एक केन्द्रीय श्रम सगठन की आवश्यकता से श्रम सघों के निर्माण मे प्रोत्साहन मिला तथा युद्धोपरात काल मे १९२० के बाद से उनके सघीकरण (Federation) को प्रेरणा मिली। इसने श्रम सघ आन्दोलन को भारत मे बल मिला।

उपनिवेशो मे भारतीय श्रम के साथ भेद भाव तथा रूसी क्रान्ति के फलस्वरूप समाजवादी तथा साम्यवादी विचारो के प्रचार द्वारा श्रम तथा राजनैतिक नेताओं ने श्रमिकों मे एक नई जागृति तथा चुनौती की भावना पैदा कर दी थी। पूरे ससार मे श्रमिको मे नये विचारो, नये भावो तथा नई उमगो व लहरो के कारण खलबली उत्पन्न हो गई थी। इस प्रकार की सामाजिक जागृति, राजनैतिक हलचल तथा क्रान्तिकारी विचार धारा से ओत–प्रोत वातावरण मे श्रमिक वर्ग पुरानी सामाजिक बुराइयों एव नई आर्थिक असमर्थताओं मे और अधिक रहने के लिए तैयार नही था।

उपरोक्त तथ्यों के परिणाम स्वरूप आन्दोलन द्रुत गति से देश मे वर्तमान काल मे बढा। पहला श्रम सघ (औद्योगिक) मद्रास में जुलाई १९१८ मे वस्त्र मिल के श्रमिको ने बनाया और १९१९ मे इसकी सख्या ४ हो गई, जिनके २०,००० सदस्य थे। मद्रास के नेतृत्व का बम्बई ने अनुकरण किया, जहाँ १९१७–१९ मे औद्योगिक अशान्ति के कारण कई सघ बनाये गये। पर इनमे से अधिकाश केवल "हड़ताल समितियाँ" थीं न कि व्यापार या श्रम सघ। इनके सगठन मे बल नहीं था, फलस्वरूप ये बहुत जल्दी समाप्त हो जाते थे तथा आपस मे एकता नहीं थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों मे प्रतिनिधियो को चुनकर भेजने की आवश्यकता से एकीकरण को प्रेरणा मिली और आन्दोलन गतिशील बना।

स्थानीय सघों का सगठन कर उनका प्रसघीकरण किया गया और उसके बाद प्रान्तीय प्रसघो का निर्माण हुआ। एकीकरण के आन्दोलन के फलस्वरूप १९२० मे एक अखिल भारतीय व्यापार सघ काग्रेस (A.I.T.U.C.)

का जन्म हुआ और उसके बाद से इसकी वार्षिक बैठक होती रही है। इसके द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के साथ व्यापार संघों का जन्म से ही सम्बन्ध स्थापित हो गया है। १९२० में ही महात्मा गांधी द्वारा अहमदाबाद में सूत कातने वालों का संघ तथा बुनकरों के संघ बनाए गये और १९२१ तक लगभग २० श्रमिक संघ हो गये थे।

इसी बीच १९२० में वकिंघम मिलों में मजदूरी बढ़ाने के वास्ते श्रमिकों को हड़ताल करने के लिए बहकाने के कारण मद्रास श्रम संघ के विरुद्ध मद्रास के उच्च न्यायालय द्वारा निरोधाज्ञा (Injuction) जारी हुई। इससे श्रम नेताओं को यह संकेत मिला कि व्यापार संघों की रक्षा तथा रजिस्ट्री के लिए सनियम स्वीकृत करना परमावश्यक था। श्री एन० एम० जोशी के ५ वर्षों के अनवरत तथा अथक प्रयत्न के बाद १९२६ में श्रमिक संघ विधान (Trade Union Act) स्वीकृत हुआ।

सन् १९२९ में इसके नागपुर के अधिवेशन में ट्रेड यूनियन कांग्रेस में फूट हो गई और तीन दलों का निर्माण हुआ—कम्युनिस्ट, नरमदल (लिबरल) तथा शेष। "श्रम पर शाही आयोग का बायकाट नहीं किया जायगा" इसी प्रश्न पर मतभेद हो गया। अस्तु श्री एन० एम० जोशी के नेतृत्व में राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन तथा गरम दलों के द्वारा अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का निर्माण हुआ और थोड़े से संघ इन दोनों में किसी के साथ सम्बद्ध नहीं हुए। गरमदल तथा वामपक्षियों (विरोधियों) का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। इसके कारण १९३१ में फिर फूट हुई जब देश पाण्डे तथा रानादिवे के नेतृत्व में गर्म तथा उग्र वाम पक्ष ने अखिल भारतीय लाल ट्रेड यूनियन कांग्रेस (A I R T U C.) का निर्माण किया। कम्युनिस्टों तथा आग उगलने वाले विरोधियों की कार्यवाहियों के फलस्वरूप ३१ नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों की गिरफ्तारी हुई तथा प्रसिद्ध मेरठ षड्यन्त्र मुक्दमा चला। जाँच की पियरसन अदालत ने बम्बई में १९२९ को कपड़ा मिलों में हड़ताल कराने तथा उसे जारी रखने का गिरनी कामगर यूनियन पर आरोप लगाया गया। पारस्परिक फूट तथा इन विध्वंसकारी कार्यवाहियों के कारण व्यापार संघ एकता समिति १९३१ में बनी और 'प्लेटफार्म एकता' प्राप्त हुई।

सन् १९३५ में दो मुख्य विरोधी दलों, अर्थात् कांग्रेस तथा फेडरेशन की एक संयुक्ति समिति बनाई गई जिसके प्रयासों के फलस्वरूप अप्रैल १९३९ में एकता प्राप्त हुई तथा १९४० में फेडरेशन कांग्रेस में सम्मिलित कर दिया

गया। इस एकता प्राप्त का श्रेय श्री वी० वी० गिरि को था। इस अस्थायी समझौते मे १९४९ मे संशोधन हुआ।

किन्तु सितम्बर १९४० मे बम्बई के अधिवेशन मे युद्ध प्रयत्न के साथ तटस्थता के प्रश्न पर एक बार फिर फूट हुई और श्री एम० एन० राय तथा श्री जमुनादास मेहता के नेतृत्व मे ट्रेड यूनियन फेडरेशन का निर्माण हुआ। इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली मे खुला। कलकत्ता के नाविको के संघ (Seamen's Union) ने कांग्रेस से अपने को विलग कर दिया। इसके अतिरिक्त १९३७ म महात्मा गाँधी की देख रेख मे ट्रेड यूनियन कांग्रेस के बाहर हिन्दुस्तान मजदूर सेवा संघ श्रमिको को संगठित कर रहा था। १९४७ से कतिपय चोटी के कांग्रेस नेताओ की देख रेख तथा पर्यवेक्षण में अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (A I.N T.U.C.) का निर्माण हुआ जो श्रमिकों के दुखों के कारणो का प्रतिकार बिना हड़तालो के, बातचीत, मेल मिलाप, मध्यस्थता तथा निपटारा के शान्तिपूर्ण ढंगो से करना चाहती है।

उसके बाद दिसम्बर १९४८ मे कांग्रेस से विच्छेद होने पर सोशलिस्ट पार्टी या समाजवादी दल ने हिन्द मजदूर सभा का सूत्रपात किया। इस फूट ने भारत में श्रमिक संघवाद (Trade Unionism) को और भी निर्बल बना दिया है। अभी हाल मे इन दोनो दलो ने (A I N T.U.C.) अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस तथा एक दूसरे प्रतिनिधि स्वरूप पर संदेह प्रकट किया था। १९४६ में मुख्य श्रम कमिश्नर को जाँच से यह प्रकट हुआ था कि श्रम की सबसे अधिक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस थी, परन्तु हाल मे सरकार ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (A I.N.T.U C.) को भारत मे श्रमिको की सबसे अधिक प्रतिनिधि संस्था घोषित किया है। १९४९ के पहले सप्ताह में श्री के० टी० शाह तथा श्री एम० के० बोस के नेतृत्व में यूनाइटेड ट्रेड यूनियन कांग्रेस (U.T.U.C) बनाई गई।

भारतवर्ष मे श्रमिक संघों की वर्तमान स्थिति

पेज ४८० पर दी तालिका देश के प्रमुख श्रम-संघो से सम्बद्ध (Affiliated) संघो व उनके सदस्यो की संख्या को निर्देशित करती है।

भारतवर्ष में कुल रजिस्टर्ड श्रम-संघों तथा उनके सदस्यों की संख्या १९५५-५६ में इस प्रकार थी —

अखिल भारतीय सघो की सदस्यता*

	सम्बन्धित सघो की सख्या			सदस्यता		
	१९५६	१९५७	१९५८	१९५६	१९५७	१९५८
इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस(I.N.T.U C.)	६१७	६७२	७२७	९११७४०	९३४३८५	९१०२२१
हिन्द मजदूर सभा (H M. S)	११९	१३८	१५१	२०३७९८	२३३९९०	१९२९४२
आल इण्डिया ट्रेड यूनियन कांग्रेस (A.I T U.C)	५५८	‡	८०७	४२२८५१	‡	५३७५६७
यूनाइटेड ट्रेड यूनियन्स कांग्रेस (U T. U C)	२३७	‡	१८१	१५९१०९	‡	८२००१
योग	१५३१	‡	१८६७	१७५७४९८	‡	१७२२७३१

पजीयत (Regd.) श्रमिक सघ तथा उनकी सदस्यता*

	केन्द्रीय-सघ			प्रान्तीय सघ		
	१९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८	१९५५-५६	१९५६-५७	१९५७-५८
पजीयत सघो की सख्या	१७४	१७३	२२३	७९२१	८१८०	९८२२
रिटर्न भेजने वाले सघो की सख्या	१०५	१०२	१३६	३९०१	४२९७	५३८४
रिटर्न भेजने वाले सघो की सदस्यता सख्या	३१२८४८	१८७२९५	३४२१६९	२०६१८८४	२१८९४६७	२६७२८८३

* India 1960, p 383

‡ *Verified figures are not available.*

उपयोग से रोका गया है। पर वह संघ सदस्यों के स्वतन्त्र अंशदानों से अपने सदस्यों के नागरिक तथा राजनैतिक हितों के सम्वर्धन के लिए कोष का निर्माण कर सकता है।

(४) श्रम-संघ के कार्यकर्ता उचित उद्देश्य की पूर्ति करते हुए किसी अपराध सम्बन्धी उत्तरदायित्व से मुक्त समझे जावेंगे।

(५) रजिस्टर्ड श्रम-संघ की सदस्यता से १५ वर्ष से कम आयु वाले व्यक्तियों को वंचित रखा गया है।

इस अधिनियम में १९२८ तथा १९४२ में कुछ परिवर्तन किये गये थे।

श्रम—संघ अधिनियम १९४७

श्रम-संघ अधिनियम १९२६ में श्रम-संघों की नियोक्ताओं (Employers) द्वारा मान्यता के सम्बन्ध में कोई प्रावधान नहीं था। अतः श्रम-संघ अधिनियम में, १९४७ में विशेष संशोधन करके, श्रम-संघों को नियोक्ताओं द्वारा मान्यता प्रदान करने के सम्बन्ध में आयोजन किया गया है। इसके अनुसार किसी श्रम-अदालत की आज्ञा पर एक रजिस्टर्ड प्रतिनिधि श्रम-संघ की नियोक्ताओं द्वारा मान्यता अनिवार्य कर दी गई है।

प्रारम्भ में श्रम-संघों में रजिस्ट्रेशन के प्रति अरुचि व उदासीनता थी और वे वार्षिक विवरण अंकेक्षित हिसाब व सूची आदि देने से हिचकिचाते थे। *ऐसी मान्यता प्राप्त श्रम-संघ की प्रबन्धक समिति नियोक्ताओं के साथ नियोजन (Employment) की शर्तों को निश्चित कर सकती है तथा कर्मचारी में सूचनाएँ दिखा सकती है।*

मान्यता का हटा लेना—श्रम-संघों की मान्यता नीचे लिखी दशाओं में हटाली जा सकती है —

(१) यदि संघ अनुचित अभ्यासों या रिवाजों का अपराधी हो, अधिकतर प्रबन्ध समिति सदस्य हड़ताल के लिये श्रमिकों को उत्तेजित करें या सहारा दें या झूठे विवरण भेजें।

(२) यदि संघ निर्देशित विवरण न भेजे।

(३) यदि वह (संघ) श्रमिकों का प्रतिनिधित्व खो बैठा हो।

नियोक्ता पर जुर्माना—नियोक्ता पर निम्न दशाओं में १०००) रु० तक जुर्माना किया जा सकता है —

(१) यदि वह श्रम संघ के निर्माण में बाधा डालता हो,

(२) यदि वह श्रम-सघ के शासन में हस्तक्षेप करता हो;

(३) यदि वह श्रम-सघ के पदाधिकारी से उसके पदाधिकारी होने के कारण भेद-भाव रखता हो या उसे पदच्युत करे, अथवा

(४) यदि वह अधिनियम के अन्तर्गत उसके विरुद्ध किसी विचाराधीन मामले में गवाही देने, या उसके विरुद्ध कुछ करने के कारण किसी श्रमिक से भेद-भाव रखता हो, या उसे नौकरी से अलग करे।

इस अधिनियम को कार्यान्वित करने का भार राज्यकीय सरकारो पर ही है जिसके लिए वे रजिस्ट्रारो की नियुक्ति करती हैं।

इस अधिनियम के दोषो को दूर करने के लिए भारतीय ससद मे १९५० में एक विधेयक पेश किया गया था, जिसका उद्देश्य पूर्व के अधिनियमो को ठीक, ठोस व शुद्ध करना था। पर पुरानी ससद में यह विधेयक स्वीकृत नही हो सका। १९५२ मे भारतीय श्रम-सम्मेलन में उचित नियम बनाने पर विचार किया गया था। इसके अनुसार सघो के रजिस्टरो की जाँच के लिए निरीक्षको की नियुक्ति, सदस्यो की सूची, चन्दे की रकम व नियम, सदस्यो के पृथक करने की दशाओ, उन पर अनुशासन, बाहरी लोगो की सख्या का नियमन व नियत्रण, पजीयन को रद्द करने की अवस्थाओ, सघो की उद्योगपतियो द्वारा अनिवार्य मान्यता तथा श्रम न्यायालयों द्वारा उनकी मान्यता की शर्तें, नियोजन की दशाओ पर मान्य सघ की प्रबन्ध समिति द्वारा उद्योगपतियो से सौदा करने के अधिकार तथा उद्योगपतियो पर जुर्माना करने की दशाओं आदि की व्यवस्था की गई थी। भारतीय राष्ट्रीय श्रम-सघ कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य सब श्रम दलो ने इसकी तीव्र आलोचना तथा घोर विरोध किया था।

श्रम सघ तथा द्वितीय पचवर्षीय योजना

श्रम सघो के दोषो को दूर करने के लिए श्रमिकों के प्रतिनिधिक प्रणेय (सन् १९५५) ने कुछ सुझाव दिए हैं जो कि द्वितीय पचवर्षीय योजना मे कार्यान्वित किए जावेंगे —

(१) श्रम सघो मे बाहरी व्यक्तियो को सम्मिलित न होने देना।

(२) श्रम-सघो को आवश्यक शर्तों के पूरा करने पर वैधानिक मान्यता देना।

(३) श्रम - संघो के कार्यकर्त्ताओं की उत्पीड़न (Victimization) से रक्षा करना, तथा

(४) श्रम-सघो की व्यक्तिगत साधनो द्वारा उन्नति कराना।

श्रमिक–संघों की कठिनाइयाँ

भारतवर्ष मे श्रमिक-सघो का विकास आज तक आशातीत नही हो पाया है। उनके मार्ग मे अनेक ऐसी बाधाएँ आए दिन उपस्थित हुआ करती है जिसके कारण उनकी लोकप्रियता को आघात पहुँचता है। निम्नलिखित कुछ ऐसी ही बाधाएँ है जो प्राय श्रमिक सघों (Labour Unions) के विकास मे रोडे अटकाती है। श्रमिक सघो को समझ सकने के बाद इन बाधाओ का थोडा सा अध्ययन कर लेना बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। श्रमिक-सघो की कठिनाइयो का सक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है —

(१) भारतीय श्रमिक का प्रवासी स्वभाव—भारतीय श्रमिक प्रारम्भ से ही भ्रमणशील स्वभाव का होता है, उनकी प्रकृति ही परिवर्तनशील होती है। अत वे अपने कार्यकाल मे अनेक नियोक्ताओ का दरवाजा खट-खटाने के आदी है। यही कारण है कि वे अपने को सघ के रूप मे सगठित करने मे असमर्थता का अनुभव करते है।

(२) जाति–पाँति की भावना—भारतीय श्रमिक मे जाति पाँति का विचार अधिक पाया जाता है अत विभिन्न जातियो के श्रमिक आपस म सगठन नही कर पाते।

(३) दरिद्रता—भारतीय श्रमिक मे महान दोष यह पाया जाता है कि वह गरीब होता है। अपनी भयावह निर्धनता के कारण वह सघो का आवश्यक चन्दा तक नही दे पाता जिसका फल यह होता है कि भारत मे श्रमिक सघ अविकसित ही रह जाते है।

(४) श्रमिको की अशिक्षा एव अज्ञानता—दरिद्रता का अभि-शाप है, अशिक्षा व अज्ञानता। धन के अभाव मे शिक्षा व ज्ञान का भण्डार सीमित ही रह जाता है। भारत म तो निम्न वर्ग के लोगो को प्रारम्भिक शिक्षा भी उपलब्ध नही हो पाती। किन्तु हमारी स्वतन्त्र सरकार बहुत शीघ्र ही प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य करने जा रही है। कुछ भी हो भारतीय श्रमिक शिक्षा एव ज्ञान के अभाव मे श्रमिक सघो का महत्व नही समझ पाते और श्रमिक सघो की उन्नति कठिन हो गई है।

(५) नियोक्ताओं, एव ठेकेदारों की विरोधी प्रवृत्ति—भारतीय नियोक्ताओ एव ठेकेदारो की विरोधी प्रवृत्ति भी श्रमिक सघो के विकास मे बाधा उपस्थित करती है। वे ऐसे श्रमिकों को जो कि श्रमिक सघ के सदस्य होते है, आए दिन परेशान किया करते है। यही नहीं, अतीत मे सरकार का रुख भी श्रमिक सघो की ओर सचेष्ट नही रहा। सरकार चुपचाप नियोक्ताओ द्वारा श्रमिकों का शोषण देखती रही है तथा पूँजीपतियो का ही पक्ष करती रही है। इस प्रकार भारत का दरिद्र श्रमिक रोटी, धोती की समस्या से मजबूर होकर श्रमिक सघो की सहायता से दूर रह कर जीविका उपार्जन करने का प्रयास करता है।

(६) श्रमिकों का अविकसित मस्तिष्क—अशिक्षा एव अज्ञान के कारण भारतीय श्रमिक का मस्तिष्क प्राय अविकसित होता है। वे कोई नवीन बात सोच नहीं पाते, दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही मे लगे रहते हैं और इस प्रकार वे श्रमिक सघो के विकास की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाते।

(७) श्रमिक नेताओं के प्रति द्वेष—लोगो मे श्रमिक नेताओं के प्रति सद्-भावना की कमी है। उनको विप्लवकारी, आग उगलने वाला या भड़काने वाला कहकर बदनाम किया जाता है।

(८) सच्चे मजदूर नेताओ का अभाव—भारत म सच्चे मजदूर नेताओं की कमी है। ऐसे मजदूर नेता कम ही है जो स्वय मजदूर हो। इस प्रकार ये मजदूर नेता जो कि स्वय मजदूर नहीं होते श्रमिकों की समस्याओ की वास्तविकता नही समझ पाते अत वे श्रमिक का पूर्ण हित नहीं कर पाते। अनेक अवसरवादी नेता अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लाभ मे श्रमिकों को बहका कर उनका अहित ही किया करते हैं।

(९) राजनैतिक दलों का नेतृत्व—भारत के अधिकाश श्रमिक सघ राजनैतिक दलो के नेतृत्व मे है। ये राजनैतिक दल विभिन्न नीति रखते है तथा श्रमिकों के हित को प्रधानता न देकर दलगत हित को ही प्रधानता देते हैं। इस प्रकार उन्होंने श्रम-सघ के मच का प्रयोग श्रमिकों की दयनीय अवस्था सुधारने के लिए नहीं अपितु वर्तमान सामाजिक एव आर्थिक ढाँचे को ध्वसकारी एव उग्र भावनो द्वारा उखाड़ फेकने के हेतु प्रयोग किया है और इसके फलस्वरूप नियोक्ताओ को श्रमिक सघो के प्रतिकूल कर दिया है।

(१०) श्रमिकों में अनुशासनहीनता—अशिक्षा एव अज्ञान के कारण भारत का श्रमिक नियन्त्रण तथा शासन का आदी नहीं होता तथा व्यापार सघ की ओर से लापरवाह रहता है।

(११) न्यून मजदूरी तथा काम के लम्बे घटे—मजदूरी कम होने के कारण भारतीय श्रमिक, श्रमिक सघो के चन्दो की अदायगी नहीं कर पाता तथा कार्य के लम्बे घन्टो के कारण वह सघ के कार्यों में अभिरुचि नहीं रखता।

(१२) विशाल क्षेत्र—भारत मे श्रमिकों का विस्तार बहुत लम्बा चौडा है और यही कारण है कि उसके पूर्ण आँकडे एकत्र करना असम्भव हो जाता है। सरकार भी इस ओर उदासीन रही है। सर्वप्रथम १९४२ म ही श्रमिक सम्बन्धी आँकडे एकत्र करने का प्रयत्न किया गया तथा इस बीच इण्डस्ट्रियल स्टेटिसटिक्स एक्ट (Industrial Statistics Act) पास किया गया। अब तो योजना आयोग तथा केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय के प्रयत्न से राजकीय श्रमिक रजिस्टर (National Register of Labour) की योजना पूरी होकर सन् १९५८ से रजिस्टर रखा जाने लगा है।

(१३) नियोक्ताओ का सहानुभूतिपूर्ण वर्ताव—नियोक्ताओ के व्यवहार मे सहानुभूति का न होना भी एक भारी बाधा है। नियोक्ताओ का व्यवहार भी सहानुभूतिपूर्ण होना चाहिए। उनको यह तथ्य समझ लेना चाहिए कि स्वस्थ एव सुदृढ सघवाद हडतालो के विरुद्ध बीमा का कार्य करता है। इसके फलस्वरूप अनाधिकृत, अनियमित तथा बिजली की तरह क्षणिक हडतालें नहीं हो पातीं। योजना आयोग का कथन है कि श्रमिकों को चाहिए कि अपने सच्चे कर्त्तव्य का पालन नियमितता, नियन्त्रण तथा सावधानी से उत्पादन कर के करें।

प्रश्न

1. *What do you mean by Trade Unionism?* Discuss their objects, merits and demerits
2. Trace the development of Trade Unionism in India, and discuss their present position and difficulties in their working.

अध्याय १९

मज़दूरी देने की रीतियाँ
(Methods of Wage Payment)

साधारण रूप से मजदूरी का भुगतान दो प्रकार से किया जाता है :—१—समय के अनुसार, २—कार्य के अनुसार। मजदूरी विवरण की ये दोनो पद्धतियाँ अति प्राचीनकाल से चली आ रही है और आज भी उनका महत्व किसी प्रकार कम नहीं हुआ है। वास्तव में देखा जाय तो जितनी भी वर्तमान प्रेरणात्मक तथा प्रगतिशील पद्धतियाँ अपनाई गई है, वे इन्ही पद्धतियो की परिवर्तित एवं सशोधित रूप है।

१—समय के अनुसार मजदूरी अथवा दैनिक वेतन (Time wage or Daily wage)

इस पद्धति के अनुसार श्रमिकों को पारिश्रमिक एक निश्चित समय के अनुसार दिया जाता है। यह पारिश्रमिक प्रति घंटा, प्रति दिन, प्रति सप्ताह, अथवा प्रति माह के अनुसार दिया जा सकता है। किन्तु चूकि प्राचीन काल मे अधिकतर श्रमिकों का पारिश्रमिक दिन के अनुसार दिया जाता था, अत इसको दैनिक वेतन (Daily wages) पद्धति के नाम से अधिकतर सम्बोधित करते है। मजदूरी वितरण की यह पद्धति इतनी पुरानी है जितनी मानवता। कालान्तर मे इतने परिवर्तन होने पर भी यह पद्धति अब भी प्रचलित है और विभिन्न प्रकार के उद्योगो म अपनायी जाती है। भारतवर्ष मे यह पद्धति लगभग सभी उद्योगो मे प्रचलित है।

लाभ (Advantages)

इस पद्धति के इतना अधिक प्रचलित होने के कारण उसके कुछ विशेष लाभ हैं, जिनका विवेचन इस प्रकार है —

(१) श्रमिक के कार्य का प्रमापीकरण—इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक श्रमिक के कार्य का प्रमापीकरण करने की कोई आवश्यकता नहीं

होती क्योंकि उसकी मजदूरी समय के अनुसार निश्चित की जाती है। अत इस पद्धति से वेतन देने मे सुविधा रहती है।

(२) मजदूरी के मूल्याकन मे सुगमता–(Simplicity in wage Valuation) चूँकि इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक श्रमिक के कार्य के परिणाम का निश्चित मूल्याकन नही किया जाता अत उसे वेतन देने मे सुविधा रहती है और उसका हिसाब भी आसानी से रक्खा जा सकता है।

(३) कुशल एव शिल्पकारी कार्यो के लिए सर्वोत्तम–– यह पद्धति ऐसे कार्यो के लिए जो कि बहुत ही कुशलता एव दक्षता से किए जाते है सर्वोत्तम है, क्योंकि श्रमिक को काय समाप्त करने की शीघ्रता नही होती है। अत वह अपनी पूर्ण योग्यता एव कौशल का प्रदर्शन कर सकता है। उदहरणार्थ यदि कोई व्यक्ति ठेके पर कार्य कर रहा है तो श्रमिक उसमे अधिक कुशलता एव चाल मे कार्य नही करेंगे। वे उस कार्य को कम से कम समय मे पूरा करने की चेष्टा करेंगे ताकि उन्हे अधिक लाभ हो सके। परन्तु इस पद्धति के अनुसार श्रमिक लोग कार्य को बडे प्रेम एव लगन से करेंगे। अत यह पद्धति उन सब कार्यों के लिए सर्वोत्तम है जहाँ पर समय का ध्यान नही रक्खा जाता जैसे चित्रकला, दस्तकारी इत्यादि।

(४) इस पद्धति से श्रमिक को यह विश्वास रहता है कि उसको कार्य से अचानक ही हटाया नही जायगा और न उसके किसी प्रकार से अस्थायी रूप से आयोग्य हो जाने पर वेतन मे कमी की जाएगी।

(५) इस पद्धति से श्रमिक को एक निश्चित एव नियमित आय प्राप्त होती रहती है अत वह अपने बजट को आसानी से निर्धारित कर सकता है।

(६) इस पद्धति के द्वारा श्रमिको पर विशेष नियत्रण की आवश्यकता नही रहती। श्रमिक अपने समय पर आते है और समय पर चले जाते है।

(७) यह पद्धति ऐसे कार्यों के लिए भी उचित एव लाभदायक है जहाँ पर यह ज्ञात करना असम्भव हो कि किस श्रमिक ने कितना कार्य किया।

(८) यह पद्धति उन कार्यो के लिए भी अत्यन्त उपयोगी है, जिनमे श्रमिक को विभिन्न प्रकार के कार्य करने होते हैं और इनके श्रम का मूल्याकन सही प्रकार से नही किया जा सकता।

(९) इस पद्धति से मशीनो की अनावश्यक घिसाई कम हो जाती है तथा उनका जीवन काल बढ जाता है। आधुनिक मशीनो का मूल्य अधिक होने के

कारण उनकी सुरक्षा करना बहुत ही हितकर होता है। यदि मजदूरी कार्य के अनुसार दी जाती है तो श्रमिक उन मशीनों का प्रयोग अच्छी प्रकार से नही करेगा क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य उत्पादन की अधिक से अधिक इकाई (Unit) उत्पन्न करना होता है।

(१०) श्रमिक की मजदूरी उद्योग की शक्ति के अनुसार दी जाती है अत. उसकी आजीविका बहुत समय तक के लिए सुरक्षित रहती है।

(११) इस पद्धति को श्रमिक सघ भी अधिक पसन्द करते हैं क्योंकि इससे सघ के सदस्यों में एकता रहती है।

हानियाँ

(१) इस पद्धति का सबसे बडा दोष यह है कि यह कुशल श्रमिको के लिए प्रेरणा प्रदान करने मे असफल रहती है। चूकि कुशल एव अकुशल दोनो ही कर्मचारियो को एक ही दर से वेतन दिया जाता है, अत. कुशल कर्मचारी का पता लगाना असम्भव हो जाता है।

(२) श्रमिको के मस्तिष्क मे निश्चित मजदूरी व निश्चित अवधि की भावना होने के कारण वे मन लगाकर तथा ईमानदारी से कार्य नही करते।

(३) कुशल श्रमिको को उचित प्रेरणा न मिलने के कारण उनमे नैतिक पतन आ जाता है।

(४) उत्पादन व्यय मे श्रमिको के कार्य की अपेक्षा वेतन अधिक देना पडता है। श्रमिक कभी यह चेष्टा नही करते कि वे कम से कम समय मे अधिक से अधिक कार्य करे। उद्योगपति श्रमिको की उत्पादन शक्ति को नहीं जान पाता है क्योंकि श्रमिको के व्यक्तिगत उत्पादन का कोई हिसाब नही रक्खा जाता।

२— कार्यानुसार मजदूरी (Piece Rate System)

श्रमिको का पारिश्रमिक निर्धारित करने का दूसरा प्रमुख सिद्धात है—कार्य के अनुसार मजदूरी निश्चित करना। इस पद्धति से श्रमिको की मजदूरी निश्चित करना उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य की मात्रा एव उत्तमता पर आधारित होता है। इसमे समय का कोई विशेष महत्व नहीं होता। जो श्रमिक जितना और जैसा कार्य करता है या जितनी किसी वस्तु की इकाइयाँ उत्पादित करता है, उसी आधार पर उसका वेतन या पुरस्कार दिए जाने

की व्यवस्था की जाती है। इस प्रकार इस पद्धति म श्रम को अधिक महत्व दिया जाता है।

यह पद्धति दो उप पद्धतियों मे वर्गीकृत की जा सकती है —

[१] कार्यानुसार बढती हुई मजदूरी (Increasing Piece Rate),

[२] कार्यानुसार घटती हुई मजदूरी (Decreasing Piece Rate)।

कार्यानुसार बढती हुई मजदूरी—पद्धति के अनुसार श्रमिक की मजदूरी भी उसके द्वारा उत्पादित वस्तुओ की मात्रा बढने के साथ-साथ बढती है। किन्तु श्रमिक की कायक्षमता सीमित होने के कारण उसकी मजदूरी भी सीमित रहती है।

कार्यानुसार घटती हुई मजदूरी—पद्धति के अनुसार श्रमिक के क्रमश कायभार बढने के साथ-साथ उसका पारिश्रमिक भी क्रमश घटता जाता है। श्रमिकों को इस पद्धति से प्राय हानि ही होती है, परन्तु नियोक्ताओ को इससे पर्याप्त लाभ होता है। पारिश्रमिक या मजदूरी निर्धारित करने के लिए कोई वैज्ञानिक ढग नही है। यह नियोक्ताओ के व्यापारिक अनुभव एव दूरदर्शिता पर आधारित होती है।

कार्यानुसार मजदूरी—पद्धति के अ तगत श्रमिक के काय का विवरण रखने के लिए तथा उसकी मजदूरी निश्चित करने के लिए श्रमिक को एक काड दे दिया जाता है जिसम उसका दैनिक उत्पादन लिख दिया जाता है और अ त म निर्धारित समय के पश्चात कुल योग लगा कर मजदूरी लगा दी जाता है।

लाभ

(१) **योग्यतानुसार पारिश्रमिक**—इस पद्धति म श्रमिको को उनकी योग्यता एव कायक्षमता के अनुसार पारिश्रमिक दिया जाता है। अत प्रत्यक श्रमिक को अपनी योग्यता बढाने का पर्याप्त प्रोत्साहन मिलता है।

(२) **उत्पादन की मात्रा मे वृद्धि**-इस पद्धति के अनुसार अधिक पारिश्रमिक मिलने की आशा होने के कारण श्रमिक अधिक स अधिक

उत्पादन करने की चेष्टा करते है। इस प्रकार कम से कम समय मे उत्पादन की मात्रा बढ जाती है।

(३) प्रति इकाई कम उत्पादन व्यय—उत्पादन की मात्रा बढने के साथ-साथ उत्पादन व्यय भी प्रति इकाई कम हो जाता है क्योंकि उपरि-व्यय (Over-head Expenses) वही रहते है।

(४) नियन्त्रण की आवश्यकता नही होती—इसमे निरीक्षको इत्यादि के रखने की अधिक आवश्यकता नही होती क्योंकि श्रमिक स्वय ही अधिक से अधिक परिश्रम एव लगन से कार्य करते हैं।

(५) कुशलता एवं गुण का महत्व—श्रमिक को पारिश्रमिक उसके उत्पादन की मात्रा एव गुण के अनुसार दिए जाने के कारण, श्रमिक की कुशलता एव गुण को महत्व दिया जाता है।

(६) समय का सदुपयोग—चूँकि श्रमिक जानता है कि वह जितना कार्य कर लेगा, उसी के अनुसार उसे पारिश्रमिक मिलेगा। अत वह अपने समय को तनिक भी नष्ट नहीं करता है। जहाँ तक हो सकता है वह उसका सदुपयोग ही करता है।

(७) यन्त्रों की सुरक्षा—श्रमिक यन्त्रो का उपयोग बडी सावधानी से करते है, ऐसा न हो कि किसी यन्त्र के बिगड जाने मे या टूट जाने से उनका कार्य रुक जाय, और उनकी मजदूरी मे कमी आ जाय। इसका लाभ उद्योगपति को मिलता है।

(८) उत्पादन-पद्धति में सुधार—इस पद्धति से न केवल उत्पादन और पारिश्रमिक मे वृद्धि होती है, बल्कि उत्पादन-पद्धति या उत्पादन-तन्त्र मे भी सुधार हो जाता है, क्योंकि श्रमिक त्रुटिहीन सामान व एकदम ठीक हालत मे मशीनरी चाहता है।

(९) श्रमिक एवं नियोक्ताओं मे अच्छे सम्बन्ध— श्रमिक को उचित पारिश्रमिक तथा नियोक्ताओ को पर्याप्त उत्पादन प्राप्त हो जाने के कारण, मानसिक शाति रहती है। अत श्रमिकों और नियोक्ताओ म आपसी सम्बन्ध अच्छे बने रहते हैं।

(१०) ऊँचा जीवन-स्तर—श्रमिक अधिक से अधिक परिश्रम कर

के अधिक धनोपार्जन कर सकता है। फलत. उसके रहन-सहन का स्तर ऊँचा हो सकता है।

(११) **साधारण उपभोक्ताओं को लाभ**—अधिक उत्पादन होने पर तथा उत्पादन व्यय भी कम होने के कारण, उपभोक्ताओ को कम मूल्य पर वस्तुएँ मिल जाती हे।

(१२) **उत्पादन व्यय का अनुमान**—उत्पादन या कर्मांश की प्रत्येक इकाई पर प्रत्यक्ष श्रम-लागत एक स्थायी मात्रा हो जाती है, जो लागत सम्बन्धी गणनाओ मे उपयोग के लिए विश्वासनीय हो जाती है।

दोष

इस पद्धति के गुणो के साथ-साथ इसमें कुछ अवगुण भी है। प्रमुख अवगुण अथवा दोष इस प्रकार है —

(१) इस पद्धति के अन्दर उद्योगपति सरलता से बढे हुए काम के लाभ मे से श्रमिको का पारिश्रमिक कम कर लेता है जो श्रमिकों के पक्ष मे अनुचित है। यद्यपि बढे हुए काम का कुछ अश श्रमिको को मिलता है परन्तु अनुपात म कम।

(२) यदि श्रमिको को अधिक वेतन मिलता है तो यह उद्योगपति के दिमाग मे खटकता है और वह सदैव अपने लाभ बढाने के लिए पारिश्रमिक घटाने की चेप्टा करता है जिससे श्रमिकों और उद्योगपतियो मे आपस मे वैर भाव बना रहता है, जिसका प्रभाव उत्पादन पर बुरा पडता है और इस मन मुटाव के कारण उत्पादन लागत (Cost of Production) *बढ जाती है।*

(३) इसी प्रकार से यदि श्रमिको को बढे हुए उत्पादन के लाभ का अश नही मिलता तो उनका उद्योगपति के प्रति विश्वास हट जाता है, *जिसका प्रभाव श्रमिको के कार्य करने के उत्साह एव दक्षता पर* बुरा पडता है।

(४) इससे श्रमिक जब मन लगाकर कार्य नही करेगा तो उत्पादित इकाई के गुणों मे कमी आ जायेगी, *जिसका प्रभाव उद्योग की* प्रतिष्ठा (Goodwill) पर बुरा पडेगा।

(५) इस पद्धति के अन्तर्गत श्रमिक, प्रबन्धक अथवा निरीक्षण के हस्तक्षेप को सहन नही कर सकते।

(६) उन कामो के लिए जिनमे वरणनात्मक बारीकियो की आवश्यकता है, (जैसे कलापूर्ण या कलात्मक कार्य) उनमे यह पद्धति हितकर नही।

(७) अधिक कमाने के उद्देश्य से श्रमिक अपनी क्षमता मे बाहर कार्य करते है जिसका प्रभाव उनके स्वास्थ्य पर बुरा पडता है।

(८) अधिक कमाने के उद्देश्य से श्रमिक अपने कार्य को बहुत तेजी से करता है जिससे मशीनो तथा औजारो का प्रयोग लापरवाही से होता ह, और मशीने तथा औजार जल्दी घिसते और टूटते है।

(९) अधिक कमाने के उद्देश्य के कारण श्रमिको को एक दूसरे से मिलने का अवसर नही मिल पाता। अत श्रम सगठन ऐसी पद्धति के विरुद्ध होते है, क्योकि उनकी एकता इससे भग होती है।

(१०) श्रमिको मे श्रेणियाँ बना देने से उनमे एक मनोवैज्ञानिक अन्तर आ जाता है, और वे अपने स्वार्थो के कारण अपने साथियो की मागो के निपटारे की उपेक्षा करते हैं।

३— उद्दीपन, प्रगतिशील अथवा प्रव्याज बोनस पद्धति

(Progressive or Premium Bonus System)

वैज्ञानिक प्रबन्ध विशेषज्ञों ने उपरोक्त दोनों (सामयिक तथा कार्यानुसार) पद्धतियो का अध्ययन किया और उनमे कुछ दोषों को पाया। उन्होने इन पद्धतियों की कटु आलोचना की और ऐसी पद्धतियो की खोज की जिससे उपरोक्त पद्धतियों के दोष दूर हो जावें और श्रमिको को कार्य करने के लिए पर्याप्त प्रेरणा एव उत्साह मिले। ये पद्धतियाँ तान्त्रिक रूप से "प्रगतिशील" अथवा "प्रव्याज बोनस" के नाम से सम्बोधित की जाती है। प्रमुख पद्धतियाँ निम्नांकित है —

(१) टेलर भिन्नक कार्यानुसार पद्धति (Taylor Differential Piece Rate)
(२) हाल्से प्रव्याज योजना (Halsey Premium Plan)
(३) रौवन प्रव्याज योजना (Rowan Premium Plan)
(४) गैंट बोनस योजना (Gantt Bonus Plan)
(५) इमर्सन दक्षता योजना (Emerson Efficiency Plan)
(६) बोनस पद्धतियाँ (Bonus Schemes)

(७) स्लाइडिंग स्केल (Sliding Scale)
(८) जीवन निर्वाह मजदूरी (Cost of living wages)
(९) लाभ भाजन (Profit Sharing)
(१०) श्रम की सहभागिता (Co-partnership)
(११) न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wages)
(१२) श्रमिक का प्रबन्ध मे भाग लेने की पद्धति (Participation of Labour in Management)

(१) टेलर भिन्नक कार्यानुसार पद्धति (Taylor Differential Piece-Rate)

"वैज्ञानिक प्रबन्ध" (Scientific Management) के प्रवर्त्तक श्री एफ० डब्लू० टेलर को साधारण कार्यानुसार पद्धति (Piece-Rate) से सन्तोष नही था। उनके विचार से यह पद्धति श्रमिको को पर्याप्त प्रोत्साहन एव उद्दीपन देने मे असफल रहती है। अत. उन्होने "भिन्नक कार्यानुसार" पद्धति को निकाला, जिसके अनुसार श्रमिक को प्रमापित कार्य (Standard task) करने पर ऊँची दर से तथा "प्रमापित कार्य" के निश्चित समय मे पूरा न कर सकने पर नीची दर से मजदूरी दी जाती थी।

यह योजना टेलर महोदय के द्वारा सर्वप्रथम १८८४ मे फिलाडेलफिया की मिडवैल स्टील कम्पनी मे प्रयुक्त की गई थी। श्री टेलर ने अपने लेख "A Piece Rate System" मे लिखा है कि इस योजना से काफी मितव्ययिता होती है। "५० सैंट (Cent) प्रति अदद (Piece) के स्थान पर, जो कि उन्हे पहले दी जाती थी, ३५ सैंट की दर से भुगतान किया गया जब उन्होने १० अदद प्रति दर से उत्पादन किया। और जब उन्होने १० अदद प्रतिदिन से कम उत्पादन किया तो उन्हे केवल २५ सैंट प्रति अदद की दर से भुगतान किया गया।"* यह पद्धति उन विशेष प्रकार के कार्यो के लिए अधिक उपयुक्त होती है, जो प्रतिदिन दोहराए जायँ, तथा जहाँ अधिकतम उत्पादन वाछनीय हो।

---

* "In place of the 50 cents per piece when they turned them at the speed of 10 per day, and when they produced less than ten they received only 25 cents per piece."

—*F. W. Taylor.*

विशेषताएँ

इस पद्धति की मुख्य विशेषताएँ निम्नांकित है —

(१) इसम मजदूरी की दो दरे होती है—एक ऊँची और दूसरी नीची। ये दरें कार्य के अनुसार निश्चित की जाती है।

(२) इन दरो मे काफी अन्तर होता है।

(३) निश्चित प्रमाप (Standard) से अधिक कार्य कर लेने पर, ऊँची दर से तथा निश्चित प्रमाप से कम कार्य करने पर, नीची दर से भुगतान दिया जाता है।

(४) कुशल श्रमिको को इस पद्धति मे पर्याप्त प्रेरणा मिलती है और अकुशल श्रमिकों को एक प्रकार का दण्ड मिलता है, क्योंकि उन्हे नीची दर से भुगतान किया जाता है।

उदाहरण

निश्चित प्रमापित कार्य	--	८ यूनिट
प्रमापित कार्य करने पर दर	--	१) रु० प्रति यूनिट
प्रमापित कार्य न करने पर दर	--	।।।) प्रति यूनिट

इस प्रकार यदि कोई श्रमिक निश्चित प्रमापित कार्य (८ यूनिट) कर लेता है तो उसे ८) रु० (८×१ रु०) मिलेंगे, और यदि वह केवल ६ यूनिट कार्य ही कर पाता है तो उसे केवल ४।।) रु० (६ × ।।।) रु०) ही मिलेंगे।

आधुनिक युग मे यह पद्धति केवल अध्ययन का विषय रह गई है। इसकी व्यवहारिक उपयोगिता नही रही है क्योंकि आधुनिक झुकाव "आय मे समानता" की ओर है, न कि "आय मे असमानता" की ओर।

हाल्से प्रव्याज पद्धति (Halsey Premium Plan)

प्रव्याज देने की पद्धतियो मे सर्वप्रथम हाल्से प्रव्याज पद्धति प्रकाश मे आई। श्री एफ० ए० हाल्से ने इस पद्धति को उस समय निकाला था जब वे रैंड ड्रिल कम्पनी आव शैरबुक, कनाडा मे सुपरिन्टैंडैंट थे। यह पद्धति कार्यानुसार पद्धति की बुराइयो को दूर करती है।

विशेषताएँ

इस पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित है —

(१) उत्पादन का प्रमाप (Standard Output) तथा उसे समाप्त करने

का प्रमापित समय (Standard Time) पहले मे ही निश्चित कर दिया जाता है।

(२) एक न्यूनतम मजदूरी प्रत्येक श्रमिक के लिए निश्चित होती है।

(३) प्रमापित समय मे कम समय मे ही कार्य समाप्त कर देने पर श्रमिक को *बचाए हुए समय का कुछ प्रतिशत प्रब्याज (Premium)* के रूप मे दिया जाता है। (हाल्से ने यह प्रतिशत अपने उदाहरण मे ३३$\frac{1}{3}$% रखी थी।)

(४) प्रत्येक कार्य (Job) पर प्रब्याज अलग-अलग निकाला जाता है। अत एक कार्य मे असफल होने पर भी श्रमिक के दूसरे कार्य पर असर नही पडता है।

(५) इस पद्धति को मानना प्रत्येक श्रमिक के लिए ऐच्छिक होता है।

उदाहरण

(१) निश्चित प्रमापित कार्य	–	२० यूनिट
(२) प्रमापित समय	–	१० घन्टे
(३) न्यूनतम मजदूरी	–	१) रु० प्रति घंटा
(४) प्रमापित समय से पूर्व कार्य समाप्त करने पर प्रब्याज	–	३३$\frac{1}{3}$ %

निश्चित समय से पूर्व कार्य समाप्त करने पर

यदि कोई श्रमिक उपरोक्त उदाहरण मे २० यूनिट कार्य को केवल ८ घन्टे मे कर लेता है तो उसे मजदूरी इस प्रकार मिलेगी :—

(कार्य समाप्त करने का वास्तविक समय × वेतन की प्रति घन्टा दर) + (प्रब्याज की दर × बचाया हुआ समय × प्रति घन्टा दर)

अर्थात् (८ × १ रु०) + (३३$\frac{1}{3}$% × २ × १ रु०)

= ८ रु० + ६६·७ न० पैसे

= ८ रु० ६६·७ न० पैसे

शेष २ घन्टे का = ८ रु० १६·७ न० पैसे × $\frac{2}{8}$ (घन्टे)

= २ रु० १६·७ न० पैसे

कुल वेतन = ८ रु० ६६·७ न० पैसे + २ रु० १६·७ न० पैसे

= १० रु० ८३·४ न० पैसे

इगलैंड मे भी इसी प्रकार की पद्धति प्रचलित है जो कि 'वेइर पद्धति'

के नाम से अधिक प्रचलित है। इसका वेइर नाम पडने का कारण यह है कि यह सर्वप्रथम क्लाइड नदी पर स्थित वेइर इन्जीनियरिंग वर्क्स, कैथकार्ट मे प्रयुक्त हुई थी।

लाभ

(१) इसका प्रारम्भ करना सरल है, क्योंकि इसके लिए आरम्भिक अध्ययन नही करना पडता।

(२) प्रचलित दुकान पद्धति (Shop Methods) और इस पद्धति मे कोई महत्वपूर्ण अन्तर नही है। यह अप्रमापित दशाओ मे भी अपनाई जा सकती है।

(३) इसमे नियोक्ता एव श्रमिक दोनो को लाभ होता है, क्योंकि बचाए हुए समय के लाभ को नियोक्ता (Employer) एव श्रमिक दोनो बाँट लेते हैं।

(४) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी योजना महत्वपूर्ण है। श्रमिक को जो कुछ लाभ होता है, उससे वह सतुष्ट हो जाता है, यद्यपि बचाए हुए समय का एक हिस्सा नियोक्ता को भी मिल जाता है।

श्री हैरिंगटन इमर्सन ने भी इस सम्बन्ध मे कहा है कि, "यदि नियोक्ता की ओर मे कोई सुधार नही किया गया है, और केवल श्रमिक के ही अधिक परिश्रम एव विवेक के कारण उत्पादन म वृद्धि हुई है तो कोई कारण नही है कि श्रमिक को सम्पूर्ण उत्पादन वृद्धि न मिले, परन्तु यदि उत्पादन मे वृद्धि नियोक्ता द्वारा प्रदान की गई सुन्दर साजसज्जा के कारण हुई है तो श्रमिक को उसका एक अश देना भी न्यायोचित नही है।"*

हानि

(१) इस पद्धति मे अवैज्ञानिक रीति से निर्धारित प्रमापित समय के आधार पर कार्यानुसार पद्धति (Piece-Rate) अपनायी जाती है।

---

* If there is no improvement by the employer, there is no reason why the employee should not get in full the increased result due to his greater deligence and skill, but if improvement is due to the employer's better equipment there is no justice in giving the employee any part of it." —*Harrington Emerson.*

(Discussion in the American Society of Mechanical Engineers: Jones, Op. Cit page 473)

(२) यह पद्धति नवीन प्रमाप बनाने के बजाय पिछले कार्य पर निर्भर रहती है।

(३) न्यूनतम मजदूरी निश्चित होने के कारण यह श्रमिकों के ऊपर होता है कि वे अधिक कुशलता से कार्य करें अथवा नहीं।

(४) प्रशासन के दृष्टिकोण से यह पद्धति ठीक नहीं है क्योंकि निश्चित प्रमाप के स्तर तक पहुँच जाने के पश्चात् अधिक उत्पादन करने न करने का निश्चय करना केवल श्रमिक पर ही छोड़ दिया जाता है।

(३) रोवन प्रव्याज योजना (Rowan Premium System)

इस प्रद्धति को स्काटलैंड की सार्थ डैविड रोवन एण्ड सन्स, ग्लासगो के श्री जैम्स रोवन ने प्रतिपादित किया था। वास्तव मे देखा जाय तो यह पद्धति हाल्से पद्धति का ही परिवर्तित रूप है। हाल्से पद्धति की भाँति इसमे भी कार्य व प्रबन्ध की वर्तमान अवस्थाएँ वैसी ही रहने दी जाती है। प्रमापित समय व प्रमापित कार्य निश्चित कर दिया जाता है। एक न्यूनतम मजदूरी भी निश्चित कर दी जाती है।

परन्तु यह योजना प्रव्याज निश्चित करने की दृष्टि से हाल्से योजना से भिन्न है। इस पद्धति के अनुसार श्रमिक के बचे हुए समय की मजदूरी उतने प्रतिशत से बढेगी, जितने प्रतिशत कमी उस काम के लिए निर्धारित समय मे होती है। 'श्री रोवन' के अनुसार बचाए हुए घन्टो की प्रव्याज कुल प्रमाणित मजदूरी से अधिक नही हो सकेगी। इस प्रकार कोई श्रमिक अपनी चतुरता से आवश्यकता से अधिक नही कमा सकता।

प्रव्याज निकालने का नियम

महोदय रोवन ने प्रव्याज निकालने के लिए निम्नलिखित सूत्र (फार्मूला) दिया है :—

$$\text{प्रव्याज या प्रीमियम} = \frac{\text{बचाया हुआ समय}}{\text{प्रमापित समय}} \times (\text{लगा हुआ समय} \times \text{दर प्रति प्रति घन्टा})$$

उदाहरण

पिछले उदाहरण के आधार पर ही, जहाँ प्रमापित समय १० घण्टे, प्रति

घण्टा दर १) रु० और कार्य करने मे लिया गया समय ८ घण्टे है, वहाँ—

प्रब्याज = $\frac{3}{10}$ X (८ X १ रु०) = $\frac{8}{5}$ रु०

= १·६० न० पै० होगी, और

कुल मजदूरी, लगा हुआ समय + प्रब्याज अथवा (८ रु० + १·६०) ९·६० न० पै० होगी।

यह पद्धति हाल्से पद्धति से उत्तम होते हुए भी दोषपूर्ण है। इससे श्रमिकों को अधिक प्रोत्साहन एव प्रेरणा नही मिलती है, क्योंकि जैसे-जैसे समय अधिक बचता जाता है श्रमिक को एक बढते हुए धन का केवल एक निश्चित भाग ही मिलता है। सर विलियम ऐशले के विचार में, "लिए हुए समय का वही अनुपात जो बचाए हुए समय का हो", मे न्यायता की कोई तर्क संगत व्याख्या नही होती। इसके अतिरिक्त श्रमिक अपनी मजदूरी का हिसाब लगाने के लिए आवश्यक गणित नही समझ पाता। अत. यह पद्धति अधिक लोकप्रिय नही है।

(४) गैन्ट बोनस योजना (Gant Bonus Plan)

यह 'टास्क एण्ड बोनस प्लान' के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस पद्धति को श्री एच० एल० गैन्ट ने उस समय प्रतिपादित किया था जब वे बैथलेहम स्टील कम्पनी मे श्री एफ० डब्लू० टेलर के साथ कार्य करते थे यह पद्धति कार्यानुसार पद्धति और सामयिक दर पद्धति का समन्वय है और टेलर भिन्नक कार्यानुसार पद्धति पर विशेष रूप से आधारित है। इसमे निश्चित दर के अतिरिक्त श्रमिकों को अधिक काम करने पर अधिक मजदूरी दी जाती है। इसमें एक विशेषता यह है कि प्रब्याज बचाये हुवे समय के अनुसार नही दी जाती, बल्कि जो समय दिया जाता है उस समय का २५ % से ५० % तक दिया जाता है।

उदाहरण

किसी कारखाने मे समयानुसार मजदूरी दर १) रु० प्रति घन्टा है और बोनस प्रमापित समय (Standard Time) का २५ % है तथा प्रमापित समय १० घन्टे है। यदि कोई मजदूर १० घन्टे के स्थान पर ८ घन्टे मे कार्य समाप्त कर देता है, तो उसे मजदूरी इस प्रकार मिलेगी :—

समयानुसार मजदूरी ८ X १ रु० = ८) रु०

बोनस (८ घन्टे का २५ %) = २) रु०

कुल मजदूरी १०) रु०

यदि कोई मजदूर १० घन्टे मे कार्य समाप्त करता है तो उसे १) घन्टे की दर से १०) मिलेंगे। इस प्रकार एक कुशल श्रमिक को ८ घन्टे मे ही १०) रु० मिल जावेंगे, जबकि दूसरे श्रमिक को १० घन्टे मे केवल १०) रु० ही मिलेंगे।

(५) इमर्सन दक्षता योजना (Emerson Efficiency Plan)

श्री एफ० डब्लू टेलर के समकालीन श्री हेरिंगटन इमर्सन ने एक योजना निकाली जो इमर्सन दक्षता योजना के नाम से प्रसिद्ध है। इमर्सन महोदय ने अपनी योजना मे उन दोषो को दूर करने की चेष्टा की है जो कि टेलर तथा गैन्ट पद्धतियो मे विद्यमान थे। श्रमिको को और अधिक प्रेरणा देने के लिए इमर्सन ने निश्चय किया कि यदि कोई श्रमिक $\frac{2}{3}$ कार्य को कर लेता है तो उसको प्रब्याज मिलनी चाहिए। यह प्रब्याज उस समय तक बढती जावेगी जब तक कि वह १०० % न हो जाय। इस प्रकार इसमे 'समय' तथा 'कार्यानुसार पद्धति' के अनुसार मजदूरी निश्चय की जाती है और श्रमिको को उनकी योग्यता के अनुसार मजदूरी दी जा सकती है।

क्षमता पर आधारित पारितोषिक धीरे-धीरे बढता है। श्रमिक की क्षमता निश्चित प्रमापित समय तथा कार्य समाप्त करने मे, लिए गए समय के अनुसार निर्धारित की जाती है। यदि किसी कार्य के लिए निश्चित प्रमापित समय ८ घन्टे है और कोई श्रमिक उस कार्य को केवल ४ घटे मे कर लेता है तो उसकी क्षमता २०० % होगी। इसके विपरीत यदि वह इस कार्य को १६ घन्टे मे करता है तो उसकी क्षमता ५० % होगी। किसी भी श्रमिक को उस समय तक बोनस नही मिलता है जब तक वह ६६$\frac{2}{3}$ % क्षमता प्राप्त न कर ले। यह बोनस उस समय तक बढता रहता है जब तक श्रमिक की क्षमता १०० % हो जाय। १०० % क्षमता प्राप्त कर लेने पर श्रमिक को २० % बोनस मिलता है। १०० % से ऊपर क्षमता पर श्रमिक को प्रयुक्त समय की तथा बचाए हुए समय की मजदूरियां मिलती है। उदाहरणार्थ १२० % दक्षता प्राप्त कर लेने पर श्रमिक को बोनस ४० % तथा १४० % दक्षता प्राप्त कर लेने पर दैनिक मजदूरी का ६० % बोनस मिलेगा।

इमर्सन द्वारा दी गई बोनस की प्रतिशतो मे विभिन्न परिस्थितियो मे परिवर्तन किया जा सकता है जैसे वेनर लुण्ड योजना (*Wenner Lund Plan*) मे बोनस ७५ % कार्य समाप्त करने पर दिया जाता है।

श्री इमर्सन ने बोनस का हिसाब उत्पादन की प्रति इकाई पर न लगाकर मासिक आधार पर लगाया है जिससे श्रमिक बोनस कमाने के लिए निरन्तर प्रयत्न करने लगे। यदि वह किसी काम को कुछ दिनों में पूरा न कर सका तो शेष दिनों में कार्य करने की मात्रा को बढ़ाकर अपनी कमी को एक बहुत बड़ी सीमा तक पूरा कर सकता है।

(६) बोनस पद्धतियाँ

उपरोक्त पद्धतियों के अतिरिक्त श्रमिकों को अधिक प्रोत्साहित तथा कार्यशील बनाने के लिए समय-समय पर विभिन्न प्रकार के बोनस दिये जा सकते हैं। जैसे उत्पादन के गुण को बढ़ाने के लिए क्वालिटी बोनस, वस्तुओं को नष्ट होने से बचाने के लिए छीज निवारण (Waste Elimination) बोनस या सब श्रमिकों को सामूहिक रूप से बोनस देने के लिए सामूहिक बोनस (Group Bonus) घोषित किए जा सकते हैं। यदि किसी उद्योग में किसी वर्ष विशेष में अधिक लाभ हो जाता है तो विशेष बोनस (Special Bonus) घोषित किये जा सकते हैं।

(७) क्रमिक दर या स्लाइडिंग स्केल पद्धति

इस पद्धति के अन्तर्गत श्रमिकों की मजदूरी निर्मित वस्तुओं के मूल्य के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। वस्तुओं के मूल्य बढ़ने पर श्रमिकों की मजदूरी बढ़ा दी जाती है और वस्तुओं के मूल्य घटने पर श्रमिकों की मजदूरी घटा दी जाती है। वस्तुओं के मूल्य बढ़ने पर, साधारण रूप से यह समझा जाता है कि मालिकों को अधिक लाभ होने लगा है। अतः उन्हें श्रमिकों को अधिक मजदूरी देना भी न्यायोचित है। लाभ कम होने की दशा में मजदूरी कौ दर दी जाती, परन्तु एक निश्चित सीमा से कम नहीं की जाती है। इस पद्धति के अनुसार श्रमिकों को उद्योग की समृद्धि में हिस्सेदार माना जाता है, अतः उन्हें इसे समृद्ध करने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

लाभ

(१) श्रमिक और मालिक दोनों उद्योग के लाभ को समान रूप से विभाजित करते हैं, अतः दोनों ही उत्थान-पतन में सहायक होते हैं।

(२) श्रमिकों और उद्योगपतियों में मजदूरी के सम्बन्ध में कलह नहीं होती, क्योंकि दोनों ही उद्योग में अपने को हिस्सेदार समझते हैं।

(३) श्रमिको को मानसिक शान्ति प्राप्त होती है क्योंकि उनके कार्यों में सुरक्षा एव निश्चिन्तता आ जाती है। वे अपने कार्य को निश्चिन्त होकर कर सकते हैं।

(४) श्रमिको को उद्योग के सम्बन्ध मे पूर्ण जानकारी रहती है, क्योंकि उन्हें अपने अकेक्षको (Auditors) के द्वारा उद्योग को व्यापार सम्बन्धी क्रियाओ का अकेक्षण कराने का अधिकार होता है।

हानि

(१) मजदूरी निश्चित न होने के कारण श्रमिकों का जीवन स्तर भी अनिश्चित रहता है।

(२) उद्योग का लाभ केवल मूल्यो के बढने मे ही नही, अन्य किसी कारण से भी बढ सकता है। कभी कभी व्यापार उत्पादन मूल्य तो बढ जाता है, किन्तु उस अनुपात से लाभ नही बढता। अत श्रमिक मूल्यो की तुलना करके किसी निर्णय पर नही पहुँच सकता।

(३) कभी-कभी श्रमिको के दोषी न होने पर भी उसे हानि सहनी पडती है क्योकि मूल्य का उतार चढाव श्रमिक की उत्पादन शक्ति की अपेक्षा वस्तु की बाजार मे माँग और पूर्ति पर निर्भर करता है।

(४) उपभोक्ता के दृष्टिकोण से, इस पद्धति का दुरुपयोग किया जा सकता है, क्योकि कीमतो को आवश्यकता से अधिक ऊँचा ले जाया जा सकता है, जिससे श्रमिको और मालिको दोनो का लाभ हो। एकाधिकार (Monopoly) की अवस्था म तो उपभोक्ता का और भी शोषण किया जा सकता है।

(८) निर्वाह लागत मजदूरी पद्धति (Cost of Living Wage)

इस पद्धति के अनुसार श्रमिको की मजदूरी जीवन निर्वाह लागत अनुक्रमणिका (Cost of living indices) के अनुसार निर्धारित की जाती है। इसके अनुसार श्रमिको की मजदूरियो को रहन सहन को लागत के साथ प्रत्यक्ष रूप से सह सम्बद्ध कर दिया जाता है। यह पद्धति श्रमिको की सुरक्षा उस समय करती है जब मुद्रा मे स्फीति (Inflation) रहे और उनकी क्रय शक्ति घट जाय। इसके द्वारा मजदूरी मे भी वृद्धि उसी अनुपात मे हो जावेगी, जिस अनुपात मे मुद्रा स्फीति हो गई हो। इस प्रकार श्रमिक के रहन सहन का स्तर

यथावत रहता है। दूसरे शब्दों मे इस पद्धति के द्वारा श्रमिकों के वास्तविक वेतन पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता।

यह पद्धति भारतवर्ष मे अधिक उपयोगी नही है, क्योंकि यहाँ पर अभी तक श्रमिक अनुक्रमणिका का पर्याप्त प्रकाशन नही होता। पिछले कुछ वर्षों मे भारत सरकार के श्रम मन्त्रालय के श्रम ब्यूरो ने श्रमिको के रहन-सहन की लागत की सूचक सख्या प्रकाशित करना प्रारम्भ कर दिया है। यह सूचक सख्या श्रमिक परिवारो के उपभोग मे आने वाली महत्वपूर्ण वस्तुओ के १९४४ वाले वर्ष के औसत मूल्यों पर आधारित है। देश के प्रमुख औद्योगिक केन्द्रो जैसे बम्बई, अहमदाबाद, शोलापुर तथा कानपुर इत्यादि से विभिन्न प्रकार के सूचनाक प्रकाशित किए जाते हे।

लाभ

(१) श्रमिको की मजदूरी कार्य के अनुसार नहीं, बल्कि वस्तुओं के मूल्यों के अनुसार निश्चित की जाती है।

(२) श्रमिको को सामयिक मन्दी तेजी की चिन्ता नही रहती।

(३) श्रमिको मे सन्तोष की भावना होने के कारण औद्योगिक कलह नहीं होती जिसके फलस्वरूप उत्पादन मे कभी भी असुविधा नही होती।

(४) उद्योगपति भी श्रम-सघर्ष की ओर से निश्चिन्त रहते है।

हानियाँ

(१) श्रमिको के जीवन निर्वाह निर्देशाक (Cost of Living Index) सुगमता से प्राप्त नहीं होते।

(२) श्रमिको की आवश्यकतानुसार मजदूरी मे तुरन्त परिवर्तन नहीं हो सकता क्योकि निर्देशाक बनने मे पर्याप्त समय लग जाता हे।

(३) वस्तुओं के मूल्य के अनुसार एकाएक मजदूरी मे परिवर्तन करना बहुत कठिन हे।

(४) श्रमिक इस पद्धति से अधिकतर असतुष्ट रहता है क्योकि उसकी आवश्यकतानुसार इसमें तत्काल परिवर्तन नहीं हो पाता हे।

(९) लाभ-भाजन पद्धति (Profit Sharing Scheme)

प्राचीन आर्थिक विचारधारा के अनुसार लाभ पर केवल पूजीपति या

साहसी का ही अधिकार समझा जाता था, परन्तु वर्तमान समय मे प्रगतिशील लोग यह मानने लगे हैं कि श्रमिक, जो कि अपने कठिन परिश्रम के द्वारा उद्योगो का सचालन सम्भव करता है, को भी इस लाभ मे कुछ भाग मिलना चाहिए। अत श्रमिको को उद्योग के लाभो मे एक भाग देने के लिये "लाभ-भाजन" पद्धति को अपनाया गया है।

लाभ-भाजन की परिभाषा

श्री हेनरी आर० सीगर के शब्दो मे "यह एक समझौता है, जिसके अनुसार श्रमिक को लाभ का एक हिस्सा मिलता है, जो लाभ होने मे पूर्व ही निश्चित कर दिया जाता है।"* श्री राबर्ट के अनुसार, "लाभ-भाजन एक स्वतन्त्र समझौता है, जो कि लिखित या मौखिक हो सकता है और जिसके अनुसार नियुक्त श्रमिको को उनकी साधारण मजदूरी के अतिरिक्त लाभ का अश प्राप्त करने का अधिकार देता है, किन्तु हानि का नही।" ब्रिटेन की लाभ-भाजन और सहभागिता रिपोर्ट १९२० मे "लाभ-भाजन उन परिस्थितियो मे लागू होने वाला बताया गया है, जबकि नियोक्ता अपने श्रमिको के साथ यह समझौता कर लेता है कि उन्हे अपनी मजदूरियो के अतिरिक्त, उनके श्रम के आँशिक पारितोषिक के रूप मे उद्योग के उस हिस्से के लाभ में से, जिस पर लाभ-भाजन लागू है, पहले से निश्चित एक अश मिलेगा।

१८९९ में पेरिस में लाभ-भाजन के सम्बन्ध मे हुई अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स ने लाभ-भाजन की परिभाषा इस प्रकार दी थी—"वह समझौता (औपचारिक या अनौपचारिक) जो स्वेच्छा से किया गया हो, और जिसके अनुसार कर्मचारियों को लाभ होने से पूर्व निश्चित लाभ का हिस्सा मिलता हो।"

१९३९ मे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में सीनेट की एक समिति ने इसको इस प्रकार परिभाषित किया था—'श्रमिको को लाभ पहुँचाने वाली वे सब योजनाएँ जिन पर नियोक्ता कुछ व्यय करता है।"

उपरोक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि लाभ-भाजन वास्तव

---

* "An arrangement entered into, by which the employee receives a share, fixed in advance, of the profits".

H. R. Seager, "Principles of Economics", p 581.

में मजदूरी देने की कोई पद्धति नहीं है। इसके अनुसार साधारण मजदूरी के अलावा श्रमिकों को लाभ का एक भाग दिया जाता है, जिससे उन्हें प्रेरणा मिलती है।

ऐतिहासिक सिंहावलोकन

लाभ-भाजन-योजना का प्रयोग सर्वप्रथम १८२० में फ्रांस के एक गृह-चित्रकार (House Painter) श्री एम० लेक्लेयर (M. Laclare) के द्वारा हुआ। लेक्लेयर ने अनुमान लगाया कि यदि वह अपने कर्मचारियों से कम समय नष्ट करवा सके और कच्चे माल तथा औजारों के प्रयोग में मितव्ययिता करवा सके तो उसे ३००० पौंड से अधिक शुद्ध बचत हो सकती है। अतः उसने अपने कर्मचारियों को लाभ का एक अंश देने का वचन दिया। इस प्रथा के अधिक प्रचलित हो जाने पर उपक्रम के लाभ का कुछ भाग चुने हुए कर्मचारियों को उनकी कमाई के अनुपात में प्रति वर्ष बांट दिया जाता था।

इसके पश्चात् ग्रेट ब्रिटेन में बहुत सी योजनाएँ लागू हुई और लाभ-भाजन सहकारिता आन्दोलन का एक भाग बन गया। १८७० के बाद योजना संयुक्त राष्ट्र-अमेरिका और जर्मनी में लागू हुई। प्रथम महायुद्ध-काल तक यह योजना लगभग सभी देशों में अपना ली गई। भारतवर्ष में लाभ-भाजन की प्रथा "उत्पादित वस्तु में हिस्सा बाटने" की प्रथा के रूप में अनिश्चित काल से विद्यमान है। यह प्रथा बटाई प्रथा के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। औद्योगिक क्षेत्र में यह योजना १९४७ के बाद ही अपनाई गई, जिसका विस्तार में अध्ययन अगले पृष्ठों में किया गया है।

लाभ-भाजन की प्रमुख विशेषताएं

(१) श्रमिकों को वितरित किया जाने वाला लाभ का भाग, उपक्रम के शुद्ध लाभ अथवा लाभांश (Dividend) पर आधारित होता है।

(२) श्रमिकों को दिया जाने वाला प्रतिशत या भाग पहले से ही निश्चित कर दिया जाता है और उसमें नियोक्तागण बाद में परिवर्तन नहीं कर सकते है।

(३) इस प्रकार श्रमिकों को दिया जाने वाला भाग अनिश्चित होता है। लाभ अधिक या कम हो सकता है और कुछ वर्षों में वास्तविक हानि भी हो सकती है।

(४) लाभ-भाजन व्यवस्था का लाभ कुछ विशेष कर्मचारियों तक ही

सीमित नही होता है, बल्कि इसका लाभ उपक्रम के प्रत्येक कर्मचारी को मिलता है ।

लाभ-भाजन पद्धति के प्ररूप

लाभ भाजन पद्धति के निम्न प्ररूप हो सकते हैं —

(१) औद्योगिक आधार (Industry Basis)— उद्योग के समस्त श्रमिको को समान रूप से पारिश्रमिक देने के लिए, उस उद्योग विशेष की विभिन्न इकाइयो का लाभ एक स्थान पर एकत्रित किया जाता है । इस पद्धति से किसी उद्योग विशेष के समस्त श्रमिक वर्ग को समान स्तर (Uniform Basis) पर रखा जा सकता है । यदि किसी औद्योगिक इकाई मे किसी वष हानि भी हो जाती है, तब भी श्रमिको पर बुरा प्रभाव नही पडता है, *क्योंकि इसकी क्षतिपूर्ति अन्य औद्योगिक इकाइयो से, जिनमे पर्याप्त लाभ* हुआ है, हो जाती है ।

(२) स्थानीय आधार (Locality Basis)—एक ही स्थान पर स्थापित समस्त उद्योग अपने लाभो को एकत्रित करके श्रमिको का लाभाश निकालते है जिससे उस स्थान के समस्त उद्योगो के श्रमिको को समान रूप से लाभ वितरित किया जा सके । यह पद्धति उस समय असफल हो सकती है, *जब उस स्थान के श्रमिको के काय की प्रकृति काफी विभिन्न हो ।* इस प्रकार उस स्थान के श्रमिको की आय म सुधार (Adjustment) करना बहुत कठिन हो जाता है ।

(३) इकाई आधार (Unit Basis)—इस पद्धति के अनुसार उद्योग की विभिन्न इकाइयो का लाभ पृथक-पृथक निकाल कर श्रमिको को वितरित किया जाता है । इससे श्रमिको के परिश्रम (Efforts) और पारितोपिक (Reward) मे एक सीधा सम्बन्ध बना रहता है ।

(४) विभागीय आधार (Departmental Basis)—इसके अनुसार कभी-कभी किसी औद्योगिक इकाई के विभिन्न विभागो का लाभ अलग-अलग निकाल कर उन विभागो के श्रमिको को बाट दिया जाता है । इस प्रकार एक विभाग के श्रमिक उस विभाग द्वारा अर्जित लाभ को ही प्राप्त कर सकते है । इससे श्रमिको के परिश्रम और पारितोपिक मे और भी सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है, जिससे श्रमिको को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरणा मिलती है ।

(५) व्यक्तिगत आधार (Individual Basis)—इसके अनुसार किसी श्रमिक विशेष को उसके कार्य के आधार पर ही एक निश्चित लाभांश दिया जाता है। इससे श्रमिक के परिश्रम और पारिश्रमिक मे एक दम सीधा सम्बन्ध रहता है। यद्यपि यह पद्धति सर्वोत्तम है परन्तु व्यवहार मे बहुत कठिन है।

लाभ देने की रीतियाँ

श्रमिकों को लाभाँश निम्नांकित रीतियो मे से किसी भी रीति के अनुसार दिया जा सकता है :—

(१) नकद वितरण (Cash Distribution)

(२) *अंशो अथवा स्कंध का वितरण (Distribution of shares* or Stock)

(३) स्थगित बचतें जैसे प्रावीडेन्ट फण्ड पेंशन इत्यादि।

साधारण रूप मे लाभांश नकद रुपयो मे ही दिया जाता है। कभी-कभी श्रमिकों के नाम खाते (Accounts) खोल कर उनको उसमें से रुपया निकालने का अधिकार भी दे दिया जाता है। द्वितीय रीति के अनुसार श्रमिको को लाभांश नकद रुपयों मे न देकर कम्पनी के अंशो अथवा स्कन्ध के रूप मे दिया जाता है। इससे श्रमिकों का उद्योग मे स्थायी हित हो जाता है और एक प्रकार की सह-भागिता (Co-partnership) सी हो जाती है। तृतीय रीति के अनुसार श्रमिकों को प्रावीडेन्ट फन्ड पेन्शन इत्यादि का लाभ दिया जाता है जिससे श्रमिक उद्योग से विलग होने की बात साधारण रूप से नही सोचता है।

लाभ-भाजन के लाभ

(१) उत्पादन की मात्रा एवं गुण मे वृद्धि

श्रमिक लाभ मे भाग पाने के कारण अधिक परिश्रम करता है, क्योंकि लाभ उसके परिश्रम के अनुसार ही अधिक या कम होगा। वह यथासम्भव उत्पादन सम्बन्धी बरबादी एवं हानि को रोकने की चेष्टा करता है। यन्त्रों का उत्तम से उत्तम उपयोग करता है और उनको नष्ट होने से बचाता है। इस प्रकार वस्तुओ के उत्पादन मे वृद्धि व उसके गुणो मे सुधार हो जाता है।

(२) श्रमिकों में उत्साह एवं स्वामिभक्ति की भावना

लाभ मे भाग मिलने के कारण श्रमिको मे कार्य करने का उत्साह एवं उद्योग के प्रति स्वामिभक्ति की भावना जागृत हो जाती है।

(३) श्रमिक-नियोक्ता के सम्बन्धों में सुधार

यदि श्रमिक ईमानदारी और वफादारी से कार्य करते जाते हैं तो श्रमिक और नियोक्ता (Employers) के सम्बन्ध अच्छे बने रहते है। नियोक्ता के कर्त्तव्यानुराग मे भी वृद्धि हो जाती है अर्थात् नियोक्तागण अपने कर्त्तव्यो का पालन अधिक से अधिक करने लगते है।

(४) सहयोग की भावना में वृद्धि

श्रमिक और नियोक्ताओं का एक ही लक्ष्य होने के कारण उनमे परस्पर मिलकर काम करने की प्रवृत्ति *(Espirit de Corps)* तथा सहयोग की भावना मे वृद्धि होती है।

(५) उद्योग के कल्याण में अभिरुचि

सामूहिक आधार पर लाभ-भाजन होने के कारण श्रमिक की अभिरुचि उद्योग के कल्याण की ओर बढ जाती है। वह अधिक लगन व तत्परता से कार्य करने लगता है और अपने दायित्व को भी समझने लगता है।

(६) श्रमिकों के नियोजन (Employment) मे सुरक्षा

लाभ-भाजन पद्धति के अनुसार श्रमिक अपने नियोजन को छोडकर अन्यत्र आसानी से नही जाते क्योकि लाभ-भाजन का उद्देश्य श्रमिको को अधिक आर्थिक सुरक्षा प्रदान करना होता है। नियोक्ता को भी यह विश्वास हो जाता है कि श्रमिक स्थिर रूप से उसके नियोजन मे रहेगा। अत. श्रमिको की छटनी (Turn-over) मे कमी हो जाती है।

(७) समाज को लाभ

लाभ-भाजन पद्धति से औद्योगिक शाति रहती है क्योकि श्रमिको और नियोक्ताओ मे झगडे कम होते हैं। इससे मजदूरी और उत्पादन मे वृद्धि होती है। अधिक मात्रा मे उत्पादन होने के कारण उत्पादन की लागत भी कम हो जाती है। इस प्रकार समाज को समय पर आवश्यक वस्तुएँ कम मूल्य पर प्राप्त हो जाती है।

(८) राष्ट्र को लाभ

औद्योगिक कलह न होने से, श्रमिको के जीवन स्तर मे वृद्धि होने से तथा राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होने से राष्ट्र को भी लाभ होता है।

लाभ-भाजन की हानियाँ

(१) प्रयास और पुरस्कार में प्रत्यक्ष सम्बन्ध का अभाव

लाभ-भाजन पद्धति के अन्तर्गत श्रमिक के प्रयास और पुरस्कार (Effort and reward) मे कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नही रहता है। पुरस्कार श्रमिक को व्यक्तिगत दक्षता के अनुसार न दिया जाकर, सब श्रमिको को सामूहिक रूप से दिया जाता है। अत श्रमिको को अधिक प्रेरणा नही मिलती है।

(२) लाभ-भाजन की योजना केवल लाभ पर आधारित होती है

यह योजना उसी समय अपनाई जाती है, जबकि उद्योग मे पर्याप्त लाभ हुए हो। लाभ न होने की अवस्था मे अथवा हानि होने पर यह योजना नही अपनाई जाती है। अत· यह केवल लाभ के समय की योजना है। लाभ अधिक होने की अवस्था मे, अथवा समृद्धि काल मे कितनी भी योजनाएँ अपनाई जा सकती है।

(३) पुरस्कार देर से मिलता है

श्रमिको को लाभ मे अश केवल उस समय घोषित किए जाते हैं जबकि उस सार्थ के वार्षिक या अर्द्ध वार्षिक खाते बन गए हो। इस प्रकार श्रमिको को एक बहुत बडे समय तक इन्तजार करना पडता है। अत: श्रमिक इस पुरस्कार से बहुत लालायित नही होते हैं। फलत श्रमिक को अधिक प्रयास करने के लिए प्रेरणा नही मिलती है।

(४) पुरस्कार की अनिश्चितता

लाभ-भाजन का एक दोप यह भी है कि श्रमिको के एक लम्बे काल तक इन्तजार करने के बाद भी पुरस्कार के सम्बन्ध मे कोई निश्चितता नही होती है। हो सकता है वर्ष के अन्त मे लाभ के स्थान पर हानि हो जाय, अथवा नाममात्र को ही लाभ हो। ऐसी अवस्था मे श्रमिको का उत्साह बहुत ढीला पड़ जाता है और वे भविष्य मे अधिक क्रियाशील नही रहते।

(५) लाभ-भाजन निश्चित करने का अवैज्ञानिक आधार

लाभ-भाजन निश्चित करने का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं होता है। यह अधिकार उद्योगपति या नियोक्ता की स्वेच्छा पर होता है। इससे कुशल श्रमिको को कोई प्रोत्साहन नही मिलता।

(६) श्रमिकों की व्यक्तिगत दक्षता पर ध्यान नहीं दिया जाता

लाभ-भाजन सब श्रमिको को सामुहिक रूप से दिया जाता है अतः उसमे किसी श्रमिक की व्यक्तिगत कुशलता एव दक्षता पर ध्यान नही दिया जाता। डा० शैडवैल के शब्दो मे "*यह व्यक्तियो मे उसकी क्षमता के अनुसार अन्तर नहीं करता।*"*

(७) लाभ-भाजन पद्धति श्रमिकों के लिए जटिल होती है

श्रमिक गण इस पद्धति को सरलता से नही समझ पाते है, अत उनके मस्तिष्क मे एक सशय रहता है। इसके अतिरिक्त लाभ-भाजन का निश्चय *करते समय उनकी (श्रमिको) अथवा उनके सघो (Unions) की सलाह नही ली जाती है।*

(८) श्रमिकों में असंतोष

लाभ-भाजन के अन्तर्गत मिलने वाले लाभ को श्रमिक गण अपने हक *अथवा अधिकार के रूप मे समझने लगते है। किसी भी वर्ष पर्याप्त लाभ न होने* पर और फलत लाभाश प्राप्त न होने पर वे लोग असतोष प्रकट करते है। कभी-कभी असतोष की भावना हडताल का रूप धारण कर लेती है।

(९) नियोक्ता लाभ-भाजन पद्धति को अपनी उदारता समझते हैं

उद्योगपति अथवा नियोक्ता गण श्रमिको को लाभ देने की पद्धति को अपने कृपालु हृदय की उदारता (Warm-hearted philanthropy) समझते है। दूसरे शब्दो मे वे केवल इसे एक प्रकार का दान समझते है। उनके इस विचार से श्रमिको की प्रतिष्ठा एव स्वाभिमान को धक्का पहुँचता है।

---

* "It does not differentiate between individuals according to capacity."　　—*Dr. Shadwell.*

(१०) श्रम-संघों द्वारा विरोध

श्रम- सघ भी इस पद्धति के पक्ष मे नही रहते है, क्योकि उन्हे मालिको से अधिक मजदूरी एव अन्य सुविधाएँ माँगने के अवसर (Opportunities) प्राप्त नही होते। वे यह भी समझने लगते है कि मालिक लोग श्रमिको को लाभ मे भाग देकर उनके (श्रम-सघो) विरुद्ध कर रहे हैं। महोदय टासिग के शब्दो "इससे श्रमिक अपने निकट के साथियो मे ही विशेषरूप से हित (Interest) रखने लगता है और उस उद्योग या स्थान के श्रमिको मे हित नही रखता।"

ससार के अनेक देशों मे लाभ-भाजन की पद्धति अपनायी जा चुकी है। सर्व प्रथम १९२० मे फ्रास ने इस पद्धति को अपनाया था। इगलैंड मे लाभाश एव सहभागिता पर एक विस्तृत रिपोर्ट १९२० मे लिखी गई थी।

भारतवर्ष मे लाभ-भाजन

भारतवर्ष मे दिसम्बर सन् १९४७ मे एक त्रिदलीय उद्योग सम्मेलन (Industries Conference) हुआ। इस सम्मेलन मे औद्योगिक सम्बन्धो मे सुधार करने का निश्चय किया गया। अप्रैल सन् १९४८ मे भारत सरकार ने निम्नलिखित बातो के लिए सिद्धान्त निश्चित करने के लिए एक केन्द्रीय परामर्श-दात्री परिषद (Central Advisory Council) नियुक्त की।

[१] श्रमिको को उचित मजदूरी।

[२] पूंजी पर उचित प्रतिफल (Return)।

[३] उपक्रम के प्रतिपालन (Maintenance) तथा विस्तार के लिए उचित रक्षित धन।

[४] अतिरिक्त लाभ मे श्रमिक का भाग क्रमिक आधार (Sliding Scale) पर निर्धारित करना।

उपरोक्त बातो पर, (प्रथम बात को छोडते हुए जिसके लिए एक पृथक समिति नियुक्त की गई) विचार करने के लिये, मई १९४८ मे १४ व्यक्तियो की एक विशेषज्ञ समिति (Expert Committee) नियुक्त की गई। इस समिति के चेयरमैन, केन्द्रीय उद्योग एव पूर्ति मन्त्रालय (Ministry of Industry and Supply) के सचिव श्री एस० ए० वैंकटरमन थे। इस समिति ने २९ मई से १ अगस्त, १९४८ तक अनेक बैठके की और अपनी रिपोर्ट सितम्बर १९४८ मे प्रस्तुत की।

समिति ने प्रारम्भ मे निम्नलिखित छ उद्योगो मे ५ वर्ष के लिए लाभ-भाजन की पद्धति प्रयोगात्मक (Experimental) आधार पर अपनाने की सिफारिश की —

[१] सूती वस्त्र उद्योग,
[२] जूट,
[३] स्पात (मुख्य उत्पादक),
[४] सीमेंट,
[५] टायर निर्माण, तथा
[६] सिगरेट निर्माण।

समिति ने लाभ-भाजन की योजना को सूती-वस्त्र उद्योग मे उद्योग-तथा-स्थान (Industry-cum locality) के आधार पर अपनाने की सिफारिश की थी। समिति का विचार था कि लाभ मे श्रमिक का भाग निकालने के लिए क्रमिक पद्धति (Sliding Scale) को नही अपनाना चाहिए क्योंकि यह व्यावहारिक नही है। समिति ने लिखा है कि, "उद्योग मे जो लाभ होता है वह श्रम के अतिरिक्त अन्य बहुत से घटको (Factors) पर निर्भर होता है और उस सीमा तक उसका जो कुछ श्रमिक करते है अथवा नही करते हैं उससे कोई विशेष सम्बन्ध नही होता। सम्भव है कि किसी कारखाने मे, जिसमे श्रमिको ने खूब परिश्रम से काम किया है, किन्हीं अन्य कारणो से कुछ भी लाभ न हो सके, या श्रमिको की शिथिलता होते हुये भी बहुत लाभ हो जाय। कुल उत्पादन को किसी एक सामान्य इकाई के रूप मे नापना बहुत कठिन काम है वार्षिक उत्पादन का कोई एक सामान्य माप तय कर देना और कठिन है·· सम्भव है कि अवाछित बाधाएँ आ जाएँ जिनके लिए कोई भी उत्तरदायी नही।"

समिति के विचार मे, पूँजी पर उचित प्रतिफल न्यूनतम प्रतिफल होगा, जो और अधिक पूंजी नियोजन को प्रोत्साहित करे। श्रमिको का हिस्सा उद्योग के अतिरेक (Surplus) लाभ का आधा रखने का सुझाव दिया गया। प्रत्येक श्रमिक का हिस्सा उसकी १२ माह की कुल आय मे से महगाई, बोनस तथा अन्य ऐसी प्राप्य आय को घटाकर शेष राशि के अनुपात मे होगा। यदि किसी श्रमिक का हिस्सा उसके मूल पारिश्रमिक के २५% से अधिक हो तो उसे २५% तो नकद मिलेगा आ शेष प्रावीडेंट फन्ड, पेंशन या अन्य किसी खाते मे जमा कर दिया जावेगा।

समिति के विचार मे लाभ-भाजन निश्चय करते समय उसकी उपयोगिता निम्न तीन महत्वपूर्ण दृष्टिकोणो से देखनी चाहिए —

[१] उत्पादन मे प्रेरणा या उद्दीपन,

[२] औद्योगिक शान्ति रखने के रूप मे, तथा

[३] श्रमिको को प्रबन्ध मे भाग देने के रूप मे।

नि सदेह जैसा कि कहा जा चुका है कि लाभ-भाजन योजना 'औद्योगिक लोकतन्त्र' (Industrial Democracy) की दिशा मे एक कदम है, परन्तु जैसा कि हम देख चुके है, इसमे अनेक दोष एव कठिनाइयाँ होने के कारण इसका प्रयोग सरल नही है। यही कारण है कि ससार के प्रगतिशील देशो जैसे इगलैंड और सयुक्त राष्ट्र अमेरिका आदि मे यह अपनाई गई और वाद मे छोड दी गई।

भारतवर्ष मे सर्वप्रथम १९३७ मे टाटा आइरन एण्ड स्टील कम्पनी ने इस योजना को अपनाया था। कम्पनी के सम्पूर्ण लाभो मे से घिसावट (Depreciation), कर (Tax) तथा पूर्वाधिकार अशधारियों के लाभाश की राशि निकालकर शेष शुद्ध लाभ का २२½ % प्रतिशत बोनस के रूप मे वितरित किया था। परन्तु कम्पनी को इसका दुखद अनुभव ही हुआ। श्रमिको की दक्षता (Efficiency) बजाय बढने के घट गई। उदाहरणार्थ १९३९–१९४० तथा १९४५–५५ के बीच कम्पनी की तैयार स्पात (Finished Steel) की प्रति टन लागत २७) रु० से ९९) रु० हो गई है, परन्तु प्रति श्रमिक औसत तैयार स्पात का उत्पादन २८ ९ टन से घटकर २३·२ टन रह गया है। इस गिरावट के अनेक कारण हो सकते है, परन्तु फिर भी लाभ-भाजन पद्धति से उत्पादन बढाने का उद्देश्य पूरा नही हुआ।

अमेरिका का अनुभव भी इसी प्रकार है जैसा कि मैक ग्रौ-हिल डाइजेस्ट, नवम्बर १९४६, (जिसमे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका मे लाभ-भाजन योजना का पर्यवेक्षण किया है) के शब्दो से स्पष्ट है।*

---

* Profit sharing has been abandoned by 60% of the 161 firms surveyed by National Industial Conference Board More than 25% were dropped as the result of *employers' or employees' dissatisfaction, some 36% because there were no profits to share or the company had gone out of business or changed hands.* Dissatisfaction arose mostly from employers lack of understanding of the principles involved and their inability to comprehend the influence of the business cycle."

सहभागिता (Co-partnership)

सहभागिता पद्धति के अनुसार श्रमिक अपने उद्योग के , सह-भागी (Co partners) बन जाते है । इसके अनुसार श्रमिको को उद्योग के लाभ मे भाग लेने के अतिरिक्त, पूँजी तथा प्रबन्ध मे भी भाग लेने का अधिकार मिल जाता है ।

इस पद्धति की विशेषताएँ निम्नलिखित है —

(१) श्रमिक पूर्व निर्धारित पारिश्रमिक के अतिरिक्त औद्योगिक सार्थ के शुद्ध लाभ का एक भाग पाते है ।

(२) श्रमिको को अतिरिक्त लाभ नकद न देकर अशो (Shares) के रूप मे दिया जाता है । इस प्रकार वे सार्थ की पूंजी के एक भाग के स्वामी हो जाते है ।

(३) सार्थ की पूजी के एक भाग के स्वामी हो जाने के कारण श्रमिको को सार्थ के प्रबन्ध एव व्यवस्था म भाग लेने का अधिकार मिल जाता है ।

लाभ

श्रमिको को सहभागिता से लाभ-भाजन के अतिरिक्त कुछ विशेष लाभ भी होते है —

(१) श्रमिक मे आत्म सम्मान की भावना जागृत होती है ।

(२) श्रमिको को तीन लाभ होते है ।

[अ] श्रमिक के रूप मे पारिश्रमिक प्राप्त होता है ।
[ब] अशधारी के रूप मे लाभाश प्राप्त होता है ।
[स] सह भागी के रूप मे सार्थ के प्रबन्ध एव व्यवस्था मे भाग लेने का अधिकार मिलता है ।

(३) श्रमिको एव नियोक्ताओ मे सहकारिता की भावना जागृत हो जाती है ।

(४) औद्योगिक कलह कम हो जाती है ।

(५) श्रमिको को अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलने के कारण उद्योग की उत्पादन क्षमता बढ जाती है ।

दोष

(१) यह पद्धति केवल संयुक्त स्कंध कम्पनियों में अपनायी जा सकती है।

(२) श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के कारण उद्योग की व्यवस्था में बाधा पड़ जाती है।

न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wage)

एक समय था जब कि नियोक्ता और श्रमिक के बीच स्वतन्त्र रूप से मजदूरी तय करना एक पवित्र और उत्तम वस्तु समझी जाती थी। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से सम्पूर्ण ससार मे सामूहिक सौदे (Collective Bargaining) के साथ-साथ 'निश्चित न्यूनतम मजदूरी' के लिए भी माग की जा रही है। सार्वजनिक रूप से यह मान लिया गया है कि सामाजिक न्याय के हित मे श्रमिकों को कम से कम इतनी मजदूरी मिलनी चाहिए जिससे वे एक उचित और अच्छा रहन-सहन का स्तर बना सकें। श्रमिकों का शोषण अब अन्यायपूर्ण समझा जाने लगा है और जनता का ध्यान सामाजिक दोषो को दूर करने के लिए उत्कृष्ट हो चुका है।

न्यूनतम मजदूरी के बीज सम्पूर्ण ससार मे सन् १८९१ मे पोप लुई १३वें द्वारा निर्गमित मैनिफैस्टो के द्वारा बोए गए। पोप ने अपने इस मैनिफैस्टो मे न्यूनतम मजदूरी के लिए घोषणा की थी—"आत्म-सरक्षण वास्तव मे प्रत्येक का कर्तव्य है और इसको पूरा न करना अपराध है।"* पोप के इस कथन का प्रभाव सारे ससार पर पडा और सन् १९२८ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-परिषद (International Labour Conference) ने इस सम्बन्ध मे एक अभिसमय (Convention) स्वीकार किया। इसके अनुसार इस अभिसमय (Convention) का समर्थन करने वाले, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन (I. L. O) के प्रत्येक सदस्य राष्ट्र के लिए आवश्यक था कि वे ऐसी व्यवस्था करें जिससे उनके द्वारा नियोजित श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी प्राप्त हो सके।

भारत सरकार ने इस अभिसमय (Convention) का समर्थन नहीं किया, परन्तु समय-समय पर नियुक्त आयोगो (Commissions) और समितियो (Committees) ने इस प्रश्न पर विचार किया। शाही श्रम

* "Self-preservation is really the duty of one and all and it is a crime not to fulfil it." —*Pope.*

आयोग (Royal Commission on Labour) ने न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की सम्भावना एव वाछनीयता जानने के लिए कुछ उद्योगो मे विस्तृत पर्यवेक्षण (Investigation) कराने की सलाह दी। १९३७ मे कांग्रेसी मन्त्रि मण्डल बन जाने से इस आन्दोलन को और प्रोत्साहन मिला। टैक्सटायल लेबर इन्क्वाइरी कमेटी, बम्बई (१९३७-४०), कानपुर लेबर इनक्वाइरी कमेटी, यू० पी० (१९३८), तथा बिहार लेबर इन्क्वाइरी कमेटी, (१९३८-४०) ने भी इस प्रश्न पर विचार किया और न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की सिफारिश की। इसके बाद १९४५ मे इण्डियन नेशनल कांग्रेस ने अपने चुनाव घोषणा-पत्र (Election-Manifesto) मे न्यूनतम मजदूरी की आवश्यकता को स्वीकार किया।

उसी समय से केन्द्रीय वेतन आयोग १९४६ (Central Pay Commission), औद्योगिक न्यायालय तथा अन्य जांच समितियाँ सब एक मत से न्यूनतम मजदूरी के पक्ष मे है। औद्योगिक न्यायालय, बम्बई ने सूती-वस्त्र उद्योग के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी ३० रुपए प्रतिमाह निश्चित की थी। बम्बई म्यूनिस्पल कारपारेशन ने अकुशल कर्मचारियो के लिए ३०) और ३५) के बीच न्यूनतम मजदूरी निश्चित की थी। कलकत्ते मे इलेक्ट्रिक सप्लाई कम्पनी के कर्मचारियो के लिए न्यूनतम मजदूरी युद्ध - पूर्व आधार (Pre-war basis) पर ३५) और ट्रामवे कम्पनी के कुलियो की मजदूरी चालू-स्तर (Current level) पर ६७॥) निश्चित की गई।

उत्तर प्रदेश मे यू० पी० लेबर इन्क्वारी कमेटी (१९४६-१९४८) जो कि निम्बकार कमेटी के नाम से प्रसिद्ध है, ने अनिवार्य मजदूरी (Compulsory Wages) की सिफारिश की थी। वह इस निष्कर्ष पर पहुँची कि ३०) रु० से कम धनराशि किसी हालत मे न होनी चाहिए। समिति ने यह भी सुझाव दिया कि अर्ध-कुशल व्यवसायो के लिए युद्ध-पूर्व आधार पर ४०) रु० प्रतिमाह कुशल व्यवसायो के लिए ५०) रु० तथा अति कुशल व्यवसायो के लिए ७५) रु० प्रति माह न्यूनतम मजदूरी होनी चाहिए।

इस समिति के सुझावो के अनुसार उत्तर-प्रदेशीय सरकार ने ६ दिसम्बर १९४८ को न्यूनतम मजदूरी तथा मँहगाई तथा खाद्य भत्ते (Food-allowances) की दर निश्चित कर दी।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, १९४८

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८, भारतीय श्रम सन्नियमो के इतिहास

मे एक महत्वपूर्ण वस्तु है क्योंकि १९३६ मे मजदूरी भुगतान अधिनियम (Payment of Wages Act) पास होने के समय से उपरोक्त अधिनियम पास होने के समय तक इस सम्बन्ध मे कोई कदम नही उठाया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय और राज्य सरकारो को "अनुसूचित नियोजनो" (Scheduled employments) मे जहाँ श्रम का शोषण होता है अथवा शोषण होने की सम्भावना होती है, मे न्यूनतम मजदूरी की दर निश्चित करने और उसे समय-समय पर बदलने की शक्ति दी गई है।

अनुसूची (Schedule) के अन्तर्गत निम्न उद्योग आते है :—

(१) ऊनी कालीन या शाल की बुनाई के सस्थान;
(२) चावल आटा या दाल मिले,
(३) तम्बाकू और बीडी का उत्पादन सार्थ;
(४) बागान (Plantations);
(५) तेल मिले;
(६) किसी भी स्थानीय सस्था (Local body) के अन्तर्गत नियोजन;
(७) सडक निर्माण या भवन निर्माण कार्य,
(८) पत्थर तोडना और पत्थर पीसना,
(९) लाख निर्माण (Lac Manufacturing),
(१०) अभ्रक का कारखाना (Mica Works)
(११) सार्वजनिक सडक यातायात,
(१२) चमडा कमाने वाले और चमडे का सामान बनाने वाले कारखाने,
(१३) बडे खेतों या फार्मों के मजदूर, तथा
(१४) डेरी फार्मिंग

अधिनियम सम्बन्धित सरकार (Appropriate Government) को इस सूची मे और नाम जोडने या बढाने की आज्ञा देता है।

सन् १९५७ मे अधिनियम मे किए गए सशोधन के अनुसार अनुसूचित नियोजनो (Employments), जिसमे कृषि भी सम्मिलित है, मे प्रारम्भिक न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की तिथि को ३१ दिसम्बर १९५९ तक बढा दिया गया है।

अधिनियम के अन्तर्गत निम्न बातो के सम्बन्ध मे प्रावधान किया गया है :—

(१) न्यूनतम समय दर,

(२) न्यूनतम कार्यानुसार मजदूरी दर,
(३) गारन्टीड समय दर, तथा
(४) विभिन्न व्यवसायो, स्थानो या वर्गो के अनुकूल उपरि - समय (Overtime) दर।

न्यूनतम मजदूरी दर निम्नाकित मे से कोई भी रूप धारण कर सकती है —

(१) मजदूरी की आधार दर और जीवन निर्वाह भत्ता, अथवा
(२) मजदूरी की आधार दर, जीवन निर्वाह भत्ता सहित अथवा रहित और आवश्यक वस्तुओ की पूर्ति के सम्बन्ध मे दी गई रियायत (Concessions) का नकद मूल्य, अथवा
(३) एक सम्मिलित दर (An all inclusive rate)

दूसरे शब्दो मे न्यूनतम मजदूरी तीन सिद्धान्तो के आधार पर निश्चित की जा सकती है। ये सिद्धान्त है निर्वाह मजदूरी (Living wage), उचित मजदूरी (Fair wage) तथा 'व्यापार की क्षमता' (What the Trade can bear)। सयुक्त राष्ट्र अमेरिका, कनाडा, न्यूजीलैंड तथा आस्ट्रेलिया मे निर्वाह मजदूरी (Living wage) का सिद्धान्त अपनाया गया है। पडित नेहरू ने भी अभी हाल मे इस सिद्धान्त को अपनाने के पक्ष मे अपने विचार व्यक्त किए है।

अधिनियम के अनुसार मजदूरी नकद दी जावेगी परन्तु यदि सम्बन्धित सरकार चाहे तो मजदूरी का भुगतान विशेष अवस्थाओ मे पूर्णत या अशत वस्तुओ मे करने की आज्ञा दे सकती है। सम्बन्धित सरकार को प्रति दिन कार्य करने के घन्टे निश्चित करने, साप्ताहिक छुट्टी देने तथा उपरि - समय (Over-time) मजदूरी का भुगतान देने की आज्ञा जारी करने की शक्ति अधिनियम के अन्तर्गत दी गई है।

राज्य सरकारो को न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के लिए परामर्शदाता मडल (Advisory Boards) नियुक्त करने होगे और एक केन्द्रीय परामर्शदाता (Central Advisory Board) होगा जो साधारणतया मजदूरी निश्चित करने के मामलो मे केन्द्रीय और राज्य सरकारो तथा परामर्शदाता मन्डलो को सलाह देगा। विभिन्न राज्य सरकारे न्यूनतम मजदूरी की दरें निश्चित करने के लिए तथा उनका पुनर्निरीक्षण (Revision) करने के लिए समितियाँ, उप-समितियाँ और परामर्शदात्री समितियाँ नियुक्त कर सकती है।

इन सब समितियों और मन्डलों में नियोक्ताओं (Employers) और कर्मचारियों के प्रतिनिधि बराबर सख्या में होंगे। इसके अतिरिक्त कुछ स्वतत्र सदस्य भी होंगे जिनकी सख्या कुल सदस्यों के एक तिहाई से अधिक नहीं होगी। केन्द्रीय परामर्शदाता मन्डल में केन्द्रीय तथा राज्य सरकारों, नियोक्ताओं और श्रमिकों के प्रतिनिधि हैं।

भारत सरकार द्वारा Minimum Wages (Central Advisory Board) Rules, 1949 तथा Minimum Wages (Central) Rules, 1950 बनाए जा चुके हैं। अधिनियम के अन्तर्गत बिहार, मद्रास, मध्य प्रदेश, पश्चिमी बगाल, अजमेर, पजाब तथा मैसूर राज्यों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित की जा चुकी है।

उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग

(Participation of Labour in Management)

सरकार, नियोक्ताओं तथा श्रमिकों में सहकारिता की भावना उत्पन्न करने के प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference) के ३४वें अधिवेशन में विचार किया गया था। इस अधिवेशन में सरकार ने नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच सहकारिता की भावना उत्पादन क्षमता बढाने के लिए अत्यन्त आवश्यक समझी गई।* इसका समर्थन करते हुए ग्रेट ब्रिटेन के श्रम तथा राष्ट्रीय सेवा के मन्त्री (Minister of Labour and National Service) ने भी कहा था कि, "व्यक्तिगत उत्पादन क्षमता शारीरिक प्रयत्न व तान्त्रिक व्यवहार पर ही अवलम्बित नहीं है। यह एक ऐसी समस्या है जो मनोवैज्ञानिक और भौतिक दोनों पहलुओं से सम्बन्धित है इसका समाधान केवल सरकार, नियोक्ताओं और श्रमिकों के पूर्ण सहयोग से हो सकता है।"† फ्रास के श्रम मन्त्री ने भी

---

* "A united determination to increase productivity can be created and maintained *only* through the fullest understanding by employers and worker of each other's points of view: it can be carried into only by the closest co-opration between them."

International Labour Conference 33rd Session, Geneva, 1950 Report I p. 150.

† *Ibid* p. 95.

कहा था कि श्रमिकों से पूर्ण सहयोग उसी समय प्राप्त हो सकता है जब उनकी प्रतिष्ठा सुरक्षित रहे । ‡

पिछले कुछ वर्षो मे इस दिशा मे कुछ देशो द्वारा कदम उठाए गए है। लगभग ३७ देशो ने इस पद्धति को अपनाया है। ये देश है—आस्ट्रिया, बेल्जियम, बाल्विया, बलगेरिया, कैनाडा, सीलोन, चेकोस्लोवाकिया, डेनमार्क, फिनलैंड, फ्रास, दी फैडरल जर्मन रीपब्लिक, हगरी, भारत, दी एसोसिएटेड स्टेट्स आफ इन्डो चाइना, ईरान, इटली, जापान, लक्सेमबर्ग, दी नेदर लैंड्स, न्यूजीलैंड, नार्वे, पाकिस्तान, पोलैंड, रूमानिया, स्पेन, स्वीडेन, दी यूनाइटेड किंगडम, रूस, यूगोस्लेविया । यद्यपि कुछ कम विस्तृत आधार पर हैटी (Hati) आयरलैंड, इस्राइल, फीलिपाइन्स, स्वीट्जरलैंड, दी यूनियन आफ साउथ अफ्रीका और यूनाइटेड स्टेट्स आदि देशों में भी अपनाई गई है।

भारत मे श्रमिको को प्रबन्ध मे भाग देने की व्यवस्था

भारत मे अभी यह योजना पूर्णरूपेण अपनाई नही गई है। भारत सरकार इस व्यवस्था से होने वाले लाभो से भली प्रकार परिचित है और उसने १९४८ तथा १९५६ की औद्योगिक नीतियो मे इस ओर सकेत भी किया था। द्वितीय पचवर्षीय योजना ने इस सम्बन्ध मे निश्चित योजना बनाई। योजना आयोग के शब्दो मे —

"एक समाजवादी समाज की रचना लाभकारी सिद्धान्तो पर नही की जा सकती, उसके लिए समाज सेवा के सिद्धान्त को अपनाना पडेगा। यह आवश्यक है कि श्रमिक समझे कि वह प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण मे अपना योग दे रहा है। प्रजातान्त्रिक समाज को सगठित करने के पहले औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना अत्यावश्यक है। द्वितीय योजना के सफल सचालन के लिए कर्मचारियो का प्रबन्ध से अधिकाधिक सहयोग अनिवार्य है। इससे उत्पादन मे वृद्धि होगी, श्रमिक के बारे मे अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे, तथा साथ ही साथ मजदूरो को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलेगा जिससे औद्योगिक शान्ति होगी।"

भारत मे इस योजना का श्रीगणेश केरल तथा मद्रास की सरकारें अपने यातायात उद्योगों में तथा उत्तर प्रदेश की सरकार कानपुर के एक सूती-वस्त्र तथा चीनी उद्योगो मे करने जा रही है। टाटा आइरन स्टील कम्पनी ने इस

---

‡ *Ibid* p. 231.

योजना को जनवरी १९५७ मे अपना लिया था। कलकत्ते की इंडियन एलूमोनियम कम्पनी लिमिटेड ने भी इस योजना को पाँच वर्ष के लिए अपनाया है।

जुलाई सन् १९५७ मे भारतीय श्रम सम्मेलन मे यह निणय किया गया कि प्रबन्ध परिषदो (Management Councils) के साथ स्वेच्छा के आधार पर प्रयोग किया जाय और उसम योजना की विस्तृत बातो पर विचार करने के लिए एक त्रिदलीय समिति नियुक्त की। इस समिति ने उन सस्थाओ की एक सूची बनाई है जिन्होने सहयोग देने का वचन दिया है और इसने परिषदो के क्षेत्र व कर्त्तव्यो को भी परिभाषित किया है। जनवरी - फरवरी १९५८ मे हुए एक सेमिनार मे इन परिषदो की स्थापना के लिए एक आदश समझौता (Model Agreement) स्वीकार किया गया।

इसके अनुसार यह तय हुआ कि सयुक्त परिषदो मे श्रमिको और मालिका के बराबर प्रतिनिधि हो, जो १२ से अधिक और ६ से कम न हों। प्रारम्भ मे ५० सार्वजनिक तथा निजी औद्योगिक सस्थानो की एक अनुसूची बनाई गई जिनमे यह योजना प्रयोगात्मक ढग पर चालू की जा रही है। इन सस्थानो मे से २३ सस्थानों (Undertakings) मे यह योजना चालू की जा चुकी है और १५ अतिरिक्त सस्थानो मे यह योजना लागू की जाने वाली है।*

आशा है कि यह योजना जो केवल एक छोटे बीज के रूप मे प्रतीत होती है शीघ्र ही एक विशाल वृक्ष के रूप मे परिणत होकर निजी और सावजनिक दोनो क्षेत्रो को अपनी छत्रछाया मे ले लेगी।

प्रश्न

1 Discuss the methods of wage payment to workmen as a means of increasing their efficiency (Agra, B Com, 1957)

2. How is profit-sharing distinguished from Co-partnership? Discuss the advantages and disadvantages of profit-sharing (Agra, B Com, 1956)

3. Define "Minimum Wage" and discuss the main provisions of the minimum wage legislation in India ?

(Agra, B Com, 1955)

4. Describe the advantages and disadvantages of 'time' and 'piece' rate system of wage payment. State briefly the arguments in favour of *'profit sharing scheme'*.

(Agra, B Com, 1954)

---

* India, 1960, p. 383.

अध्याय २०

औद्योगिक नियमन तथा नियन्त्रण
(Regulation and Control of Industries)

स्वतन्त्र अर्थ-व्यवस्था से नियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था की ओर

प्राचीन काल मे राज्य के हस्तक्षेप का क्षेत्र सीमित था। तत्कालीन व्यक्तिवादी विचारधारा के विद्वानो का कहना था कि सबसे अच्छी सरकार वही है जो शासन के मामले मे कम से कम हस्तक्षेप करे।* उनके मतानुसार राज्य का कार्य क्षेत्र पुलिस कार्य तक ही सीमित था। अर्थात् शान्ति, रक्षा, न्याय तथा जेल के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रो मे सरकार को हस्तक्षेप करने का अधिकार न था। विशेषकर सामाजिक तथा आर्थिक क्षेत्र मे तो राज्य का हस्तक्षेप बिल्कुल ही अनीतिपूर्ण माना जाता था। उद्योग स्वतन्त्र थे, व्यापार स्वतन्त्र था। न उद्योगो पर सरकारी नियन्त्रण था न व्यापार पर कोई प्रतिबन्ध। आयात निर्यात कर केवल राजकीय आय के आधार पर ही लगाए जाते थे विदेशी माल को देश मे आने से रोकने के लिए नहीं।

धीरे-धीरे इस व्यवस्था मे परिवर्तन हुआ। स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था पूंजीवाद का आधार है। पूँजीवाद के दोषो के कारण धीरे - धीरे राजनैतिक क्षेत्र मे एक नई विचारधारा उत्पन्न हुई जिसे समाजवाद कहते है। पूंजीवाद जहाँ 'वीर भोग्या वसुन्धरा' (Survival of the fittest) पर आधारित था वहाँ अब समाजवाद सह - अस्तित्व (Co-existence) के सिद्धान्त को मानता है। समाजवादी विचारधारा के अनुसार यदि राज्य हस्तक्षेप न करे तो पूँजीपति श्रमिको को शोषण की चक्की मे पीस डालेंगे। अतएव राज्य को आगे बढकर निर्बलों की रक्षा करनी चाहिए। इंगलैड मे, जहाँ पर औद्योगिक क्रान्ति सबसे पहले आरम्भ हुई थी अनियन्त्रित औद्योगिक प्रणाली के दोष अब स्पष्ट दीखने लगे थे। मजदूरो को कम से कम वेतन पर अठारह अठारह

* That Government is the best which governs the least.

घन्टे काम करना पड़ता था। छोटी अवस्था के सुकोमल बालकों को भी कारखानों मे कठोर काम के लिए बाध्य होना पड़ा। घरों की स्थिति नरक से भी बुरी थी। दुर्घटनाओं की कोई तादाद ही न थी। ऐसी स्थिति कब तक चल सकती थी। राबर्ट ओवन तथा उनके समकालीन लोगों के हृदय इस दुर्दशा को देख कर द्रवित हो उठे। फलत मजदूरों की रक्षा के लिए राजकीय नियन्त्रण आवश्यक हो गया। काम करने की दशाओं, मजदूरी इत्यादि को नियन्त्रित करने वाले नियम बनने लगे।

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् स्वतंत्र व्यापार का स्थान धीरे-धीरे संरक्षण ने ले लिया। युद्धकाल में लोगों ने देख लिया कि जीवन की आवश्यकताओं के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहना खतरे से खाली नहीं है। अतएव औद्योगिक आत्म-निर्भरता (Industrial self-sufficiency) के युग का आरम्भ हुआ। इसने संरक्षण को बड़ा बल मिला। साथ ही साथ औद्योगिक नियन्त्रण के क्षेत्र में सरकारी हस्तक्षेप और भी बढ़ा। इसी समय सोवियत रूस में साम्यवादी शासन कायम हुआ। औद्योगिक नियन्त्रण के क्षेत्र में यह एक नया कदम था। रूस ने समस्त उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त कर दिया तथा देश के आर्थिक विकास के लिए पाँच-पाँच वर्षों की योजनाएँ लागू की। इन सबने औद्योगिक नियन्त्रण के क्षेत्र में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। रूस की द्रुतगति से होने वाली औद्योगिक उन्नति ने लोगों को चकित कर दिया। अनियन्त्रित अर्थ-व्यवस्था के लिए यह सबसे बड़ा आघात था। प्रत्येक देश में प्रकारान्तर से नियोजित अर्थ-प्रबन्ध लागू हो गया। इसका फल यह हुआ कि अमेरिका, इंगलैंड इत्यादि पूँजीवादी कहे जाने वाले देशों में आज उद्योगों पर जितना कठोर राजकीय नियन्त्रण है उतना शायद भारतवर्ष जैसे समाजवादी देशों में भी नहीं है।

संक्षेप में जिन परिस्थितियों के कारण स्वतन्त्र अर्थ व्यवस्था के स्थान पर औद्योगिक नियन्त्रण का आरम्भ हुआ वे निम्नलिखित हैं —

(१) पूँजीवादी प्रणाली के दोष

अनियन्त्रित पूँजीवाद में श्रमिकों के शोषण, समाज में धन के असमान वितरण, देश में उत्पादन की वृद्धि के बावजूद बढ़ती हुई गरीबी, बेरोजगारी इत्यादि के कारण उद्योगों पर राजकीय नियन्त्रण आवश्यक हो गया।

(२) औद्योगिक आत्म-निर्भरता की विचारधारा

प्रथम महायुद्ध के पश्चात् विभिन्न देशों में एक नई विचारधारा का जन्म

हुआ कि एक राष्ट्र को अपनी समस्त आवश्यकताएँ स्वयं पूरी करनी चाहिए। दूसरों पर निर्भरता ठीक नहीं। इसके लिए सर्वांगीण औद्योगिक विकास आवश्यक था। परन्तु यह तब तक असम्भव था जब तक राज्य अथवा अन्य कोई संस्था नियन्त्रण तथा नियोजन के काम को न करे।

(३) संरक्षण

इसी समय औद्योगिक संरक्षण की प्रणाली ने स्वतन्त्र व्यापार का स्थान ग्रहण किया। किस उद्योग को संरक्षण मिलना चाहिए, किसको नहीं? संरक्षण की विधि क्या होनी चाहिए? इन सब बातों के निश्चित करने के लिए राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक हो गया। संरक्षण प्राप्त उद्योग उसका दुरुपयोग न करें इसलिए उनकी गतिविधियों पर ध्यान रखना आवश्यक था। साथ ही साथ उनके मूल्यों पर भी नियन्त्रण आवश्यक था।

(४) सामाजिक सुरक्षा तथा जन कल्याण राज्य

वर्तमान काल में एक नवीन विचार धारा का जन्म हुआ है जिसे सामाजिक सुरक्षा (Social Security) का नाम दिया गया है। इसके अनुसार जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य की सुरक्षा तथा कल्याण का उत्तरदायित्व सरकार का है। कांग्रेस ने कुछ समय पहले भारतवर्ष को एक जन कल्याण राष्ट्र घोषित कर दिया है। इसका तात्पर्य यह है कि लोगों की शिक्षा-दीक्षा, रोजगार, स्वास्थ्य, चिकित्सा, आवास, वृद्धावस्था की आर्थिक व्यवस्था का भार अब सीधे राज्य के ऊपर है। अब राज्य की यह जिम्मेदारी है कि सब लोगों को रोजगार मिले, काम के बदले उचित वेतन प्राप्त हो तथा किसी प्रकार का शोषण न हो। इन समस्त उद्देश्यों की पूर्ति तभी हो सकती है जब उद्योगों पर राज्य का नियंत्रण हो।

(५) समाजवादी विचारधारा

समाजवादी विचारधारा ने भी उद्योगों पर राज्य के नियन्त्रण को बल प्रदान किया है। साम्यवाद के प्रवर्तक कार्ल मार्क्स (Karl Mark) के मतानुसार पूंजी केवल शोषित श्रम का संग्रहीत रूप है अतएव पूंजीपतियों को उद्योगों को मनमाने ढंग से चलाने का कोई अधिकार नहीं है, उसके ऊपर समाज का नियन्त्रण होना चाहिए। इसके अतिरिक्त समाजवाद धन के समान वितरण पर भी जोर देता है। समाजवादियों के मतानुसार ये सब उद्देश्य तभी प्राप्त किए जा सकते हैं जब उद्योगों के संचालन पर सरकार का

नियत्रण अधिकाधिक हो। साम्यवाद मे तो समस्त उद्योगो का स्वामित्व भी सरकार के ही हाथ में रहता है। इस समाजवादी विचारधारा का प्रचार ज्यो-ज्यो बढ़ता गया उद्योगो पर राजकीय नियत्रण भी उतना ही बढता गया।

(६) नियोजित अर्थ प्रबन्ध का विकास

नियोजित अर्थ प्रबन्ध का आरम्भ सबसे पहले सोवियत रूस में हुआ। साम्यवादी शासन कायम हो जाने के पश्चात् लेनिन ने प्रथम पचवर्षीय योजना लागू की। उसके समाप्त हो जाने पर क्रमश अन्य योजनाएँ लागू की गई। इन योजनाओ के कारण सोवियत रूस का आर्थिक विकास इतनी तेजी से हुआ कि नियोजित अर्थ प्रबन्ध अर्थ व्यवस्था मे सबसे बड़ा आकर्षण बन गया। विशेष रूप से आर्थिक रूप से पिछड़े हुए देशो के लिए तो यह एक मात्र आशा की किरण थी। नियोजित अर्थ प्रबन्ध तथा उद्योगो के राजकीय नियन्त्रण मे परस्पर बहुत गहरा सम्बन्ध है। जितना आर्थिक क्षेत्र पर राजकीय नियन्त्रण दृढ होगा योजना उतनी ही अधिक सफल होगी। इसीलिए प्राय देखा गया है कि प्रजातत्र की अपेक्षा तानाशाही देशो मे आर्थिक योजनाओ ने अधिक सफलता प्राप्त की। परन्तु अब कोई देश चाहे प्रजातन्त्र हो अथवा एकतन्त्र-वादी, नियोजित अर्थ प्रबन्ध की उपयोगिता से इनकार नही कर सकता। अतएव प्राय सभी देशो मे नियोजित अर्थ प्रबन्ध तथा उद्योगो पर राजकीय नियन्त्रण दृढतर होता जा रहा है।

(७) श्रम सघों का विकास

श्रम सघो के विकास ने भी अप्रत्यक्ष रूप से राजकीय नियन्त्रण को बढाने मे सहायता की है। श्रम सघ अपनी रक्षा के लिए राज्य का आश्रय खोजते हैं तथा अपने आन्दोलनो द्वारा उद्योगो पर राजकीय नियन्त्रण बढाने मे भी सहायक हुए हैं। प्रजातन्त्र के विकास के साथ श्रमिक वर्ग का आधिपत्य व्यवस्थापिका सभाओ मे भी बढता जा रहा है। इससे भी उद्योगो पर राजकीय नियन्त्रण को बल मिलता है। वर्तमान काल मे बहुत से श्रम सबधी अधिनियम श्रम सघो के आन्दोलन तथा श्रम और पूँजी के झगडो को दूर करने के लिए ही बनाए गए है।

राजकीय हस्तक्षेप के उद्देश्य

उद्योगों मे राजकीय हस्तक्षेप के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं —

(१) समाज मे धन के न्यायोचित वितरण के लिए

इसके लिए राज्य को इस प्रकार के नियम बनाने पडते हैं कि मजदूरो

को उचित वेतन मिले, कच्चे माल का ठीक - ठीक मूल्य हो तथा तैयार किए हुए माल को भी उचित लाभ पर बेचा जाय जिससे उपभोक्ताओ का शोषण न हो सके।

(२) उद्योगो मे स्थिरता लाने के लिए

उद्योगो के अनियन्त्रित विकास से प्राय व्यापार चक्रो (Trade Cycles) का जन्म होता है। उद्योगो के बढते हुए लाभ को देख कर इतनी अधिक औद्योगिक इकाइयाँ बन जाती है कि पूर्ति माँग की अपेक्षा अधिक हो जाती है और तब मन्दी, बेरोजगारी तथा गरीबी का चक्र चलने लगता है। सन् १९२९ से १९३९ की महान मन्दी (Great Depression) मे देखा गया कि जिस देश मे जितनी ही अधिक अनियन्त्रित औद्योगिक व्यवस्था थी मन्दी का प्रभाव उतना ही भयकर और व्यापक रहा। अतएव अब प्रत्येक देश की सरकार उद्योगो की सख्या, उनके उत्पादन तथा माँग पर नियन्त्रण रखती है जिससे पूर्ति को माग के अनुसार नियन्त्रित करके उद्योगो मे स्थिरता लाई जा सके।

(३) राष्ट्र के साधनो के समुचित विकास के लिए

देश के आर्थिक साधनो का समुचित विकास हो सके इसके लिए यह आवश्यक है उनका नियन्त्रण एक केन्द्रीय सस्था द्वारा हो। यह सस्था चाहे सरकार हो अथवा योजना समिति। इसके लिए पहले राज्य देश के आर्थिक साधनो—कच्चा माल, पूँजी, शक्ति, श्रम, खनिज इत्यादि का अनुमान लगाता है, फिर देश की आवश्यकताओ के अनुसार विभिन्न साधनो के विकास की योजना तैयार करता है। इस प्रकार देश के साधनो का अच्छा से अच्छा उपयोग होता है तथा उनसे अधिक से अधिक उपयोगिता प्राप्त होती है।

(४) औद्योगिक विकास मे समन्वय स्थापित करने के लिए

देश की समृद्धि के लिए भी आवश्यक है कि उद्योगो का विकास समन्वयपूर्ण हो। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए भी उद्योगो पर राजकीय नियन्त्रण आवश्यक है। उदाहरण के लिए देश के धन से बन्दूकें बनाने के कारखाने भी खोले जा सकते हैं और कपडे के कारखाने भी। दोनो ही देश के लिए उपयोगी हैं। राज्य इस बात का निर्णय करता है कि वर्तमान परिस्थितियो मे कौन सा उद्योग देश के लिए अधिक उपयोगी है तथा देश के साधनो को उसी की वृद्धि मे लगाता है। इसी प्रकार एक समस्या लम्बे पैमाने तथा छोटे

स्तर के उद्योगो मे समन्वय की भी पड सकती है। जिस देश की जन-सख्या अधिक हो तथा बेरोजगारी बढ रही हो उसके लिए छोटे स्तर तथा कुटीर उद्योगो को अधिक प्रोत्साहन देना आवश्यक है क्योंकि उनकी रोजगार प्रदान करने की क्षमता लम्बे पैमाने के उद्योगो से अधिक होती है। परन्तु लम्बे पैमाने के उद्योगो का भी अपना निजी महत्व है। राज्य उद्योगो पर नियत्रण रखकर इस बात की चेष्टा करता है कि विभिन्न स्तर के उद्योगो में प्रति-स्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग हो तथा उनका विकास देश की आवश्यकता के अनुसार ही हो।

(५) जन कल्याण की प्राप्ति के लिए

वर्तमान काल मे यह धारणा बढती जा रही है औद्योगिक उन्नति का मूल उद्देश्य जन कल्याण का विकास है। उत्पादन चाहे कम हो पर यदि वह जन कल्याण के लिए हो तो ठीक है इसलिए राज्य उद्योगो पर नियन्त्रण करके इस बात की व्यवस्था करता है कि काम करने वाले श्रमिको के आवास का उचित प्रबन्ध हो उनके काम करने की दशाओ मे सुधार हो, उनके इलाज, वृद्धावस्था के पेन्शन इत्यादि की व्यवस्था हो। जन कल्याण की भावना से प्रेरित होकर ही राज्य औद्योगिक नियत्रण सबधी अधिनियमो का निर्माण करता है। यहाँ तक कि कभी कभी उद्योगो का राष्ट्रीयकरण तक करना पडता है।

राजकीय नियन्त्रण के ढग

उद्योगो की स्थापना तथा सचालन मे राजकीय हस्तक्षेप की निम्नलिखित विधियाँ हो सकती है —

(१) वैधानिक नियत्रण द्वारा।
(२) सरक्षण तथा कर नीति द्वारा
(३) प्रत्यक्ष सहायता द्वारा।
(४) आर्थिक साधनो पर नियन्त्रण द्वारा।
(५) राष्ट्रीयकरण द्वारा।
(६) सरकारी उद्योगो की स्थापना द्वारा।

(१) वैधानिक नियन्त्रण

सरकार उद्योगो की स्थापना तथा सचालन पर नियन्त्रण सम्बन्धी अधिनियम बना सकती है। इस प्रकार के नियम निम्नलिखित भागो मे बाटे जा सकते हैं।

(१) **उद्योगों की स्थापना पर नियन्त्रण**—किसी भी उद्योग की स्थापना के पहले सरकार से लाइसेन्स प्राप्त करना आवश्यक कर दिया जाय।

(२) **श्रम सम्बन्धी नियन्त्रण**—इसमे श्रमिको की भरती, उनकी मजदूरी, काम करने की दशाओ, श्रम कल्याण सम्बन्धी कार्यो, श्रम-सम्बन्धी झगडो के निपटारा करने के लिए आवश्यक नियमो का निर्माण किया जा सकता है।

(३) **किस्म सम्बन्धी नियन्त्रण**—इसके अन्तर्गत वस्तु की किस्म मे सुधार करने, किसी खास किस्म का माल तैयार करने अथवा न करने के लिए नियम बनाए जाते है।

(४) **मूल्य सम्बन्धी नियन्त्रण**—सरकार बढते हुए मूल्यो को रोकने के लिए कभी कभी मूल्य नियत्रण सम्बन्धी अधिनियम पास कर देती है जिससे औद्योगिक उत्पादन का माल एक निश्चित मूल्य से अधिक दामो पर न बेचा जा सके।

(५) **वितरण सम्बन्धी नियन्त्रण**—सरकार इस प्रकार का कानून बना सकती है कि विभिन्न औद्योगिक इकाइयो के माल का क्षेत्रीय विभाजन हो जाय। आन्तरिक उपयोग तथा विदेशी निर्यात का कोटा नियत किया जा सकता है, माल की अत्यधिक कमी मे राशनिंग लागू की जा सकती है।

(६) **संचालन तथा सगठन सम्बन्धी नियन्त्रण**— सरकार कानून पास करके औद्योगिक कम्पनियो के सचालन पर नियन्त्रण कर सकती है जैसे भारतवर्ष का सन् १९५६ का कम्पनी अधिनियम। इसके अतिरिक्त कानून द्वारा औद्योगिक इकाइयो को सयोजन अथवा विवेकीकरण इत्यादि के लिए विवश किया जा सकता है।

२—सरक्षण तथा कर नीति द्वारा नियन्त्रण

उद्योगो पर नियन्त्रण सरक्षण द्वारा भी रक्खा जा सकता है। जिस उद्योग को प्रोत्साहन देना होता है सरकार उसे सरक्षण प्रदान कर सकती है। इस प्रकार विदेशी प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जायगी और उद्योग का विकास होगा। भारतवर्ष मे शक्कर उद्योग का विकास सरक्षण द्वारा ही सम्भव हो

सका। इसी प्रकार सरकार औद्योगिक करो को घटा या बढाकर किसी उद्योग के विकास अथवा ह्रास मे सहायक बन सकती है।

३—प्रत्यक्ष सहायता द्वारा

राज्य किसी विशेष उद्योग के विकास के लिए प्रत्यक्ष सहायता भी दे सकता है। इस सहायता के कई रूप हो सकते है। जैसे :—

(१) **आर्थिक सहायता**—राज्य उद्योग के सचालन के लिए ऋण दे सकता है अथवा नि शुल्क सहायता के रूप मे धन प्रदान कर सकता है। ऐसा भी हो सकता है कि राज्य कम्पनी के कुछ अश व ऋणपत्र खरीद ले अथवा उनके भुगतान तथा ब्याज की गारण्टी ले लें।

(२) **यातायात सम्बन्धी सुविधाएँ**—राज्य किसी विशेष क्षेत्र मे उद्योग के विकास के लिए यातायात सम्बन्धी सुविधा प्रदान कर सकता है तथा सस्ते भाडे पर कच्चा माल लाने और तैयार माल के ले जाने की व्यवस्था कर सकता है।

(३) **तान्त्रिक परामर्श तथा अनुसंधान संवन्धी सुविधा** राज्य किसी उद्योग के सचालन के लिए योग्य इन्जीनियरो की व्यवस्था कर सकता है तथा औद्योगिक अनुसन्धान सस्थाएँ खोलकर उद्योग के विकास मे सहायक हो सकता है।

(४) सरकार किसी विशेष उद्योग को सहायता देने के लिए अपनी तत्सम्बन्धित आवश्यकताओं को देश मे बने हुए माल से पूरा कर सकती है। उदाहरण के लिए कुटीर उद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार अपनी अधिकतर आवश्यकताएँ कुटीर उद्योगो द्वारा बने हुए माल से पूरी करती है।

४—आर्थिक साधनो पर नियन्त्रण

यह एक प्रकार से नियोजित अर्थ प्रबन्ध का रूप होता है। इसके द्वारा सरकार औद्योगिक उन्नति के साधनो पर नियन्त्रण कर लेती है तथा उन्हे मनचाहे ढग से विभिन्न उद्योगो मे लगाती है। साधनों के नियन्त्रण सबसे महत्वपूर्ण साख तथा पूंजी पर नियन्त्रण है। उद्योगो को पूंजी प्रदान करने का काम बैंक तथा बीमा कम्पनिया विशेष रूप से करती हैं। सरकार इनका राष्ट्रीयकरण करके अथवा इन पर कठोर नियन्त्रण स्थापित करके पूंजी को इच्छित उद्योगो की ओर लगा सकती है।

५—उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

उद्योगों पर सरकारी नियन्त्रण की सबसे प्रभावपूर्ण विधि उनका राष्ट्रीयकरण है। इसके द्वारा समस्त उद्योगों पर राज्य का स्वामित्व हो जाता है। व्यक्तिगत उद्योगपतियों को मुआवजा देकर अलग कर दिया जाता है। राष्ट्रीयकरण औद्योगिक नियन्त्रण की अन्तिम अवस्था होती है तथा इसे या तो उस दशा में अपनाया जाता है जब देश की सुरक्षा तथा समृद्धि के लिए उस पर सरकार का आधिपत्य अनिवार्य हो जैसे मौलिक उद्योग (Key Industries) या शस्त्रास्त्रों के निर्माण सम्बन्धी उद्योग अथवा जब उद्योग की दशा इतनी खराब हो जाती है कि व्यक्तिगत उद्योगपतियों द्वारा उसका चलाया जाना असम्भव हो जाय। उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके सरकार उसे स्वय अपने अधिकारियों द्वारा चलवा सकती है अथवा व्यक्तिगत पूँजीपतियों या किसी सस्था को उसका प्रबन्ध सौंप सकती है। राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में आगे विस्तारपूर्वक देखिए।

६—सरकार द्वारा स्थापित उद्योग

जब हर प्रकार के प्रोत्साहन से भी कोई उद्योग देश में नहीं पनपता तो प्राय सरकार स्वय ही उस उद्योग को विकसित करती है। ऐसा प्राय: उस समय होता है जब उद्योग के लिए बहुत अधिक पूँजी की आवश्यकता हो तथा लाभ की दर बहुत धीमी हो। तात्रिक ज्ञान का अभाव भी प्राय व्यक्तिगत उद्योगों के विकास में बाधक होता है जैसे अणु शक्ति का विकास। ऐसी दशा में राज्य को ही नए उद्योग खोलने का भार उठाना पड़ता है।

क्या राजकीय हस्तक्षेप उचित है ?

वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रकार का प्रश्न बहुत कुछ अप्रसगिक सा जान पड़ता है। उद्योगों के समुचित विकास तथा उन्हें जनकल्याण के लिए उपयोगी बनाने के लिए राजकीय हस्तक्षेप अत्यन्त आवश्यक है, इस विषय पर दो मत हो ही नहीं सकते। साम्यवादी रूस से लेकर पूँजीवादी ब्रिटेन और अमेरिका तक सब कहीं उद्योगों पर राजकीय नियन्त्रण रहता है। प्रश्न केवल यह है कि राज्य को किस सीमा तक उद्योगों में हस्तक्षेप करना चाहिए। साम्यवादी देशों में व्यक्तिगत लोगों द्वारा उद्योग का स्वामित्व तथा सचालन वर्जित है। वहाँ सभी उद्योगों पर राज्य का अधिकार है। पूँजीवादी देशों

मे यह नियंत्रण बहुत साधारण रहता है। राज्य केवल औद्योगिक नीति के आधारभूत सिद्धान्तो का निरूपण करता है उन सिद्धान्तो के अनुसार उद्योगो को चलाने का भार व्यक्तिगत उद्योगपतियो पर ही रहता है। वास्तव मे इनके लिए मध्यम मार्ग ही सर्वश्रेष्ठ रहता है।

सरकारी नियत्रण का क्षेत्र किसी राजनैतिक सिद्धान्त पर आधारित न होकर परिस्थितियो के अनुसार होना चाहिए। नियत्रण का एक मात्र उद्देश्य यही होना चाहिए कि उद्योगो का विकास तथा सचालन जन-कल्याण की वृद्धि मे सहायक हो। राज्य को एक प्रकार मित्र, दार्शनिक तथा मार्ग दर्शक का काम करना चाहिए। राज्य को चाहिए कि उद्योगो की उन्नति मे पडने वाली बाधाओ का निवारण करे। व्यक्तिगत उद्योगपतियो को प्रोत्साहित करने वाली परिस्थितियो को उत्पन्न करना चाहिए। राज्य का कार्य समन्वय-कर्त्ता का होना चाहिए। उसे विभिन्न स्वार्थो—पूँजीपतियो, श्रमिको, उपभोक्ताओ—के बीच मे समन्वय करना चाहिए। परन्तु यदि आवश्यक हो जाय तो राज्य को उद्योगो के सचालन तथा स्थापना के लिए भी प्रस्तुत रहना चाहिए। साराश यह है कि राजकीय हस्तक्षेप तथा नियन्त्रण का क्षेत्र परिस्थितियो के अनुसार ही सीमित रहना चाहिए। राजकीय हस्तक्षेप जहाँ तक हो सके समन्वय स्थापित करने, नीति निर्धारित करने, प्रोत्साहन तथा दण्ड की व्यवस्था करने तक ही सीमित रहना चाहिए।

उद्योगों का राष्ट्रीयकरण

पिछले पृष्ठो मे राजकीय नियन्त्रण के साधन के रूप मे उद्योगो के राष्ट्रीयकरण का वर्णन किया जा चुका है। परन्तु वर्तमान समय मे राष्ट्रीय-करण इतना महत्वपूर्ण प्रश्न है कि उस पर अलग से विचार करना आवश्यक जान पडता है। उद्योगो के राष्ट्रीयकरण से तात्पर्य "राज्य द्वारा उद्योगो के सचालन" से होता है। पूँजीवाद के दोषो, वर्ग सघर्ष की उत्पत्ति, तथा समाज-वादी विचार धारा के प्रचार के कारण वर्तमान समय मे राष्ट्रीयकरण का नारा बुलन्द होता जा रहा है। उसके लिए पहले हमे राष्ट्रीयकरण के पक्ष तथा विपक्ष मे दिए जाने वाले तर्को को जान लेना आवश्यक है।

राष्ट्रीयकरण के पक्ष में तर्क

(१) राष्ट्रीयकरण से समाज कल्याण की वृद्धि होती है— राज्य द्वारा चलाये जाने वाले उद्योगो का लक्ष्य लाभ कमाना न होकर समाज

कल्याण करना होता है। इसलिए प्राय राजकीय उद्योगो मे माल की किस्म अच्छी तथा मूल्य उचित होता है। हमारे देश का अनुभव है कि जिन उद्योगों का राष्ट्रीय-करण किया गया उनकी किस्म मे पर्याप्त सुधार हुआ। उदाहरण के लिए जबसे उत्तर प्रदेश मे सडक यातायात का राष्ट्रीयकरण हुआ तब से यात्रा करने वाले मुसाफिरो की सुविधाओं मे बहुत अधिक वृद्धि हुई।

(२) राष्ट्रीयकरण द्वारा उद्योगों को होने वाला लाभ सरकारी खजाने मे जमा होता है और उसे फिर जन-हितकारी कामों मे लगाया जा सकता है। इस प्रकार देश कल्याण की वृद्धि होती है।

(३) राष्ट्रीयकरण से श्रमिको की दशा मे सुधार होता है। राष्ट्रीय कारखानो का वातावरण अधिक स्वस्थ रहता है। काम करने वालो के वेतन मे वृद्धि होती है। उनके रोजगार मे स्थिरता आती है। उनका शोषण समाप्त हो जाता है जैसा कि व्यक्तिगत प्रबन्ध में होता है।

(४) राष्ट्रीयकरण से उद्योगों मे स्थिरता आती है। जब समस्त उद्योग एक ही सस्था द्वारा सचालित होते है तो उनमे समन्वय स्थापित करना अत्यन्त सरल होता है। पूर्ति को माँग के अनुसार सतुलित किया जा सकता है। इससे अनावश्यक प्रतिस्पर्द्धा समाप्त होकर सहयोग की भावना का विकास होता है तथा प्रतिस्पर्द्धा से होने वाली बरबादी मे बचत होती है।

(५) राष्ट्रीयकरण से लम्बे पैमाने के समस्त लाभ प्राप्त हो जाते है। इससे प्रबन्ध मे बचत होती है। सस्ते दर पर पूँजी प्राप्त की जा सकती है। विशेषज्ञो की सहायता प्राप्त की जा सकती है। एक राज्य के साधन तथा उसकी साख किसी व्यक्तिगत उद्योगपति की अपेक्षा हमेशा ही अधिक होते हैं। राष्ट्रीयकरण द्वारा उनका लाभ उद्योगों को प्राप्त हो जाता है।

(६) राष्ट्रीयकरण द्वारा राज्य की आर्थिक नीति का सचालन अधिक सुविधापूर्वक होता है। व्यक्तिगत उद्योगपतियों के समक्ष राष्ट्रीय हित की अपेक्षा निजी स्वार्थ ही प्रधान रहता है इसलिए जब राज्य की औद्योगिक नीति से उनके स्वार्थों की टक्कर होती है तो वे हर सम्भव उपायो से अडगेबाजी उत्पन्न करते है। राष्ट्रीयकरण द्वारा यह समस्या सहज ही मे हल हो जाती है।

(७) राष्ट्रीयकरण समाजवाद का आधार है। देश मे धन तथा शक्ति का असमान वितरण उद्योगों के व्यक्तिगत स्वामित्व के कारण विशेष रूप से होता है। एक उद्योगपति अपने लाभ को दूसरे उद्योगो मे लगाकर अपने

आधीन उद्योगो की संख्या मे वृद्धि करना है। इस प्रकार उसकी शक्ति में निरन्तर वृद्धि होती रहती है। छोटे-छोटे उद्योग उसके मुकाबिले मे ठहर न सकने के कारण धीरे-धीरे समाप्त हो जाते है। श्रमिको की शक्ति अपेक्षाकृत घटने लगती है। वर्ग सघर्ष का आरम्भ होता है। समाजवादियो के मतानुसार समाज मे समता लाने के लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति के अधिकार को समाप्त करना तथा राष्ट्रीयकरण अत्यन्त आवश्यक है।

राष्ट्रीयकरण के विपक्ष में तर्क

(१) राष्ट्रीयकरण से औद्योगिक कार्यक्षमता का ह्रास होता है। इसका मुख्य कारण व्यक्तिगत रुचि का अभाव है। व्यक्तिगत स्वामित्व मे उद्योगपति समस्त लाभ को भोगने वाला तथा समस्त हानि का उत्तरदायी होता है। इसलिए वह हर यथा सम्भव उपायो से बर्बादी रोकने, लागत कम करने तथा उत्पादन की क्षमता को बढाने का प्रयत्न करता है। राष्ट्रीयकरण किए हुए उद्योगो मे उनका सचालन सरकारी अधिकारियो के हाथ मे रहता है जिन्हे उद्योग के लाभ-हानि से कोई सरोकार नही। अतएव वे उसमे कोई व्यक्तिगत रुचि नही लेते। इसका फल यह होता है कि प्रति व्यक्ति उत्पादन घट जाता है तथा लागत बढती है। इगलैड मे समाजवादी सरकार ने यातायात तथा कोयले को खानो का राष्ट्रीयकरण कर दिया। सरकार की ओर से खानो मे अच्छी से अच्छी मशीने लगाई गई फिर भी प्रति व्यक्ति उत्पादन बहुत कम हो गया और उसे फिर स व्यक्तिगत व्यवसाइयो के हाथ म देना पडा। इसी प्रकार भारतवर्ष म भी जिन उद्योगा का राष्ट्रीयकरण किया गया उनकी लागत बढ गई। अमेरिका मे जहा उद्योगो का व्यक्तिगत सस्थाओ द्वारा सचालन होता है, उत्पादक कार्य क्षमता सोवियत रूस की अपेक्षा कही अधिक है।

(२) राष्ट्रीयकरण मे प्रतिस्पर्द्धा समाप्त हो जाती है। सरकार जब किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण करती है तो उसका एकाधिकार प्राप्त कर लेती है। इस प्रकार एकाधिकार तथा प्रतिस्पर्द्धा के अभाव के सभी दुर्गुण आ जाते है। उद्योगो का विकास रुक जाता है। उनम जडता उत्पन्न हो जाती है। आर्थिक सकट के समय सरकार कीमत बढा कर अधिक मूल्य वसूल कर सकती है। प्रबन्ध सम्बन्धी अयोग्यता को छिपाने के लिए उत्पादन को कम करके मूल्यो मे वृद्धि कर सकती है।

(३) औद्योगिक प्रबन्ध मे शिथिलता आ जाती है। राज्य द्वारा सचालित

उद्योगो का प्रबन्ध राज्य के बडे बडे शासनाधिकारियो के हाथ मे दिया जाता है। उन्हे उद्योगो के सचालन का कोई अनुभव नही होता। इसके अतिरिक्त सरकारी नीति के अनुसार प्राय उनकी बदली एव स्थान से दूसरे स्थान को हाती रहती है। अतएव उनके अनुभव का लाभ उस उद्योग को नही प्राप्त हो पाता। सरकारी अधिकारियो की अफसरी शान तथा लाल फीतेशाही (Red tapism) के दोषो के कारण भी औद्योगिक प्रबन्ध ठीक-ठीक नही हो पाता।

(४) उद्योगो के राष्ट्रीयकरण से उद्योग आर्थिक परिस्थितियो की अपेक्षा राजनैतिक परिस्थितियो से अधिक प्रभावित होते है। यदि देश मे प्रजातन्त्र है तब तो उसमे और भी अस्थिरता आ जाती है। हर पार्टी की अपनी औद्योगिक नीति होती है। शासन सत्ता के बदलने के साथ-साथ औद्योगिक सगठन मे भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार कोई एक स्थिर नीति अधिक समय तक नही चलने पाती। इगलैंड जैसे देश में जहाँ प्रजातन्त्र तथा औद्योगिक व्यवस्था बहुत पुरानी है इस प्रकार की उथल पुथल देखने मे आयी। समाजवादी सरकार ने पदासीन होते ही कोयले की खानो तथा यातायात का राष्ट्रीयकरण कर दिया। अगले चुनाव मे कजर्वेटिव सरकार विजयी हुई और इन उद्योगो को फिर से व्यक्तिगत उद्योगपतियो को सौप दिया गया।

(५) राष्ट्रीयकरण से उपभोक्ताओ को हानि होती है। औद्योगिक प्रबन्ध की अयोग्यता, तथा उत्पादन सम्बन्धी दोषो का समस्त भार उन्ही पर पडता है। या तो उसे मूल्य मे वृद्धि करके वसूल किया जाता है अथवा हानि को सरकारी खजाने से पूरा किया जाता है जिसका भार भी अतत जनता पर ही पडता है। कभी कभी तो सरकार एक क्षेत्र मे धन की कमी को पूरा करने के लिए दूसरे उद्योग से धन वसूल करती है। उदाहरण के लिए भारत सरकार प्रति वर्ष रेलवे तथा डाक के महसूल मे वृद्धि करती जाती है। यह वृद्धि इन विभागो मे होने वाले खर्च को पूरा करने के लिए नही वरिक अन्य क्षेत्रो मे धन की कमी को पूरा करने के लिए की जाती है। इस प्रकार यद्यपि सरकार का उद्देश्य लाभ कमाना नही रहता फिर भी वह कभी कभी लागत से बहुत ऊँचे दाम वसूल करती है।

क्या राष्ट्रीयकरण उचित है ?

राष्ट्रीकरण के गुण दोषो पर विचार करने के पश्चात् हमारे सामने स्वाभाविक प्रश्न होता है, क्या राष्ट्रीकरण उचित है ? इसके उत्तर मे यही

कहा जाता है कि जहाँ तक हो सके राज्य को औद्योगिक प्रबन्ध अपने हाथ में नही लेना चाहिए। उसे अपना कार्य क्षेत्र औद्योगिक नियन्त्रण तथा नियमन तक ही सीमित रखना चाहिए। राज्य को इस प्रकार की सुविधाएँ तथा परिस्थितियाँ उत्पन्न करनी चाहिए जिससे देश मे औद्योगिक विकास हो सके। परन्तु निम्नलिखित परिस्थितियो मे उद्योगो का राष्ट्रीकरण अवश्य होना चाहिए।

(१) **सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग**—जैसे शस्त्रास्त्रों का निर्माण।

(२) **ऐसे उद्योग जिनका विकास व्यक्तिगत उद्योगपतियों द्वारा नही किया जा रहा है**—ऐसा बहुत बडी पूजी की आवश्यकता, जोखिम की अधिकता, लाभ के कम अथवा अनिश्चित होने, तथा टेकनिकल ज्ञान की कमी के कारण हो सकता है। सरकार का ऐसे उद्योगो को अपने हाथ मे लेकर उनका विकास करना चाहिए।

(३) **एकाधिकार सम्बन्धी उद्योग**—जिन उद्योगो को सरक्षण तथा एकाधिकार प्रदान किया जाय उन पर सरकारी आधिपत्य होना चाहिए। यदि एकाधिकार अत्यन्त अल्प काल के लिए है तो ऐसा आवश्यक नही है परन्तु यदि दीर्घ काल के लिए एकाधिकार दिया गया हो तो उसका राष्ट्रीय-करण अवश्य कर देना चाहिए जिससे एकाधिकार सम्बन्धी लाभ को जनता के उपयोग मे लाया जा सके।

(४) **जनहितकारी तथा मौलिक (Key) उद्योग**— ऐसे उद्योगो का राष्ट्रीयकरण उसी दशा मे किया जाना चाहिए जब उनका समुचित विकास न हो रहा हो अथवा उद्योगपतियो द्वारा उनका उपयोग जनहित के विरुद्ध हो रहा हो ऐसी दशा मे भी समस्त उद्योग का राष्ट्रीयकरण एक साथ करने की आवश्यकता नहीं है। केवल उन्ही इकाइयो का राष्ट्रीयकरण करना चाहिए जिनका प्रबन्ध बहुत ही खराब हो।

(५) **आदर्श उद्योग**—यदि किसी उद्योग मे प्रबन्ध तथा सगठन की दशा बहुत ही खराब हो तो सरकार एक आदर्श स्थापित करने के लिए कुछ आदर्श कारखाने खोल सकती है।

राजकीय उपक्रमों का संगठन
(Organisation of State Enterprises)

राजकीय उपक्रमो के सगठन को दो भागो मे बाँटा जा सकता है :—

(१) राजकीय उपक्रमों का स्वामित्व ।

(२) राजकीय उपक्रमों का सचालन तथा प्रबन्ध ।

राजकीय उपक्रमो के स्वामित्व के निम्नलिखित रूप हो सकते हैं :—

(१) उद्योग पर पूर्ण रूप से राज्य का स्वामित्व हो। उसकी समस्त पूँजी राज्य द्वारा प्रदान की गई हो तथा उसका सचालन पूर्ण रूप से राज्य के आधीन हो। इस प्रकार के उद्योग एक प्रकार से सरकारी विभाग के समान ही काम करते है। उदाहरणार्थ रेलवे, डाक, तार विभाग इत्यादि ।

(२) उद्योग पर राज्य तथा व्यक्तिगत उद्योगपतियो का सम्मिलित अधिकार हो। ऐसी दशा मे उद्योग का स्वामित्व एक पब्लिक कारपोरेशन के हाथ मे सौंप दिया जाता है। कारपोरेशन के अश कुछ तो राज्य के द्वारा खरीदे जाते है, कुछ व्यक्तिगत उद्योगपतियो अथवा अन्य सस्थाओ द्वारा। भारतवर्ष मे रोडवेज, एयर इण्डिया इण्टरनेशनल तथा इण्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन इस प्रकार के स्वामित्व के उदाहरण है। प्राय ही ऐसे कारपोरेशनो मे सरकार को नियत्रण तथा सचालन सम्बन्धी विशेषाधिकार प्राप्त रहते है।

सचालन तथा प्रबन्ध के दृष्टिकोण से राजकीय उपक्रमो के निम्नलिखित रूप हो सकते है —

(१) राज्य द्वारा संचालन—राज्य अपने आधीन उद्योगो को स्वय चला सकता है। ऐसे उद्योगो का सचालन राज्य के किसी मत्रालय द्वारा होता है वह उद्योग एक राजकीय विभाग के रूप मे काम करता है। उसके पदाधिकारियो की नियुक्ति तथा नीति सम्बन्धी सचालन सरकार के उस मत्रालय से होता है जिसके आधीन वह उद्योग है। प्रबन्धको की नियुक्ति सरकार द्वारा प्रशासन सेवाओ (Administrative Services) के अधिकारियो मे से की जाती है तथा उनका स्थानान्तरण (Transfer) भी होता रहता है। प्रतिवर्ष ऐसी औद्योगिक सस्थाओ का बजट तैयार किया जाता है तथा सरकार द्वारा उसकी स्वीकृति ली जाती है। ऐसे उद्योग के सचालन तथा प्रबन्ध की रिपोर्ट मत्रि-

मन्डल तथा व्यवस्थापिका सभाओं के समक्ष पेश करनी पडती है तथा विधान सभाओं को उसम आवश्यकतानुसार परिवतन का भी अधिकार है।

(२) व्यक्तिगत सस्थाओं द्वारा सचालन—कभी कभी राज्य *किसी उद्योग का राष्ट्रीयकरण करके उसका प्रबन्ध किसी व्यक्तिगत सस्था को* सौंप देती है। ऐसा प्राय उसी दशा म होता है जब व्यक्तिगत सस्था आर्थिक अथवा तान्त्रिक सहायता देने का वचन दे, या उस सस्था की साख तथा प्रबन्ध की शैली बहुत ही अच्छी हो। उदाहरण के लिए भारत म रूरकेला इस्पात के कारखाने का स्वामित्व पूणरूप से भारत सरकार के हाथ म है परन्तु प्रबन्ध जमन सस्था 'क्रप्स एण्ड डिमैग' (Krupps and Demag) के हाथ म है। इसका कारण यह है कि क्रप्स कम्पनी ने करीब सौ करोड रुपये कारखान के निर्माण म व्यय करने का वचन दिया था।

(३) पब्लिक कारपोरेशन द्वारा—राजकीय उद्योगा के सचालन की यह विधि सबसे अधिक प्रचलित है। इसके अनुसार उद्योग के लिए एक विशेष सस्था का निर्माण कर दिया जाता है जिसे पब्लिक कारपारेशन कहते हैं। पब्लिक कारपोरेशन बहुत कुछ प्राइवेट लिमिटड कम्पनिया म मिलता जुलता होता है परन्तु उसकी स्थापना पालियामेन्ट के विशेष अधिनियम द्वारा की जाती है। अधिनियम द्वारा ही उसके प्रबन्ध तथा सचालन सम्बन्धी विधिया की व्याख्या की जाती है। कारपोरेशन को यदि कुछ विशेषाधिकार दिए गय हों तो उनका भी उल्लेख इसम कर दिया जाता है।

पब्लिक कारपोरेशनो के प्रबन्ध तथा सचालन पर प्राय राज्य का पूर्ण अधिकार रहता है, परन्तु फिर भी उनमे सरकारी विभागा म अन्तर रहता है। वैधानिक रूप से कारपोरेशन की स्वतन्त्र स्थिति होती है, कभी कभी तो उसकी पूँजी भी राज्य के अतिरिक्त अन्य सस्थाओं अथवा व्यक्तिगत उद्योगपतियो द्वारा प्रदान की जाती है तथा उनके सचालन म उनका भी योग रहता है। कारपोरेशन अपनी कार्यशील पूँजी के लिए सरकार स ऋण ल सकता है परन्तु उसे यह रकम वापिस करनी पडगा। कारपारेशन के किसी काय के लिए सरकार को न तो उत्तरदायी ठहराया जा सकता है और न उस पर दावा ही किया जा सकता है। यद्यपि कारपारेशन अपन अधिकारियों की नियुक्ति करन तथा अपनी नीति निर्धारित करने एव महत्वपूर्ण मसलों पर निणय करने के पहले राज्य से परामश करत हैं परन्तु विधानत वे इसके लिए बाध्य नहीं है।

पब्लिक कारपोरेशन के गुण

राजकीय उद्योगो के पब्लिक कारपोरेशनो द्वारा सचालन से निम्नलिखित लाभ है —

(१) इनसे व्यक्तिगत प्रबन्ध तथा राजकीय प्रबन्ध दोनो के ही लाभ प्राप्त हो जाते है। दैनिक कार्य-क्रम मे राजकीय हस्तक्षेप का डर नही रहता। साथ ही साथ महत्वपूर्ण मसलो पर राजकीय नियन्त्रण भी स्थापित हो जाता है जिससे इस बात की व्यवस्था की जा सकती है कि उद्योग का सचालन जन हित के लिए ही किया जाय।

(२) इनमे सीधे राजकीय प्रबन्ध की अपेक्षा अधिक स्थिरता रहती है। राज्य सत्ता के परिवर्तन के साथ इनकी नीति तथा सचालन मे परिवर्तन नही होता। इसके अतिरिक्त कारपोरेशन के पदाधिकारी भी स्थायी हो सकते है उनके अनुभव का लाभ भी उद्योग को प्राप्त हो सकता है।

(३) कारपोरेशन के आधीन उद्योगो का सचालन व्यवसायिक स्तर पर किया जा सकता है। सरकारी प्रबन्ध मे सबसे बडा दोष यह रहता है कि उसका प्रबन्ध व्यवसायिक आधार पर न हो कर सरकारी नीति की सुविधाओ के अनुसार होता है। प्राय ऐसे उद्योगो मे उपभोक्ताओ की सुविधा पर कोई ध्यान नही दिया जाता। सरकारी नीति की ही प्रधानता रहती है। कारपोरेशनो के द्वारा उपर्युक्त दोष का अन्त हो जाता है।

(४) कारपोरेशनो के प्रबन्ध तथा सचालन मे व्यक्तिगत उद्योगपतियो तथा श्रमिको एव उपभोक्ताओ के प्रतिनिधियो को भी सम्मिलित किया जा सकता है। इस प्रकार उद्योगो का समाजीकरण प्राप्त किया जा सकता है। इससे उद्योगो पर किसी व्यक्ति विशेष अथवा राज्य का एकाधिपत्य होने के बजाय समस्त समाज का अधिकार हो जाता है जो उद्योगो के सामाजिक हित मे चलाने के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

पब्लिक कारपोरेशन के दोष

(१) कारपोरेशनो के द्वारा सरकार प्राय सचालन सम्बन्धी अधिकारो को तो प्राप्त कर लेती है परन्तु उसके उत्तरदायित्व को वहन नही करती। इतना तो निश्चित ही है कि कारपोरेशन कैसा भी क्यो न हो उसमे उच्च सरकारी पदाधिकारियो, विशेषकर सचिवालय से सम्बन्धित अधिकारियो का प्रभाव विशेष रूप से रहता है। इस प्रकार की दुर्व्यवस्था अभी हाल मे होने

वाले 'मूंदडा काण्ड' तथा लाइफ इन्श्योरेंश कारपोरेशन की विनियोग नीति पर होने वाली खोज मे स्पष्ट हो चुकी है। कारपोरेशन एक स्वतन्त्र संस्था है परन्तु उसकी विनियोग नीति पर वित्त मत्रालय का प्रभाव बहुत अधिक था। वित्त मन्त्री तथा उसके प्रधान सेक्रेटरी के आदेश पर कारपोरेशन ने कुछ ऐसे सौदे तक कर लिए थे जिनमे हानि होना करीब करीब निश्चित सा था। इस प्रकार समस्त काम वित्त मत्रालय के इशारे पर होता था परन्तु गलती होने पर उसका दोष कारपोरेशन के मत्थे मढ दिया गया।

(२) कभी कभी कारपोरेशनो मे ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि सरकार का हाथ सचालन तथा प्रबन्ध मे नगण्य रहता है परन्तु होने वाली हानि का अधिकाश सरकारी खजाने को ही भुगतान पडता है। ऐसी स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब अधिकाश पूंजी सरकार द्वारा लगाई जाती है परन्तु प्रबन्ध समितियो मे दूसरे वर्गो का बाहुल्य रहता है। ऐसी दशा म प्राय प्रबन्धक सरकार की आड लेकर हर तरह के उल्टे सीधे सौदे करते रहते है तथा कारपोरेशन को हानि पहुँचाते है।

(३) कारपोरेशन के सचालक मण्डल मे जो लोग होते ह उनका कारपोरेशन के सचालन मे कोई वित्तीय स्वार्थ नही रहता। उन्हे किसी प्रकार की कोई पूंजी उसमे नही लगानी पडती जैसा कि सयुक्त पूंजी की कम्पनियो के सचालको के लिए आवश्यक होता है। फलत उन्हे कारपोरेशन की सफलता अथवा असफलता की कोई चिन्ता नही रहती। प्राय देखा गया है कि जिन राष्ट्रीयकृत उद्योगो का प्रबन्ध ऐसे कारपोरेशनो के हाथ मे आया उनम बराबर घाटा ही हो रहा है। उदाहरण के लिए भारतवर्ष मे हवाई यातायात के दोनो कारपोरेशन घाटे पर चल रहे है। लाइफ इन्श्योरेन्श कारपोरेशन की स्थापना के पहले ही साल बाद बीमे की रकम मे बहुत बडी कमी आ गई। दामोदर घाटी कारपोरेशन तथा अन्य ऐसे कारपोरेशनो के विरुद्ध आडीटर ने बहुत से आक्षेप किए हैं। इसी से स्पष्ट है कि पब्लिक कारपोरेशन बहुत अधिक सफल नही हो रहे है।

ऊपर बतलाए हुए दोष वास्तव मे कारपोरेशनो मे मौलिक रूप से नही रहते। वे उनके दोष पूर्ण सगठन के कारण पाये जाते है। इसलिए उन्हे सगठन मे सुधार करके दूर किया जा सकता है।

छागला कमीशन के सुझाव

कुछ ही समय पहले लाइफ इन्श्योरेन्स कारपोरेशन की जाँच करने के

लिए बम्बई के जस्टिस छागला को नियुक्त किया गया था। आपने पर्याप्त खोज के पश्चात् जो सुझाव दिए उनमे से कुछ सभी कारपोरेशनो पर लागू किए जा सकते है। ये सुझाव निम्नलिखित हैं —

(१) सरकार को जहाँ तक हो सके इस प्रकार के स्वतन्त्र कारपोरेशनो की कार्यशैली मे हस्तक्षेप नही करना चाहिए। यदि ऐसा आवश्यक ही हो जाय तो कारपोरेशन के अधिकारियो के पास लिखित निर्देश भेजना चाहिए ताकि कोई चूक पडने पर सरकार को अपना उत्तरदायित्व टालने का मौका न मिले।

(२) कारपोरेशन के चेयरमैन सरकारी पदाधिकारियों के बजाय ऐसे लोगो को चुनना चाहिए जो उस कार्य का अनुभव रखते हो।

(३) यह उच्च सरकारी अधिकारियों को इस प्रकार के कारपोरेशनो का प्रबन्धक बनाया जाय तो उन्हे यह बात स्पष्ट बता देनी चाहिए कि उनका कर्तव्य तथा स्वामिभक्ति कारपोरेशन के प्रति होनी चाहिए न कि सरकार की ओर। तात्पर्य यह है कि उन्हे स्वतन्त्र रूप से कारपोरेशन तथा जनता के हित के लिए काम करना चाहिए अपने उच्च अधिकारियो की बातों को आँख मूद कर नही मानना चाहिए जैसा कि सरकारी विभागो मे होता है।

(४) पार्लियामेन्टरी सरकार मे यदि कोई मन्त्री इस प्रकार के कारपोरेशन के काम मे हस्तक्षेप करता है तो उसे ससद को अपने काम से अवगत करा देना चाहिए तथा उसकी राय ले लेनी चाहिए।

अन्य सुझाव

ऊपर लिखे हुए सुझाव स्वतन्त्र कारपोरेशनो के काम मे मन्त्रि-परिषद द्वारा किये जाने वाले दिन प्रतिदिन के हस्तक्षेपो को रोकने के लिए दिए गए है। इसके अतिरिक्त अन्य सुझाव इस प्रकार दिए जा सकते है।

(१) कारपोरेशन की सचालक समिति मे सरकार तथा अशधारियो के प्रतिनिधियो के अतिरिक्त श्रमिको तथा उपभोक्ताओ के प्रतिनिधियों को भी सम्मिलित करना चाहिए। जहाँ तक हो सके उसके सचालक मण्डल मे सभी हितो के लोगो को सम्मिलित करना चाहिए।

(२) कारपोरेशनो के द्वारा उद्योगो के समाजीकरण पर जोर देना चाहिए। जब इन पर सामाजिक नियन्त्रण रहेगा तभी इनकी कार्यशैली जन-हित के लिए अग्रसर की जा सकेगा।

(३) प्राय: कारपोरेशन बन जाने के पश्चात् सचालकों की ऐसी धारणा बन जाती है कि व्यक्तिगत उद्योगपति सभी बुरे हे। इसलिए अपने आधीन उद्योगो के सचालन मे न तो उन्हे सम्मिलित किया जाता है, और न उनकी राय ली जाती है। बल्कि ऐसे लोगो की तरफ से आने वाले सुझाओ को प्रतिक्रियावादी तथा पूंजीवादी कहकर टाल दिया जाता है। इस प्रकार की प्रवृत्तियो को दूर रखना चाहिए, कारपोरेशन को सबके सहयोग से काम करना चाहिए। किसी के विरोध से नहीं।

भारत मे उद्योगों का नियन्त्रण तथा नियमन
(Control and Regulation of Industries in India)

भारत म औद्योगिक विकास का इतिहास सरकारी उदासीनता, अग्रेजी माल के प्रति पक्षपातपूर्ण व्यवहार तथा लकाशायर के उद्योगो को भारत के बल पर चलाने के एक नियमित षड्यन्त्र का इतिहास है। औद्योगिक विकास इगलैंड मे सबसे पहले हुआ इसलिए जब अन्य देशो के उद्योग धन्धे अपनी शैशवास्था मे थे, ब्रिटिश उद्योग पर्याप्त रूप से पुष्ट हो चुके थे। इसीलिए स्वतन्त्र व्यवसाय की नीति (Laisse Faire Policy) अग्रेजो के पक्ष मे थी। इसलिए पर्याप्त समय तक स्वतन्त्र व्यवसाय की नीति का नारा बुलन्द करके ब्रिटिश उद्योगो के लिए भारत के बाजार को सुरक्षित रक्खा गया। जूट और रुई जैसा भारी और कच्चा माल भी निर्माण के लिए सात समुद्र पार इगलैंड भेजा जाता था और प्राय उसका निर्मित माल फिर से भारत आता था। परन्तु धीरे-धीरे जापान की व्यावसायिक उन्नति से स्थिति बदल गई। इगलैंड स जापान के साथ औद्योगिक प्रतिस्पर्द्धा करना अत्यन्त कठिन था इसलिए भारतवर्ष मे मिलो की स्थापना करके यही से एशियाई बाजार पर अधिकार कायम रखने की योजना बनाई गई। फलत अग्रेजी पूंजी से देश मे औद्योगिक विकास का आरम्भ हुआ।

शक्तिशाली ब्रिटिश उद्योगपतियों के सामने भारत सरकार कुछ भी करने मे असमर्थ थी। अतएव औद्योगिक क्षेत्र मे सरकारी हस्तक्षेप कम से कम रहा। सन् १९२१ मे फिस्कल कमीशन की सिफारिश पर भारत सरकार ने विवेकपूर्ण सरक्षण नीति को अपनाया। परन्तु उसमे भी ब्रिटिश माल को राजकीय सुविधायें (Imperial Preference) कायम रहीं। सरक्षण का प्रभाव भारतीय उद्योगो पर काफी अच्छा पडा। जिन-जिन उद्योगो को सरक्षण मिला उनको आशातीत वृद्धि हुई। इसमे शक्कर उद्योग का नाम विशेषरूप से

उल्लेखनीय है। सरक्षण के सिलसिले मे सरक्षण प्राप्त उद्योगो पर सरकारी नियन्त्रण पर्याप्त माना मे स्थापित हो गया। सरकार को सरक्षण प्राप्त उद्योगो की लागत, मूल्य उत्पादन विधियो इत्यादि पर काफी ध्यान रखना पडता था। तथा उद्योगो के लिए यह आवश्यक कर दिया गया था कि वे तत्सम्बन्धित सूचना सरकार के पास भेजते रहे।

सन् १८८१ मे मजदूरो की दयनीय दशा पर सरकार ने पहला कारखानो अधिनियम (Factory Act) पास किया। इसके अनुसार काम करने के घण्टों कारखाने की दशा इत्यादि से सम्बन्धित नियम बनाए गए। इसके पश्चात् १८९१, १९११, १९२२, १९३४ तथा १९४८ मे समय–समय पर इसमे परिवर्तन किया गया। इनके द्वारा कारीगरो को अधिकाधिक सुविधाएँ प्रदान की गई तथा कारखानो की कार्य प्रणाली पर सरकारी नियन्त्रण काफी बढा दिया गया। कारखाना अधिनियम के अलावा खानो मे काम करने वाले तथा चाय के बगीचो मे काम करने वाले मजदूरो के लिए भी नियम बनाये गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् इस क्षेत्र मे विशेष रूप से उन्नति हुई तथा न्यूनतम वेतन अधिनियम (Minimum Wages Act) प्राविडेण्ट फण्ड अधिनियम कर्मचारी राज्य बीमा योजना इत्यादि के द्वारा कारखाने मे काम करने वाले मजदूरो की दशा मे सुधार करने का प्रयत्न किया गया।

माल की किस्म, मूल्य तथा उत्पादक विधियो इत्यादि पर नियत्रण विशेषरूप से द्वितीय महायुद्ध काल मे आरम्भ हुआ। युद्धकाल मे ही सरकार ने कानून पास करके नई कम्पनियो की स्थापना पर नियत्रण कायम कर दिया। इस अधिनियम के अनुसार कोई भी नई कम्पनी कायम करने के पहले अथवा पुरानी कम्पनियो की पूँजी मे वृद्धि करने के पहले भारत सरकार के वित्त विभाग से स्वीकृति लेना आवश्यक कर दिया गया। इस अधिनियम का उद्देश्य यह था कि युद्धकाल मे ऐसी कम्पनियो की स्थापना न हो जाय जो आगे चलकर डूब जाँय तथा देश मे आर्थिक सकट उत्पन्न कर दें। साथ ही साथ इसका उपयोग देश मे एक नियन्त्रित विनियोग के लिए भी किया जा सकता था। युद्धकाल म ही सरकार ने मूल्यो तथा वितरण पर भी नियन्त्रण कायम किया। खास खास चीजों के लिए राशनिग की व्यवस्था की गई। बहुत सी चीजो के भाव सरकार की ओर से नियत कर दिए गए।

स्वतन्त्रता के पश्चात् ही भारत सरकार ने नियोजित अर्थ व्यवस्था तथा उद्योगो के समाजीकरण की ओर कदम उठाया। पुरानी पूँजीवादी व्यवस्था

देश के लिए अनुपयुक्त थी। देश के सन्तुलित औद्योगिक विकास तथा जन कल्याण के दृष्टिकोण से यह आवश्यक था, उद्योगो पर सरकारी नियत्रण हो तथा उनकी वृद्धि के लिए राज्य की ओर से अधिकाधिक प्रोत्साहन दिया जाय। इसके साथ ही साथ यह भी आवश्यक था कि औद्योगिक विकास मनमाने ढग से न होकर एक निश्चित योजना के अनुसार हो। इसलिए सरकारी नीति मे परिवर्तन आवश्यक था। भारत सरकार की औद्योगिक नीति प्रस्ताव १९४९, औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम १९५१ तथा १९५३ एव औद्योगिक नीति अधिनियम १९५६ मे प्राप्त होता है। प्रत्येक अधिनियम का विस्तृत वर्णन नीचे दिया जा रहा है।

औद्योगिक नीति प्रस्ताव १९४८

स्वतन्त्रता के पश्चात् भारतीय उद्योगो मे सरकारी नीति के सम्बन्ध मे बडी गलत फहमी फैली। कुछ उद्योगपतियो ने कहना शुरू किया कि राज्य समस्त उद्योगो पर अधिकार कर लेगा। अतएव समस्त उद्योगो मे भय तथा शका का वातावरण छा गया। फलत उत्पादन कम होने लगा। नए उद्योगो मे विनियोग कम हो गया। देश मे इस समय सबसे तीव्र आवश्यकता उत्पादन बढाने की थी। अतएव ६ अप्रैल सन् १९४८ को तत्कालीन उद्योग मन्त्री श्री श्यामा प्रसाद मुकर्जी ने ससद मे भारत सरकार की औद्योगिक नीति की घोषणा की। नीति की विशेषताएँ इस प्रकार थी —

[१] उद्योगो को चार श्रेणियो म विभक्त किया गया जो इस प्रकार थे –

(अ) पूर्ण सरकारी एकाधिकार के उद्योग—इस प्रकार के उद्योग केवल सरकार द्वारा ही खाले जा सकते हैं। व्यक्तिगत उद्योगपतियो को इनमे सम्मिलित नही किया जा सकता। इसमे निम्नलिखित उद्योग सम्मिलित किये गये। शस्त्रास्त्रों का निर्माण अणुशक्ति का विकास तथा रेलवे यातायात।

(ब) मिश्रित क्षेत्र के उद्योग—इस वर्ग के उद्योगो का सचालन सरकार द्वारा होगा परन्तु इसमे व्यक्तिगत उद्योगपतियों को भी स्थान दिया जा सकता है। इस बात का प्रयत्न किया जावेगा कि नये उद्योग केवल सरकार द्वारा ही खोले जाय परन्तु जो औद्योगिक इकाइयाँ पहले से ही व्यक्तिगत प्रबन्ध के अन्तर्गत काम कर रही हैं उनको दस साल तक इसी प्रकार काम करने की अनुमति दी जावेगी। दस साल बाद सरकार इस बात का निर्णय करेगी कि

उनका राष्ट्रीयकरण किया जाय अथवा नही। इस वर्ग मे कोयला, लोहा और इस्पात, हवाई जहाज, समुद्री जहाज, टेलीफोन, तार, वायरलेस के निर्माण तथा खनिज तैलो के उद्योग सम्मिलित किये गये।

(स) सरकारी नियन्त्रण के उद्योग—इस प्रकार के उद्योगो का राष्ट्रीयकरण तो न किया जावेगा परन्तु उन पर पर्याप्त सरकारी नियन्त्रण रहेगा। इस वर्ग की लिस्ट सबसे बडी है तथा सभी प्रमुख उद्योग इसमे सम्मिलित किये गये है। मुख्य मुख्य उद्योग इस प्रकार है — मोटर गाडियाँ तथा ट्रैक्टर, मशीनो के औजार, बिजली की मशीनें, भारी रासायनिक पदार्थ तथा खाद दवाइयाँ, रबर का सामान, सूती तथा ऊनी वस्त्र व्यवसाय, सीमट, शक्कर, कागज, समुद्री तथा हवाई यातायात, तथा खनिज इत्यादि।

(द) साधारण सरकारी नियन्त्रण के उद्योग— ऊपर के तीन वर्गों के अतिरिक्त अन्य उद्योगो मे व्यक्तिगत स्वामित्व रहेगा। ऐसे उद्योगो के सचालन तथा प्रबन्ध पर साधारण सरकारी नियन्त्रण रहेगा निश्चय ही इस वर्ग मे आने वाले उद्योग बहुत महत्वपूर्ण नही है।

[२] औद्योगिक लाभ मे श्रम का उचित भाग होना चाहिये। यह हिस्सा श्रम की उत्पादक शक्ति के आधार पर होना चाहिये। सरकार के द्वारा इस बात का प्रयत्न किया जावेगा कि श्रमिको को उचित वेतन तथा पूँजीपतियो को पूँजी पर उचित लाभ मिल सके।

[३] विदेशी पूँजी के प्रति सरकार की नीति यह होगी कि ऐसे उद्योगो मे अधिकाश स्वामित्व तथा प्रबन्ध भारतीय उद्योगपतियो के हाथ मे होना चाहिये। उसमे भारतीयो को उत्तरदायित्वपूर्ण पद देना चाहिए। जिन कामो के लिए योग्य व्यक्ति न प्राप्त हो सके उनके लिए विदेशी विशेषज्ञ रक्खे जा सकते है परन्तु भारतीयो को उचित शिक्षा देने का प्रबन्ध होना चाहिए जिससे वे उनके स्थान को ग्रहण कर सकें।

[४] कुटीर उद्योगो का राष्ट्रीय अर्थ व्यवस्था मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है अतएव सरकार इनके विकास का भरसक प्रयत्न करेगी। केन्द्रीय सरकार लम्बे पैमाने के उद्योगों तथा कुटीर के बीच मे समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न करेगी जिससे कि दोनो का ही समुचित विकास हो सके।

सरकार की तटकर नीति इस सिद्धान्त पर आधारित होगी कि देश के

आन्तरिक साधनों के विकास में विदेशी प्रतिस्पर्द्धा बाधक न बन सके। साथ ही साथ उपभोक्ताओं पर अनुचित बोझ भी न पड़ सके।

[६] श्रमिकों के लिए घरों की व्यवस्था की जायगी तथा दस साल में दस लाख घरों की योजना बनाई जायगी।

[७] सरकारी कर नीति इस प्रकार से निर्धारित होगी कि जिससे बचत तथा विनियोग को प्रोत्साहन मिले तथा धन का अनुचित केन्द्रीकरण भी न हो सके।

औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम १९५१
[Industries (Development & Regulation) Act 1951]

सन् १९४८ में औद्योगिक प्रस्ताव पास हुए करीब तीन साल हो गये थे। इस बीच देश में बहुत से परिवर्तन हुए। सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना सन् १९५० में लागू कर दी थी। इसके साथ-साथ समाजवादी अर्थव्यवस्था की स्थापना का अन्तिम ध्येय घोषित कर दिया गया। पुरानी औद्योगिक नीति में अब परिवर्तन की आवश्यकता थी। अतएव अक्टूबर सन् १९५१ में सरकार ने औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम पास कर दिया। अधिनियम की मुख्य-मुख्य शर्तें इस प्रकार हैं —

(१) सरकारी नियन्त्रण का क्षेत्र विकसित कर दिया गया। इसके लिए जो अनुसूची बनी उसमें ३६ उद्योगों को सम्मिलित किया गया। इनमें प्रायः सभी बड़े-बड़े उद्योग सम्मिलित कर लिए गए। हवाई जहाज, शस्त्रास्त्रों के निर्माण, लौह इस्पात जहाजों, मोटर गाड़ियों के निर्माण जैसे बड़े-बड़े उद्योगों से लेकर बैटरी, बाइसिकिल, रेडियो, सिलाई की मशीनों तक के उद्योग सम्मिलित कर लिए गये थे।*

* The following is the complete list of 36 industries included in the schedule

1. Air Craft 2. Arms and Amunitions, 3 Iron and Steel, 4. Coal, 5 Mathematical and Scientific instruments, 6. Motor and Aviation fuel, 7. Ships and other vessels, propelled by the agency of steam, electricity and mechanical Power, 8. Sugar, 9. Automobiles, 10. Telephones, Telegraph and wireless communication apparatus, 11. Textiles made of Cotton or Jute, 12. Cement, 13 Electric lamps and fans, 14. Electric Motors, 15. Heavy Chemicals, 16. Heavy Machinery, 17. Locomotives, 18. Machine tools, 19. Machinery and equipments for generation, transmission and distribution of electrical energy, 20 Non-ferrous metals, 21. Paper, 22. Pharmaceutical drugs, 23. Power and industrial Alcohol, 24. Rubber goods, 25. Leather goods, 26 Woollen textiles, 27. Vanaspati and Vegetable oil, 28. Agricultural implement, 29. Batteries Dry cells and Storage, 30. Bi-cycles and their parts, 31. Hurricanes and lanters, 32. Internal Combuston Engines, 33. Power driven pumps, 34. Radio Receivers, 35. Sewing and kniting machines, 36. Small and hand tools.

(२) सरकार को इन उद्योगों पर बहुत बड़े अधिकार दे दिए गए। सरकार इन उद्योगों के उत्पादन को बढ़ाने, माल की किस्म में सुधार करने, किसी विशेष कच्चे माल का उपयोग करने अथवा जान बूझकर उत्पादन घटाने की क्रियाओं को बन्द करने का आदेश दे सकती है। सरकार को यह भी अधिकार है कि किसी भी व्यक्तिगत औद्योगिक इकाई का उत्पादन घटने अथवा माल की किस्म खराब होने पर जांच करवा सकती है तथा आवश्यकतानुसार उसे रोकने के लिए उचित कदम उठा सकती है।

(३) अधिनियम मे, सरकार को उद्योगों के नियमन तथा नियन्त्रण के लिए परामर्श देने के लिए ३० सदस्यो की एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद की व्यवस्था की गई। परिषद् मे विभिन्न हितों के प्रतिनिधि सम्मिलित किए जाने की व्यवस्था थी।

(४) प्रत्येक उद्योग के लिए अलग-अलग विकास परिषदों (Development Councils) की स्थापना की गई। इनमे सरकारी प्रतिनिधियो के अतिरिक्त श्रमिकों, उत्पादकों तथा उपभोक्ताओं के प्रतिनिधि भी सम्मिलित किए गए।

(५) सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि उद्योगों पर विशेष कर लगाकर एक निधि का निर्माण करे। इस निधि का उपयोग तात्रिक प्रशिक्षण तथा अनुसधान के लिए किया जायेगा। इसके अतिरिक्त सरकार किसी विशेष उद्योग को तात्रिक प्रशिक्षण (Technical Training) का प्रबन्ध करने के लिए आदेश दे सकती है।

(६) सरकार को इस बात का भी अधिकार दिया गया कि नियन्त्रित उद्योगों मे से किसी से भी आवश्यक आँकड़े मँगा सके।

सन् १९५३ का सशोधन

सन् १९५३ मे अधिनियम को अधिक व्यापक बनाने के लिए आवश्यक सशोधन किये गये। सशोधन की मुख्य मुख्य धाराएँ निम्नलिखित थी :—

(१) नियन्त्रित उद्योगों की अनुसूची मे निम्नलिखित ६ उद्योग और सम्मिलित किये गये—[१] शीशा तथा चीनी मिट्टी का सामान, [२] रेशम तथा नकली रेशम, [३] रग, [४] साबुन, [५] प्लाईउड, [६] फेरो-मैंगनीज।

(२) उपर्युक्त वर्गो के अन्दर आने वाले उद्योगों मे ऐसी औद्योगिक इकाइयों को भी सम्मिलित किया गया जिनमे पूंजी १ लाख से कम थी।

(३) सरकार को उद्योगो के नियन्त्रण सम्बन्धी अत्यन्त विस्तृत अधिकार दिए गए। सरकार यदि समझे कि किसी उद्योग का प्रबन्ध ठीक-ठीक ढग से नही हो रहा है तो बिना जाच भी किसी उद्योग पर अधिकार कर सकती है। इसके लिए सलाहकार परिषद की सिफारिश की भी आवश्यकता नही है।

(४) नियत्रण मे लिए हुए उद्योग पर सरकार ससद् की राय से ५ वर्ष से अधिक समय तक अधिकार रख सकती है। नियत्रण काल मे सरकार कम्पनी के पार्षद् सीमा नियम (Memorandum) तथा पार्षद् अन्तर्नियम (Articles of Association) की अवहेलना कर सकती है।

नई औद्योगिक नीति १९५६

३० अप्रैल सन् १९५६ को भारत सरकार ने पार्लियामेंट मे नई औद्योगिक नीति की घोषणा की। सन् १९४८ मे घोषित औद्योगिक नीति मे अब तक काफी परिवर्तन हो चुका था। सामाजवादी अर्थ-व्यवस्था तथा जन कल्याण राज्य (Welfare State) की स्थापना का लक्ष्य सरकार द्वारा घोषित किया जा चुका था। अतएव अब नई औद्योगिक नीति मे औद्योगिक क्षेत्र मे सरकार के बढते हुए नियत्रण तथा प्रभुत्व पर जोर दिया गया। नई औद्योगिक नीति की मुख्य मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं --

(१) समस्त उद्योगो को 'तीन भागो में' विभाजित किया गया जो इस प्रकार थे --

(अ) राजकीय एकाधिकार के उद्योग

इसमे कुल १७ उद्योग सम्मिलित किए गए जिन्हे प्रथम अनुसूची (Schedule A) मे दिया गया इसमे निम्नलिखित प्रकार के उद्योग सम्मिलित किए गए।

(१) सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग--जैसे शस्त्रास्त्रो का निर्माण तथा अणुशक्ति का विकास।

(२) भारी उद्योग--जैसे लौह तथा स्पात उद्योग, बडी-बडी बिजली की मशीनें इत्यादि।

(३) खान सम्बन्धी उद्योग--कोयला, लोहा, खनिज तेल, जिप्सम, गधक, सोना, हीरा इत्यादि।

(४) यातायात तथा सन्देशवाहन के साधन---जैसे हवाई

जहाजों का निर्माण, वायु यातायात, रेलवे यातायात, समुद्री जहाजों का निर्माण, टेलीफोन, टेलीग्राफ, वायरलेस इत्यादि का निर्माण।

(५) इस सूची में आने वाले उद्योगों का विकास साधारणत सरकार द्वारा ही होगा। जो व्यक्तिगत इकाइयाँ पहले से ही इस क्षेत्र में काम कर रही हैं उन्हें काम करने दिया जायगा तथा उनके विस्तार में भी बाधा उपस्थित न की जायेगी। परन्तु सरकार आवश्यकता पड़ने पर इनका राष्ट्रीय-करण कर सकती है तथा सरकारी उद्योगों में भी व्यक्तिगत उद्योगपतियों को साझी बना सकती है। परन्तु ऐसा करने मे सरकार उद्योग अपनी नीति के अनुसार चलाने का विशेषाधिकार रखेगी। साराश यह है कि इस प्रकार के उद्योगों के विकास तथा नियत्रण पर सरकार को अधिकार तो दे दिया गया है परन्तु उसम पर्याप्त लोच रखी गई है।

(ब) राज्य तथा व्यक्तिगत उद्योगों का सम्मिलित क्षेत्र

इस क्षेत्र में कुल १२ उद्योग सम्मिलित किए गए हैं जिन्हें 'अनुसूची ब' मे दिखलाया गया है। मुख्य-मुख्य उद्योग जो इसमें सम्मिलित किए गए, इस प्रकार है -सभी खनिज पदार्थ, मशीनो के औजार, रासायनिक उद्योगों म काम आने वाले मौलिक पदार्थ जैसे प्लास्टिक का निर्माण, खाद, आवश्यक दवाइयाँ, रासायनिक लुग्दी, सड़क तथा समुद्री यातायात इत्यादि।

इस भाग के उद्योगो के विकास का उत्तरदायित्व राज्य तथा व्यक्तिगत उद्योगपतियो दोनो पर ही होगा। इस वर्ग के उद्योगो पर क्रमश राज्य का स्वामित्व स्थापित किया जावेगा। इसलिए राज्य इस प्रकार के नए उद्योगों के विकास की भरसक चेष्टा करेगा। परन्तु कुछ समय तक व्यक्तिगत उद्योगो के विकास को भी समान अवसर दिया जावेगा।

(स) व्यक्तिगत क्षेत्र

इस वर्ग में बाकी सब उद्योग सम्मिलित किए गए हैं। इसमे छोटे-छोटे उद्योगो से लेकर बड़े-बड़े उद्योग जैसे बुनाई उद्योग, कागज, सीमेंट इत्यादि सम्मिलित है। इन उद्योगो का विकास यथासम्भव व्यक्तिगत उद्योग-पतियो द्वारा किया जावेगा। सरकार इन उद्योगो के विकास के लिए यातायात, पूँजी, शक्ति, तथा अन्य आवश्यक साधन प्रस्तुत करने का प्रयास करेगी तथा सरक्षण एव उचित कर नीति द्वारा उद्योग के सवर्द्धन का प्रयास करेगी। इस प्रकार इस वर्ग के उद्योगो के विकास मे सरकार केवल परोक्ष सहायता प्रदान करेगी परन्तु यदि आवश्यक हो तो सरकार

इन उद्योगो का राष्ट्रीयकरण कर सकती है अथवा उनके नियत्रण सम्बन्धी उचित अधिनियम बना सकती है।

७ देश के आर्थिक विकास के लिए भारी आधार भूत उद्योगो की स्थापना आवश्यक है। इसलिए इन उद्योगो की स्थापना तथा विकास का जिम्मा स्वय सरकार ने लिया है और इ० पहले वर्ग म सम्मिलित किया गया।

(३) भारतीय सघ का उद्देश्य समाजवादी व्यवस्था की स्थापना करना तथा सम्पत्ति के समान वितरण की व्यवस्था करना है। इसके लिए आवश्यक है कि आर्थिक शक्ति का केन्द्रीकरण न होने पावे। अतएव सरकार की औद्योगिक नीति ऐसी होगी कि क्रमश सभी बड़ बड़ उद्योगो के स्वामित्व तथा प्रबन्ध मे राज्य का क्षेत्र बढता जायगा।

(४) व्यापार के क्षेत्र म भी राज्य क्रमश बढता हुआ भाग लेगा और इस प्रकार उद्योग तथा व्यापार सभी क्षेत्रो म धन तथा शक्ति के केन्द्रीकरण को रोकने की चेष्टा की जायेगी।

(५) देश के औद्योगिक विकास म व्यक्तिगत क्षेत्र (Private Sector) का महत्वपूर्ण स्थान है इसलिए निश्चित सीमाओ के अन्दर तथा निश्चित योजना के अनुसार उनके विकास को प्रोत्साहन दिया जायेगा।

(६) राज्य उद्योगो के विकास के लिए यथा सम्भव आर्थिक सहायता प्रदान करेगा। सरकार सहकारिता के आधार पर स्थापित उद्योगो को विशेष सहायता देगी। सरकार विशेष परिस्थितियो मे उद्योगो को सहायता प्रदान करने के लिए उनके अश खरीद सकती है अथवा ऋण पत्रो की खरीद कर सकती है।

(७) सरकार इस बात का प्रयास करेगी कि उद्योगो का सचालन राज्य की निर्धारित नीति के अनुसार हो परन्तु एक ही उद्योग म सरकारी तथा व्यक्तिगत औद्योगिक इकाइयो के साथ किसी प्रकार का पक्षपात नहीं किया जाएगा।

(८) उद्योगो का वर्गीकरण पूर्ण रूप से स्थिर नहीं होगा। सरकार को अधिकार होगा कि किसी भी वर्ग म आने वाली औद्योगिक इकाइयो का राष्ट्रीयकरण कर सके तथा प्रथम वर्ग म आने वाले उद्योगो म भी व्यक्तिगत उद्योगपतियो को सम्मिलित कर ले। इसके अतिरिक्त बड बड सरकारी उद्योग अपनी आवश्यकता का सामान जैसे छोटे छोटे पुर्जे इत्यादि व्यक्तिगत उद्योगो से प्राप्त कर सकते है।

क्या नई औद्योगिक नीति एक क्रान्तिकारी कदम है ?

सरकार की नई औद्योगिक नीति के सम्बन्ध मे बडा मत वैषम्य है। कुछ लोगो के मतानुसार यह बहुत बडा क्रान्तिकारी कदम है अन्य लोग उसे सन् १९४८ की औद्योगिक नीति का ही परिवर्द्धित रूप समझते है। यद्यपि इसमे कोई सदेह नही कि दोनो ही नीतियो के आधारभूत सिद्धान्त समान है। दोनो मे ही मिश्रित अर्थ व्यवस्था (Mixed Economy) को आधार माना है इसीलिए उद्योगो को ३ भागो में वर्गीकृत किया गया है। दोनो मे ही राजकीय तथा व्यक्तिगत उद्योगो के सह-अस्तित्व (Co-existence) के सिद्धान्त को मान्यता दी गयी है। दोनो मे ही उद्योगो पर राज्य के बढते हुए नियन्त्रण, औद्योगिक प्रबन्ध के समाजीकरण तथा श्रमिको के महत्वपूर्ण स्थान पर जोर दिया गया है। योजनात्मक अर्थ प्रबन्ध, सरक्षण, देश के आर्थिक साधनो के विकास को दोनो मे ही महत्व दिया गया है तथा सरकारी औद्योगिक नीति का अन्तिम लक्ष्य माना गया है। परन्तु यह समझना भूल होगी कि नई औद्योगिक नीति पुरानी औद्योगिक नीति की पुनरावृत्ति मात्र है। दोनो मे पर्याप्त अन्तर है। क्योकि —

(१) नई औद्योगिक नीति मे सरकारी क्षेत्र मे बहुत बडी वृद्धि हुई है। पहली औद्योगिक नीति के प्रस्ताव मे जहाँ इने-गिने उद्योगो को सरकारी एकाधिकार के अन्तर्गत रखा गया था वहाँ नई औद्योगिक नीति प्रस्ताव मे १७ बडे-बडे उद्योग सम्मिलित किए गए है। इससे स्पष्ट है कि सरकार उद्योगो के राष्ट्रीयकरण को अन्तिम ध्येय मानकर उसे प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध है।

(२) नई औद्योगिक नीति मे समाजवादी व्यवस्था की स्थापना पर स्पष्ट ही अधिक जोर दिया गया है। सरकारी कर नीति तथा औद्योगिक स्वामित्व दोनो मे ही इस बात पर जोर दिया गया है कि धन तथा शक्ति का केन्द्रीयकरण कुछ हाथो मे न होने पावे। इसीलिए औद्योगिक क्षेत्र के अतिरिक्त व्यापारिक क्षेत्र मे भी राज्य ने अधिकाधिक भाग लेने का निश्चय किया है।

(३) नई औद्योगिक नीति मे उद्योगो के क्षेत्रीय विकास पर स्पष्ट रूप मे जोर दिया गया है। भारतवर्ष एक विशाल देश है। इसलिए सतुलित आर्थिक विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र का समुचित आर्थिक विकास किया जाय। क्षेत्रीय विकास की आवश्यकता इधर थोड़े समय

से और भी अधिक प्रतीत होने लगी है। इसीलिए सरकार ने नई औद्योगिक नीति मे इस बात को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया गया है कि पिछडे हुए क्षेत्रो के विकास के लिए सरकार की ओर मे समुचित कदम उठाया जावेगा, तथा इन क्षेत्रो मे औद्योगिक विकास के साधनो जैसे यातायात, शक्ति, पूँजी इत्यादि का प्रस्तुत करने मे सरकार हर प्रकार की सहायता देगी।

नई औद्योगिक नीति की आलोचना

नई औद्योगिक नीति की आलोचना दोनो ही क्षेत्रो से हुई है। प्रतिक्रिया वादी तथा दक्षिण पक्षीय नेताओ ने इसे अदूरदर्शितापूर्ण, तथा अत्यधिक क्रान्तिकारी बतलाया है जबकि दूसरे पक्ष के लोगो ने औद्योगिक नीति को समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के लिए पूर्ण रूप से अनुपयुक्त बतलाया है। सैद्धान्तिक दृष्टिकोण को छोडकर व्यवहारिक रूप मे नीति की आलोचना निम्नलिखित प्रकार से की जा सकती है।

(१) नीति मे सरकारी क्षेत्र पर आवश्यकता से अधिक जोर दिया गया है—भारत जैसे पिछडे हुए देश म यदि औद्योगिक विकास का समस्त भार सरकार पर ही आ जाय तो यह देश के लिए घातक हो सिद्ध होगा। प्रजातन्त्र शासन मे सरकार का प्रयत्न उद्योगो के नियन्त्रण तथा उनमे सामन्जस्य स्थापित करन तक ही सीमित रहना चाहिए। पूर्णतया नियन्त्रित अर्थव्यवस्था म जैसा कि रूस इत्यादि साम्यवादी देशो म है, देश के समस्त साधन भी सरकार के हाथ म आ जात है तथा सरकार द्वारा औद्योगिक विकास का काम सरल हो जाता है। परन्तु प्रजातन्त्र मे आर्थिक विकास के साधन जैसे पूँजी, सगठन इत्यादि विशेषकर व्यक्तिगत उद्योगपतियो के हाथ मे रहत है। एसी दशा म सरकार के लिए नए-नए उद्योगो का विकास अत्यन्त कठिन हो जाता है तथा व्यक्तिगत क्षेत्र को साथ म लिए बिना विकास की गति रुक जाती है।

(२) नई औद्योगिक नीति मे व्यावहारिक दृष्टिकोण की अपेक्षा सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पर ही विशेष जोर दिया गया है—समाजवादी व्यवस्था तथा उद्योगो का समाजीकरण होना चाहिए, इस विषय पर कभी दो राय नही हो सकती परन्तु परिस्थितियो को देखत हुए समाजवाद पर अत्यधिक जोर देना अधिक व्यावहारिक नही जान पडता। देश मे इस समय सबसे बडी आवश्यकता इस बात की है कि नए-नए उद्योगो

का विकास हो, उत्पादन मे वृद्धि हो, लागत कम हो। राष्ट्रीयकरण तथा राजकीय उद्योग तो बाद की चीज है। आवश्यकता इस बात की है कि औद्योगिक विकास हो न कि इस बात की किसके द्वारा हो। हम उत्पादन के पहले ही वितरण की बात करने लगे हैं। इसीलिए व्यक्तिगत क्षेत्र का उतना सहयोग नही प्राप्त हो रहा है जितना मिलना चाहिए।

(३) औद्योगिक नियन्त्रण तथा राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध मे सरकारी नीति अब भी स्पष्ट नही है—भारतीय उद्योगपतियो मे यों ही उद्योग के स्थायी विकास के बजाय जल्दी से जल्दी पूँजी वापस लेने की धुन लगी रहती है। इस प्रकार की सरकारी नीति से इसे और भी प्रोत्साहन मिलता है। किसी भी उद्योग का राष्ट्रीयकरण किसी भी समय हो सकता है, ऐसा डर हर व्यक्तिगत पूँजीपति को रहता है। इसीलिए पुराने उद्योगो का नवीनीकरण नही हो रहा है। नए उद्योगो मे अधिकाश सरकारी आर्थिक सहायता के बल पर खोले जा रहे हैं तथा हर पूँजीपति उद्योग को दीर्घकालीन योजना के आधार पर चलाने के स्थान पर अपना रुपया वापस निकालने के चक्कर मे रहता है।

(४) स्पष्टता का अभाव औद्योगिक नीति में सर्वत्र ही दिखाई देता है—उद्योगो के तीन भाग किए गए है परन्तु उनमे न तो कोई स्थिरता है, न निश्चयात्मकता ही। सरकारी क्षेत्र मे व्यक्तिगत उद्योगपतियो द्वारा तथा व्यक्तिगत क्षेत्र मे सरकारी कारखाने खोले जा सकते हैं यद्यपि सरकार ने इस बात का स्पष्ट आश्वासन दिया है कि एक ही उद्योग मे यदि सरकारी तथा व्यक्तिगत कारखाने होंगे तो सरकारी कारखानो के साथ किसी प्रकार का पक्षपात नही किया जायगा। परन्तु व्यवहारिक रूप मे यह बात असम्भव सी मालूम पडती है। इसके अलावा राज्य के विस्तृत साधनो के कारण यों ही सरकारी उद्योग को व्यक्तिगत उद्योग की अपेक्षा अधिक सुविधाएँ प्राप्त हो जायेंगी। इससे भी औद्योगिक विकास के कार्य मे बाधा उत्पन्न होने का डर है।

स्वतन्त्रता के पश्चात् औद्योगिक नियन्त्रण की प्रगति

पिछले पृष्ठों मे हमने औद्योगिक नियन्त्रण तथा नियमन के सम्बन्ध मे सरकारी नीति तथा उसके विकास का अध्ययन किया। इस नीति से यह स्पष्ट है कि सरकार का प्रधान लक्ष्य धीरे-धीरे उद्योगो पर सामाजिक नियन्त्रण

स्थापित करना है। अब किसी भी उद्योग का मनमाने ढंग पर चलाना उद्योग-पति के वश की बात नहीं है। उन पर राज्य तथा समाज का नियन्त्रण भी रहेगा। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरकार की ओर स निम्नलिखित काम किये गये ह।

राजकीय उद्योग—सबसे बडा कदम इस दिशा मे राजकीय उद्योगो की स्थापना द्वारा किया गया ह, यद्यपि अग्रेजी शासन काल मे भी इस दिशा मे प्रयत्न किया गया था। कुछ रेलो का निर्माण राज्य की ओर से किया गया। इसके अतिरिक्त शस्त्रास्त्रा के निर्माण के कुछ कारखाने भी राज्य की ओर स स्थापित किए गए। सेनाओ के लिए रसद इत्यादि की व्यवस्था करने के लिए भी कुछ कारखाने राज्य की ओर से स्थापित हुए जैसे कानपुर की हार्नेस फैक्ट्री जहाँ घोडो की जीने, बूट तथा चमडे का अन्य सामान बनता था। देशी रियासतो म भी राजकीय उद्योगो की प्रगति हुई। विशेषरूप से मैसूर राज्य का नाम इस दिशा मे उल्लेखनीय है। मैसूर मे कई कारखाने राज्य की ओर स खोले गये।

स्वतत्रता के पश्चात् इस दिशा म प्रगति बडी तेजी से हुई। प्रथम पचवर्षीय योजना की अपेक्षा द्वितीय योजना म सरकारी क्षेत्र को बहुत अधिक विस्तृत कर दिया गया। बडे-बडे बाधो के अलावा औद्योगिक क्षेत्र म भी प्रगति हुई। सरकार द्वारा स्थापित कुछ नए उद्योग इस प्रकार है —

(१) चितरजन लोकोमोटिव वर्कस, चितरजन।
(२) पराम्बुर कोच फैक्ट्री, मद्रास।
(३) सिंदरी फर्टिलाइजर एण्ड कैमिकल फैक्ट्री।
(४) हिन्दुस्तान स्टील प्राइवेट लिमिटड।
(५) इण्डियन टेलीफोन इन्डस्ट्रीज़।
(६) हिन्दुस्तान एयर क्राफ्ट फैक्ट्री।
(७) हिन्दुस्तान केबिल्स फैक्ट्री।
(८) नहान फाउड्री प्राइवेट लिमिटड।
(९) इंडिया माईनिंग एण्ड कान्सट्रक्शन प्राइवेट लिमिटड।
(१०) हिन्दुस्तान शिपयार्ड लिमिटेड।
(११) हिन्दुस्तान मशीन टूल्स प्राइवेट लिमिटड।
(१२) हिन्दुस्तान हाउसिंग फैक्ट्री प्राइवेट लिमिटड।
(१३) हवी इलक्ट्रिकल्स प्राइवेट लिमिटड।

(१४) मिर्जापुर की सीमेंट फैक्ट्री ।

(१५) मध्य प्रदेश का अखबारी कागज का कारखाना ।

सरकारी उद्योगों में कुछ तो "राजकीय विभागों" के रूप में काम करते हैं। जैसे "चितरंजन की लोकोमोटिव फैक्ट्री", तथा "पेराम्बुर की कोच फैक्ट्री।" इनका प्रबन्ध रेलवे बोर्ड द्वारा होता है तथा इनके प्रबन्ध के लिए राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती है। इसी प्रकार सुरक्षा सम्बन्धी उद्योग भी सुरक्षा-विभाग के आधीन काम करते हैं। परन्तु अधिकांश उद्योगों के प्रबन्ध के लिए विशेष रूप से बनाए हुए सरकारी कारपोरेशन हैं। अधिकांश प्राइवेट लिमिटेड कम्पनियों के रूप में हैं जिनमें भारत सरकार का अधिकांश हिस्सा है। कुछ में चेयरमैन बाहरी व्यक्तियों को भी बनाया गया है, कुछ बाहरी लोग डायरेक्टर भी हैं परन्तु अंतिम नियंत्रण प्रत्येक दशा में सरकार का ही है।

उद्योगों का राष्ट्रीयकरण—नये उद्योगों को खोलने के साथ-साथ कुछ पुराने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण भी किया गया है जो निम्नलिखित हैं :—

(१) रिजर्व बैंक।

(२) इम्पीरियल बैंक आफ इण्डिया।

(३) बीमा उद्योग।

(४) रेलवे, सड़क तथा हवाई यातायात।

(५) बिजली कम्पनियां।

(६) विशाखापत्तनम् का जहाज बनाने का कारखाना।

(७) मैसूर की सोने की खानें।

राष्ट्रीयकरण की प्रगति काफी धीमी रही है। वास्तव में राष्ट्रीयकरण केवल उन्हीं उद्योगों का किया गया है जिनके संचालन के बारे में सरकार के पास काफी शिकायतें थी अथवा जिनके राष्ट्रीयकरण का प्रस्ताव स्वयं उद्योगों की ओर से ही आया। उदाहरण के लिए बीमा कम्पनियों की दशा बहुत खराब थी। उसमें जमा जनता के धन का व्यक्तिगत पूँजीपतियों द्वारा दुरुपयोग किया जा रहा था। अतएव राष्ट्रीय हित में उसका राष्ट्रीयकरण आवश्यक था। यातायात का राष्ट्रीयकरण सरकारी योजना के अनुसार हुआ। इसके अलावा हवाई यातायात की कम्पनियों की बहुत ही खराब दशा थी। वर्तमानकाल को देखते हुए राष्ट्रीयकरण की अपेक्षा सरकारी नियन्त्रण ही अधिक उपयुक्त जान पड़ता है क्योंकि पुराने उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करने के बजाय नए उद्योगों में सरकारी पूंजी लगाना अधिक लाभप्रद होगा।

सरकार के द्वारा प्रत्यक्ष सहायता प्रदान करने का कार्य भी स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विशेष रूप से किया गया है। सबसे अधिक सहायता आर्थिक क्षेत्र मे की गई है। इसके लिए राज्य की ओर से अनेक विशेष वित्तीय सस्थाओं का निर्माण किया गया है जिनका वर्णन आप पिछले अध्यायो मे पढ चुके है। इसके अतिरिक्त शिक्षा तथा अनुसधान की दिशा मे सहायता प्रदान की गई है। राज्य की ओर से अनेक अनुसधान शालाएँ तथा ट्रेनिंग सेन्टर खोले गए है जिनका वर्णन अन्यत्र किया जा चुका है। विदेशो मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्र वृत्तियाँ दी गई है। सरकारी नीति के अनुसार सरकारी आवश्यकता की वस्तुओ मे भारत मे निर्मित माल को प्राथमिकता दो जायगी।

सरकार की सरक्षण नीति भी देश के उद्योग-धधो के विकास के लिए काफी उपयोगी सिद्ध हुई है। टैरिफ कमीशन द्वारा बहुत से उद्योगो को सरक्षण प्रदान किया गया जिसके कारण पिछले अल्पकाल मे अनेक उद्योग भारत मे खोले गए। नए उद्योगो मे बाइसिकिल, मोटर, बिजली की मोटरे, रेडियो सेट इत्यादि का नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय है। इनमे अधिकाश उद्योगो को विदेशी निर्माताओं के सहयोग से आरम्भ किया गया है। शक्ति के साधनों, तथा यातायात के विकास की ओर भी राज्य की ओर से पर्याप्त ध्यान दिया जा रहा है। ट्राम्बे मे एक अणु शक्ति के विकास का यन्त्र (Atomic Reactor) लगाया गया है। विदेशी कम्पनियो के द्वारा मिट्टी के तेल को शुद्ध करने वाले तीन कारखाने भारत मे बिठाये गये है जिससे आशा की जाती है कि पेट्रोल सम्बन्धी कमी दूर हो सकेगी। इसके अलावा भारत मे पेट्रोल की खोज की जा रही है तथा पजाब मे ज्वालामुखी एव खम्भात मे तेल पाये जाने के लक्षण प्रकट हुए है। पचवर्षीय योजनाओं मे सडक तथा जल और रेलवे यातायात के विकास पर काफी जोर दिया गया है।

राज्य की ओर से आर्थिक साधनों के नियोजित उपयोग तथा विभिन्न उद्योगो मे सामञ्जस्य स्थापित करने का प्रयास भी किया जा रहा है। रिजर्व बैंक, इम्पीरियल बैंक तथा जीवन बीमा कम्पनियो के राष्ट्रीयकरण तथा बैंको पर रिजर्व बैंक का नियन्त्रण बढा देने के कारण आर्थिक साधनो पर राज्य का काफी आधिपत्य स्थापित हो गया है। इसके अतिरिक्त किसी भी नये उद्योग को चालू करने के लिए कम्पनी निर्माण करने के पहले भारत सरकार के वित्त मत्रालय से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है। उद्योगो के क्षेत्रीय वितरण पर भी जोर दिया जा रहा है। इसके अतिरिक्त कर नीति के द्वारा लम्बे पैमाने तथा कुटीर उद्योगो के बीच मे सामञ्जस्य उत्पन्न करने का प्रयत्न किया जा

रहा है, विशेषकर उन उद्योगों में जहा छोटे और बड़े पैमाने के उद्योगों में प्रतिस्पर्द्धा की मात्रा विशेष है जैसे हाथ करघा तथा वस्त्र उद्योग।

वस्तु की किस्म तथा मूल्यो पर नियन्त्रण रखने की दिशा मे भी राजकीय नियन्त्रण की प्रगति हुई है। सरकार की ओर से दिल्ली मे एक प्रमाप संस्था (Indian Standard Institution) का निर्माण किया जा चुका है। प्रमाप संस्था विशेषकर विदेशों को भेजे जाने वाले माल की किस्म की निगरानी रखती है तथा अनायास कुछ माल चुन कर उसकी जाँच करती है। इस प्रकार विदेशों को केवल प्रमाणित किस्म का माल ही भेजा जा सकता है। प्रमाप संस्था द्वारा निरीक्षण किए हुए माल पर मोहर लगाने की भी व्यवस्था की गई है। इससे माल की किस्म मे सुधार होने मे सहायता मिलेगी।

औद्योगिक स्वामित्व की दिशा मे भी सामाजिक नियन्त्रण स्थापित करने पर ध्यान दिया जा रहा है। सरकार की ओर से उद्योगो पर सहकारी स्वामित्व (Co-operative Ownership) स्थापित करने पर बल दिया जा रहा है। छोटे पैमाने के उद्योगो तथा कुछ लम्बे पैमाने के उद्योगों मे भी सहकारी स्वामित्व की स्थापना की गई है। कुछ शक्कर मिलो के सहकारी आधार पर चलाए जाने की योजना द्वितीय पचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सम्मिलित की गई है। शोलापुर मे एक सूती मिल को भी सहकारी आधार पर चलाने का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त सरकारी नीति मे इस बात पर जोर दिया जा रहा है कि प्रबन्धक समितियो मे भी मजदूरो को हिस्सा दिया जाय। उत्तर प्रदेश की कुछ मिलो मे इस प्रकार की योजना प्रयोगिक रूप से लागू की जा चुकी है। इसके साथ-साथ उद्योगों मे काम करने वाले श्रमिकों की सामाजिक सुरक्षा तथा कल्याण सम्बन्धी कार्यो मे भी प्रगति हुई है। राजकीय बीमा योजना, कर्मचारी प्रॉविडेन्ट फन्ड योजना, इत्यादि इस दिशा मे उठाये गये महत्वपूर्ण कदम है।

विकास परिषद
(Development Councils)

सन् १९५१ के औद्योगिक (विकास तथा नियमन) अधिनियम के द्वारा इस बात की व्यवस्था की गई थी कि औद्योगिक विकास के लिए विकास समितियों का निर्माण किया जाय। समितियों की सदस्यता काफी विस्तृत रक्खी गई है। इसमे उद्योगपतियो, मजदूरो, सरकार तथा औद्योगिक विशेषज्ञों

के प्रतिनिधियों को सम्मिलित किया गया है। सदस्यों की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा अथवा केन्द्रीय सरकार की अनुमति पर की जावेगी। प्रत्येक बडे उद्योग के लिए एक विशेष विकास परिषद की स्थापना की गई है। विकास परिषदों के मुख्य-मुख्य कार्य इस प्रकार है —

(१) केन्द्रीय सरकार की सूचनाओ को सम्बन्धित उद्योग तक पहुँचाना। इस प्रकार विकास परिषद सरकार तथा उद्योग के बीच मे सम्पर्क स्थापित रखने का काम करेगी।

(२) परिषद समय-समय पर देश की आवश्यकताओं का ध्यान रखते हुए उत्पादन की सीमा निर्धारित करेगी जिसमे उत्पादन को माग के अनुसार सतुलित किया जा सके।

(३) परिषद विभिन्न उद्योगो के बीच मे उत्पादन सम्बन्धी नीतियो के बीच सामन्जस्य स्थापित करके का प्रयास करेगी। इस प्रकार वह विभिन्न औद्योगिक इकाइयो के बीच मे प्रतिस्पर्द्धा के स्थान पर सहयोग उत्पन्न करने का प्रयास करती है।

(४) परिषद के सदस्य औद्योगिक विशेषज्ञ भी होते हैं इस प्रकार परिषद अपने सदस्य औद्योगिक ईकाइयो को तात्रिक सलाह भी प्रदान करती है।

(५) परिषद इस बात की भी खोज करती है कि माल की किस्म तथा तादाद मे सुधार कैसे किया जाय। परिषद अपने सदस्यों को इस प्रकार की सलाह देती है जिससे वे कम से कम लागत मे अच्छी किस्म का माल तैयार कर सके।

(६) परिषद वस्तुओं के प्रमापीकरण तथा उचित ग्रेड बनाने की व्यवस्था पर विचार करती है तथा इस बात का भी अध्ययन करती है कि उद्योग द्वारा उत्पादन किये जाने वाले माल की खपत कैसे बढाई जाय तथा उसकी बिक्री की विधियो मे क्या-क्या सुधार किए जाँय।

(७) परिषद उद्योग मे प्रयोग होने वाले कच्चे माल के उत्पादन पर भी विचार करती है। यदि कच्चे माल की कमी है तो परिषद इस बात का अध्ययन करती है कि उसमे अधिक से अधिक बचत कैसे की जा सकती है। इस बात का अनुसधान करने का भी प्रयास किया जाता है कि दुर्लभ कच्चे माल के स्थान पर कोई स्थानापन्न (Substitute) वस्तु का प्रयोग किया जा सके।

(८) परिषद हर प्रकार के अनुसधान को प्रोत्साहन देती है जिसमे औद्योगिक उत्पादन अधिक सुचारु रूप मे किया जा सके।

(९) परिषद कर्मचारियो की कार्यक्षमता को बढाने तथा उनके कल्याण मे वृद्धि करने का भी प्रयास करती है तथा सदस्यो को इस सम्बन्ध मे उचित परामर्श देती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि विकास परिषदो का औद्योगिक विकास मे अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। इनसे उद्योग मे विविधता के स्थान पर एकरूपता उत्पन्न होगी। उद्योगो का सतुलित विकास सम्भव हो सकेगा। सरकारी नीति तथा सामान्य समस्याओं पर विचार करने के लिए समिति एक प्लैटफार्म प्रस्तुत करेगी। नियोजित अर्थ व्यवस्था मे ऐसी विकास परिषदो का स्थान निश्चय ही अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सारांश यह है कि उद्योगो की स्थापना तथा उनके सचालन पर अब पूर्ण रूप से पूँजीपतियों का हाथ ही नही है। नये-नये उद्योगो का विकास अब सरकारी योजना के अनुसार होगा। उनके सचालन पर समाज के सभी सम्बन्धित वर्गो का सम्मिलित अधिकार होगा। माल की किस्म, उत्पादन की विधियों, मूल्य उत्पादन, लाभ इत्यादि पर राजकीय नियन्त्रण रखा जावेगा जिससे उद्योगो का सचालन व्यक्तिगत हित की अपेक्षा सामाजिक हित मे हो। भारतवर्ष धीरे-धीरे पूर्ण समाजवादी व्यवस्था के ध्येय की ओर बढ रहा है। आशा है अगले आने वाले कुछ वर्षो मे उद्योगो की अस्तव्यस्तता समाप्त होकर वे एक नियन्त्रित योजना मे सम्बद्ध हो जायेगे।

प्रश्न

1. "Ever since government announced their policy of fostering a "mixed economy" in the country, all kinds of doubts and misgivings have been expressed and measures adopted to control, regulate and direct industry have been criticized." Discuss this statement, giving your views on the future of industrial enterprise in India.

(Agra, B. Com., 1958)

2. Discuss the problems raised by the assumption of direct responsibility for industrial development by the state in India.

(Agra, B. Com., 1958)

3. What is Public Corporation and how is it distinguished

from a Public Company ? What role can Public corporations play in the industrial planning of India ?

(Agra, B. Com , 1957)

4 Trace the history of regulation and control of industries in India since 1947 and state the present position

(Agra, B Com , 1957)

5. What are the Development councils which have been set up so far and what are their functions ? Explain in detail.

(Agra, B. Com , 1956)

6. Discuss the working of Industries (Development and Regulation) Act 1951, *since it came into operation*

(Agra, B. Com., 1955)

7 *(a)* What are the functions of the Development Councils envisaged in the Industries (Development and Regulation) Act ?

(b) What are the powers conferred upon Government by the Industries (Development and regulation) Act to control industries effectively. (Agra, B Com , 1955)

8. What are the main provisions of the Industries (Development and Regulation Act ? Discuss the advantages of this measure in relation to existing industrial organisation of the country (Agra, B Com , 1954)